

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’,

दैट इज

‘अंग्रेजी राज’

:

‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर

‘सांस्कृतिक ठप्पा’



भारतीय राजव्यवस्था के चरित्र को उजागर करता यह छायाचित्र यु.पी.एस.सी.परीक्षाओं में अंग्रेजी के वर्चस्व के खिलाफ प्रधानमंत्री आवास के बाहर हुए प्रदर्शन के दौरान ओमेश मीणा जी द्वारा खींचा गया है।

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’, दैट इज ‘अंग्रेजी राज’ :

‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’

© सर्वाधिकार - अश्विनी कुमार (लेखक एवं शोधकर्ता)

1. भारतीय कॉपी राइट एक्ट के अन्तर्गत इस पुस्तक की सामग्री के प्रस्तुतीकरण के सभी अधिकार लेखक अश्विनी कुमार के पास सुरक्षित हैं । अत- कोई भी संस्था समूह या व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाईटिल, पुस्तक अंश का आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर हिन्दी अथवा किसी भी भाषा में छापने का प्रयास न करे । अन्यथा कानूनी कार्यवाही के हर्जे-खर्चे व हानि के जिमेदार स्वयं होगा । किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा ।
2. परन्तु इस पुस्तक के किसी भी भाग का गैर व्यावसायिक शैक्षिक, जनजागरण उद्देश्य के लिए कॉपीराइट एक्ट के तहत उपयोग किया जा सकता है । मूल कॉपी से छेड़-छाड़ किये बिना ईमेल के माध्यम से दूसरों को भेजा जा सकता है । गैर व्यावसायिक, जन जागरण उद्देश्य के लिए फोटोकॉपी करा कर भी लोगों में बाटी जा सकती है । पुस्तक के किसी भी भाग का प्रयोग करते वक्त पुस्तक या लेखक का उल्लेख करे
3. किसी भी अन्य प्रकार की अनुमती के लिए लेखक से संपर्क करे । अन्य प्रकाशक जो इस पुस्तक को हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं में प्रकाशित करने में रुचि रखते हो, वे भी लेखक से ईमेल, फोन या पत्र के माध्यम से संपर्क कर सकते हैं ।

प्रकाशन : अश्विनी कुमार, लेखक एवं शोधकर्ता द्वारा स्व प्रकाशित

यह महज़ एक पुस्तक नहीं, जन-आन्दोलन का अह्वान है।

भारतीय समाज में अंग्रेजी सिर्फ भाषा नहीं वर्गीय विभाजन को बनाए रखने का व्यवस्था जनित
‘सांस्कृति हथियार’ भी है ।

संस्करण :

- प्रथम ड्राफ्ट संस्करण मार्च (2014) ISBN – 978-93-5156-895-7
- दूसरा ड्राफ्ट संस्करण जुलाई (2014)

सहयोग राशि : रु 250 मात्र + डाक खर्च अतिरिक्त (प्रिंट एडिशन)

ईमेल द्वारा/ वेबसाइट से डाउनलोड कर इ-संस्करण प्राप्त करने का कोई शुल्क नहीं है।

मुद्रण : लेखक द्वारा स्वयं मुद्रित

संपर्क : अश्विनी कुमार, C/o ज्योति संग , ली संग इंटरनेशनल I-A, इन्द्रा गांधी कालोनी, सेक्टर 21B , फरीदाबाद, हरियाणा । पिन 12001. Ph. : 9210473599, 9990210469

Email: ashwini.economics@gmail.com , english.medium.angregi.raj@gmail.com

वेबसाइट : janbhashajanchetna.org

प्रस्तावना

भगत सिंह ने कहा था, **“मुझे विश्वास है कि आने वाले 15-20 सालों में ये गोरे मेरे देश को छोड़ कर जाएंगे। पर मुझे डर है कि आज जिन पदों पर ये ‘गोरे अंग्रेज’ विराजमान हैं, उस पर यदि ‘काले अंग्रेज’ विराजमान हो जाएंगे तो हमारी लड़ाई और भी कठिन हो जाएगी।”** भगत सिंह की इस घोषणा के लगभग 17 साल बाद ‘गोरे अंग्रेज’ तो चले गये पर जाते जाते वे सत्ता ‘मैकाले के मानस पुत्रों’ अर्थात् ‘काले अंग्रेजों’ को सौंप गये। फिर क्या था, सरकार बदली, झंडा बदला, रंगार्ड-पुतार्ड के साथ राज-व्यवस्था को भी नया रंग रूप मिला, पर राजसत्ता का ढाँचा नहीं बदला। जी हाँ! राजसत्ता का स्वरूप वही का वही रहा। एक तरीका जिसके माध्यम से तीन लाख अंग्रेज तीस-चालीस करोड़ अविभाजित हिन्दुस्तानियों को नियंत्रित करते थे। यह तंत्र ही विरासत के रूप में काले अंग्रेजों को प्राप्त हुआ।

26 जनवरी 1950 में लागू हुए संविधान के माध्यम से एक तरफ तो ‘हम भारत के लोग’ के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात कही गयी है। नागरिक अधिकार और नीति निर्देशक सिद्धान्तों के माध्यम से नए भारत के उदय की उम्मीद जगायी गयी। वहीं संविधान के अनुच्छेद 147, 343(1) व (2) तथा 348 के आड़ में लूट-खसोट के पुराने तंत्र को कायम रखा गया है। जी हाँ ! हिन्दी को राज भाषा बनाने वाली संविधान की धारा 343(1) एक तरफ तो हिन्दी बैल्ट माने जाने वाले क्षेत्र के लोगों में तत्सम प्रधान तथाकथित हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने का भ्रम पैदा करती है और दूसरी तरफ गैर-हिन्दी-भाषी माने जाने वाले क्षेत्रों में हिन्दी-भाषी लोगों के वर्चस्व का भय जगाती है। फलस्वरूप ‘तथाकथित हिन्दी-भाषी’ और ‘तथाकथित गैर हिन्दी-भाषी’ एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं। इस प्रकार 343(1) की आड़ में ही अनुच्छेद 343(2), 348, और 147 ही नहीं 343 से लेकर 351 के सभी अनुच्छेद अंततः इंग्लिश के वर्चस्व को ही कायम रखते हैं। हम भारत के लोगों के सामने अनुच्छेद 350, 350A, 350B और 351 के माध्यम से भारतीय भाषाओं के संरक्षण की वकालत की गयी है। वहीं संविधान की उद्देशिका के माध्यम से व्यक्तिगत गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता के भ्रम पैदा

करने वाले माया जाल को पैदा किया गया है। हकीकत में मूलतः अंग्रेजी में रचित यह संविधान अंग्रेजी के वर्चस्व को ही बनाये रखता है। अंग्रेजी का वर्चस्व विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित कर, अवसर को अंग्रेजी-भाषी तबके तक सीमित रख, भारत के लोगों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय से वंचित रखता है। जहाँ तक बंधुता का सवाल है— उसे खत्म करने का महान काम अनुच्छेद 343(1) करता है।

जी हाँ ! इंग्लिश मीडियम सिर्फ स्कूल ही नहीं होते, इंग्लिश मीडियम अदालतें भी होती हैं। इंग्लिश मीडियम संसद के कानून भी होते हैं, पी.एम.ओ. समेत सम्पूर्ण नौकरशाही का ढाँचा इंग्लिश मीडियम ही है। और इन सबको पोसने एवं बचाए रखने का काम इंग्लिश मीडियम विश्वविद्यालय, एम्स, आई.आई.टी., आई.आई.एम, यु.पी.एस.सी., डी.एस.एस.एस.बी आदि जैसे संस्थान करते हैं। यही अल्पतांत्रिक 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' 'भ्रष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' की व्यवस्था पर 'सांस्कृतिक ठप्पा' लगाता है। स्कूल ! ओह ! स्कूल तो बेचारे इसलिए इंग्लिश मीडियम खुलते हैं क्योंकि ये सभी संस्थाने इंग्लिश मीडियम कल्चर को पैदा करती हैं।

'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' ही शोषण और गैर-बराबरी के अल्पतांत्रिक-पंगु-पूँजीवादी किले को बनाए रखने वाली सांस्कृतिक दीवार को पुख्ता करने का काम करती है। सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रख कर, यह सिस्टम उस किले के चारों ओर भ्रष्टाचार की सड़ांध वाली दलदली जमीन निर्मित करता है। बिना इस 'इंग्लिश मीडियम तंत्र' को नेस्तनाबूद किए, न तो भ्रष्टाचार की गंदगी को दूर किया जा सकता है और न ही सामाजिक और आर्थिक गैरबराबरी को बनाए रखने वाली किले की दीवार को ही ढहाया जा सकता है। आम जनता की समझ से परे की भाषा का अल्पतंत्र ही आम जनता को भ्रम और असमंजस की स्थिति में रखता है।

इस पुस्तक का मूलभाग लेखक के शोध कार्य 'अंग्रेजी माध्यम स्कूलों' तथा जन समुदाय के मध्य हुई सामाजिक-सांस्कृतिक अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप 'जन सामान्य' के सांस्कृतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का 'विश्लेषणात्मक-मूल्यांकन' (विशेषतः) 'बाल केन्द्रित पाठ्यचर्चा' को लागू करने के संदर्भ में' पर

आधारित है। दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में जमा कराए, इस शोध के अध्ययन के दौरान और उससे भी पहले मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों में पाया कि किस प्रकार 'इंग्लिश मीडियम केन्द्रित एजुकेशन (शिक्षा)' व्यवस्था राजव्यवस्था के एजेंट के रूप में ग्रामीण-कस्बाई-निम्न एवं निम्नमध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि के 90% लोगों को सिस्टम से बाहर करती है और इस प्रकार सत्ता के तमाम केन्द्रों की बागडोर 1-2% मैकाले के मानस वंशजों के हाथ में बनाए रखने का काम करती है। साँस्कृतिकरण के टूल के रूप में 'इंग्लिश मीडियम केन्द्रित एजुकेशन सिस्टम' 5-8% लोगों का 'साँस्कृतिकरण' 'सिस्टम' की जरूरत के अनुरूप मानक भाषाओं में करता है। ये 5-8% लोग ही सिस्टम के विभिन्न पायदानों पर सिस्टम के भागीदार बनते हैं। इन 5-8% लोग के हिस्से ही सिस्टम की मलाई पहुँच पाती है। ये लोग ही सिस्टम के साँस्कृतिक दलाल के रूप में स्थापित होते हैं और फिर क्या, शेष समाज उनके पीछे भेड़ों की तरह चल पड़ता है। वे शेष समाज के लिए आदर्श बन जाते हैं।

इस देश में शिक्षा तो उसी दिन राज-व्यवस्था के हाथ का खिलौना बन गयी, जिस दिन स्वायत्त पाठशाला व्यवस्था को भंग करने के लिए ब्रिटिश कम्पनी हुकूमत ने स्कूली व्यवस्था की नींव डाली थी। भारत में स्कूली और विश्वविद्यालयी शिक्षा का संपूर्ण ढाँचा कम्पनी एवं ब्रिटिश राज में खड़ा किया गया है और आज भी तमाम सतही प्रयासों के बावजूद भी औपनिवेशिक जरूरत के अनुरूप ही है। औपचारिक शिक्षा के संस्थान के रूप में स्कूल और विश्वविद्यालय राजसत्ता की उप व्यवस्था ही है और ये राजसत्ता की जरूरत के अनुरूप सामाजिक स्तरीकरण का काम करते हैं। अतः स्कूल इसलिए इंग्लिश मीडियम हैं क्योंकि राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है और राजसत्ता इसलिए इंग्लिश मीडियम है क्योंकि 'परदेशी इंग्लिश' राजसत्ता को एक दो प्रतिशत इंग्लिश-हिंग्लिश लोगों तक समेटे रखने का सबसे आसान और कारगर साधन है। इंग्लिश सिर्फ भाषा नहीं है, यह तो शासक और शासितों के मध्य अन्तर बनाने का साधन है। अतः इंग्लिश हम भारत के लोगों को न केवल नियंत्रित अपितु भ्रमित रखने का सबसे आसान साधन है।

जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, तब तक साँस्कृतिक भाषाओं में समान स्कूली व्यवस्था की बात सोचना तक बेवकूफी है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, बच्चों की साँस्कृतिक परिवेश में बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र की बात हम भारत के लोगों के साथ बेईमानी और धोखा है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, शिक्षा का सार्वभौमिकरण (संविधान का अनुच्छेद 21A) महज़ एक युटोपिया है। कॉमन स्कूल की लड़ाई को ख़तम कर उसकी आड़ में इंग्लिश मीडियम प्राईवेट स्कूलों में 25% EWS कोटे की दुकानदारी है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, तब तक इंग्लिश मीडियम स्कूलों की भेड़ चाल को रोक पाना असंभव ही नहीं नामुमकिन भी है। ..और जब तक शिक्षा की व्यवस्था इंग्लिश मीडियम है तब तक ही राजव्यवस्था 1-2% अंग्रेजी-भाषी लोगों के हाथों में सुरक्षित है।

अतः शिक्षा को मुक्तिदाई, काम आधारित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक बनाने के लिए राजसत्ता को इंग्लिश मीडियम के नियंत्रण से मुक्त करने की जरूरत है।

अश्विनी



लेखक एवं शोधकर्ता

तकनीकी कारणों से यह संस्करण के कुछ भाग की प्रूफरीडिंग एवं एडिटिंग नहीं हो पायी है। मैं इस पुस्तक की प्रूफरीडिंग एवं एडिटिंग में सहयोग देने के लिए लोचन मखीजा जी का तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ।

लेखक



अध्याय सूची

क्रम	अध्याय	पेज न.
1	इंग्लिश मीडियम एजुकेशन : समाज में एक बढ़ता क्रेज	16-33
2	औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षा एवं संस्कृति	34-67
3	अध्ययन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि	68-74
4	शिक्षा का बाजारीकरण और बाजारीकरण की शिक्षा	40-44
5	सरकारी तथा निजी स्कूलों में दाखिले की तुलनात्मक प्रवृत्ति की खोज	86-93
6	रमेश का एकल अध्ययन	94-102
7	आरुणी का एकल अध्ययन	103-117
8	विपिनचंद्र एवं उनकी पुत्री	118-132

9	चाय वाले भैया और उनके बच्चे	133-140
10	रविंदर और अजित दो अभिभावक एक पीड़ा	141-149
11	ग्रुप वार्ता – दो समूह दो विचार	150-169
12	प्राचार्य : इंग्लिश मीडियम के संरक्षक	170-207
13	शिक्षकों के साक्षात्कार : आगे कुआँ पीछे खाई	208-230
14	इंग्लिश मीडियम शिक्षा और आत्महत्या	231-262
15	भाषा एवं संस्कृति को समझने हेतु किये कुछ विशेष अध्ययन	263-283
16	हिन्दुस्तानी – औरंगाबाद शहर में हिन्दुस्तान की मिली जुली संस्कृति का अध्ययन	284-297
17	मातृभाषा का अर्थ माँ-बाप की भाषा नहीं होती है	298-323
18	परिवेश के बाहर की भाषा और बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र	324-328

19	इंग्लिश मीडियम शिक्षा व्यवस्था में बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप शिक्षा के अनुरूप वातावरण की तलाश	329-342
20	अंग्रेजी को स्कूली शिक्षा का माध्यम का दिनचर्या पर प्रभाव	343-353
21	अंग्रेजी को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाने वाले स्कूल, क्या स्कूली बच्चों के दैनिक जीवन की गतिविधियों...	354-360
22	इंग्लिश मीडियम और अवसर की समानता	361-368
23	इंग्लिश मीडियम और जन सामान्य का शिक्षा के प्रति कैसा दृष्टिकोण	369-379
24	'शिक्षा का इंग्लिश मीडियमीकरण' के फलस्वरूप जन सामान्य का 'शिक्षा' 'शिक्षण' और 'अधिगम' को लेकर पनपी धारणाएं	380-395
25	सांस्कृतिक कारकों की खोज करेंगे जिसकी वजह से जन सामान्य का झुकाव एका-एक अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के प्रति तेजी से बढ़ा है	396-411
26	स्कूल बच्चे की भाषा शुद्धिकरण एवं संस्कृतिकरण का साधन है	412-431

27	अर्थव्यवस्था के गर्भ में 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' को पैदा करने वाले सांस्कृतिक कारकों की खोज	432-451
28	अर्थव्यवस्था के आईने से 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' को बढ़ावा देने वाले सांस्कृतिक कारकों की खोज – 2	452-487
29	अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व से उत्पन्न विद्युत ज्ञान अनुक्रम(आर्डर)	488-497
30	खतरा है इंग्लिश मीडियम शिक्षा व्यवस्था : शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर इंग्लिस के वर्चस्व वाली शिक्षा व्यवस्था की विवेचना	498-507
31	इंग्लिश मीडियम सिस्टम : भ्रष्टाचार, शोषण और गैरबराबरी की संस्कृति को पोषित करने की संस्कृति (ऐतिहासिक विवेचना)	508-569
32	अंतिम पंक्ति	570-576
33	व्यवस्था का बोझ बच्चों के सर पर	577-586
34	चलते-चलते	587-591

की इ-बुक



‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’

दैट इज

‘अंग्रेजी राज’

‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर
‘सांस्कृतिक ठप्पा’

"...जी हॉ ! इंग्लिश मीडियम सिर्फ स्कूल ही नहीं होते, इंग्लिश मीडियम अदालतों भी होती हैं। इंग्लिश मीडियम संसद के कानून भी होते हैं, पी.एम.ओ. समेत सम्पूर्ण नौकरशाही का डोंवा इंग्लिश मीडियम ही है। और इन सबको पोसने का काम इंग्लिश मीडियम विश्वविद्यालय, आई.आई.टी., आई.आई.एम, यु.पी.एस.सी. आदि जैसे संस्थान करते हैं। यही अल्पतांत्रिक ‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’ ‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’ लगाता है। स्कूल ! ओह ! स्कूल तो बेचारे इसलिए इंग्लिश मीडियम खुलाते हैं क्योंकि ये सभी संस्थाने इंग्लिश मीडियम कल्चर को पैदा करती हैं ..."

english.medium.angregi.raj@gmail.com

लेखक एवं शोधकर्ता – अश्विनी कुमार

©

विजय

अब आप पूछेंगे, भला ये विजय है कौन?

जी ज़नाब ! विजय मेरा विद्यार्थी है। सैकड़ों विद्यार्थियों की तरह वह भी मेरा एक विद्यार्थी ही था। जिसे मैंने किसी स्कूल में नहीं पढ़ाया। उसकी सब्जी की रेडी पर ही अक्सर हमारी क्लास लगा करती थी। मुझे आज भी याद है वह दिन, जब दरवाजा खट-खटा कर वह मेरे घर में दाखिल हुआ और बिना किसी भूमिका के बोला, “मुझे ओपन से बारहवीं की परीक्षा देनी है। सब्जी बेच जो थोड़ा बहुत बचा सका उससे आपकी फीस दे दूँगा।” और मैंने भी मुस्कराते हुए मुंडी हिला दी थी।

विजय की तीसरी कक्षा तक की शिक्षा उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले के ही किसी गांव में हुई थी। पर तीसरी कक्षा पास करते ही परिवार के आर्थिक बोझ को उठाने के लिए, वह अपने परिवार के साथ खेतों में मजदूरी करने लग गया। फिर रोजगार की तलाश में जब परिवार बिजनौर से दिल्ली आया तो वह यहाँ भी अपने पिता के सब्जी बेचने के काम में हाथ बँटाने लगा। स्कूल के बारे में सोचने के लिए न तो परिवार के पास आय थी और न ही समझ। दूसरे बच्चों को स्कूल जाते देख उसके मन में भी स्कूल जाने की इच्छा पैदा होती थी.. जी हाँ! पढ़ने की ललक अब भी उसमें बाकी थी। अपनी सब्जी की रेहड़ी पर वह अक्सर कुछ किताबें ले कर ही निकलता था और फुरसत मिलते ही पन्ने भी पलटने लगता। स्कूल से आने जाने वाले बच्चों को गौर से देखता। उन बच्चों को अंग्रेजी बोलते देख उसके मन में भी अंग्रेजी में बोलने का उमंग पैदा होती। एक रोज रिटायर्ड शिक्षक स्वर्गीय अमृतलाल चक्रवर्ती ने उसे किताब के पन्नों को पलटते देखा। वे उसकी लगन को भाँप गये। और फिर क्या था, उस रोज से उसकी शिक्षा पुनः प्रारम्भ हो गयी। मेरे संपर्क में तो वह नेशनल ओपन से दसवीं कक्षा पास करने के बाद ही आया.. मेरी शागिर्दी में उसने 56% अंकों के साथ बारहवीं की परीक्षा पास की। अब हम सब की इच्छा थी कि वह कॉलेज में भी पढ़े और आगे ‘लॉ’ की पढ़ाई करे। अनुसूचित जाति के लिए किए आरक्षण से भी कुछ उम्मीद बांधी गयी। जब दाखिले का प्रयास किया तो पता चला कि एस. सी. की पास कोर्स की सभी सीटें फुल हो चुकी थीं, पर ऑनर्स में कुछ सीटें बाकी थीं। मैंने उसे इतिहास और राजनीति शास्त्र का ओरिएंटेशन दिया। पर विजय के दिमाग में कुछ और ही चल रहा था। शाम को आकर उसने सूचना दी कि उसने इंग्लिश ऑनर्स में

दाखिला ले लिया। मैंने जब पूछा तो उसका जबाब था, “आप रेड-एंड मार्टिन की इंग्लिश ग्रामर की बुक में से कुछ भी पूछ सकते हैं।” मुझे उसकी ग्रामर की क्षमता पर कोई शक न था, पर इंग्लिश ऑनर्स के लिए जिस तरह का परिवेश चाहिए वह कहीं भी उसे पूरा नहीं करता था। एडमिशन हुआ, कॉलेज आना जाना भी शुरू हुआ फिर कुछ कपड़े भी बदले। सुबह कॉलेज, शाम को सब्जी की रेहड़ी और रात भर किताबें। ये दौर लगभग आठ-नौ महीने तक चला। इस बीच उसका मेरा संपर्क भी कुछ कम हो गया। फिर एक रोज़ खबर आयी, “विजय ने बैंक में तोड़-फोड़ की है।” जब मिलने गये तो पुलिस स्टेशन में था। कुछ अनाप-शनाप भी बके जा रहा था। अगले दिन उसे मनोरोग-अस्पताल में दाखिल करवाया गया। हमने जिस विद्यार्थी को फुटपाथ से विश्वविद्यालय पहुँचाया, विश्वविद्यालय के अंग्रेजीदाँ वातावरण ने उसे नौ महीने के भीतर मनोरोग-अस्पताल पहुँचा दिया।

मेरा यह काम समर्पित है विजय, अनिल मीणा जैसे उन तमाम ग्रामीण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय विद्यार्थियों को जिन्हें अंग्रेजी मईया को प्रसन्न करने हेतु इस देश की राज सत्ता ने बलि पर चढ़ाया। ये पुस्तुक इंग्लिश मईया को खुश करने के लिए बलि पर चढ़ाये गये ऐसे ही लोगों को ही समर्पित है।

साथ ही मेरा यह काम समर्पित है गांव देहात से दिल्ली, इलाहाबाद जैसे शहरों में आने वाले उन तमाम अभ्यर्थियों को, जो हर तरफ से रास्ता बंद होने के बाद यु.पी.एस.इ., बी. पी. एस. इ, डी. एस. एस. बी. आदि की परीक्षाओं के माध्यम से सरकारी सेवाओं में बेहतर भविष्य को तलास रहे होते हैं। पर इन संस्थाओं की अंग्रेजीदा नीतियों के आगे धीरे-धीरे दम तोड़. देते हैं।

अध्याय-1

इंग्लिश मीडियम एजुकेशन : समाज में एक बढ़ता क्रेज



गली गली में खुले हैं इंग्लिश मीडियम स्कूल

आखिर क्यों ??

अप्रैल 2012 में NUEPA द्वारा प्रो. अरुण सी. मेहता के नेतृत्व में प्रकाशित DISE की एक रिपोर्ट 'Elementary Education in India: Progress towards UEE' प्रकाशित हुई। यह रिपोर्ट प्राथमिक स्कूलों के स्तर पर शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के संदर्भ में किये गए शोध पर आधारित थी। इस शोध में यह अनुसंधान किया गया था कि 6-14 साल के कितने प्रतिशत बच्चे स्कूलों में जाते हैं। साथ ही यह भी जांच किया गया कि वे किस भाषा-माध्यम के स्कूलों में जाते हैं। यह रिपोर्ट उजागर करती है कि इंग्लिश मीडियम स्कूलों में दाखिला लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। 2002-03 से लेकर 2010-11 के आठ सालों के दौरान इंग्लिश मीडियम निजी स्कूलों में पहली से लेकर आठवीं तक के दाखिले की वृद्धि दर 274 प्रतिशत रही है। इस प्रकार यह अन्य सभी भारतीय भाषाओं जैसे तमिल, तेलगू, कन्नड़, उड़िया, तथाकथित मानक-हिन्दी एवं उर्दू आदि माध्यमों में चलने वाले स्कूलों के दाखिले की वृद्धि दर को पीछे छोड़ते हुए, इंग्लिश मीडियम सबसे अधिक लोकप्रिय स्कूली शिक्षा माध्यम के रूप में उभरा है। संख्या के आधार पर अंग्रेजी भाषा में एनरोलमेंट (दाखिला) लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या बंगला तथा मराठी को पीछे छोड़ते हुए हिंदी के बाद दूसरे स्थान पर आ गई है।

नर्सरी कक्षाओं में ही निजी इंग्लिश मीडियम स्कूलों में दाखिले के लिए मची मार-काट इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति चाहे अमीर हो या गरीब, हर एक का सपना अपने बच्चों को निजी इंग्लिश मीडियम स्कूलों में दाखिला दिलवाना ही है। स्कूल के मामले में सबकी एक पसंद (चॉइस) है, वह है - इंग्लिश मीडियम स्कूल। आज उच्च-वर्ग तथा उच्च-मध्यमवर्ग का शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में दाखिला करवाता हो। तमिलनाडू राज्य के एक आईएस अधिकारी ने

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

जब अपने बच्चे का दाखिला सरकारी स्कूल में करवाया तो यह घटना मीडिया में चर्चा का विषय ही बन गयी। मीडिया में चर्चा का विषय वही खबर बनती है जो लीक से हट कर होती है। शिक्षाविद् अनिल सदगोपाल ने तो इस घटना को केन्द्र में रख कर *फ्रंट लाइन* जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में आलेख भी लिखा। उन्होंने लेख के माध्यम से कॉमन स्कूल सिस्टम के मुद्दे को फिर से उछालने का प्रयास किया। शिक्षा के मुद्दे पर सरकार द्वारा किये जाने वाले खर्च के आकड़ों के आधार पर भारतीय राज व्यवस्था की शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के प्रति उदासीनता को उजागर किया। पर 1960 के दशक में सरकार द्वारा स्थापित कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में दी गयी कॉमन स्कूल की संकल्पना खुद सरकार की कार गुजारी की वजह से किस प्रकार विलुप्त हुई, यह अपने आप में एक चर्चा एवं विश्लेषण का अलग विषय है। आज तो सरकारी क्षेत्र में ही स्कूलों की बहु स्तरीय व्यवस्था है। पर यहाँ मैं जिस बात की तरफ ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ वह यह कि सरकार ही नहीं लोग भी क्षेत्रीय भाषा माध्यम में चलने वाली सरकारी स्कूली व्यवस्था को नकार रहे हैं। उदाहरण, जहाँ अनिल सदगोपाल जैसे शिक्षाविद् क्षेत्रीय भाषा माध्यम की कॉमन स्कूल की लड़ाई के प्रति प्रतिबद्ध है वही उन्हीं को 'ऑटो' से नियमित रूप से रेलवे स्टेशन छोड़ने वाले ऑटो ड्राइवर, जो कभी उनकी कॉमन स्कूली शिक्षा को स्थापित करने की लड़ाई का सहयोगी था, निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग (EWS) को शिक्षा अधिकार अधिनियम 2010 के अनुसार 25% आरक्षण की व्यवस्था होने के बाद, उस आरक्षण के फलस्वरूप डी. पी. एस. जैसे प्रतिष्ठित निजी इंग्लिश मीडियम स्कूल में अपने बच्चों के दाखिले का स्वप्न देख रहा है। वह ऑटो ड्राइवर शिक्षाविद् अनिल सदगोपाल से आग्रह करता है, "साहब! आपकी तो बड़ी जानकारी है।

सुना है, बड़े स्कूलों में गरीब लोगों (EWS) के लिए भी कुछ सीट आरक्षित की गयी है।” आप सिफारिश कर दो तो हमारे बच्चे भी बड़े प्राइवेट इंग्लिश मीडियम में पढ़ सकेंगे।” कहने का मतलब यह है कि आज हर माता-पिता अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम के स्कूलों में दाखिला दिलवाना चाहता है। रहने वाला वह चाहे स्लम का हो या महल का, हर एक की पहली पसंद इंग्लिश मीडियम स्कूल हो गई है। निजी स्कूल में दाखिला दिलवा लेना किसी किले को फ़तह करने से कम नहीं है। अमीर-गरीब दोनों वर्गों की प्राथमिकता इंग्लिश मीडियम स्कूल हो गए हैं। सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट की जितनी गाईड लाईन निजी इंग्लिश मीडियम स्कूलों के दाखिलों की व्यवस्था को लेकर है, उसकी एक दहाई भी सरकारी स्कूलों की व्यवस्था को दूरस्थ करने के लिए हो। यहां तक कि सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने वाले माता पिता तक अब उम्मीद करते हैं कि उनके बच्चों को सरकारी स्कूलों में भी इंग्लिश मीडियम में ही शिक्षा उपलब्ध करवायी जाए। वैसे आजकल हर एक की कोशिश अपने बच्चों को उच्च ब्राण्ड के इंग्लिश मीडियम स्कूलों में दाखिला दिलाने की ही रहती है। आजकल, लोग सरकारी स्कूलों में तो बस मजबूरी में ही अपने बच्चों को भेजते हैं। लोग सिर्फ क्षमता ना होने की स्थिति में ही सरकारी स्कूलों की तरफ रुख करते हैं। इस बात की पुष्टि NUEPA की यह रिपोर्ट भी करती कि सरकारी स्कूल के दाखिले में गिरावट भी आयी है।

इंग्लिश की चाह में लोग क्षमता न होने की स्थिति में अपनी अपनी जेब के अनुसार निम्न दर्जे के निजी स्कूलों का भी चयन करते हैं। नतीजा यह निकलता है कि आज हर तरह के निजी इंग्लिश मीडियम स्कूल खुल रहे हैं। निजी इंग्लिश मीडियम स्कूलों की श्रेणी में घटिया दर्जे के कहलाने वाले गली नुक्कड़ के गैर मान्यता प्राप्त इंग्लिश मीडियम स्कूल से लेकर उच्च दर्जे

के कहलाने वाले अति विशिष्ट 'हाई-फाई' डी.पी.एस., अमेटी इंटरनेशनल, आदि जैसे 'ब्राण्डेड' इंग्लिश मीडियम स्कूल भी आ जाते हैं। अब यदि हम समाज की वर्गीय संरचना के आधार पर विश्लेषण करें तो पाते हैं कि उच्च तथा उच्च मध्यम वर्ग के लगभग सभी बच्चे विशिष्ट माने जाने वाले इंग्लिश मीडियम स्कूलों में जा रहे हैं। वहीं निम्न मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग के माता पिता का भी सपना अपने बच्चों को सीबीएसई का पाठ्यक्रम चलाने वाले इंग्लिश मीडियम स्कूलों में ही दाखिला करवाने का है। सीबीएसई शब्द ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्र में अंग्रेजी माध्यम के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। यदि लोग उच्च दर्जे के स्कूलों का खर्च वहन नहीं कर पाते, तो ऐसी अवस्था में ही वे निम्न दर्जे के गैर-मान्यता प्राप्त स्कूल में अथवा राज्य बोर्ड से मान्यता प्राप्त प्राइवेट स्कूल में अपने बच्चों का दाखिला कराते हैं, सरकारी स्कूल में तो सिर्फ उस ही अवस्था में अपने बच्चों को डालते हैं। जब वे पूर्णतः आर्थिक रूप से असक्षम हों। परन्तु जैसे ही आर्थिक स्थिति में सुधार आता है तब वे अपने बच्चों को अपेक्षाकृत निम्न दर्जे के स्कूलों से निकालकर ऊपर के दर्जे के स्कूल में डालते हैं। वैसे शिक्षा अधिकार अधिनियम 2010 के तहत मिले 25% के आरक्षण से बहुतों को, बहुत ज्यादा उम्मीद है। पर क्या ये ऊपर के 10% लोगों के लिए खुले स्कूल 85% आबादी के बच्चों को अपने अंदर समाहित कर भी पायेंगे? यह एक अपने आप में बड़ा प्रश्न है। पर हम उससे भी बड़े प्रश्न को उठा रहे हैं।

प्रश्न यह है कि इन इंग्लिश मीडियम स्कूलों में शिक्षित होने की चाह में पहुँची देश की 85% जनसंख्या अर्थात् निम्न मध्यमवर्ग, ग्रामीण कस्बाई इलाकों के बच्चे कुछ सीख भी पाते हैं? या उच्चवर्गीय विद्यार्थियों के मुकाबले पिछड़ते ही जाते हैं? कहीं ये दाखिले की भागम-भाग सिर्फ भेड़-चाल तो नहीं है?

अब यदि 2001 के जनगणना के आकड़ों को आधार बनाकर देखें तो इस देश की जनसंख्या का 0.023% प्रतिशत अर्थात् नगण्य भाग की ही प्राथमिक भाषा अंग्रेजी है। प्राथमिक भाषा अर्थात् वह भाषा जो प्राथमिक समाजिक संपर्क के दौरान मनुष्य सीखता है। प्राथमिक भाषा, मातृभाषा का ही मानक रूप है। मातृभाषा और प्राथमिक भाषा में अंतर यह है कि जहाँ मातृभाषा जिसे अंग्रेजी में 'मदर टंग' कहते हैं। वह भाषा, भाषा न होकर बोली होती है। इस भाषा को हम किसी भी भाषा परिवार में विभक्त करने के स्थान पर समाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में उपलब्ध भाषाओं के मिश्रित रूप में देख सकते हैं। बच्चा बड़ी सहजता के साथ परिवेश में उपलब्ध बोलियों को ग्रहण करता जाता है। जैसे बच्चे के मन में जाति धर्म को लेकर जन्म के समय कोई भेद नहीं होता उसी प्रकार वह जन्म के साथ भाषाओं के भेद को लेकर भी पैदा नहीं होता है। ये सामाजिक अंतरक्रिया है, जिसके दौरान उसे जाति धर्म के भेद-भाव के साथ भाषा-बोली का भेद-भाव भी सिखाया जाता है या वह धीरे-धीरे स्वतः आत्मसात करता जाता है। हमारे स्थापित ज्ञान में जिसे मातृभाषा कहते हैं, वह मातृभाषा (बोली) न होकर प्राथमिक भाषा ही है। आम तौर पर माता-पिता की भाषा को ही मातृभाषा मान लिया जाता है। जो एक गलत तरीका ही नहीं,

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

गलत अवधारणा भी है। हम इस मिथ को आने वाले अध्यायों में खंडित कर मातृबोली की परिवेश जन अवधारणा का प्रतिपादन करेंगे।

मतलब साफ है, 2001 की जनगणना के अनुसार 100 करोड़ लोगों में महज 23 लाख लोगों की ही **प्राथमिक भाषा** अंग्रेजी है। हाँ, **द्वितीयक भाषा** के रूप में अंग्रेजी दर्ज करवाने वालों की संख्या जरूर 12.50 करोड़ के लगभग है। जो इस देश की जनसंख्या का बामुश्किल से 10 प्रतिशत हिस्सा ही होगा। साधारण शब्दों में **प्राथमिक भाषा** एवं **द्वितीयक भाषा** के बीच अंतर का आधार उसे आत्मसात करने के तरीकों में है। प्राथमिक भाषा, वह भाषा है जिसे बिना स्कूल, कॉलेज, कोचिंग सेंटर आदि की दहलीज पर कदम रखे, आत्मसात कर लिया जाए। परन्तु द्वितीयक भाषाओं की स्थिति में सीखने के लिए स्कूल कॉलेज कोचिंग सेंटर जैसे कृत्रिम संस्थानों की जरूरत पड़ती है। प्राथमिक भाषा स्वतः ही आत्मसात होती जाती है, जबकि द्वितीयक भाषा को सीखने की जरूरत पड़ती है। अतः द्वितीयक भाषा कितनी परिवेश गत हो पाती है और कितनी महज रेपिडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स जैसे किताबों से दो चार लाईन रट कर हासिल होती है। यह तो कहना ही मुश्किल है। वैसे जनगणना के आँकड़े एकत्र वाले कोई टैस्ट तो लेते नहीं हैं। वे तो बस व्यक्ति से मिली जानकारी को दर्ज भर करते हैं। वैसे अंग्रेजी का दायरा औपचारिक परिवेश तक ही है। पिछले दिनों ND टीवी पर प्रसारित कार्यक्रम रवीश की रिपोर्ट के एक अंक में दिखाया गया कि किस तरह लोगों में “अमेरिकी स्टाइल” वाली अंग्रेजी के प्रति क्रेज बढ़ा है। इस कार्यक्रम में दिखाया की हर गली नुक्कड़ पर अंग्रेजी सिखाने वाली संस्थाएं खुल गई हैं। अंग्रेजी सिखाने के व्यवसाय में लगे लोगों की चाँदी ही चाँदी है।

कोचिंग सेंटर सिर्फ 400 से 500 रु महीने पर महज 90 दिनों में अंग्रेजी सिखाने का दावा भी कर रहे हैं। इस रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि लोगों में अंग्रेजी का क्रेज इस कदर हावी है कि लोगो ने 'हैट वाली अंग्रेजी देवी' की पूजा तक प्रारम्भ कर दी है। और तो और शुद्ध देशी जुबान में अंग्रेजी देवी के आराधना गीत तक का भी सृजन कर ली है। शायद बहुत जल्द हमें दुर्गा मंदिर, लक्ष्मीमंदिर की तरह अंग्रेजी माता के मंदिर भी देखने को मिलें। अंग्रेजी का जुनून कुछ इस कदर हावी है कि आजकल हर एक के सिर पर 'अंग्रेजी मईया' ही सवार है। पर इस जुनून में कितनी अंग्रेजी भाषा प्राथमिक रूप में सीखी और कितनी दो-चार लाईनें रट कर हासिल की गई है। यह तो कहना बड़ा ही मुश्किल है। अतः 10 प्रतिशत अंग्रेजी बोलने वालों का आँकड़ा कितना सही है, यह स्पष्ट नहीं है। क्योंकि इस 10 प्रतिशत में पूर्ण क्षमता के साथ इंग्लिश बोलने एवं समझने वालों के साथ-साथ महज खानापूति के लिए अंग्रेजी में नाम लिख भर लेने वाले तक शामिल हैं। भाषा के जानकारों के अनुसार महज 3-5 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी का ठीक-ठाक प्रयोग कर पाते हैं। शेष तो महज भाषा के प्रति क्रेज की वजह से ही अपनी द्वितीयक भाषा अंग्रेजी बता देते हैं। इस अवस्था में अंग्रेजी में मौलिक अभिव्यक्ति कर पाने वालों की संख्या तो नगण्य ही होगी।

यदि द्वितीयक भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को ही लें तो, द्वितीयक भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा का उपयोग भी अति सीमित ही रहा है। इसका उपयोग भी सरकारी दफ्तरों के उच्च-अधिकारियों एवं बड़ी-बड़ी कम्पनियों के आला अफसरों के केबिन, सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट में चलने वाली कार्यवाहियों, श्रेष्ठ समझे जाने वाले विश्वविद्यालयों, इंग्लिश मीडियम स्कूलों-कॉलेजों के व्याख्यानकर्तों, प्रभुत्वशाली लोगों की पार्टियों आदि में औपचारिक बातचीत तक ही सीमित है। अतः

द्वितीयक भाषा के रूप में भी अंग्रेजी का प्रयोग सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार के दफ्तरों में महज़ लिखा-पढ़ी के काम काज करने भर तक सिमट कर रह जाता है। यदि इन जगहों की भी बात करें तो सिर्फ उच्च अधिकारियों के स्तर पर औपचारिक बोलचाल में ही अंग्रेजी भाषा का कुछ हद तक उपयोग होता है। जैसे सुप्रीम एवं हाई कोर्ट में जिरह के लिए तो अंग्रेजी का उपयोग होता है। परन्तु वहाँ के दफ्तर में भी आम बोलचाल में अंग्रेजी भाषा का उपयोग अपवाद स्वरूप ही होता है। अभी हाल ही में आई एक रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा का सबसे ज्यादा उपयोग संसद भवन में ही किया जाता है। देश के अंग्रेजी न जानने वाले आम आदमी के प्रतिनिधी काम काज करते हैं। अब अंग्रेजी के प्रभाव से उच्च मध्यम वर्ग के बोलचाल की भाषा तो अंग्रेजी शब्दों की बहुलता वाली 'हिंगलिश' हो गई है। कुछ हद तक यह हिंगलिश, इंगलिश की ही प्रतिक्रिया है। हिन्दी का प्रतिष्ठित अखबार नवभारत टाइम्स वास्तव में हिंगलिश अखबार ही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में भी अंग्रेजी का उपयोग ऊपरी स्तर के अधिकारियों के वार्तालाप में तो देखने को मिलता है। परन्तु जैसे ही मध्यम एवं निम्न स्तर के कर्मचारियों की बात आती है, उससे वार्तालाप के लिए क्षेत्रीय बोली-भाषा जैसे हिन्दी, तमिल, तेलगु, बंगला आदि मिश्रित हिंगलिश का ही प्रयोग होने लगता है। एक बार ट्रेन में मेरी मुलाकात बहुराष्ट्रीय कम्पनी में काम करने वाले दो तकनीकी क्षेत्र में कार्यरत लोगों से हुई। जो अपनी टीम के साथ देश में घूम-घूमकर बहुराष्ट्रीय कम्पनी का प्रोजेक्ट लगाने का काम करते हैं। उनमें से एक पंजाब का तो दूसरा गोवा का था। जो अपनी बातचीत अपने प्रदेश के लहजे के साथ विकसित हिन्दुस्तानी में कर रहे थे। दो अलग-अलग प्रदेश के होने के बाद भी दोनों के विचार-विमर्श में किसी भी तरह का व्यवधान नहीं था। दोनों की बातचीत दो-तीन घण्टों तक

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

सुनने के बाद मैंने उनसे पूछा कि ऑफिस मीटिंग के दौरान उनसे किस भाषा में बातचीत की जाती है। जवाब था - अधिकारी लोग मिक्स हिन्दी (अर्थात् गांधी की हिन्दुस्तानी) का ही प्रयोग करते हैं। सिर्फ तकनीकी शब्द ही अंग्रेजी के होते हैं। और शब्द, तो किसी भाषा की बपौती होते ही नहीं जी ! इस प्रकार हम पाते हैं कि थोड़ी स्वतंत्रता मिलते ही परिष्कृत क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान बोलियाँ ले लेती हैं। बोलियाँ चलायमान होती हैं। इसमें भाषाओं की तरह कोई बंधन नहीं होता। जैसे बहुराष्ट्रीय कम्पनी के टेकनिशियनों ने आपस में बातचीत के लिए एक नई बोली गढ़ ली। जिसमें पंजाबी भी है, कोंकणी भी है। जब कर्मचारी पंजाब, राजस्थान और बिहार आदि के एक साथ हो तो उसमें भोजपुरी, तमिल, राजस्थानी, गुजराती आदि का मिश्रण क्यों न हो? इस प्रकार बैंकों, दफ्तरों, कोर्ट, स्कूल-कॉलेजों आदि में लिखने पढ़ने के काम के लिए बेशक अंग्रेजी का प्रयोग होता हो पर आम बोलचाल में हिन्दुस्तानी भाषाओं का ही प्रयोग किया जाता रहा है।

पर आजकल दृष्टिकोण ही कुछ इस प्रकार का बन गया है कि अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करने मात्र से ही किसी व्यक्ति विशेष को आधुनिक मान लिया जाता है। बेशक वह कितना भी बड़ा दकियानूसी, अन्धविश्वासी ही क्यों न हो? आजकल कम-से-कम अंग्रेजी की दो लाईनें रोजगार दिलाने में तो सहायक हैं ही। मेरे पड़ोस के एक युवा व्यक्ति ने एक रोज मुझसे पूछते हुए अपनी बात रखी, "मैं एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर हूँ। कामकाज के लिए रोमन लिपि की जरूरत पड़ती है, विचार विमर्श काम-काज करते वक्त तो कहीं अंग्रेजी बोलचाल का प्रयोग नहीं होता है। काम-काज के लिए जितनी अंग्रेजी की जरूरत है। उससे कहीं ज्यादा हमें अंग्रेजी आती है। फिर ये इंटरव्यू के दौरान इंगलिश में अपना परिचय देने की बात पर इतना जोर क्यों देते हैं?"

कम्बख्त अब तो अपना परिचय तक रटना पड़ता है।” कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना भर है कि सत्ता की धुरी पर बैठे लोगों भर की भाषा ही अंग्रेजी है। क्या ये बातें भी जन-सामान्य को प्रभावित करती हैं? कहीं उन श्रेष्ठ जनों जैसा बन जाने की इच्छा ने ही तो हममें अंग्रेजी सीखने का क्रेज पैदा नहीं किया है? कहीं इसी कारण ऐसा तो नहीं कि जो लोगों अंग्रेजी बोल पाते हैं, वे एक श्रेष्ठता बोध के शिकार हो जाते हैं और जो अंग्रेजी का प्रयोग नहीं कर पाते वे हीन भावना से ग्रसित रह जाते हैं। क्या इस हीन भावना का नतीजा ही ये तेजी से इंग्लिश मीडियम स्कूलों में बढ़ता एनरोलमेंट रेट तो नहीं है? कहीं माँ-बाप ने अपनी हीनता का ठीकरा ही तो नहीं, अपने बच्चों के सिर फोड़ दिया। कम से कम यह तो सर्वविदित ही है कि इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों के परिवेश की भाषा अंग्रेजी नहीं है।

मीडियम अर्थात् माध्यम को लेकर शिक्षाविदों की राय

अब यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि गाँधी से लेकर टैगोर तक कोई भी भाषा के रूप में अंग्रेजी पढ़ाने के खिलाफ नहीं था और न ही लेखक अर्थात् मैं ही हूँ। पर जब शिक्षा के माध्यम की बात आती है तो माध्यम के लिए हर एक ने मातृभाषा को ही बेहतर माना है। गाँधी जी तो यहाँ तक कहते हैं कि हमारे देश के अधिकतर विद्यार्थी अपनी अधिकांश ऊर्जा अंग्रेजी रटने में गवां देते हैं। **हिन्द स्वराज** में गाँधी जी लिखते हैं, “हम एक-दूसरे को पत्र लिखते हैं। तब गलत अंग्रेजी में लिखते हैं। एक साधारण एम. ए. पास व्यक्ति भी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता है। हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करने का ज़रिया

अंग्रेजी ही है। हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है। हमें समझना होगा की अंग्रेजी शिक्षा को लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम ही बनाया है।” नयूपा (नयूपा) के कुलपति आर. गोविन्दम के कहा कि ऐसे बहुत से गहन अनुसंधान हैं, जो यह दर्शाते हैं कि बच्चों में वैचारिक समझ तब ही पैदा हो सकती है, जब अनुदेशन मातृभाषा/बोली में हो। आर. गोविन्दम ने आगे कहा कि सिर्फ अंग्रेजी सिखाने मात्र के लिए अंग्रेजी मध्यम स्कूल में दाखिला लेना जरूरी नहीं है। भारतीय भाषाओं में पढ़ाने वाले स्कूल अर्थात् क्षेत्रीय माध्यम के स्कूलों में भी एक बेहतर अंग्रेजी सीखी जा सकती है। उन्होंने अपना खुद का उदाहरण भी दिया कि उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा एक कन्नड़ माध्यम के स्कूल में पायी और वही से उन्होंने अंग्रेजी पर भी अच्छी पकड़ बनायी। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पुस्तक **समझ का माध्यम** के अनुसार भाषा एवं समझ का गहरा रिश्ता है, औपनिवेशिक प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षा में समझ की जरूरत लगभग नकार दी गई है। पिछले कुछ सालों में शिक्षा सम्बन्धी जितनी भी नीतियाँ बनी हैं वो पहली बार शिक्षा में समझ देने की बात कह रही हैं। इसके पहले समझ क्या है? इसकी भी समझ नहीं बन पा रही थी। ज्ञान देने और ग्रहण करने की परम्परा बस चल रही थी। बहुत कुछ आज भी चल रही है। इसी क्रम में वर्तमान पाठ्यक्रम के आधार, NUPA-2005 का भी यह मानना है कि “बच्चा अपनी गतिविधियों के फलस्वरूप पैदा होने वाले ज्ञान को स्थापित करता है। आम दिनचर्या में, विद्यालय से बाहर हमने बच्चे की जिज्ञासा खोजी तथा लगातार प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति का आनंद लेते रहते हैं। बच्चे अपनी आस-पास की दुनिया से बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। वे खोज-बीन करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, चीजों के साथ कार्य करते हैं, चीजे बनाते हैं, और अर्थ गढ़ते हैं। इस विकास में व्यापक

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

समाज में समाजीकृत होना भी शामिल है। जिसमें बच्चा संसार के ज्ञान को ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन भी करता है। बच्चा अपने आप को दूसरों से जोड़ कर देखना भी सीखता है। जिससे उसकी समझ बनती है, वह कार्य कर पाता है और रूपांतरण भी कर पाता है। समाज में हर एक नई पीढ़ी को विरासत में संस्कृति एवं ज्ञान का एक भंडार मिलता है जिससे वो अपनी गतिविधियों तथा समझ को समाहित करते हुए नया ज्ञान रचने की सार्थकता महसूस करती है।” इसमें गौरतलब बात यह है कि स्कूल के बाहर की तमाम गतिविधियाँ परिवेश की मिश्रित बोली में संचालित होती है। न कि परिष्कृत मानक हिन्दी अथवा अंग्रेजी में।

ऊपर के कथन से स्पष्ट होता है कि एक बच्चे को शिक्षित करने में उसके परिवेश की बोली भाषा की ही अहम भूमिका है। बच्चे की स्कूल में चलने वाली शिक्षा भी तभी सार्थक होगी जब वह परिवेश की गतिविधियों को समावेशित कर पायेगी। अतः समुदाय/समाज से संस्कृति के रूप में प्राप्त होने वाली शिक्षा का समावेश विद्यालय में होना चाहिए। क्षेत्र विशेष की संस्कृति को अभिव्यक्त करने में बोली (एवं भाषा) की एक अहम भूमिका है। साँस्कृतिक ज्ञान को उसकी बोली के परिपेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। साँस्कृतिक ज्ञान महज मज़हबी कर्मकांड, गाना बजाना भर नहीं है। अपितु मूल्य विश्वास परम्पराओं के साथ द्वंदात्मक संवाद भी हैं। पर सवाल यहाँ यह पैदा होता है कि जिन स्कूलों में माध्यम के रूप में परिवेश से इतर की भाषा जैसे 'अंग्रेजी' का गैर हिंदी भाषाई क्षेत्रों में 'तथा-कथित हिंदी' अथवा 'परिष्कृत क्षेत्रिय भाषाओं' का ही प्रयोग होता है। वहाँ क्या बच्चे स्कूल के अंदर के औपचारिक और स्कूल के बाहर के अनौपचारिक वातावरण में कोई संवाद स्थापित कर भी पाते हैं

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

अथवा बच्चा सिर्फ और सिर्फ किताबी जानकारियों को ही ज्ञान के भ्रम में ग्रहण करते जाते हैं। ऐसे में NCF-2005 के तत्वाधान में गढ़ा गया नया विद्यार्थी केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक पाठ्यचर्चा की सार्थकता क्या रह जाती है। क्या कहीं उसकी सार्थकता धरी की धरी तो नहीं रह जाती है।

शिक्षा के एक और जानकार प्रोफेसर रैना के अनुसार प्राइवेट स्कूलों के अध्यापकों पर कड़ाई के साथ दबाव बनाया जाता है कि वो अंग्रेजी में ही पढ़ाएं। लेखक ने भी अपने शिक्षण अनुभव के दौरान पाया कि प्रबंधक वर्ग ही नहीं अपितु माता-पिता और यहाँ तक की विद्यार्थियों का दबाव भी होता है कि शिक्षण कार्य अंग्रेजी में ही हो। चाहे बच्चे अंग्रेजी में बताई बात समझ पाएं अथवा नहीं, पर शिक्षण तो अंग्रेजी में ही होगा।

एक लेखक एवं शोधकर्ता के रूप में मेरी जिज्ञासा

- एक शोधकर्ता के रूप में मेरी जिज्ञासा का विषय बनता है कि क्या 'परिवेश की बोली/भाषा' के स्थान पर 'गैर परिवेश की भाषा' का इस्तेमाल बच्चों में मौलिक समझ को प्रतिस्फुटित होने में सहायक बन भी सकता है?
- क्या 'गैर परिवेश की भाषा' में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण सम्भव भी है? जिसकी वकालत NCF-2005 करता है।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

- कहीं ऐसा तो नहीं कि NCF-2005 पर आधारित विद्यार्थी केन्द्रित विवेचनात्मक शिक्षण में भी बच्चा उसी तरह से रटता है जैसा उससे पहले के पाठ्यक्रमों को रटता रहा है। ऐसे में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण का क्या अर्थ रह जाता है?
- यदि हम एन.सी.ई.आर.टी. की रिपोर्ट 'समझ का माध्यम' में लिखी बात, "समझ और भाषा का रिश्ता कुछ ऐसा होता है, जैसे हवा और उसकी तरंगों का होता है। हमारी अपनी समझ अपनी ही भाषा में बनती है। भाषा के बिना समझ की परिकल्पना असंभव है।" इसे शब्दशः सत्य माने तो क्या इस नई अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिला दिलाने से मौलिक समझ और चिंतन प्रभाव पड़ता है?
- क्या माता-पिता का अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिला कराने के पीछे कोई ठोस आधार है? या फिर एक दूसरों के देखा-देखी, अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में डालने की होड़ में, अपने बच्चों को भेड़ बकरियों की भांति इंग्लिश मीडियम स्कूलों के बाड़े में ठूसते जा रहे हैं?
- आखिर वे कौन-से घोषित और अघोषित मानदंड हैं, जो अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाली स्कूली व्यवस्था में डालने हेतु प्रेरित करते हैं? अर्थात् अंग्रेजी माध्यम स्कूल में डालने के पीछे क्या धारणाएं काम कर रही हैं?
- अंग्रेजी के वर्चस्व वाली यह व्यवस्था किस प्रकार के मूल्यों को जन्म देती है?

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

- यदि वर्तमान में स्कूलों में चलने वाली पाठ्यचर्या के आधार, NCF-2005 में कही बात , “बच्चे की मातृभाषाओं को नकारने अथवा उनको मिटाने के प्रयास उसके व्यक्तित्व में हस्तक्षेप की तरह लगते हैं।” अर्थात् उसके व्यक्तित्व को मिटाना ही है। इस बात को शब्दशः सत्य मान लें, तो ऐसी व्यवस्था जो पूर्णतः उनकी मातृभाषाओं को नकारती हो, उनके व्यक्तित्व पर क्या असर डालती होगी?
- गैर-परिवेश की भाषा अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग करने से शिक्षा का उद्देश्य क्या बन कर रह जाएगा?
- बच्चों पर वह कौन-सा दबाव है, जो उसको विवश करता है कि वह 'गैर-परिवेश की भाषा' में ही अध्ययन करे और इस विवशता का बच्चे के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- गैर परिवेश की भाषा- अंग्रेजी उसके दृष्टिकोण को किस प्रकार से गढ़ रही है? उसमें किस प्रकार का विश्वास पैदा कर रही है?
- माँ- बाप क्या इस बात को भी समझते हैं या नहीं कि बच्चे का मौलिक चिंतन अपनी बोली में ही पैदा होता है? यदि हाँ, तो वो समझें कि वे कौन से कारक हैं जो उन्हें अपने बच्चों को 'गैर परिवेश की भाषा (अंग्रेजी) में दाखिला दिलवाने हेतु प्रेरित करते हैं?

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

- क्षेत्रीय भाषा माध्यम विशेषतः सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के दृष्टिकोण पर इंग्लिश मीडियम स्कूल किस प्रकार का प्रभाव छोड़ते हैं?
- सबसे महत्वपूर्ण है गैर परिवेश की भाषा-अंग्रेजी में बच्चे सीख भी पाते हैं अथवा नहीं? सीखने की प्रक्रिया को लेकर उनका क्या दृष्टिकोण बनता है?
- महज औपचारिक वार्तालाप तक प्रयोग होने वाली अंग्रेजी भाषा के प्रति लोगों का बढ़ता रुझान ही इंग्लिश मीडियम स्कूलों के प्रति बढ़ते क्रेज़ का आधार तो नहीं है। आज हर माता-पिता का सपना है कि उसका बच्चा अंग्रेजी सीखे और उसे सिर्फ अंग्रेजी बोलनी आ जाए इसके लिए उन्होंने अपने बच्चों को इंग्लिश मीडियम स्कूलों में डाल दिया है। इंग्लिश मीडियम स्कूल, अर्थात् वह स्कूल जहाँ न केवल इंग्लिश में ही सारी पढ़ाई करवाई जाती है अपितु बोल-चाल तक इंग्लिश में ही होती है।
- बच्चे उस भाषा में पढ़ाई कर रहे होते हैं जिसमें उनके स्कूल के बाहर कोई विरला ही व्यक्ति बोलता हो। जी हाँ ! पढ़ने वाले अधिकांश बच्चों के परिवेश की भाषा अंग्रेजी नहीं है, न माँ-बाप, न अड़ोस-पड़ोस। इंग्लिश बोलना तो दूर, कोई इंग्लिश की दो लाइनें तक नहीं समझ सकता है। तो ऐसे में बच्चे स्कूलों में इस भाषा में शिक्षा किस प्रकार ग्रहण करते होंगे।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

लेखक को ये सभी प्रश्न परेशान कर रहे हैं और इन प्रश्नों की तलाश में ही उसने शोध कार्य किया। उसके नतीजे आप आगे के अध्यायों में पाएंगे।



अध्याय - 2

औपचारिक, अनौपचारिक शिक्षा एवं संस्कृति

अति साधारण शब्दों में 'शिक्षा' शब्द का बहुत ही सीधा-साधा अर्थ है - 'सीखना-सिखाना', अर्थात् शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। सीखने-सिखाने की क्रिया सचेत एवं अचेत रूप में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से जीवन-पर्यंत चलती रहती है।

आइए देखें यह कैसे होता है -

जन्म के साथ ही बच्चा अपने परिवेश के भौतिक, सामाजिक व साँस्कृतिक वातावरण के साथ परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करना आरम्भ कर देता है। भौतिक, सामाजिक व साँस्कृतिक वातावरण के साथ की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया ही बच्चे के ज्ञान, समझ, तर्क, मत, विचार, विश्वास आदि का आधार बनती है। बचपन से ही परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का जो दौर प्रारम्भ होता है, वही व्यक्ति की वैचारिक समझ की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इस प्रकार व्यक्ति की वैचारिक समझ को पैदा करने में उसके

सम्पूर्ण वातावरण की अहम् भूमिका होती है। यदि हम व्यक्ति को शिक्षित करने के केन्द्रों का वर्गीकरण करें तो यह दो संस्थाओं में विभक्त है- औपचारिक तथा अनौपचारिक। औपचारिक संस्थाओं में स्कूल, कॉलेज, ओपन-स्कूल/कॉलेज, यूनिवर्सिटी आदि संस्थाएँ ही नहीं, अपितु यू.पी.एस.सी., राज्यों की पी.सी.एस., एस.एस.सी, आई.आई.टी-जे.ई.ई., पी.एम.टी., कैट-मैट आदि परीक्षाओं का आयोजन करने वाली एजेंसियाँ भी आ जाती हैं। परन्तु औपचारिक संस्थाओं का दायरा यहीं तक नहीं सिमटता, इस दायरे में इसके अतिरिक्त तमाम राजनैतिक एवं वैचारिक समूहों की 'संगठनात्मक कक्षाओं' को भी औपचारिक शिक्षण केन्द्र के रूप में शामिल कर सकते हैं। जो अपने कार्यकर्ताओं को तैयार करने हेतु चलाते हैं, जैसे- आर.एस.एस. की शाखाएँ, कम्युनिस्ट संगठनों की कक्षाएँ, मजहबी संगठनों की बैठकें आदि भी औपचारिक संस्थाओं ही कहलाएँगी।

जहाँ एक ओर शिक्षण हेतु स्थापित औपचारिक संस्थाओं के रूप में स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, शिक्षा-बोर्ड यू.पी.एस.सी., राज्यों की पी.सी.एस., एस.एस.सी, आई.आई.टी-जे.ई.ई., पी.एम.टी., कैट-मैट आदि की परीक्षाओं का आयोजन करने वाली एजेंसियों आदि के पाठ्यक्रम का एक वैधानिक अस्तित्व होता है, वहीं दूसरी ओर इन संस्थाओं की मूल्यांकन प्रक्रिया का भी एक स्थापित, वैधानिक व संगठनात्मक ढाँचा होता है। वहीं गैर-सरकारी तरीके से पाठ्यक्रम चलाने वाली औपचारिक शिक्षण संस्थानों में आर.एस.एस की शाखाएँ, कम्युनिस्ट संगठनों की कक्षाएँ, मजहबी संगठनों की बैठकें, बाबा-संतों की संगत, अंग्रेजी एवं कंप्यूटर आदि सिखाने वाली कोचिंग/एनजीओ आदि आ जाते हैं। और क्यों न आएँ, आखिर ये भी तो संगठनात्मक ढाँचे के

तहत, तयशुदा लक्ष्यों के अनुरूप लोगों के सोचने-विचारने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। ऐसा नहीं है कि इनका अपना कोई पाठ्यक्रम नहीं होता, इनका भी पाठ्यक्रम होता है, जिसे ये संस्थाएँ कुछ घोषित एवं अघोषित तरीके से लागू करती हैं। इतना ही नहीं, छद्म रूप से ही सही, पर इन संस्थाओं में भी मूल्यांकन की प्रक्रिया भी निरंतर और नियमित रूप से चलती रहती है।

अनौपचारिक शिक्षण केन्द्रों के रूप में परिवार, नातेदारी, जाति, मजहब, समुदाय, औपचारिक संगठनों में चलने वाली गतिविधियाँ, जिनके पीछे की संगठनात्मक-योजना काम नहीं कर रही होती है। वहीं औपचारिक रूप में स्थापित संस्थाओं में भी विधान अर्थात् तय नियमों से हट कर जो परस्पर सहचर गतिविधियाँ भी होती हैं। वे सब भी अनौपचारिक ही हैं। समाज में निरंतर चलने वाली परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया और उसके फलस्वरूप पैदा होने वाला संवाद ही **सामूहिक समझ** को प्रतिस्फुटित करता है। इनमें से कुछ गतिविधियाँ **सचेत रूप** में और कुछ **अचेत रूप** में चलती रहती हैं। व्यक्ति की समझ को तैयार करने वाली इन सभी गतिविधियों का कहीं कोई ठोस अस्तित्व नहीं होता। फिर भी यह व्यक्ति के सोचने-समझने एवं विचारने के तरीकों पर गहरा छाप छोड़ती है। बाज़ार और बाज़ार से जुड़ी संस्थाएँ व्यावहारिक बनाती हैं। वहीं मीडिया का भी लोगों की राय, सहमति, समझ, तजवीज़ अर्थात् विचारधारा का निर्माण करने में अपनी विशेष भूमिका है। बसों, ट्रेनों आदि में चलने वाली बातचीत, जो बस-स्टैंड या स्टेशन आने के साथ स्वतः खत्म हो जाती है। क्या ये सब व्यक्ति को शिक्षित करने का

काम नहीं करती हैं? क्या सरकार के वैधानिक नियमों के बाहर चलने वाले तमाम दूसरे संगठन, जैसे- आर.एस.एस. की शाखाएँ, नुक्कड़ नाटक, साक्षरता समूह की बैठकें आदि-आदि, क्या ये सब व्यक्ति की समझ बनाने में भूमिका नहीं निभाते हैं? अर्थात् व्यक्ति का ज्ञान-निर्माण करने में उसके सम्पूर्ण भौतिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, समाजिक अर्थात् सम्पूर्ण साँस्कृतिक परिवेश में चलने वाली गतिविधियाँ आ जाती हैं। इस प्रकार औपचारिक संगठनों के रूप में भी स्कूल-कॉलेज आदि की भूमिका बहुत ही सीमित है और वह भूमिका भी पूरी तरह से तब नदारद हो जाती है जब स्कूल और समुदाय के भाषाई व साँस्कृतिक परिवेश का आपस में कोई ताल-मेल न हो।

मोटे तौर पर देखें तो औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं में भेद सिर्फ 'योजना' का है। जहाँ औपचारिक संस्थाओं के पीछे संगठनात्मक योजना काम कर रही होती है वहीं अनौपचारिक संस्थाओं के पीछे कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम नहीं होता, जैसे- औपचारिक संस्थाओं के सचेत साधनों के रूप में स्थापित स्कूल, मुक्त-विद्यालय, कॉलेज, विश्वविद्यालय, शिक्षा-बोर्ड, मजहबी संगठन, आर.एस.एस. की शाखाएँ, कम्युनिस्टों की कक्षाएँ, एन.जी.ओ. की गतिविधियाँ आदि का स्थान, समय, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्चा, पाठ्यसामग्री, अध्यापक/प्रवक्ता/उपदेशक आदि और उद्देश्य, काफ़ी हद तक निश्चित और स्पष्ट होते हैं। अर्थात् कौन पढ़ायेगा, क्या पढ़ायेगा, किसलिए पढ़ायेगा, किस समय पढ़ायेगा, किस आयु-अवस्था में पढ़ायेगा, किसको पढ़ायेगा, किस तरह से पढ़ाएगा और किस मकसद से पढ़ायेगा आदि-आदि यह सब कुछ तयशुदा होता है। स्कूल-कॉलेज जैसी

औपचारिक शिक्षण संस्थाओं के द्वारा हासिल शिक्षा की एक 'वैधानिक अहर्ता' भी होती है। वहीं शिक्षा की अनौपचारिक व्यवस्था अत्यंत उलझी हुई है। बिल्कुल अंगूर की बेल के समान। अनौपचारिक संगठन की तुलना 'ग्रेपवाइन' से कर सकते हैं। इसकी कोई वैधानिक मान्यता तो नहीं होती। व्यक्ति की सम्पूर्ण शिक्षा औपचारिक और अनौपचारिक के बीच समन्वय का ही परिणाम है। स्कूल-कॉलेजों में चल रही शिक्षण क्रियाओं का संवाद जब तक तमाम दूसरे औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों के साथ नहीं होगा तब तक औपचारिक शिक्षण संस्थान अपने शिक्षा संबंधी उद्देश्यों को हासिल नहीं कर सकते। दोनों का समन्वय ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को तय करता है। देखने में आता है कि विज्ञान का एम.एससी. पास व्यक्ति भी बिल्ली के रास्ता कटाने पर थम जाता है। विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले प्रोफेसर तक अपने भविष्य की अनिश्चितता से परेशान होकर ज्योतिषियों के चक्कर काटने लगता है। विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले लड़के-लड़कियों के बीच होरोस्कोप को लेकर बात करना तो बहुत ही सामान्य घटना है। अभी तक के सभी उदाहरण उनके हैं जिन्होंने उच्च स्तर के विश्वविद्यालयों से औपचारिक शिक्षा ग्रहण की है। औपचारिक शिक्षा के उद्देश्यों में कहीं-भी इस प्रकार के अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है। उलटे औपचारिक शिक्षा की संपूर्ण व्यवस्था अंधविश्वास को उखाड़ फेंकने हेतु है। फिर भी, उच्च स्तर की औपचारिक संस्थाओं से 'पास आउट' के संज्ञान में भी ये अंधविश्वास पैर जमाए खड़ा है, तो सवाल उठता है कि एक लम्बी अंतःक्रिया के

बाद भी यह गैर-तार्किक ज्ञान, व्यक्ति के संज्ञान में कैसे अपनी जड़ें जमाए बैठा है? आखिर उसके प्रवेश का रास्ता क्या है? वह संज्ञान में आया तो आया कैसे? कहीं, लोग मानक-औपचारिक शिक्षा को 'बाय-पास' तो नहीं कर रहे? आइए, अब जरा अनौपचारिक ढाँचे पर पुनः विचार करें। अनौपचारिक संस्थाओं में न केवल परिवार, नाते-रिश्तेदार अपितु समुदाय का वृहत समाजिक ताना-बाना अर्थात् सम्पूर्ण भौतिक, समाजिक, साँस्कृतिक परिवेश आ जाता है। जब हम संस्कृति की बात करते हैं, तो उसमें केवल लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान और उस पर आधारित कथा, गीत, नाट्य, पूजा-पाठ भर नहीं होता। अपितु उसमें विश्वास, मत, परम्पराएँ आदि भी समाहित होती हैं, जिन पर सम्पूर्ण लोकाचार स्थापित होते हैं। अतः समाज में प्रचलित विचारों, विश्वासों, मतों, धारणाओं आदि पर किसी क्षेत्र विशेष के लोगों का लोकाचार निर्भर करता है। किसी समाज विशेष में पाए जाने वाले तमाम अच्छे और बुरे के बीच में विभाजित क्रियाएँ लोकाचार में आ जाती हैं। व्यक्ति को शिक्षित करने का सशक्त माध्यम उसके परिवेश की संस्कृति एवं उसमें समाहित ज्ञान ही है। शिक्षित करने की प्रक्रिया औपचारिक और अनौपचारिक दोनों रूपों में निरंतर चलती रहती है। **समय के साथ संचित ज्ञान ही संस्कृति का रूप धारण करता जाता है। किसी क्षेत्र की संस्कृति उस क्षेत्र की प्रचलित बोली (भाषा) में प्रतिबिम्बित होती है।** अतः परिवेश की बोली/भाषा ही ज्ञान की सामाजिक धारा का वाहक भी है। पर औपनिवेशिक अंतःक्रिया के दौरान **'औपनिवेशिक नागरिक'**

तैयार करने के माध्यम के रूप में जिस 'स्कूली एवं विश्वविद्यालयी' व्यवस्था का पदार्पण हुआ, उसने बिना किसी संवाद के अंग्रेजी भाषा में पश्चिमी मूल्यों को थोपने भर का ही कार्य किया। जबकि पश्चिम में वही ज्ञान एक लंबे लोक-संवाद के बाद पैदा और स्थापित हुआ है। औपनिवेशिक शिक्षा का सीधा-सा लक्ष्य 'आज्ञाकारी नागरिक' तैयार करना था ना कि 'विवेकशील एवं विचारशील नागरिकों' को खड़ा करना। कमोबेश यही स्थिति स्वतंत्रता के बाद भी बनी रही। औपनिवेशिक मॉडल पर खड़े किए स्कूल-कॉलेज आज व्यक्ति को शिक्षित करने की औपचारिक संस्थाओं के रूप में स्थापित हो चुके हैं। कोठारी आयोग की रिपोर्ट के अनुसार भारत का भविष्य विद्यालयों में बन रहा है। पर अब सवाल यह उठता है कि वह 'किस प्रकार का' बन रहा है। एन.सी.एफ. 2005 ने बाल केंद्रित शिक्षा की वकालत की है। उसके अनुसार बाल केंद्रित शिक्षा का अर्थ है- 'बच्चों के अनुभवों, उसके स्वरो और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्रथमिकता देना। इसलिए शिक्षा की योजना ऐसी हो कि वह विशेषताओं व जरूरतों की विशाल विविधाताओं के तहत भौतिक, साँस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओं को संबोधित करे। बच्चे भी उसी वातावरण में सीख सकते हैं, जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है।' जैसा कि कहा भी जाता है, एक पूर्ण बच्चा स्कूल आता है, अर्थात् जब कोई बच्चा/व्यक्ति स्कूल या कॉलेज आता है तो अपने साथ अपने साँस्कृतिक परिवेश को भी लेकर आता है। जिसमें उसकी भाषा और लोकाचार सब कुछ आ जाता है। बच्चे का साँस्कृतिक परिवेश अर्थात्

'समाज से मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा' विद्यार्थी में अपना स्वयं ज्ञान सृजित करने की स्वभाविक क्षमता को विकसित करती है। अब यदि स्कूल/कॉलेज का वातावरण बच्चे/व्यक्ति के उस साँस्कृतिक परिवेश को अपने अंदर समाहित नहीं करता तो वह बच्चे/व्यक्ति के सीखने की प्रक्रिया में बाधक ही बनता है। बच्चा/व्यक्ति स्कूल के अंदर के कृत्रिम वातावरण तथा स्कूल/कॉलेज से बाहर के साँस्कृतिक वातावरण में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता और इसका सीधा परिणाम यह होता है कि स्कूल में दिए जा रहे ज्ञान को वह बिना अनुभव के गटा-गट गटकता जाता है। ऐसी अवस्था में यह ज्ञान विद्यार्थी के जीवन में तिलिस्म ही पैदा करता है। यह ज्ञान बच्चे/व्यक्ति को उसके परिवेश से काटने का ही काम करेगा, ना की जोड़ने का ... और ऐसे व्यक्ति दोहरी जिंदगी जीने लग जाते हैं।

अनौपचारिक अर्थात् 'ग्रेपवाइन' व्यवस्था के रूप में समाजीकरण की प्रक्रिया

अनौपचारिक शिक्षा वास्तविक स्वरूप में 'समाजीकरण' की ही प्रक्रिया है जो जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाती है और ताउम्र साथ-साथ चलती रहती है। इस प्रक्रिया के द्वारा ही व्यक्ति 'साँस्कृतिक-ज्ञान' को आत्मसात करता जाता है। इस प्रक्रिया में एक साथ कई संस्थाओं की भूमिका एक दूसरे के साथ अन्तःक्रियाएँ करने की रहती है। जहाँ जन्म के बाद के कुछ महिनों में प्राथमिक समाजीकरण

की प्रक्रिया में बच्चा बचपन की अबोध अवस्था में ही अपने आसपास की गतिविधियों को महसूस कर सामाजिक मूल्यों को आत्मसात करता जाता है। मनोवैज्ञानिक सुधीर कक्कड़ की मानें तो बच्चे के सबसे अधिक निकट माँ होती है तथा बच्चा अपनी भौतिक आवश्यकता के साथ संवेगात्मक आवश्यकता के लिए भी माँ पर सबसे ज्यादा निर्भर एवं निकट होता है। (माँ नहीं है तो जो भी माँ के समान प्राथमिक देखभाल करता/करती है) उसके शरीर से निकलने वाली तरंगों के आधार पर भी अपने नजरिये को गढ़ना प्रारम्भ कर देता है।

बीबीसी-हिन्दी.कॉम की एक रिपोर्ट के अनुसार अमरीका के पैनसिल्वेनिया स्थित फ्रैंकलिन एंड मार्शल कॉलेज के माइकेल गोल्डस्टाइन और उनके साथी शोधकर्त्ताओं ने प्ले सेशज़ यानी क्रीड़ा-काल के दौरान आठ महीनों के शिशुओं और उनकी माताओं के व्यवहार का अध्ययन किया। पहले तो उन्होंने शिशुओं की मुँह से निकलने वाली आवाज़ों और उन ध्वनियों को लेकर की गई उनकी माताओं की प्रतिक्रियाओं का सामूहिक अध्ययन किया। फिर उन्होंने माताओं के दो वर्ग बनाये। एक वर्ग की माताओं से कहा गया कि वे अपने बच्चे की आवाज़ों के जवाब में मुस्कुराएँ, उसके निकट जाएँ और उसे छुएँ या अपने साथ लगाएँ। दूसरे वर्ग की माताओं की प्रतिक्रियाओं को सहज रूप से होने दिया गया। शोधकर्त्ताओं ने इन सबका विश्लेषण करने पर पाया कि पहले वर्ग के शिशुओं ने जल्दी बोलना सीखा। इन शिशुओं की आवाज़ों में वर्णमाला के अक्षर अपेक्षाकृत ज्यादा थे और वे व्यंजनों से स्वरों की ओर जाने में भी तेज़ी दिखा रहे थे। यहाँ ब्रिटेन की एग्ज़िटर यूनिवर्सिटी के डॉ. ऐलन स्लेटर ने भी इस निष्कर्ष की पुष्टि की है। वे कहते हैं, "अगर बच्चों को

बोलते समय प्रोत्साहन न दिया जाए, तो वे देर से भाषा सीखते हैं। बच्चों के बोलने के जवाब में बोलना चाहिए और मुस्कराना, उन्हें छूना और हाव-भाव आदि का प्रदर्शन करना चाहिए।"

अतः स्पष्ट होता है कि प्राथमिक समाजीकरण के दौरान बच्चा अपनी संस्कृति के अनुरूप ना केवल दृष्टिकोण को गढ़ता है, अपितु मूल्यों को समाहित करते हुए उसके अनुरूप आचरण भी करना भी सीखता है और उसी प्रक्रिया के दौरान भाषा को भी आत्मसात करता जाता है। मैं एक लेखक के रूप में यहाँ अपनी पुत्री का उदाहरण देना चाहूँगा। मैं एक रोज़ घर पर बैठा अपना काम कर रहा था। पर्स रखते वक्त एक सिक्का गिर गया। उसे उठा कर मैंने साइड में रख दिया और मैं अपना काम करने लगा। मेरी पत्नी रसोई में कुछ पका रही थी। जब काम से ध्यान हटा तो अपनी सवा साल की बेटि को आवाज लगाई। जब कोई जबाब नहीं मिला तो उसे ढूँढ़ना प्रारंभ किया। पर वह घर में नहीं थी। फिर पत्नी से पूछा तो वह उसके पास भी नहीं थी। जब वह पूरे घर में नहीं दिखी तो मैंने बाहर नज़र दौड़ाई। देखा वह धीरे-धीरे लुढ़कते-फुढ़कते दुकान की तरफ जा रही है। साथ-साथ बोल रही है- 'चीजी-चीजी'। घटना मामूली-सी है, पर सवाल गहरे पैदा करती है। एक सवा साल के बच्चे को कैसे ज्ञान हुआ कि दुकान से 'चीजी' एक्सचेंज अर्थात् अदल-बदल कर ही मिलती है? कैसे ज्ञान हुआ कि इस सिक्के से ही 'चीजी' खरीदी जा सकती है? किसी और से नहीं। जब उसकी इच्छा 'चीजी' लेने की ही थी, तो वह वैसे ही दूकान पर जाकर माँग लेती, ठीक वैसे ही जैसे घर पर मम्मी-पापा से माँगती है। वह सिक्के को लेकर ही क्यों गई? शायद इन सवालों को कर के हम बच्चे के सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करने की क्षमता को कम करके आँक रहे हैं।

समाजीकरण की प्रक्रिया को अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अलग-अलग तरीके से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जहाँ मनोवैज्ञानिक सिग्मन फ्रॉयड के अनुसार, “एक बच्चों की नैसर्गिक प्रवृत्ति (इद) सामाजिक कारकों (सुपरइडो) से टकरा कर मनुष्य के व्यक्तित्व (इडो) को गढ़ने का काम करती है।” “इस प्रकार संस्कृति का निर्माण भूख और यौनेच्छा की बुनियाद पर होता है और भूख और यौनेच्छा का गहरा सम्बन्ध प्रकृति से है। मतलब प्राकृतिक तेवर और साँस्कृतिक मिजाज में अंतरंग सम्बन्ध होता है।” (रजनीश 2012)

जबकि मनोविज्ञानिक मीड ने इसे मनोविश्लेषक फ्रॉयड के सिद्धान्त से कुछ आगे बढ़ कर स्पष्ट किया। मीड के अनुसार, “व्यक्ति के व्यक्तित्व को गढ़ने में भाषा (परिवेश विशेष की बोली) की अहम् भूमिका है।” इस प्रकार परिवेश की भाषा अर्थात् बोली पर विशेष बल दिया। व्यक्ति का ‘स्व’ सामाजिक अनुभवों से गढ़ता है।

मीड के अनुसार, “मानव भाषा तथा संकेतों के माध्यम से अर्थों को गढ़ता है। एक बच्चा दूसरों के नजरिये से खुद को देखता है। दूसरों की भूमिकाओं को समझते हुए ‘स्व’ के प्रति जागरूक होता है। स्व-जागरूकता की वजह से वह आस-पास की उन क्रियाओं को दोहराता है, जिन्हें वह अपने आस-पास होते हुए देखता है अथवा सुनता है।”

मनोवैज्ञानिक कोली ने भी बच्चे के व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक अंतःक्रियाओं पर विशेष बल दिया। इस प्राथमिक समाजीकरण के दौरान बच्चा मूल्यों एवं भाषा (बोली) दोनों को आत्मसात करता जाता है। जिस व्याकरण को स्कूलों में नवीं, दसवीं कक्षा में पढ़ाया

जाता है। अपनी बोली के व्याकरण को तो बच्चा तीन साल की ही उम्र में ही आत्मसात कर चुका होता है। दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले प्रो. चाँद किरण सलूजा ने भी कई बार अपने वक्तव्यों में इस तथ्य से सम्बंधित उदाहरण दिए हैं। सलूजा जी अपने द्वारा किये गये प्रयोग का हवाला देते हुए वर्णन करते हैं कि किस तरह तीन साल का बच्चा व्याकरण की गलतियों को पकड़ता है। सलूजा जी अपने एक प्रयोग का हवाला देते हैं कि जब वे एक बालक को बालिका की तरह सम्बोधित करते हुए बोलते हैं “मनु, क्या खायेगी? मनु क्या पीयेगी?” तो वह बालक उनसे नाराज़ हो जाता है और अपनी माँ से जाकर उनकी शिकायत करता है “मैं तो लड़का हूँ, पर अंकल मुझे लड़की की तरह क्यों बोल रहे हैं?”

अनुसंधानकर्ता ने भी अपने अनुभव में पाया के सवा साल का बच्चा बेशक कुछ-ही शब्द बोलता हो, पर वह उन सभी शब्दों को समझता है, जिनके भौतिक अस्तित्व से वह परिचित होता है। अनुसंधानकर्ता ने इस बात को परखने के लिए अपनी डेढ़ वर्षीय पुत्री को जुराबें दीं तथा जब उसे बाल्टी में रखने के लिए कहा तो उसने बाल्टी में और जब जूतों में डालने को कहा तो जूतों में और जब अपनी माँ को दे कर आने को कहा, तो वह माँ को देकर आई। इस प्रकार जो संज्ञान में है उन वस्तुओं का उच्चारण करने पर उसने उन्हीं को उठाया। जब पूछा गया कि “पीनू के खिलौने कहाँ हैं?” तो वह खिलौने उठा लाई। जबकि वह उस वक्त खिलौने का उच्चारण नहीं कर पा रही थी। इसी प्रकार चम्मच लाने को कहा गया जो उसकी पहुँच के बाहर थी। तो उस चीज को लेने के लिए अपनी माँ को इसारे से ‘उड़-उड़’ कहा। यह ‘उड़-उड़’ शब्द बच्चे ने अपनी सुविधानुसार खुद गढ़ा है। जब भी कोई वस्तु, जो उसकी पहुँच के बाहर की हो उसे

लेने हेतू वह 'उड़-उड़' बोलती है। इस प्रकार 'उड़-उड़' की ध्वनि या उच्चारण एक प्रकार से 'वह या उस' के स्थान पर प्रयोग कर रही है अतः 'उड़-उड़' एक प्रकार से सर्वनाम ही है। प्रयोग को थोड़ा कठिन बना कर जब बाल्टी की तरफ इशारा करके जुराब को जूतों में रखने को कहा तो कुछ देर सोच कर उसने उसको चुना, जिसे उसने सुना अर्थात् जूता।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बच्चा जो अनुभव करता है वह ग्रहण करता है और वह अपने समान्यकृत अनुभवों के आधार पर विचार कर के निर्णय लेता है। चूँकि एक-डेढ़ वर्ष का बच्चा अभी "सेंसरी मोटर स्टेज" में है अतः वह वो सारी वस्तुएँ, जिन्हें वह महसूस (सेंसेशन) कर सकता है, उनके लिए प्रयुक्त शब्दों को समझ जाता है। इसकी हम व्यवहारवादियों की नज़र से भी व्याख्या कर सकते हैं। जब हम किसी एक वस्तु को एक खास शब्द के साथ सम्बन्धित करते हैं। तो बच्चा भी सुन-सुन कर उस वस्तु को उस शब्द-विशेष के साथ सम्बन्धित करना प्रारम्भ कर देता है। प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन लोक ने कहा था - नवजात शिशु एक कोरी स्लेट की भाँति होता है। पर हम पाते हैं कि उसका दिमाग एक कोरी स्लेट के समान नहीं होता अपितु वह तो पूर्ण सहभागी सृजनकर्ता होता है और सहभागी क्रियाओं के द्वारा क्रिया एवं भाषा को आत्मसात करता जाता है। कक्षा-शिक्षण के दौरान *केन्द्रीय शिक्षण संस्थान* की शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षिका प्रो. भारती भवेजा ने कक्षा में चल रहे विचार-विमर्श के दौरान एक विद्यार्थी द्वारा पूछे गए सवाल पर स्पष्ट किया कि बच्चा काबिलियत लेकर तो पैदा होता है, पर काबिल तभी बन पाता है जब वह क्रियाशील होता है। अर्थात् "शिशु में विभिन्न प्रकार के व्यवहार तथा अनुभवों को ग्रहण करने की क्षमताएँ एवं सम्भावनाएँ रहती हैं।" लेकिन सामाजिक अन्तःक्रियाओं के दौरान ही वह

क्राबिल होता है। परिवेश के अनुरूप क्राबिल बनाने की प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहते हैं। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान एक बच्चा अपने परिवार, समुदाय, क्षेत्र के सामाजिक-साँस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप आचरण को आत्मसात करता जाता है। एक सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश में गाय उसके लिए पवित्र है, तो वहीं दूसरे समुदाय में बच्चे के लिए गाय महज खाने की वस्तु है। एक सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश में जहाँ वह हाथ से खाना सीखता है, वहीं दूसरे में काँटे और छुरी से। व्यक्ति का चलना, उठना, बोलना, सुख-दुःख में शामिल होना, सब कुछ सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश की देन है और यह सीखने-सीखाने की परम्परा निरुद्धेश्य तरीके-से चलती रहती है। अतः इस सीखने की प्रक्रिया में बिना सीखे ही बहुत-कुछ अचेत रूप से सीख लिया जाता है। इसलिए इस **सीखने की प्रक्रिया** को **सीखना** कहने के बजाय **आत्मसात करने की प्रक्रिया** कहना ज्यादा उचित होगा। यह सीखने से कहीं ऊपर आत्मसात करने की प्रक्रिया है। जिसमें सीखी गयी क्रिया व्यक्ति में रच-बस जाती है। अतः यह सीखना नहीं, आत्मसात करना है।

इसी प्रकार **बोली भाषा** भी भौतिक, सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश का ही उत्पाद है। इसलिए उसे **सीखा** नहीं जाता। वह तो **आत्मसात** हो जाती है। इस प्रक्रिया में जहाँ एक सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश में बच्चा 'भोजपुरी' बोली आत्मसात करता है। वहीं दूसरे सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश में 'हरियाणवी' बोली, तीसरे सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश में 'जर्मन' चौथे में सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश में 'रूसी' बोली तो पाँचवे सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश में 'अंग्रेजी' बोली। दिल्ली के स्लम इलाकों के बच्चे एक साथ बहुत

सी बोली-भाषाओं के पुट (बोल) आत्मसात कर जाते हैं और इस प्रकार एक मिली-जुली भाषा का विकास भी होता है। कारण स्पष्ट है स्लम में देश के भिन्न-भिन्न इलाकों के लोग आकर बसे हैं। मसला पानी के झगड़े का हो या किसी के सुख-दुख का, स्लम के लोगों की आपसी अन्तःक्रियाएँ होती ही रहती हैं। इस कारण बच्चे ना केवल तेजी-से एक-दूसरे की संस्कृति को जान जाते हैं अपितु एक-दूसरे की भाषाओं को भी सीख जाते हैं। यह तथ्य अनुसंधानकर्ता ने अपनी पुत्री के सन्दर्भ में भी देखा कि दिल्ली में हमारे पंजाबी पड़ोसी के बच्चे के साथ खेलते हुए बहुत-से पंजाबी शब्दों का उच्चारण करने लगी। जब महाराष्ट्र के जिला औरंगाबाद स्थित अपने ननिहाल गयी तो वहाँ भी काफ़ी जल्दी ही बिना किसी भेद-भाव के दिल्ली वाली बोली के साथ मराठी को मिला लिया। यहाँ विशेष बात यह भी है कि बच्चे के ननिहाल के लोग बिहार से संबंधित हैं, वो लोग अमूमन घर में मिश्रित भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। परंतु बच्चे पर सिर्फ उनकी भाषा का प्रभाव कम तथा आस-पास के परिवारों की भाषा का प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। इसका कारण स्पष्ट है कि खाने-पीने की जरूरतें पूरा होने के बाद बच्चा मुक्त होकर आस-पास के अपने साथ के बच्चों के साथ खेलता है। आस-पास के दूसरे बड़े व्यक्तियों के साथ भी सम्पर्क में आता है और सम्पर्क में आने की इस क्रिया के दौरान वह परिवेश की भाषा को ग्रहण करता जाता है। हर बच्चा अपने परिवेश की भाषा (बोली) को उसके व्याकरण के साथ महज तीन साल की उम्र में अपने अंदर समाहित कर चुका होता है। प्रो. अनिल सदगोपाल के अनुसार “भाषा (बोली के सन्दर्भ में) महज सम्प्रेषण का माध्यम नहीं है यह तो संस्कृति का वाहक है।” एक क्षेत्र विशेष के लोगों का सम्पूर्ण ज्ञान उनकी बोलियों के माध्यम से प्रवाहित होता है। उदाहरण के तौर पर जमे हुए पानी के लिए हिंदी तथा

अंग्रेजी में चंद ही शब्द होंगे जबकि एस्कमो की बोली में इसके लिए दो दर्जन से भी अधिक शब्द हैं। राजस्थान की भाषा में गर्म हवा के लिए हिंदी पट्टी की अन्य बोलियों से कहीं अधिक शब्द हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत में बोले जाने वाली भाषाओं में समुद्र को लेकर शायद ही कोई मुहावरा प्रचलित हो परन्तु तटीय प्रदेशों की भाषाओं में समुद्र से सम्बन्धित अनेकों मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं काव्य हैं। राजस्थान के लोक ज्ञान में जितने मिथक पानी को लेकर हैं, पूर्व की बोली में नहीं। सवाल उठता है क्यों? रामायण एक ऐसा काव्य है जिसके अनेकों संस्करण प्रचलित हैं। उत्तर भारत में रामायण की नायिका सीता को धरती माँ के गर्भ से पैदा हुआ माना जाता है, वहीं दक्षिण में सीता को रावण की छींक से पैदा हुई रावण की बेटी माना जाता है। (संदर्भ-रावण की बेटी) कारण यह है कि अवध के इलाके में जहाँ सीता शब्द का अर्थ हल का फाल होता है, वहीं कन्नड भाषा में सीता का अर्थ सीत आ जाना, अर्थात् सर्दी-जुकाम लग जाना है। अतः शब्द का अर्थ बदलते ही लोक महागाथा का स्वरूप ही बदल गया। बोली-भाषा, भाषा भर नहीं है। यह परिवेश विशेष के सामूहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति है। भाषा-बोली अपने क्षेत्र के सौन्दर्य को अपने अन्दर समाहित किये हुए होती है। बोली का मरना सिर्फ बोली का मरना नहीं है यह सम्पूर्ण साँस्कृतिक ज्ञान का उजाड़ना भी है। ताऊ, चाचा, काका, ये शब्द अंग्रेजी के अंकल के पर्यायवाची नहीं हो सकते। ये तो जीवंत भाव हैं। इस भाव की जड़ें संस्कृति में समाई हुई हैं। यदि ताऊ, चाचा, काका का अंकलकरण होता है तो शब्दों में जड़ा अपनत्व नष्ट होकर महज सम्बोधन बन कर रह जायेगा।

इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पूर्व ज़रा संस्कृति के अर्थ को पुनः स्पष्ट कर लें। प्रो. श्यामचरण दुबे के अनुसार “मनुष्य को संस्कृति निर्माण की क्षमता प्रकृति से हासिल हुई परंतु संस्कृति का निर्माता वह स्वयं है।” “मनुष्य को प्रकृति प्रदत्त भौतिक स्वरूप के अतिरिक्त मेधावी मस्तिष्क – तर्क द्वारा कार्य-करण सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति और बाह्य शक्ति के द्वारा विचारों तथा क्रियाओं को स्थापित करने की योग्यता प्राप्त है।” परन्तु इतनी सारी क्षमताओं के बावजूद भी मनुष्य, संस्कृति का निर्माता नहीं बन सकता था और विकास के क्रम में अपने निकटतम प्राणी चिम्पांजी तक ही सिमट कर रह जाता यदि उसमें एक और क्षमता विकसित न होती वह है बोल कर अभिव्यक्त करने की। “मनुष्य के पास भाषा की शक्ति है। भाषा के माध्यम से मानवीय विचार और प्रक्रियाएँ विस्तार पाने के अतिरिक्त भौतिक परम्परा का रूप ग्रहण कर स्थायित्व ग्रहण करती है।”

मनुष्य के ज्ञान-क्रम में जो भौतिक-सामाजिक परम्परा एक बार आ जाती है वह पीढ़ी दर पीढ़ी बोली-भाषा के माध्यम से परिवर्धित एवं परिवर्तित होते हुए परिष्कृत होते हुए निरंतर बनी रहती है। आज जिस सिलवट लोंढे/बट्टे का इस्तेमाल हम अपनी रसोई में करते हैं वह आदि मानव द्वारा निर्मित पत्थर के औजार का ही परिष्कृत रूप है।

इतिहास के झरोखों से

यूरोप में मध्य काल के अंध युग के बाद जब पुनर्जागरण काल का उदय हुआ। तब आम जन ने प्रोटेस्टेंट मूवमेंट के द्वारा न केवल चर्च, अपितु सत्ता के अन्य स्तम्भों पर भी अपनी दावेदारी ठोकी। जब आम जन ने ज्ञान की सत्ता पर अपनी दावेदारी ठोकी तब ही आम जन की भाषा शिक्षा का माध्यम बन पायी। स्वयं इंग्लैंड में कुलियों की भाषा समझी जाने वाली अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बनी। इससे पूर्व लैटिन एवं थोड़ी बहुत फ्रेंच भाषा में ही सम्भ्रांत तबके को शिक्षा-दिक्षा होती थी। इंग्लैंड के ग्रामर स्कूल लैटिन भाषा सिखाने का ही काम करते थे। इस प्रकार, पुनर्जागरण से पूर्व इंग्लैंड में शिक्षा का माध्यम लैटिन एवं परिष्कृत फ्रेंच भाषा ही थी। लोगों की मांग पर जब बाईबल का जन-भाषाओं में अनुवाद किया गया, तभी साक्षरता का प्रसार हुआ। उस साक्षरता के फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान का प्रसार लोगों में संभव हो पाया। यह ज्ञान-विज्ञान का प्रसार ही था जिसने सिर्फ इंग्लैंड ही नहीं, अपितु संपूर्ण यूरोप में पुनर्जागरण काल को उदित किया।

जाने माने अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी के विद्वान प्रो. रघुबीर सहाय उर्फ फिराक गोरखपुरी की मानें तो अंग्रेजी का प्रथम प्रोफेसर भारत में ही नियुक्त हुआ था, ना की इंग्लैंड में। इंग्लैंड में तो यह जन-भाषा थी। वहाँ तो इसे सिखाने का सवाल ही नहीं उठता। वहाँ अंग्रेजी भाषा को सिखाने के लिए शिक्षक नियुक्त नहीं होते थे। वहाँ साहित्य का विश्लेषण करने हेतु विश्वविद्यालय में शिक्षक होते थे/हैं। अतः इंग्लैंड में जनतंत्र के विकास के साथ-साथ सम्भ्रांत तबके की भाषा समझी जाने वाली लैटिन के स्थान पर

जनता की भाषा अंग्रेजी स्थापित हुई। वहीं भारत में औपनिवेशीकरण की वजह से 1835 में मैकाले मिनट के साथ थोपी गई। अंग्रेजी ने जन-भाषाओं में शिक्षा की सम्भावना को ही नकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पहले के सम्भ्रांत तबकों, जिनके शिक्षण की भाषा संस्कृत अथवा फारसी थी, उनका वर्चस्व ही बना रहा। क्योंकि उन्हें एक परिष्कृत भाषा से दूसरे भाषा का ही गमन करना था। आम जन के लिए शिक्षा के दरवाजे खुल कर भी बंद रहे। इस बात का आकलन इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वतंत्रता के समय व्यस्क साक्षरता दर महज 18% से भी कम थी। जब साक्षरता की स्थिति ही इतनी दयनीय है तो अंग्रेजी राज में शिक्षा के लाख दावों के बावजूद भी औपचारिक शिक्षा की क्या स्थिति रही होगी, इस का अनुमान भी सहज ही लगाया जा सकता है। प्रो. प्रोमेश आचार्य के अनुसार, “आम जन की अंग्रेजी के प्रति अभिरूचि स्वतंत्रता पूर्व काल में कम थी। वह स्वतंत्रता उपरांत काल में तेजी से बढ़ी है। स्वतंत्रता पूर्व काल में आम जन की अंग्रेजी के प्रति अभिरूचि न होने का कारण स्वतंत्रता उपरांत काल से उम्मीद थी। उन्हें उम्मीद थी कि स्वतंत्रता के बाद परिस्थितियाँ बदलेंगी। पर ऐसा हो न सका।” प्रो. प्रोमेश आचार्य द्वारा बंगाल में किये गए अध्ययन के अनुसार, “अंग्रेजी की तरफ लोगों का झुकाव तब बढ़ा, जब आम जन के लिए सरकारी नौकरियों के दरवाजे खुल तो गये, पर उन नौकरियों के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता भी जोड़ दी गयी। इन बिन्दुओं को पुनः ‘भाषा एवं संस्कृति को समझने हेतु किये कुछ विशेष अध्ययन’ एवं

'मातृभाषा का अर्थ माँ-बाप की भाषा नहीं होता है' वाले अध्याय में उठाते हुए आगे का विश्लेषण करेंगे। पर जरा अभी संस्कृति की संकल्पना पर फिर से विचार कर लें।

संस्कृति

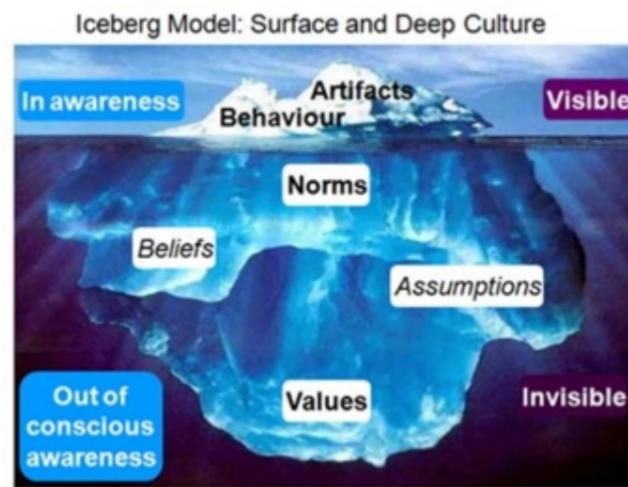
आम तौर पर जब हम संस्कृति की बात करते हैं तो हमारे ज़हन में गीत-संगीत, कला-नृत्य, करतब-स्वांग आदि का ख्याल आता है। पर यह तो महज़ संस्कृति का सतही आवरण मात्र है। संस्कृति की अवधारणा इससे कहीं अधिक व्यापक है। मानव वैज्ञानिक श्यामचरण दुबे (मानव और संस्कृति पेज 17, 193) के अनुसार, "आम तौर पर कहा जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परन्तु प्राणी जगत में केवल वही एक सामाजिक प्राणी नहीं है। मानव को, जो अन्य प्राणियों से अलग करने वाली एक मात्र विशेषता है। वह है, उसकी 'संस्कृति-निर्माण करने की क्षमता' है।" यह क्षमता मनुष्य के अतिरिक्त किसी और प्राणी में नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृति की व्याख्या, 'पर्यावरण के मानव निर्मित भाग' के रूप में करेंगे।" इस प्रकार "संस्कृति जैविकीय संभावनाओं और सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा जनित मानव का आविष्कार है। मनुष्य, संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता।" इसके आगे श्यामचरण दुबे एक बहुत बड़े भ्रम को खारिज़ करते हुए कहते हैं कि "रंग, रूप आदि की भाँति, संस्कृति प्रजनन के माध्यम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित नहीं होती।

अर्थात् मनुष्य में संस्कृति निर्माण की क्षमता होती है पर संस्कृति कोई जैविक गुण नहीं है। यह जिंस के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित नहीं होती। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि “संस्कृति, जैविक संभावनाओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा जनित मानव का अविष्कार है।”

लेखक यहाँ स्पष्ट करेगा कि मनुष्य की हर पीढ़ी को और हर पीढ़ी के हर सदस्य को प्राथमिक समाजीकरण के दौरान संस्कृति को आत्मसात करना पड़ता है। यह आत्मसातीकरण की प्रक्रिया, न केवल प्राथमिक समाजीकरण अपितु समाजीकरण की द्वितीयक अवस्था में भी जारी रहती है। जब वह बाह्य परिवेश से सक्रिय संवाद करता है। इस दौरान न केवल वह सीखता है, अपितु सिखाता भी है। मौखिक एवं अमौखिक रूप में संवाद निरंतर चलता रहता है। अतः संस्कृति तालाब के समान स्थिर नहीं है, अपितु यह तो निरंतर बहने वाली नदी है। हाँ, गति तेज और धीमी होती रहती है पर बहाव निरंतर बना रहता है। अतः यह तो एक चलमान जीवन है। समय एवं सभ्यता में आये परिवर्तन के साथ इसमें भी परिवर्तन आता रहता है। यदि संस्कृति के संदर्भ में कुछ स्थाई है तो वह है - *उसकी निरंतरता*। संस्कृति अनादिकाल से चलायमान है। संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होते हुए समाजिक संघर्षों के साथ परिवर्तित एवं परिवर्धित होती रहती है।

आइए, इन्टरनेट से साभार प्राप्त चित्रों की सहायता से उसके चेतन एवं अवचेतन तत्वों के संबंधों को समझें।

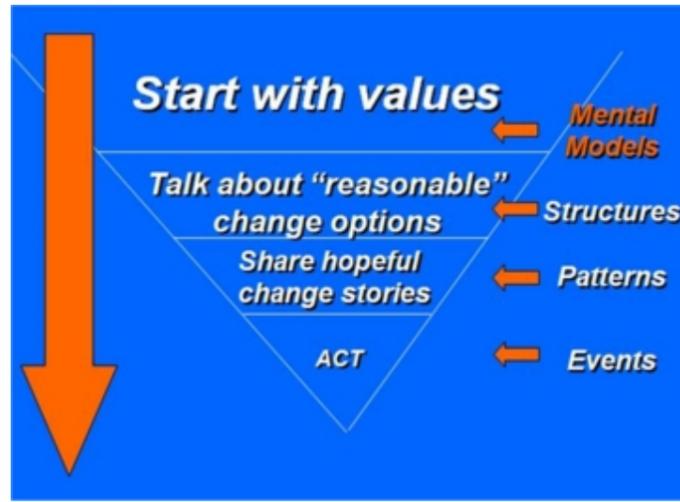
अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



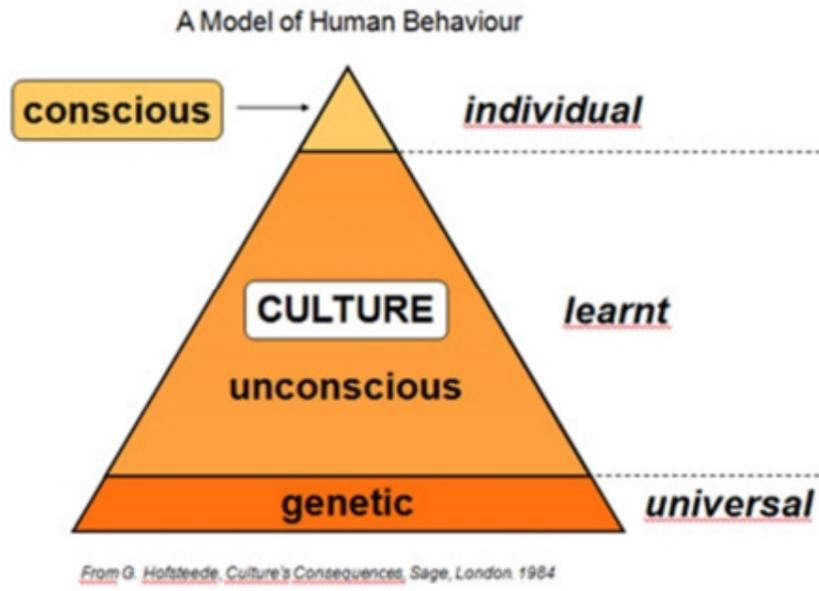
अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

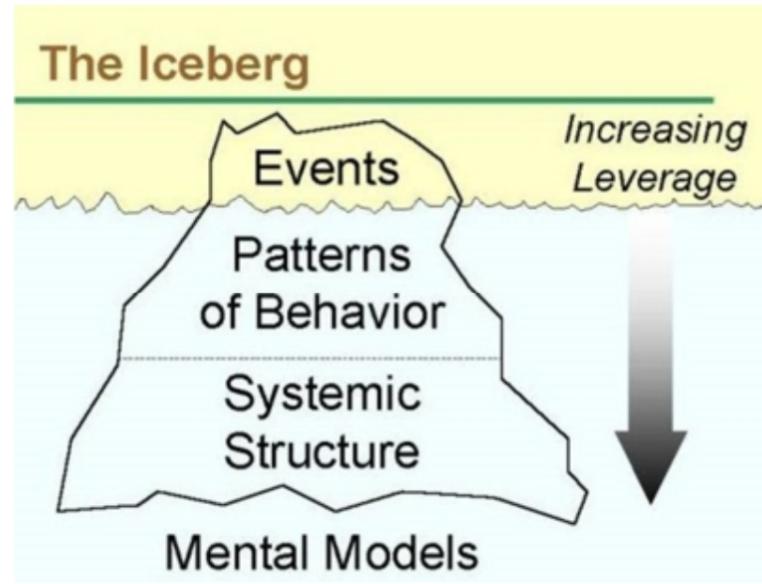


अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-





चित्र संख्या 3.1 , 3.2 , 3.3 & 3.4 3.5 के

चित्रों के स्रोत (साभार) <http://johngerber.lworld.ledu/2010/11/16/talking-sustainability-change/>, <http://www.diploweb.com/Understanding-culture-and-managing.html>,

यदि हम ऊपर दिए चित्र 3.1 से 3.5 तक देखें तो हम पाते हैं कि सामाजिक व्यवहार की तह में उस समाज के मूल्य होते हैं और मूल्यों का निर्माण एक गहन सामाजिक अन्तःक्रिया का परिणाम होता है। ये मूल्य, सामाजिक घटना-क्रम का विश्लेषण कर कुछ मान्यताओं/धारणाओं को पैदा करते हैं। अनुभवों की पुनरावृत्ति सामाजिक विश्वास को पैदा करती है। घटनाओं का अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव सामाजिक मानदंडों को पैदा करता है। समाज के अन्दर जितने भी व्यवहार, विचार, प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं वे इन चार तत्वों से ही नियंत्रित होती हैं। घटनाएँ जो ऊपरी सतह पर घट रही होती हैं, वे मूलतः समाज के अन्दर निहित मूल्यों का ही परिणाम होती हैं। सतह पर घटने वाली घटनाओं के प्रभाव को तब तक नहीं समझा जा सकता,

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

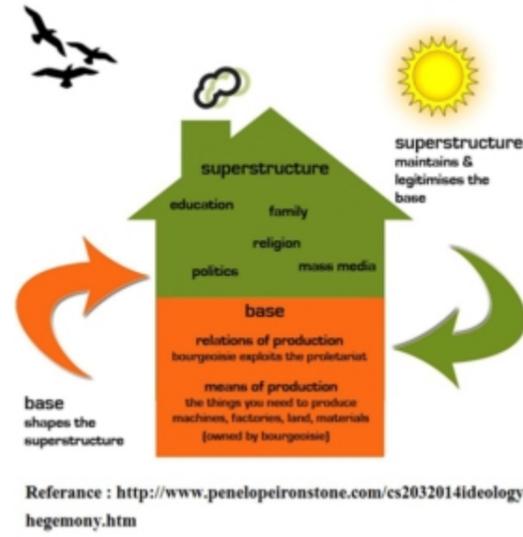
जब तक नीचे के हिस्से के मूल्य, विश्वास और मान्यताओं को न समझ न लिया जाए। इसी प्रकार सतह के अनुभव, एक व्यक्ति को नहीं, अपितु समस्त समाज को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार समाजिक मूल्यों का निर्माण होता है। समाज की एक इकाई दूसरी इकाई से प्रभावित भी होती है और प्रभावित भी करती है। हर इकाई अपने निर्णय को लेने के लिए स्वतंत्र भी है। लेकिन वह अपने निर्णय लेने के लिए दूसरी इकाइयों के अनुभवों पर निर्भर भी है। इकाईयाँ ना केवल दूसरी इकाइयों का अवलोकन करती हैं, अपितु परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको समायोजित भी करती हैं। हर समाज में पदानुक्रम का एक ढाँचा होता है, कुछ घोषित एवं अघोषित नियम भी होते हैं। ये नियम कुछ ठोस विश्वासों एवं मान्यताओं पर आधारित होते हैं। एक समयावधि में अग्रलिखित के आधार पर चलते रहने पर कुछ पगडंडी रूपी परम्पराएँ उभर कर आ जाती हैं। ये परम्पराएँ भी पगडंडियों की भाँति पक्की नहीं होतीं, पर जब तक लोग चलते रहते हैं, तब तक बनी जरूर रहती हैं। चूँकि लोग चलते रहते हैं इसलिए पगडंडी रूपी परम्पराएँ बनी भी रहती हैं और पगडंडी रूपी परम्पराएँ बनी हुई हैं इसलिए लोगों को चलना भी आसान है। बस उठो और चल दो। एक रूप से पगडंडी रूपी परम्पराएँ ही 'हैबिट' का निर्माण करती हैं। 'हैबिट', अर्थात् सामाजिक सहजता। जब तक पगडंडी रूपी परम्पराओं से जुड़ी कोई मंजिल होगी, लोग चलते ही रहेंगे। मंजिल के ना रहने पर यह धीरे-धीरे यह विलुप्त हो जायेगी। पर पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकती। यही समाज में परम्पराओं

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

की कहानी भी है। समाज की स्थापित इकाइयाँ नए रास्तों के प्रयोग से घबराती हैं। परिणाम यह होता है कि लोग पगडंडियों पर आँखें मूँद कर निकल निकल पड़ते हैं। बिना सोचे, बिना विचारे बस चल पड़ते हैं।

भाषा, संस्कृति, राजनीति और मार्क्सवाद

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार उत्पादन प्रणाली ही सभी तरह के समाजिक ताने-बने का आधार है। उत्पादन प्रणाली उत्पादन के साधनों और उत्पादन संबंधों का प्रतिफल है। उत्पादन प्रणाली ही समाजिक वर्गों की रचना करती है। सारी

लड़ाई उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण हासिल करने के लिए है। परिवार, सम्प्रदाय, औपचारिक शिक्षा का समस्त ढांचा उत्पादन प्रणाली का ही प्रतिफल है। वर्गीय हितों की रक्षा ही राजनीति है। राजव्यवस्था का सम्पूर्ण ढांचा वर्गीय हितों को बचाए रखने के लिए है। चूंकि पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन प्रणाली पर बुर्जुआ वर्ग का नियन्त्रण होता है। राज्य की राजनीतिक संस्थाओं का काम बुर्जुआ वर्ग के आर्थिक हितों की रक्षा करना है। अतः समस्त समाजिक व्यवस्था का ताना-बना उसी के अनुरूप रचा जाता है। मीडिया, विश्वविद्यालय, स्कूल आदि संस्थाओं का ढांचा उसी तंत्र को बनाए रखने के लिए है। यह बात जितनी पूँजीवादी व्यवस्था के बारे में सत्य है उससे कम किसी और व्यवस्था के बारे में नहीं। महाभारत के एकलव्य की कहानी किसी से छुपी नहीं है। जब द्रोणाचार्य (शिक्षा व्यवस्था) ने देखा कि इस बालक की प्रतिभा है और राजपुत्रों में कोई भी उसके सामने टिक नहीं सकता है। तो द्रोणाचार्य रूपी शिक्षाव्यवस्था ने राजव्यवस्था के संरक्षण के लिए आदिवासी एकलव्य का अंगूठा उतरवा लिया। एक असमान व्यवस्था के अंदर विशेष माध्यम वाली शिक्षा व्यवस्था कि संरचना गैरबराबरी और असमानता को बनाए रखने के लिए है।

औपनिवेशिक व्यवस्था से उबरे इस देश का सर्वहारा वर्ग, एलिट वर्ग की अंग्रेजीयत की औपनिवेशिक मानसिकता के वर्चस्व से पीड़ित है। इस देश की 90 % आबादी अंग्रेजी से पूर्णतः अनभिज्ञ है। 6 % किसी प्रकार कामचलाऊ अंग्रेजी सीख जाते हैं।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

3-4 % ही ठीक-ठाक अंग्रेजी का प्रयोग कर पाते हैं। देश की 1 % जनसंख्या ही अंग्रेजी भाषा पर नियंत्रण रखती है और वह ही इस देश की राजसत्ता और पूँजीसत्ता पर नियंत्रण रखती है। एक देश जहाँ पर प्रकृत रूप से अंग्रेजी नहीं बोली जाती है। वहाँ पर अंग्रेजी भाषा भर नहीं है, यह कृत्रिम भाषा (अंग्रेजी) सरकारी भाषा के रूप में राजसत्ता को अंग्रेजीदा बुर्जवा वर्ग तक ही समेटे रखने का साधन है। और गैर बराबरी की अधिसंरचना को बनाए रखने के लिए है। कृत्रिम भाषा (अंग्रेजी) को थोपना समाज को स्थाई रूप से मानसिक-पंगू बनाना है। अतः ऐसे देश में अंग्रेजी अधिसंरचना को बनाए रखने वाले हथियार के रूप के रूप में राजसत्ता और पूँजीसत्ता के आधार को मजबूत करने का साधन मात्र है। अंग्रेजी के माध्यम से ही शोषण की चक्की और गैर-बराबरी की मशीनरी को चलाया जाता है। भ्रष्टाचार की उमदा फसल को पैदा करने में भी अंग्रेजी का हाथ है।

सन्दर्भ सूची-

<http://johngerber.lworld.ledu/2010/11/16/talking-sustainability-change/>,

<http://www.diploweb.com/Understanding-culture-and-managing.html>

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

अग्निहोत्री, रा (2011) भारत में अंग्रेजी की समस्या। भोपाल : एकलव्य

किरण, चा (2006)। शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्या नई दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन संस्था

NCERT। (2005)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा 2005। New Delhi : NCERT ।

NCERT। (2010)। समझ का माध्यम। New Delhi : NCERT ।

NCERT। (2007)। शिक्षा का लक्ष्य नई दिल्ली : NCERT ।

दुबे, शा (1993)। मानव और संस्कृति। नई दिल्ली : राजकमल ।

<http://johngerberworld.edu/2010/11/16/talking-sustainability-change/>, <http://www.diploweb.com/Understanding-culture-and-managing.html>,

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी



अध्याय-3

अध्ययन की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

अनुसंधान डिज़ाइन के पैराडाइम की तलाश

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य उस वैचारिक नजरिये से है जिस पर विषय-वस्तु के शोध-अध्ययन की ईमारत खड़ी की जाती है। अनुसंधान की भाषा में इसे ही शोध का पैराडाइम भी कहा जाता सकता है। पैराडाइम की तुलना हम माइक्रोस्कोप अर्थात् सूक्ष्मदर्शी एवं टेलीस्कोप अर्थात् दूरबीन रूपी खिडकी से कर सकते हैं। जो पहले दूरबीन की भांती तो दूर की समस्या को शोधकर्ता के करीब लाती है, फिर समस्या को गहरायी से समझने में सहायक प्रदान करने हेतु, समस्या के हर भाग को देख पाने में सहायक बनती है। यह समस्या के समाधान को समझने के लिए एक प्रकार का वैज्ञानिक नजरिया होता है। अनुसंधान का पैराडाइम अनुसंधान समस्या के समाधान के रास्ते को भी सुनिश्चित करने में सहायक होता है। अनुसंधान डिज़ाइन अनुसंधान पैराडाइम पर सुसंगत और तार्किक तरीकें से गढ़ी गई वह रणनीति है जो सम्पूर्ण अनुसंधान के लिए एक

सैद्धांतिक ढांचा तैयार करती है। यह समस्या के अनुरूप आकड़ों के संग्रहण, माप, और विश्लेषण के लिए तर्कसंगत खाका तैयार करती है। रिसर्च डिजाइन के माध्यम से ही समस्या के कारकों के खोजने के तरीको को निश्चित किया जाता है। अतः यह समस्या के स्वरूप पर निर्भर करता है कि उसके समाधान के लिए अनुसंधान का कौन सा तरीका सही रहेगा। हम मोटे तौर पर अनुसंधान का वर्गीकरण दो आधारों पर कर सकते हैं- मात्रात्मक एवं गुणात्मक। जहाँ मात्रात्मक अनुसंधान की मूल मान्यता है कि यथार्थ बाह्य एवं वस्तुनिष्ठ होता है। मात्रात्मक अनुसंधान के द्वारा बाह्य जगत से सम्बंधित ज्ञान को वस्तुनिष्ठ आकड़ों के रूप में एकत्र कर सकते हैं और उसके विश्लेषण के आधार पर कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध को स्थापित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जो गरुत्वकर्षण का नियम पृथ्वी पर लागू होता है। वह ही अन्य पिंडों की स्थिति में भी लागू होता है। गरुत्वकर्षण का नियम के आधार पर पृथ्वी का ब्रह्मांड के अन्य पिंडों से एक सम्बन्ध की व्याख्या कर सकते हैं। अतः भौतिक जगत के सिद्धांत कम बेस स्थिर हैं और सामान रूप से सभी पर लागू होते हैं। परन्तु मानव समाज में सभी को एक ही तराजू में तौलाना मुर्खता ही होगी। उदाहरण के लिए "शिक्षा" का जो आशय एक व्यक्ति के लिए आज है जरूरी नहीं दुसरे व्यक्तियों के लिए भी वही हो। अतः किसी भी अवधारणा का आशय दिक्, काल, परिस्थिति के साथ बदलता रहता है। एक विद्यार्थी जिन कारणों से फेल होता है। जरूरी नहीं की दूसरें भी उन्हीं कारणों से फेल होते हो। इस प्रकार हम कह सकते हैं

कि समाजिक यथार्थ वस्तुगत ना होकर व्यक्तिगत होते हैं। एक व्यक्ति अपनी सम्पूर्णता में अपने समाजिक सांस्कृतिक में इस कद्र लिपटा होता है कि उसे उसका उसका अहसास तक नहीं होता है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार जल में रहने वाली मछली को गीलेपन का कोई अहसास नहीं होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी जन्म उपरांत समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा परिवेश की संस्कृति में समाहित होते जाता है। मनुष्य पूर्णतः संस्कृति में लिपटा होता है। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को उसकी सामाजिक सांस्कृतिक परिपेक्ष से काट कर नहीं देख सकते हैं। यदि वह किसी परम्परा विशेष के साथ खड़ा होता है, तब भी उसका सांस्कृतिक परिवेश आधार प्रदान करता है। यदि किसी परम्परा विशेष का विरोध भी करता है, वह भी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की प्रतिक्रिया स्वरूप ही करता है। इस बात को स्पष्ट करने हेतु लेखक एक उदहारण प्रस्तुत करगा। दिसंबर 2012 में भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में यौन हिंसा को लेकर प्रदर्शन हुआ जिसमें एक प्रमुख नारा था “पितृसत्ता धोखा है धक्का मारों मौका है”। इस प्रकार एक जबरदस्त मांग पितृसत्ता को समाप्त करने की उठी। पर सवाल यहाँ यह है कि “पितृसत्ता” स्थापित कैसे हुई, क्या सिर्फ कानून बना कर “पितृसत्ता” को समाप्त किया जा सकता है, यदि हाँ तो 1950 के दशक में जो हिन्दू परिवार अधिनियम बन गया था। वह अब तक स्विकार्य क्यों नहीं हो सका। यौन हिंसा के विरोध में खड़ा आन्दोलन शहरों तक ही सिमट कर क्यों रह गया? जब ऐसे सवालों को तलासना पड़ता है। इसके लिए हमें समाजिक

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

सांस्कृतिक परिवेश की जड़ें खोदनी पड़ती हैं। ऐसा में जब यथार्थ व्यक्ति से व्यक्ति, स्थान से स्थान, समय से समय बदलता रहता है। ऐसी स्थिति में वस्तुनिष्ठता के पैराडाइम के आधार पर निष्कर्षों को गढ़ना बेमाना है। ऐसा नहीं है कि वस्तुनिष्ठता के पैराडाइम पर आधारित मात्रात्मक अनुसंधानों फिजूल है। पर वे समस्या के अनुकूल नहीं हैं। समाजिक विज्ञानों में भी वस्तुनिष्ठता पैराडाइम अपना ही महत्व है। इसका प्रयोग मुख्यतः क्या, कितना और कहाँ जैसे सवालों को हल करने ढूढ़ने जैसी समस्याओं को हल करने के लिए किया जाता है। NUEPA के DISE संस्थान की रिपोर्ट “Elementary Education in India: Progress towards UEE(2012)” एक मात्रात्मक सर्वेक्षण ही है। यह रिपोर्ट यह तो बताती है कि स्कूलों में दाखिले की प्रवृत्ति क्या है? पर यह नहीं बताती की वह कौन से सामाजिक सांस्कृतिक कारक है, जो इसके लिए जबाबदेह है? क्यों एक माता-पिता अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च करने को मजबूर है? कहीं सरकारी स्कूल में अपने बच्चों को पढ़ाने वाले पिता की अभिलाषा भी तो अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूल में दाखिला दिलवाने की तो नहीं है? व्यापक स्तर पर किये जाने के बावजूद भी मात्रात्मक अनुसंधानों में यह कमी बनी ही रहती है। NUEPA के DISE की रिपोर्ट मात्र तो बताती है पर उसके पीछे के सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण नहीं करती है।

लेखक यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता है कि यह अनुसंधान न तो भौतिक विज्ञान की भांति निष्क्रिय प्राणियों पर हो रहा है, ना ही इसका उद्देश्य मात्रात्मक आकड़ों के बीच संबंधों को तक को विश्लेषित करना मात्र है। यहाँ तो लेखक जीवंत एवं भावयुक्त मानव के अनुभवों को तलासना चाहता है। उस अनुभवों के पलस्वरूप पैदा होने वाले मूल्यों को खोजना चाहता है। एक व्यक्ति ने समाज के सामुहिक अनुभवों से क्या सिखा। व्यक्ति के अनुभव सामुहिक अनुभव का हिस्सा कैसे बने। एक व्यक्ति की व्यक्तिकता किस प्रकार समाजिक ताने बाने से जुडी है। व्यक्ति के अस्तित्व को तलासना ही इस अनुसंधान का उद्देश्य है। इस प्रकार प्रस्तुत अनुसंधान का मार्ग व्याख्यात्मक एवं आलोचनात्मक अनुसंधान का है। इस अनुसंधान में व्यक्ति/ ग्रुप विशेष के अनुभव को उसके समाजिक सांस्कृतिक तानेबाने में पूर्ण सम्पूर्णता के साथ अध्ययन किया गया है। अतः इस अनुसंधान के दौरान अनुसंधानकर्ता का लक्ष्य व्यक्तिगत एवम् सामुहिक अनुभवों को तवजों देना है। ताकि व्यक्ति अपनी अनुभूतियोंको पूर्णतः उसी रूप में व्यक्त किया जा सके, जिस रूप में उसे झेला गया है। **भीड़ में खोए इंसानों की खोज**

अनुसन्धान के इस खंड में प्रत्येक केस स्टडी 'इकाई' को उसके सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश के साथ सामाजिक परिपेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

विद्यार्थी का उसके माता पिता ही नहीं उसके सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि के साथ अध्ययन किया गया है।

इसी प्रकार माता पिता का भी न केवल बच्चों के साथ अपितु उनकी सम्पूर्ण-सामाजिक-आर्थिक एवं अनुभवात्मक पृष्ठभूमि के साथ अध्ययन किया गया है।

स्कूल तथा स्कूल-प्रचार्य/प्रबंधक को माध्यम से स्कूल की संगठनात्मक शैक्षिक संस्कृति की तुलना स्कूल के बाहर की सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश के साथ किया गया है।

स्कूल प्रबंधकों/प्रचार्यों का स्कूली परिसर की सांस्कृतिक परिवेश को भी लेकर दृष्टिकोण का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

स्कूल के भाषाई वातावरण को लेकर प्रबंधकों एवं शिक्षकों के विचारों का भी पता लगाने का प्रयास किया गया है।

विश्लेषणात्मक मूल्यांकन और उसके आधार पर निष्कर्षों तक पहुंचने की क्रिया दो चरणों में की गई है।

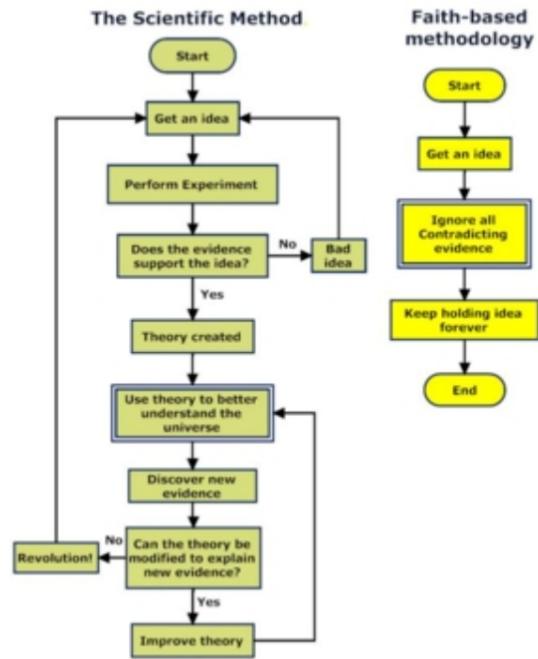
पहला हर इकाई को उसके अपने सामाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश से प्राप्त अनुभवों के परिपेक्ष्य में अध्ययन किया गया है।

दूसरा सभी इकाईयों की अन्तर्विश्लेषणात्मक तुलना करके समस्या के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

फहले क्रम में विद्यार्थी और उनके माँ बाप का अध्ययन प्रस्तुत है तो दूसरे क्रम में स्कूल प्रचार्यों का, तीसरे क्रम में शिक्षकों का और चौथे क्रम में जन सामान्य का दृष्टिकोण पता लगाने का प्रयास किया है ।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



अध्याय - 4

शिक्षा का बाज़ारीकरण और बाज़ारीकरण की शिक्षा

अभिभावकों की माली हालत के हिसाब से अलग-अलग स्तर के स्कूल-कॉलेजों में अलग-अलग तरह की शिक्षा बिक रही है। गली-नुककड़ों पर खुले गैर-मान्यताप्राप्त अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से ले कर 'हाई-फाई' कहलाने वाले पाँच-सितारा वातानुकूलित अंग्रेजी माध्यम स्कूल तक सबका अपना-अपना बाज़ार है....

क्या अंग्रेजी के नाम पर बिकने वाली, इस बाज़ार में खड़ी शिक्षा, आप अपने बच्चों को दिला सकते हैं?

आइए, तनिक विचार करें...

.....

बाज़ारीकरण की आर्थिक नीति के साथ ही पहले से चल रहे निजी संस्थानों या कहें शिक्षा की दुकानों का प्रसार और भी तेज़ी से हुआ है। स्कूल स्तर पर फलता-फूलता शिक्षा का व्यवसाय अब निजी विश्वविद्यालयों तक फैल गया है। अब तो विदेशी विश्वविद्यालय भी इस व्यापार में कूद गये हैं। शिक्षा, जो संपूर्ण समाज के विकास और परिवर्तन का माध्यम है, अब शुद्ध रूप से एक बिकाऊ माल बन कर रह गई है।

वर्ष 1950 में लागू हुए संविधान के माध्यम से देश भर के 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा देने का दायित्व राज्य अर्थात् सरकार को दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने 1993 में दिये मोहिनी जैन एवं उन्नीकृष्णन के फैसले में माना है कि शिक्षा के बिना जीवन निरर्थक है। अतः संविधान के नीति निर्देशक वाले खंड की धारा-45 जो 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को शिक्षित करने का अनिवार्य दायित्व सरकार को सौंपती है तथा इसके लिए सरकार को हर संभव प्रयास करने का निर्देश देती है, को मौलिक अधिकार वाले खंड की धारा-21 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जो नागरिकों को जीवन जीने का अधिकार देता है।

अतः इस फैसले के साथ ही शिक्षा, सरकार की कृपा पर दी जाने वाली खैरात की जगह नागरिकों का अधिकार बन गई। यदि इसी प्रकार, संविधान की धारा 39, 41, 43, 45 (86वें संशोधन से पूर्व), 46, 47 या सम्पूर्ण नीति निर्देशक सिद्धान्तों को भी धारा-21 के साथ पढ़ा जाए तो जन्म के बाद अस्तित्व कायम रखने से लेकर आत्म-सम्मान जागृत करने करने वाली गुणवत्तापूर्ण भोजन, शिक्षा एवं

स्वास्थ्य की सेवाएँ प्रदान करने का दायित्व सरकार का हो जाएगा। (नोट- आखिर सरकार लोगों पर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष एवं अदृश्य टेक्स लगाती क्यों है?) हालाँकि मूल संविधान की धारा-45 में भी सरकार को समाज के सभी तबकों के 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए संविधान लागू होने के दस वर्ष के भीतर, शिक्षा का प्रबंध करने हेतु हर संभव प्रयास करने का निर्देश दिया गया है, पर इस दिशा में स्वतंत्रता के बाद बनी किसी-भी सरकार ने कदम उठाने की ज़हमत नहीं समझी और न ही किसी राजनीतिक दल ने ही गम्भीरतापूर्वक ही इसकी मांग ही की।

धारा-45 (86वें संशोधन से पूर्व) नीति निर्देशक खंड का भाग है और इस खंड की किसी-भी धारा के लिए नागरिक, सरकार को सीधे कोर्ट में घसीट नहीं सकते, अतः इस खंड में दिए गए तमाम दिशा-निर्देशों को स्वतंत्रता के बाद की सभी सरकारों ने नज़रंदाज ही किया है। आलोचकों ने तो इस खंड को संविधान का अपेंडिक्स माना है। उनके अनुसार यह खंड बुर्जुआ संविधान के मानवीय चेहरे को बनाये रखने भर के लिए है। इस प्रकार उन्नीकृष्णन एवं मोहिनी जैन मामले का फैसला अपने आप में क्रांतिकारी है। इस फैसले से सरकार ही नहीं, तमाम राजनीतिक दलों को गहरा झटका लगा और उन्होंने फैसले के प्रभाव से आई जीवन के अधिकार की इस विस्तृत व्याख्या को सीमित करने के लिए संविधान संशोधन की चाल चली और शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने का स्वांग रचा।

सरकार ने 83वें संविधान संशोधन के माध्यम से धारा-21 में धारा-21अ जोड़ी जिसमें छः से 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षित करने का दायित्व सरकार को सौंपा, पर यह शिक्षा क्या होगी, इसे तय करने का अधिकार सरकार ने अपनी जेब में रखा है। इस संविधान संशोधन के फलस्वरूप शिक्षा के नाम पर अंट-शंट कुछ भी परोसने का अधिकार सरकार के पास आ गया। इस संशोधन की आड़ में पारित शिक्षा अधिकार कानून, जो वास्तव में शिक्षा के अधिकार को छीनने वाला ही है, ने पहले से स्थापित शिक्षा की बहुपरती व्यवस्था को दृढ़ करने का काम किया और निजी स्कूलों में गरीब वर्ग (जो देश की जनसंख्या का 80 प्रतिशत है) को 25 प्रतिशत सीटें प्रदान कर शिक्षा के बाजारीकरण की नीति को संवैधानिक मान्यता प्रदान करता है। इस कानून ने गरीब वर्ग के 25 प्रतिशत बच्चों को अमीर वर्ग के स्कूलों में आरक्षण देकर तथा उसे 'प्रतिष्ठा और अवसर की समता' एवं 'सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक न्याय' से जोड़ कर भारतीय संविधान की इन भावनाओं का खुल्लमखुल्ला मजाक उड़ाया।

पिछले तीन दशकों में शिक्षा-व्यवस्था में तेजी से बदलाव के फलस्वरूप शिक्षा आम आदमी की पहुँच से और भी दूर हो गई है। 1986 की शिक्षा नीति, डी.पी.ई.पी. एवं सर्व शिक्षा अभियान द्वारा बहुस्तरीय शिक्षा-व्यवस्था की खोदी गई नींव पर 'बुलंद इमारत' खड़ा करने का काम इस शिक्षा अधिकार कानून ने किया है।

स्वतंत्रता पूर्व लोग समाज सेवा की भावना से शिक्षा के क्षेत्र में धन लगाते थे। पर स्वतंत्रता के उपरांत, खास तौर से 70 के दशक के प्रारंभ से शिक्षा के क्षेत्र में निजी पूँजीपतियों ने लाभ कमाने की दृष्टि से धन लगाना शुरू किया और शिक्षा समाज के उत्थान का साधन होने के स्थान पर पूँजीपतियों की सम्पत्ति बढ़ाने की वस्तु बन गई। जिसकी जेब में जितना पैसा होगा, उसी स्तर की शिक्षा, उसे बेची जायेगी। यही शिक्षा की दुकानों का फार्मूला है।

इस प्रकार, यह शिक्षा-व्यवस्था समाज के वर्गीय ढाँचे को मज़बूती प्रदान करने वाली है, अर्थात् गरीब वर्ग के लोगों को सदा गरीब और अमीर वर्ग के बच्चों को सीधे समाज का सरमायेदार बनाती है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था शोषण पर आधारित समाज की नींव को ही पुख्ता करती है। यह शिक्षा-व्यवस्था तीन तरह से समाज का शोषण करती है - पहला अभिभावकों एवं विद्यार्थियों का, दूसरा शिक्षकों एवं कर्मचारियों का, तीसरा संपूर्ण समाज का।

निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूल-कॉलेज अपनी चमक-दमक के माध्यम से एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं कि अंग्रेजी में बोलने की कला ही शिक्षा है। जो 'अंग्रेजी' में बोलता है, केवल वही शिक्षित कहलाता है। 'व्यावसायिक' शिक्षा के जरिये वे ही विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बना सकते हैं और बड़ी-से-बड़ी नौकरी के 'पैकेज' दिलवा सकते हैं। इस प्रकार, अभिभावकों को अपने चंगुल

में फँसाने के लिए वे प्रचार-प्रसार के सभी हथकंडे अपनाते हैं। अभिभावकों की माली हालत के हिसाब से अलग-अलग स्तर के स्कूल-कॉलेजों में अलग-अलग तरह की शिक्षा बिक रही है।

गली-नुक्कड़ों पर खुले गैर-मान्यताप्राप्त स्कूलों से ले कर पाँच-सितारा वातानुकूलित स्कूल तक सबका अपना-अपना बाज़ार है। वास्तव में शिक्षा की ये दुकानें लोगों को शिक्षित नहीं कर रही हैं, अपितु *शिक्षा के रैंपर में कुशिक्षा* बेच रही हैं। जहां शिक्षा का लक्ष्य लोगों के दिमागों को खोलना है, वहीं ये हमारे बच्चों को अंग्रेजी में टर-टर करने वाले तोते बनाने का काम कर रही हैं। उनकी योग्यता का पैमाना, उनकी अंग्रेजी में रटने की क्षमता मात्र है। ऐसी शिक्षा विद्यार्थियों की सोचने-समझने की क्षमता को बढ़ाने के स्थान पर उनके दिमागों को कुंद कर देती है। धीरे-धीरे विद्यार्थी की समस्त जिज्ञासा खत्म हो जाती है और परीक्षा पास करना मात्र उनका लक्ष्य रह जाता है। आज अभिभावक, चाहे वह सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों को भेजता हो या तथाकथित विश्व स्तरीय पब्लिक स्कूलों में, बच्चों की पढ़ाई पर अपनी औकात से ज़्यादा पैसा खर्च कर रहा है।

सवाल यह उठता है कि इतना खर्च करने पर भी क्या उसके बच्चों को बेहतर शिक्षा मिल पाती है या उसे ठगा जाता है? यदि अभिजात्य वर्ग के बच्चों को उच्च कोटि की शिक्षा देने के लिए खोले गये पाँच-सितारा स्कूलों को छोड़ दें तो मध्यम वर्ग और निम्न

मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों को शिक्षा के नाम पर सिर्फ ढकोसलेबाजी ही मिलती है। चूँकि इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम उन पर थोपी गई अंग्रेजी भाषा होती है, इसलिए विद्यार्थी पर रटने का अनावश्यक दबाव बनता है।

शिक्षा के जरिये विद्यार्थियों की सोचने-समझने की क्षमता बढ़ाने के बजाय इन स्कूलों में केवल उनमें रटने की क्षमता को ही बढ़ावा दिया जाता है, अर्थात् बिना समझे उन बातों को रटना, जिनका जिंदगी की वास्तविकता से कोई लेना-देना न हो। ये स्कूल सी.बी.एस.ई., एन.सी.ई.आर.टी. के पाठ्यक्रम अपनाने का बड़-चढ़ कर दावा करते हैं, लेकिन पाठ्यक्रम एक जैसा होते हुए भी अलग-अलग वर्ग के विद्यार्थी को अलग-अलग गुणवत्ता का 'माल' (शिक्षा के नाम पर निम्न स्तरीय साक्षरता) बेचते हैं। जो विद्यार्थी शिक्षा की इन निजी दुकानों तक नहीं पहुँच पाते, उनके लिए भी इस व्यवस्था में जगह दी गई है। सरकार ने उनके लिए भी स्कूल खोले हैं, जिनमें शिक्षा के नाम पर खिचड़ी-चावल के आलावा कुछ भी नहीं मिलता। इन स्कूलों में तो विद्यार्थियों को घटिया दर्जे की साक्षरता भी नहीं मिल पाती। वे वहाँ से शिक्षा के नाम पर आठवीं पास का प्रमाण पत्र ही हासिल कर पाते हैं।

गरीब वर्ग के बच्चों का दाखिला (चाहे वह 25 प्रतिशत के कोटे से हो या अभिभावक अपना पेट काट कर दाखिला करवाएँ), अमीर वर्ग के लिए खुले प्राइवेट अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में यदि हो भी जाता है तो वहाँ उन्हें सिवाय हीनता-बोध के कुछ नहीं मिलेगा। स्कूल फीस से लेकर किताब-कॉपी, पिकनिक ही नहीं मध्यांत में खाये जाने वाले टिफन तक के लिए उन्हें ज़लील होना पड़ेगा।

कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि उच्च वर्ग के लिए खोले गये 'हाई-फाई' कहलाने वाले विश्व स्तरीय स्कूलों को छोड़ दें तो वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में अधिकांश आम घरों की संतानों को शिक्षा के नाम पर सिर्फ सर्टिफिकेट ही मिल रहे हैं, चाहे वे निजी स्कूलों में पढ़ रहे हों या सरकारी स्कूलों में। तामझाम और भड़कीले प्रचार-प्रसार करके स्कूलों के मालिक अभिभावकों को केवल झूठे ख्वाब तो दिखाते हैं पर बच्चों को शिक्षित नहीं करते। शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने के स्थान पर विद्यार्थियों को रटत विद्या प्रदान कर ये संस्थाएँ विद्यार्थियों का मानसिक शोषण और उनके अभिभावकों का आर्थिक शोषण करती हैं।

निजी शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों के शोषण की कोई सीमा नहीं है। उन्हें औने-पौने दामों पर नियुक्त किया जाता है। सोचिये, जो शिक्षक अपनी आय से न्यूनतम जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाता, वह भला दूसरों को किस प्रकार की शिक्षा देगा? मानसिक तनाव से ग्रस्त शिक्षक, मानसिक रूप से विकृत विद्यार्थियों को ही तैयार कर सकता है। शिक्षकों का शोषण करने में सरकारी क्षेत्र, निजी क्षेत्र से पीछे नहीं है।

हर राज्य में शिक्षकों के हजारों पद खाली पड़े हैं, पर उन पर स्थायी नियुक्ति करने के स्थान पर कॉन्ट्रैक्ट टीचरों, गैस्ट टीचरों, शिक्षा मित्रों आदि की नियुक्तियाँ की जाती हैं। इन शिक्षकों को स्थायी शिक्षकों के वेतन का एक-चौथाई भी नहीं दिया जाता। जबकि स्थायी

शिक्षकों के संपूर्ण काम की जिम्मेदारी अस्थायी शिक्षकों पर थोप दी जाती है। यह व्यवस्था केवल अस्थायी शिक्षकों का शोषण ही नहीं करती, बल्कि परोक्षतः निजी शिक्षण संस्थानों को शिक्षक वर्ग का शोषण करने के लिए सरकारी प्रोत्साहन भी देती है।

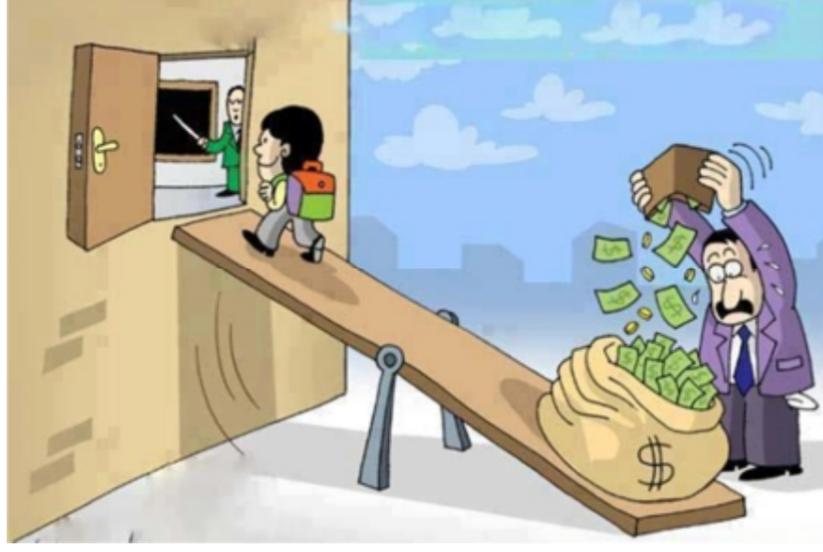
वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था समाज को रसातल की ओर ले जा रही है। मानसिक तनावग्रस्त और असंतुष्ट शिक्षक व अर्धशिक्षित (अर्धशिक्षित भी नहीं सिर्फ अल्प साक्षर) विद्यार्थी भला कैसे समाज का निर्माण कर सकते हैं? निजी शिक्षण संस्थान सरकार से औने-पौने दामों पर ज़मीन और अन्य संसाधन ले लेते हैं, परंतु बदले में समाज को अस्वस्थ बनाने वाली 'अंग्रेजीयत की मानसिकता' को बेच कर मुनाफ़ा बटोरने के सिवा क्या करते हैं?

इन शिक्षण संस्थानों के मालिक इन अंग्रेजी माध्यम दुकानों के जरिये अपनी दौलत दुगुनी-तिगुनी कर रहे हैं। उस दौलत की बदौलत वे ऊँचे ओहदे वाले राजनेताओं और नौकरशाहों से संपर्क स्थापित करते हैं जो इन संस्थानों को संरक्षण प्रदान करते हैं। दिखावे के लिए हमारी सरकार शिक्षा के अधिकार अधिनियम का ढोल पीटती है, परंतु इन सरकारों को चलाने वाले नेता और नौकरशाहों का व्यक्तिगत फायदा निजी शिक्षण संस्थानों के प्रसार में ही है।

आज अभिभावक, विद्यार्थी और शिक्षकों को ही नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज को इन शिक्षण संस्थानों की मनमानी और दुर्व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष छेड़ना होगा। शोषण और लाभ पर आधारित इस शिक्षा-व्यवस्था की जगह 'समान शिक्षा व्यवस्था' को स्थापित करना जरूरी है। एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था जरूरी है जहाँ समाज के हर वर्ग के बच्चे एक साथ शिक्षा ग्रहण कर सकें। जरूरत एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था की है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों का समग्र विकास और समाज की प्रगति होनी चाहिए, न कि मुट्ठी भर लोगों के मुनाफ़े और निजी लोभ-लाभ का जरिया।

नोट:- लेखक का यह आलेख जनसत्ता एवं देश विदेश मजदूर मोर्चा जैसी पाक्षिक पत्रिकाओं में छप चुका है।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



चित्र साभार <https://www.facebook.com/Karl.Marx.Marxism>

अध्याय 5

सरकारी तथा निजी स्कूलों में दाखिले की तुलनात्मक प्रवृत्ति की खोज

गली गली में खुले हैं इंग्लिश मीडियम स्कूल ।

शोध क्षेत्र के सर्वेक्षण से ये ज्ञात हुआ कि लोगो का तुलनात्मक झुकाव निजी स्कूलों की तरफ तेजी से बाढा है । फरीदाबाद, पलवल, होडल जैसे शहरों में भी 1990 के बाद जो तेजी से प्राइवेट स्कूल खुलने शुरू हुए उसमे सन 2000 के बाद एक एक उछाल आया है । फरीदाबाद निवासी एवं पत्रकार सतीस कुमार के अनुसार सरकार ने नए बने सेक्टरों(आवासीय कॉलोनी) में स्कूलों के लिए निर्धारित प्लाट निजी स्कूलों को सस्ते दामों पर उपलब्ध कराये है । सतीस जी ने बताया कि सिर्फ दो प्लाट ऐसे हैं जो सरकारी स्कूल के नाम है । उसमें से भी एक में पुलिस चौकी है और दुसरे में प्राथमिक विद्यालय के साथ साथ शिक्षा विभाग का जिला कार्यालय चलता है । अतः सतीस जी के अनुसार सरकार कि नीति ही नहीं है कि सरकारी

स्कूल जिन्दा भी रहे । प्रचार्य 1 ने भी एस बात की पुष्टि की की जहाँ बामुशिकल उच्च माध्यमिक स्तर के 10- 12 सरकारी स्कूल ही होंगे वहीं वहीं 80 से उपर तो सिर्फ सीबीएसई से मान्यता प्राप्त निजी स्कूल ही है । गांव भिड़की के निवासियों के अनुसार भी तीन सरकारी स्कूल के मुकाबले गांव में 18 बीस निजी स्कूल चल रहे हैं । जिसमें एक को छोड़ कर बाकी गैर मान्यता प्राप्त है । उसी गांव के एक ग्रामीण के अनुसार, “ सरकारी स्कूल के पास इतनी क्षमता भी नहीं की वे सभी बच्चों को अपने यहाँ बैठा ले ।” जबकि गांव गड्खेरा निवासी नेत्रपाल के अनुसार उनके गांव में एक सरकारी तथा एक ही निजी स्कूल है । चुर्की गांव से शहर ज्यादा दूर नहीं है इसलिए निजी स्कूल में भेजने वाले माबाप अपने बच्चों को शहर के स्कूल में ही भेज देते हैं । “हमारे गांव में शहर के स्कूल की बसे आती है । जो हमारे गांव के साथ-साथ आस पास के गांव के बच्चों को भी स्कूल लेकर जाती है । हमारे गांव में हमने चंदा इकट्ठा कर सरकारी स्कूल के लिए कमरे तैयार किये थे पर उसके बावजूद भी लोग अपने बच्चों को निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में भेज रहे हैं ।”

जब दाखिले की बात आई तो लोगों ने जो आकडे दिए वो चौकाने वाले थे । गांव गड्खेरा के लोगों का कहना था कि उनके यहाँ स्कूल जाने लायक 2000 बच्चों में से 200 बच्चे भी सरकारी स्कूल में जाते हैं । 1800 के करीब बच्चे प्राइवेट स्कूलों में जाते हैं । 1800 निजी स्कूलों में जाने वाले बच्चों में से 200-250 ही गांव के निजी स्कूल में जाते हैं शेष फरीदाबाद शहर के

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

निजी स्कूलों में प्रस्थान करते हैं। एक ग्रामीण ने निजी स्कूल का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहाँ "निजी स्कूल का अर्थ ही अंग्रेजी माध्यम होता है" वाही 18,000-22,000 की आबादी वाले भिड़ूकी गांव के निवासियों का कहना है कि उनके यहाँ के 6500 - 7000 स्कूल जाने वाले बच्चों में मात्र 800- 900 बच्चों ही सरकारी स्कूल जाते हैं उसमे से भी 600 के करीब तो लड़कियों के स्कूल में । लड़कों के दो स्कूलों में संख्या 150, 150 के करीब है । शेष सभी निजी स्कूल में जाते हैं । इस प्रकार जहाँ गड़खेरा में 20 % के लगभग लोग सरकारी स्कूलों में जाते हैं वहीं भिड़ूकी में महज 12.5 % । भिड़ूकी में सरकारी स्कूल की स्थिति को बचा कर रखने का काम लड़कियों के स्कूल ने किया है । जहा लड़कों के दोनों स्कूलों के मुकाबले दुगनी छात्राएं हैं । लड़कियों के स्कूल में अधिक संख्या का कारण ग्राम वासियों ने सामाजिक तथा आर्थिक बताया इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि लड़कियों का स्कूल 1 से 12 तक का है वहीं लड़कों का एक स्कूल 1-5वीं तक का तथा दूसरा 6-10 तक का है ।

इस आकड़ों को देखने के बाद NUPA की रिपोर्ट अधूरी तस्वीर प्रस्तुत करती नजर आती है । NUPA की रिपोर्ट सरकारी स्कूल में दाखिले में आई मामूली गिरावट की बात करती है वाही इस छोटे से अवलोकन पर विश्वास करे तो यह 'महा पलायन' की स्थिति को दर्शा रही है ।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

अब सवाल उठता है कि इस 'महापलायन' के बाद कौन से बच्चे हैं जो सरकारी स्कूलों में बच जाते हैं । गांव गडखेरा के लोगों का कहना है कि महज वे बच्चे रह जाते हैं जिनके माबाप आर्थिक रूप से पूर्णतः विपन हैं । सरकारी स्कूलों में आने वाले बच्चों में 80 % SC तथा BC केटेगरी के हैं शेष दुसरे केटेगरी से सम्बन्ध रखते हैं । ग्रामवासियों के अनुसार, आर्थिक रूप से थोडा संपन, "हर केटेगरी(एस सी , एस टी , ओ बी सी , सामान्य)" का व्यक्ति अपने बच्चों को निजी स्कूल में ही भेजता है ।

वहीं फरीदाबाद के सराए स्थित स्कूल का अवलोकन करने पर स्थिति ग्रामीण स्कूलों से इस प्रकार भिन्न मिली की यहाँ बच्चों की अच्छी खासी संख्या है, (3000 से 4000 आस-पास है ।) तथा एक एक क्लास में 80 -80 बच्चें भी हैं । कुछ क्लास सयुक्त रूप से दो-तीन सैक्सन को मिला कर भी चलती है । ऐसे में कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या 150-200 के आस पास हो जाती है । पर एक समानता यहाँ भी देखने को मिली वह यह कि इस स्कूल में आने वाले बच्चे विशेषतः आर्थिक रूप से विपन मजदूर वर्ग के ही हैं । जो मुख्यतः दुसरे राज्यों से विस्थापित होकर रोजगार की तलास में फरीदाबाद जैसे औद्योगिक शहर में बसे हैं । यहाँ भी लड़कियों की संख्या लड़कों से अधिक है । जो इस बात का सूचक है कि समाजिक आर्थिक कारणों से निम्न मध्यम वर्गीय परिवार लड़कियों को तो सरकारी स्कूल में डालते हैं पर लड़कों को निजी स्कूलों में डालने की प्रवृति है । एन आई टी कॉलोनियों में स्थित स्कूलों में भी बच्चे आस पास के सम्पन पंजाबी परिवारों के नहीं हैं ।

यहाँ आने वाले बच्चे मुख्यतः निम्न एवं निम्न मध्यम वर्गीय डबुआ कॉलोनी तथा फरीदाबाद की पहाड़ी के साथ बसे खान मजदूरों के गांव के हैं ।

इसके अतिरिक्त अवलोकन के दौरान यह भी पाया कि रेलवे की जमीन का अतिक्रमण कर बसे आजादपुर, यूटोपियन झुग्गी में भी निम्न दर्जे के गैर मान्यता प्राप्त अपने आप को अंग्रेजी मीडियम घोषित करने वाले निजी स्कूल चल रहे हैं । ये सभी अवलोकन इस बात को दर्शाते हैं कि लोगो का रुझान अंग्रेजी माध्यम कहलाने वाले स्कूलों की तरफ हुआ है । वो बात अलग है कि वो स्कूल मान्यताप्राप्त है अथवा गैर मान्यता प्राप्त , सीबीएसई से संबध है या हरियाणा बोर्ड से । विशिष्ट दर्जे का माने जाने वाला है । अथवा निम्न दर्जे का ।

मायने सिर्फ यह रखता है कि वह अंग्रेजी माध्यम का हो, बेसक वहां पढ़ाने वालों को खुद भी अंग्रेजी ना आती हों । गांव भिडूकी, गडखेर आदि के ग्रामीणों ने भी यह तथ्य चुटकी लेते हुए बताया । अतः इस अवलोकन से यह बात तो स्पष्ट होती है कि जन सामान्य का रुझान अंग्रेजी माध्यम कहलाने वाले स्कूलों की तरफ तेजी से बाढा है ।

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

अब भारत में ही पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या को देखे तो यह संख्या यह महज 123% ही है । अंग्रेजी भाषा की थोड़ी बहुत जानकारी के आधार पर अंग्रेजी को सैंकेंड लेंग्वेज घोषित करने वालों की संख्या 12 % के आस पास है । इस सन्दर्भ में चाय बेचने वाले सज्जन का यह वक्तव्य गौर करने वाला है , “ आज की डेट में इंग्लिश है क्या चीज जो दो चार क्लास पढ़ जाता है उसे अंग्रेजी आ जाती है ।” गौर तलब है आज हर एक अपनी द्वितीयक भाषा अंग्रेजी घोषित करना चाहता है । इस प्रकार हम देखे तो महज 3 से 4 % जनसँख्या ही अंग्रेजी भाषा को धाराप्रवाह क्षमता रखती है । पर अंग्रेजी माध्यम में अपने बच्चों को पढ़ाने की इच्छा हर व्यक्ति की है । माता पिता की इच्छा कहे या सामाजिक दबाव बच्चे जानवरों की भाँति अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के खूटे बाँध दिए जाते हैं । घर का । गांव का , परिवेश की संस्कृति की भाषा में अंग्रेजी का पुट हो न हो पर डालना अंग्रेजी में ही है । विशिष्ट कहलाने वाले महंगे स्कूलों में ना सही गली नुक्कड़ पर खुले स्कूलों में ही पढायेगे पर अंग्रेजी माध्यम में ही पढाएंगे । अनु ने अपने पायलट सर्वेक्षण में पाया की दिल्ली के उत्तर में स्थित निम्न एवं निम्न माध्यम वर्गीय सोनिया कॉलोनी के गली गली में गैर मान्यता प्राप्त स्कूलों की बाढ़ आई हुई है । कुछ बैनर के साथ तो कुछ बिना बैनर के ही चल रहे हैं । माता पिता से बात करो तो कहते हैं , “आज आजकल इंग्लिश का जमाना है ।” यह तो हुई सोनिया विहार दिल्ली की बात अब हम गांव भिड़की (जिला पलवल)को लेते हैं 20-22 हजार की जनसँख्या वाले गांव में 22 के करीब निजी

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

स्कूल चल रहे हैं जिसमें से अधिकतर अंग्रेजी माध्यम का दावा करते हैं। यही हाल फरीदाबाद का है पर सवाल यह उठता है की बच्चे इन स्कूलों में सीख भी पाते हैं।

पर सवाल यह उठता है कि वे उस परिवेश में सीख भी पाते हैं। इस बार पर आगे विचार करे इससे

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



अध्याय 6

रमेश की केस स्टडी

पहला सवाल तो यह ही उठता है कि रमेश को केस स्टडी के लिए क्यों चुना गया?

मानवतावादी दृष्टिकोण से भी देखें तो हर व्यक्ति की समाज में अपनी ही अहमियत है। अतः कोई भी व्यवस्था यदि किसी एक व्यक्ति को समाहित करने से चूक जाती है तो यह माना जा सकता है कि वह असमानता और गैर-बराबरी को ही पुख्ता कर रही है। रमेश भी उन हजारों-लाखों विद्यार्थियों में से एक है, जो अंग्रेजी माध्यम वाली औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के साथ तालमेल बैठाने में असफल रहा है। पर फिर भी उसमें ही शिक्षा ग्रहण करने को बाध्य है।

विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार स्कूल का साँस्कृतिक परिवेशगत वातावरण का समन्वय, स्कूली वातावरण में दिखाई पड़ना चाहिये। पर जब स्कूल की अंग्रेजी माध्यम की वर्चस्व वाली संस्कृति, विद्यार्थियों के परिवेश की संस्कृति को पूरी तरह

नकार रही हो, परिवेश की संस्कृति को निपट गँवारू बता रही हो, तो ऐसी स्थिति में एक विद्यार्थी की समझ पर और उसकी पहचान पर क्या प्रभाव पड़ता है। यह जानने के लिए लेखक ने रमेश के परिवार के साथ कुछ समय बिताया।

रमेश तथा उसके परिवार का संक्षिप्त परिचय

रमेश अपने माता-पिता का कनिष्ठ पुत्र है। उसके परिवार में उसके अतिरिक्त उससे बड़ी एक बहन तथा बहन से भी बड़ा एक भाई है। रमेश के पिता अजय कुमार बीस-बाईस वर्ष पूर्व नौकरी की तलाश में अपने बुलंदशहर स्थित गाँव से फरीदाबाद आये थे। ओल्ड फरीदाबाद स्थित अहिरवाड़ा गाँव में उनके नानाजी का एक पुश्तैनी मकान भी था। इसी गाँव में उन्हें अपने नानाजी से तोहफ़े के रूप में एक प्लॉट अर्थात् जमीन का एक टुकड़ा भी मकान बनाने के लिए मिल गया। विवाह उपरांत वे इसी मोहल्ले में बस भी गए। परन्तु बुलंदशहर स्थित गाँव से उनका जुड़ाव बना रहा। गाँव के प्रति मोह उन्हें बार-बार खींच कर बुलंदशहर ले जाता। इस वजह से कई बार उन्होंने गाँव में ही बसने की भी सोची। उनके बड़े लड़के की प्रारम्भिक औपचारिक शिक्षा गाँव में ही हुई। परन्तु बच्चों की शिक्षा की चिंता उन्हें स्थाई रूप से शहर खींच लाई। अजय कुमार जी के शब्दों में, "गाँव में खुली हवा है, शुद्ध पानी है, खेत की ताजी सब्जियाँ और घर का खुल्ला दूध-दही भी है। मतलब यह कि जो कुछ भी हम यहाँ मोल लेते हैं वो सब वहाँ पर मुफ्त में / 'फ्री आफ कॉस्ट' उपलब्ध है। बस नहीं है तो वहाँ शहर जैसी पढ़ाई नहीं

है। बालकों की खातिर ही हम इस शहर में बसे हुए हैं और यहाँ का 'पॉल्यूशन' पी रहे हैं।" रमेश कुमार जी की पत्नी कमला जी के अनुसार, "गाँव में बालकों का भविष्य ना है।" इस प्रकार बच्चों के भविष्य की चिंता उन्हें स्थाई रूप से गाँव से शहर ले आई।

वर्तमान में अजय कुमार का परिवार स्थाई रूप से फरीदाबाद के अहिरवाड़ा में बस चुका है। अहिरवाड़ा भी अब गाँव नहीं रहा, शहर का ही भाग बन गया है। गाँव से सटे खेतों पर प्लॉट कट गये और इस प्रकार जहाँ कभी ज्वार-बाजरे की खेती होती थी वहाँ मकान बन गए हैं। इस प्रकार, अहिरवाड़ा तथा उससे सटी बस्लवा कॉलोनी, इस क्षेत्र में निम्न-मध्यम वर्गीय प्रवासी लोगों की कॉलोनी के रूप में उभर कर आई है।

आय के स्रोत के रूप में रमेश के पिता अजय कुमार जी की पारिवारिक आय में तकनीशियन के रूप में रोड़वेज़ से प्राप्त होने वाली आय के अतिरिक्त पशु-पालन (भैंस) अर्थात् दूध के व्यवसाय से होने वाली आय तथा अपने मकान के एक पोर्शन अर्थात् हिस्से को किराये पर देकर प्राप्त होने वाली आय भी शामिल है।

पशुपालन अर्थात् भैंसों की मुख्य जिम्मेदारी विशेषतः रमेश की माता, कमला जी के कंधों पर ही रहती है। कमला जी का कहना है, "पशु-पालन हमारा पुश्तैनी काम है। हालाँकि शहरों में चारा आदि न मिलने से इस काम में काफी दिक्कत आती है पर इससे कम-से-कम बच्चों के पीने के लिए घर का दूध तो हो ही जाता है।" जहाँ तक पशुओं की देखरेख का सवाल है, वह मुख्यतः कमला जी खुद ही करती हैं। रमेश की माता जी के कार्य में कुछ सहायता रमेश के पिता, अजय कुमार जी अपने ऑफिस से आने के बाद देते हैं। परन्तु कमला जी के अनुसार

“भाई बहनों में पशु-पालन (भैंस-पालन) के कार्य को लेकर तूतू-मैंमें की स्थिति बणी (बनी) रहती है। हर कोई एक-दूसरे पर काम को टालने का प्रयास करता है। इन बालकों को भैंसों का काम करने में शर्म-सी महसूस होती है।”

रमेश के बड़े भाई नितीश ने हिंदी माध्यम से बारहवीं की परीक्षा पास की। उसके बाद उसने बी-फार्मा में दाखिला लिया। पर सारा-का-सारा कोर्स अंग्रेजी में होने की वजह से सिर्फ प्रैक्टिकल को छोड़ बाकी सब में फेल हो गया। रमेश के पिता के साथ साथ उसके बड़े भाई नितीश को लगता है, “यदि मैंने हिंदी की जगह शुरु से ही अंग्रेजी माध्यम से पढाई की होती तो उसे बी-फार्मा का कोर्स बीच में छोड़ने की नौबत ना आती। नितीश के पिता अजय को भी जब पता चला तो वे सब काम छोड़ कर अपने पुत्र के होस्टल पहुँचे। उन्होंने डबडबाई आँखों से लेखक को बताया, “जब कुछ दिनों तक इसका फोन नहीं आया, फोन पर बात करो तो सही से ना बोलता... तब हमें कुछ डाउट-सा हुआ और मैंने उसके कॉलेज में फोन करके उसका रिजल्ट पता किया। जब पता चला फेल है तो मैं सब काम छोड़ इसके कॉलेज भागा और उसी दिन उसका बोरिया-बिस्तर वापस ले आया।” हमारे फरीदाबाद के सभी कॉलेज महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय से संबद्ध होकर चलते हैं तथा निकटतम शहर दिल्ली के कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से या आई.पी. यूनिवर्सिटी से संबद्ध हैं। इनमें से किसी में भी बी.एससी. का पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम से करने की सुविधा नहीं है। इसलिए विज्ञान में रुचि होने के बावजूद भी मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी माध्यम से बी.ए. में दाखिला ले लिया।” नितीश के अनुसार, “बी.ए./बी.काम. के अतिरिक्त, अन्य सभी विषयों को पढ़ाने का माध्यम अंग्रेजी ही है।” नितीश की बहन भावना के अनुसार, “हिंदी माध्यम से तो बी.ए. ही हो सकती है।” नितीश के अनुसार, “अंग्रेजी भाषा उसकी ही नहीं,

हरियाणा बोर्ड-हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों की समस्या है।” पर जिन दिनों नितीश बी.ए. में पढ़ रहा था। तब ही उसका सिलेक्शन जे.बी.टी. में हो गया और उसने आर्थिक रूप से अपने आप को स्थिर करने हेतु जेबीटी ‘ज्वाइन’ किया, अर्थात् उसमें प्रवेश ले लिया। नितीश जे.बी.टी. कोर्स के हिंदी माध्यम में होने से खुश है। नितीश ने बताया, “जे.बी.टी. की पढाई हिंदी माध्यम से होती है, किताबें भी हिंदी में उपलब्ध हैं।” उसने अपनी पुस्तकों से मनोविज्ञान के सिद्धांतों को कोट करते हुए कहा, “गाँधीजी के अनुसार हमारी पढाई मातृभाषा में होनी चाहिए।” मनोविज्ञान भी तो कहता है कि बच्चे की समझ उसकी अपनी बोली-भाषा में ही विकसित होती है।” नितीश ने आगे प्रश्न रखा, “जब बच्चे के विकास में मातृभाषा की इतनी अहम् भूमिका है तो हमारे देश में अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा पर बल क्यों दिया जाता है?” लेखक इस प्रश्न के जबाब से इस प्रकार बच गया कि इस प्रश्न का जबाब नितीश से छोटी परन्तु रमेश से बड़ी उनकी बहन भावना ने ही दे दिया। भावना ने जबाब देते हुए कहा, “ये सिद्धांतों की बातें किताबों में ही अच्छी लगती हैं। ‘प्रैक्टिकल’ कुछ और ही है। आजकल अंग्रेजी का जमाना है, कहीं-भी चले जाओ, वहाँ अंग्रेजी की जरूरत पड़ती है। मल्टी-नैशनल कंपनियों में तो अंग्रेजी के बिना खड़े तक नहीं हो सकते। पढाई की बात करते हो... बी.ए. जे.बी.टी. आदि तो हिंदी में कर सकते हो पर मास्टर लेवल पर कोई पढाई करनी हो तो वह अंग्रेजी में ही होगी। यहाँ तक कि डी.यू. से एम.एड. भी अंग्रेजी में ही तो होती है।” दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.बी.एस. करने वाली भावना ने अपने दोनों भाइयों को नसीहत देते हुए कहा, “यदि कामयाब होना है तो अंग्रेजी का रोना रोने से बेहतर है कि अंग्रेजी को इम्प्रूव करो। हमारी क्लास में सरकारी स्कूल की हिंदी माध्यम की एक लड़की आई थी। सेशन के बीच में कोर्स छोड़ कर चली गई। पूरा लेक्चर अंग्रेजी में देने के

बाद टीचर पूछती, यदि किसी को अंग्रेजी में समझ नहीं आया तो पूछ लो। कोई कुछ बोले तो उसकी बेइजती। क्या करे.... अगली ने बीच में ही कोर्स छोड़ दिया। हमारी क्लास में तो सभी स्टूडेंट्स इंग्लिश मीडियम स्कूलों के हैं।”

अजय कुमार जी के अनुसार भावना पढाई-लिखाई में सभी भाई-बहनों में सबसे बेहतर है। उसने स्थानीय अंग्रेजी माध्यम स्कूल से बारहवीं की परीक्षा अच्छे अंको से पास करने के पश्चात् मैरिट से दिल्ली विश्वविद्यालय में बी.बी.एस. में दाखिला ले लिया। वहाँ भी वह अंग्रेजी माध्यम से ही बी.बी.एस. का कोर्स कर रही है। पिता की बात को बीच में टोकते हुए नितीश ने कहा, “उसकी शुरू से पढाई अंग्रेजी माध्यम से हुई है। हमारी तरह नहीं कुछ साल इधर तो कुछ उधर।” इस पर जबाब देते हुए अजय कुमार जी ने कहा, “तेरे बारे में तो हम अपनी गलती मानते हैं पर इस छोटने के बारे में क्या कहता है? इसको भी तो शुरू से उसी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में दाखिल कराया है। यो क्यों ना चाल रहा?” काफी समय से चुप बैठी रमेश की माताजी कमला जी ने कहा, “कामयाब होने के खातर दिमाग चाहिए। जब तुम अपना दिमाग इधर-उधर लगावोगे, किताब में ध्यान ना दोगे तो पढाई कुकर आवेगी?” उन्होंने लेखक की तरफ प्रश्न पूछने की मुद्रा में अपनी बात रखी, “ये बात करते हैं कि अंग्रेजी कठिन है, मैं पुछूँ हिंदी कोण-सी आसान है। हिंदी में इसे-इसे कठिन शब्द होवे है के सर घूम जाये। अरे! स्कूल तो हम भी गए हैं। याद करण आले खातर अंग्रेजी आसान है, हाँ! ना करण आले खातर, सब कुछ कठिन है। इसके मामा के बच्चों को देख लो... अंग्रेजी माध्यम से से एम.सी.ए. किया है।”

पत्नी ने जब अपना अनुभव साँझा किया तो पति कैसे पीछे रह सकता था। अजय कुमार जी ने अपना अनुभव बताते हुए कहा, “अरे! तूने क्या की होगी पढ़ाई। गाँव के स्कूल से बाहर भी निकल के कभी देखा है? दसवीं के बाद हम गए थे, शहर के कॉलेज में, हमारे टाइम में दसवीं के बाद ही कॉलेज शुरू हो जाता था। हमें तो यही पता नहीं चलता था कि लेक्चरर अंग्रेजी में बोल क्या रहा है। हमने तो कॉलेज छोड़ आई.टी.आई. जॉइन कर ली। उन दिनों मंदी का जमाना था... आई.टी.आई. करते ही रोड़वेज में लग गया। पर आज जमाना दूसरा है।” आगे उन्होंने अपनी पत्नी की तरफ देखते हुए कहा, “बालकों को डिग्रीज ना किया करा।”

कुल मिला कर रमेश के माता-पिता की वर्तमान चिंता का विषय उनका कनिष्ठ पुत्र रमेश ही है। माता-पिता तथा दोनों बड़े भाई-बहन अपने-अपने अनुभवों का पिटारा रमेश के सर पर ही फोड़ते रहते हैं। रमेश के पिता कई बार सोचते हैं कि रमेश का दाखिला सोनीपत स्थित हरियाणा बोर्ड से संबद्ध हिंदी माध्यम के ट्रस्ट के विद्यालय में करवा दें। पर रमेश चाहता है कि वह अपने दोस्तों के साथ उसी स्कूल में पढ़े। रमेश के भाई नितीश ने इस बात पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, “आखिर पढ़ाई के अलावा यारी-दोस्ती भी तो देखनी होती है। सोनीपत के ट्रस्ट वाले स्कूल में डाल दो, फिर इसको पता चलेगा। सुबह चार बजे उठाएँ और ग्राउंड के चार चक्कर लगावाएँ। इसका सारा घूमना चार दिन में निकल जायेगा।” जबकि माँ का स्पष्ट मानना है, “हिंदी माध्यम में पढ़ाने का कोई फायदा नहीं। उससे तो अच्छा है, घर बिठा दो” रमेश की व्यक्तिगत इच्छा फरीदाबाद वाले अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ने की है क्योंकि उसके बाकी दोस्त भी उसी में पढ़ रहे हैं और कम-से-कम समाज में इज्जत तो अंग्रेजी माध्यम वालों की ही होती है। इस प्रकार रमेश पर भी दबाव बेहतर तरीके से पढ़ने का रहता है।

परन्तु रमेश की समस्या यह है कि अंग्रेजी उसे समझ नहीं आती। अंग्रेजी में वह कुछ भी याद कर ले, अगले दिन सब साफ हो जाता है। उससे कुछ पूछ भी लो, पर वह अंग्रेजी में याद करके लिख नहीं पाता अर्थात् याद (रट) नहीं कर पाता। रमेश को इस तरह की पढ़ाई में कोई आनंद भी नहीं आता। पर दोस्तों के चक्कर में स्कूल भी जाता है ट्यूशन भी। ट्यूशन का मास्टर थोड़ा आसन कर हिंदी में भी उन्हीं बातों को समझा देता है। कुछ आसान से उदाहरण भी देता है। एक तरफ माता-पिता का व्यक्तिगत अनुभव और दूसरी तरफ उस अनुभव की आग में घी डालने का काम करने वाले नाते-रिश्तेदारों के सुझाव, तीसरी तरफ इंग्लिश की वजह से बहन को मिली सफलता तथा भाई को इसी वजह से मिली बाधा, चौथी तरफ उसके खुद के यार-दोस्त और समाज में इंग्लिश की वजह से मिलने वाली प्रतिष्ठा। इन सब का बोझ सीधे-सीधे रमेश के कंधे पर आ गिरा है। उसको उसकी वर्तमान शिक्षा में कहीं-भी उसका परिवेश नज़र नहीं आ रहा है।

इस केस से निकले मुख्य बिंदु -

परिवार के बच्चों का अपने पारंपरिक काम के प्रति नकरात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ है।

रमेश की वर्तमान शिक्षा में उसका परिवेश कहीं-भी शामिल नहीं है।

भाषा की दिक्कत की वजह से वह विज्ञान, सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों को भी नहीं समझ पाता है।

वही विषय, जब ट्यूशन पर आसान घरेलू भाषा में समझाए जाते हैं तो वह समझ जाता है। पर अंग्रेजी में लिखने की दिक्कत बनी रहती है। उसके लिए पुनः रटने की जरूरत पड़ती है।

पर साथ ही यह तो तय है कि बिना अंग्रेजी के सफलता नहीं मिल सकती है।

माताजी का मानना है कि मानक हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाएँ कठिन होती हैं इसलिए अंग्रेजी पर ही जोर दो।

पिता अंग्रेजी ना चल पाने पर हिंदी में भी पढ़ाने के पक्ष में हैं। पर वे भी मानते हैं कि कामयाब होने के लिए “विटामिन E” का होना जरूरी है। पर जरूरी तो नहीं कि हर कोई अफसर ही बने।

परिवार का अनुभवजनित ज्ञान है कि सफल ओहदे तक पहुँचने के लिए उच्च शिक्षा जरूरी है और बिना ‘विटामिन E’ अर्थात् बिना अंग्रेजी के उच्च शिक्षा में कामयाब नहीं हो सकते।

अध्याय – 7

आरुणी की केस स्टडी

फिर वही यक्ष प्रश्न कि भला आरुणी की केस स्टडी ही क्यों?

आरुणी ने दो वर्ष पूर्व कुछ ऐसा कदम उठाया था कि यदि सही समय पर उसे डॉक्टरी सहायता न प्रदान की जाती तो वह आज अखबारों में छपी खबर भर बनकर रह जाती। एक ऐसा विषय, जिसके घट जाने के बाद ही कुछ संवेदनशील समझे जाने वाले लोग अखबार और पत्रिकाओं में कुछ गम्भीर लेख लिखते हैं, समाजिक रूप से सक्रिय लोग कुछ दिन मोमबत्तियाँ जला कर इंडिया गेट और जंतर-मंतर पर बैठते हैं.... और फिर जैसा चलन है, समय के साथ इस घटना को भी भुला दिया जाता और फिर मीडिया नयी घटना के साथ नए खबर का इंतजार करती। यह घटना है सुसाईड अर्थात् आत्महत्या का प्रयास। किशोर अवस्था में जब उसकी उम्र के बच्चे सुनहरे भविष्य के सपने गढ़ते हैं, उस अवस्था में परिवारिक उलझनों के बीच इस चौदह वर्ष की बच्ची को अपना भविष्य इतना अनिश्चित नज़र आया कि उस अवस्था में उसने जीवन से हार मान कर आत्महत्या का रस्ता चुना। हाँ! एक रोज उसने नींद की गोलियों का एक पत्ता एक साथ हलक से उतार लिया। यथोचित् कदम उठा लेने से उसका यह प्रयास सफल नहीं हो सका और इस प्रकार यह घटना सुर्खियों में आते आते रह गयी।

ओह! पता नहीं कितनी कैंडल जंतर-मंतर पर जलने से रह गयी। आह! मज़हब, जाति और क्षेत्र के नाम पर दूकान लगाने वालों की बिक्री होते-होते रह गयी। पर आरुणी ने ही नहीं उसके उम्र के अनेकों बच्चों ने मान लिया है कि अंग्रेजी नहीं आती तो उनका कोई भविष्य शेष नहीं बचता है। पर उसका यह कदम मुझ शोधकर्ता को उसकी केस स्टडी के रूप में चुनने के लिये विवश करता है।

आरुणी की समस्या को समझने के लिये शोधकर्ता ने बच्चे के परिवेश का अवलोकन किया, उस घटना को न कुरेदते हुए उसके घर के लोगों से विस्तृत बातचीत के माध्यम से उसके सम्पूर्ण समाजिक सांस्कृतिक एवं परिवारिक परिवेश से पैदा होने वाले दबाव को पता लगाने का प्रयास किया।

अनुसंधानकर्ता आरुणी के एकल अध्ययन हेतु निम्न सोपानों का प्रयोग करेगा -

आरुणी के सम्पूर्ण समाजिक सांस्कृतिक परिवेश में जानकारी,
आरुणी के माता-पिता से उनके परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति की जानकारी,
आरुणी की पढाई सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन तथा शिक्षा के माध्यम को लेकर बने दृष्टिकोण पर साक्षात्कार,
आरुणी के पिता का अंग्रेजी माध्यम स्कूल के चयन पर साक्षात्कार।

आरुणी के सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक-परिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन -

आरुणी के पिता बिहार राज्य के डेहरी-ओन-सोन कसबे के निवासी हैं। आरुणी के दादाजी उसी शहर में स्थित बिहार सरकार के एक महकमे में प्रतिष्ठित पद पर कार्यरत अधिकारी थे। कस्बे भर में उनका सम्मान था। आरुणी के परिवार की गिनती उस के प्रतिष्ठित परिवारों में होती थी। घर में कभी किसी वस्तु की कमी नहीं रही। आरुणी के नाना भी अपने इलाके के एक प्रतिष्ठित संस्कृत अध्यापक थे, पर पिछले कुछ सालों में कुछ ऐसा घटा कि यह परिवार अब फरिदाबाद में बेगानों की भान्ति बसर कर रहा है। खुद आरुणी की माँ के अनुसार, “हमारा सबसे बड़ा दुख यह है कि यहाँ हमारे बच्चों के कोई दोस्त ही नहीं हैं।” इससे स्पष्ट होता है कि परिवार परिवर्तित परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाने में कहीं-न-कहीं असफल रहा है।

घटनाक्रम कुछ इस प्रकार है कि पिता नीरज कुमार की स्कूली शिक्षा बिहार में ही हुई थी। पिता स्थानांतरणीय सेवा में होने की वजह से प्राथमिक शिक्षा का स्थान परिवर्तित होता रहा पर उसके बाद की शिक्षा स्थाई तौर पर डेहरी शहर में ही हुई। घर में शुरू से पठन-पाठन का माहौल था। परन्तु अंग्रेजी के प्रति अंध-अनुराग नहीं था। आरुणी के पिता की खुद की प्रारंभिक शिक्षा क्षेत्रीय भाषा माध्यम से ही हुई। अंग्रेजी को एक विषय के रूप में पढ़ने के बावजूद भी उनकी मुख्य रुचि हिन्दी साहित्य के प्रति ही रही। इतिहास के विद्यार्थी होने के बावजूद हिन्दी साहित्य का शायद ही कोई दिग्गज साहित्यकार हो जिसकी रचनाओं से वे परिचित ना रहे हों। कॉलेज के दिनों में ही वे साहित्य, दर्शन, इतिहास आदि पर छपी मूल पुस्तकों को पढ़ चुके थे। उनके पढ़ने की लगनशीलता को देख दिल्ली स्थित जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में दाखिले का साक्षात्कार लेने वाले प्रोफेसर भी काफी प्रभावित हुए। वे जब एम.ए. में दाखिला लेने के लिए आए उम्मीदवारों से उम्मीद कर रहे

थे कि वे इतिहास विषय पर छपी कुछ मूल पुस्तकों के नाम भर बता दें। नीरज कुमार आलोचनात्मक विवेचन करने की स्थिति में थे। पठन-पाठन का यह क्रम एम.ए. के दौरान भी जारी रहा। फलस्वरूप उन्होंने गोल्ड मैडल के साथ एम.ए. इतिहास की परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ समय इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च में रिसर्च फ़ेलोशिप करने के बाद वापस अपने गृह नगर चले गये। वहीं से उन्होंने पत्रिका भी निकाली, साथ ही, एक छोटे स्तर का स्कूल भी चलाया। उनकी प्राथमिकता यह भी थी कि अपने गृह क्षेत्र में रह कर कार्य करें। पर यह सब कुछ लम्बे अन्तराल तक नहीं चल सका। पिता की बीमारी ने उन्हें इस कदर उलझाया कि वे पिता की मृत्यु के समय सब जमा पूँजी गवाँ चुके थे। इस उलझन में धीरे-धीरे स्कूल भी बन्द हो गया। परिवार की आर्थिक स्थिति चरमरा गई थी। अनिश्चितता के माहौल में पत्नी का दबदबा भी बढ़ता जा रहा था। चूँकि पत्नी की बहन के बच्चे पटना के प्रतिष्ठित क्रिश्चियन स्कूल में पढ़ते थे अतः आरुणी की माँ की भी यह जिद थी कि आरुणी और उसकी बड़ी बहन को भी डेहरी के प्रतिष्ठित क्रिश्चियन स्कूल में ही दाखिला करवाया जाए। व्यक्तिगत रूप से मातृभाषा को शिक्षा का बेहतर माध्यम मानने वाले नीरज कुमार, जो शुरू से अंग्रेजी माध्यमस्कूल में दाखिले का विरोध कर रहे थे, अंततः उन्होंने पत्नी को अपनी मौन सहमति अंग्रेजी माध्यम स्कूल के लिए प्रदान कर दी। इस मौन सहमति के पीछे उनके दूसरे दिल्ली प्रवास के अनुभव थे। उन अनुभवों का वर्णन हम आगे पढ़ेंगे।

पिता की मृत्यु के पश्चात् घर में आजीविका के स्रोत के रूप में पिता की पेंशन के नाम पर उनकी माँ को प्राप्त होने वाली आय ही शेष बच गई थी। परिणामस्वरूप आजीविका का संकट पैदा हो गया था। चूँकि डेहरी-ओन-सोन जैसी छोटी सी जगह पर आजीविका के अधिक स्रोत

उपलब्ध नहीं थे। इसलिये अब नीरज कुमार को दूसरी बार महानगर की तरफ पलायन करना पड़ा। उनके शब्दों में “एक बार मुझे फिर से अंग्रेजी नहीं, अंग्रेज़ियत से रूबरू होना पड़ा। हाँ, जामिया के दिनों में इस अंग्रेज़ियत के भूतों से सामना हुआ था, पर उस वक्त हमारे विषय की पकड़ के सामने कोई टिक नहीं पाता था। सभी अंग्रेजी वाले हमारे सामने पानी भरते थे। अंग्रेजी में सीमित मात्रा में पढ़ने वाले ये लोग हमारे आगे क्या टिकेंगे? पर अब तो हर जगह वही थे। असल समस्या अंग्रेजी की नहीं, अंग्रेज़ियत की थी। जो क्षेत्रीयता के साथ मिल कर और भी घृणित हो गई थी। हमने जामिया के दौरान भी अंग्रेजी भाषा में काफ़ी साहित्य पढ़ा था। पर यहाँ समस्या भाषा की पकड़ की नहीं, अंग्रेज़ियत के विशेष लहजे की थी। गलत बोलो पर उस लहजे में बोलो। तब ही आप स्वीकारे जाने योग्य हो।” आजीविका की तलाश के दौरान कई बार उन्हें शर्मसार होना पड़ा। स्कूल में गए तो जबाब मिला “आपकी विषय पर पकड़ तो अच्छी है पर आप जिस लहजे में बोलते हैं उस लहजे में बोल कर हमारे बच्चों (विद्यार्थियों) के सामने टिक नहीं पाओगे। यही पत्रकारिता के क्षेत्र में भी हुआ। नीरज के अनुसार, “दिककत की एक वज़ह मान्य डिग्री का अभाव भी हो सकती है। पर असल तो घाघ की तरह बैठे अंग्रेज़ियत की मानसिकता वाले लोग ही थे।”

आजीविका की तलाश तथा रुझान के अनुरूप कार्य करने की इच्छा उन्हें अंततः फरीदाबाद ले आई और उनकी आजीविका की खोज दिल्ली के पास स्थित फरीदाबाद में पूरी हुई। उन्होंने यहाँ एक छोटे स्तर के दैनिक अखबार के सह-सम्पादक के रूप में काम करना शुरू किया। बीच में एक वर्ष के लिये राजस्थान से निकलने वाले राष्ट्रीय स्तर के दैनिक अखबार में भी कार्य किया। पर स्वास्थ्य की समस्या की

वजह से वे वहाँ लम्बे अन्तराल तक टिक नहीं पाए और उन्हें वापस फरीदाबाद के छोटे अखबार से जुड़ना पड़ा। पर इस बीच जो सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ, वह यह कि फरीदाबाद का दैनिक अखबार दैनिक से पाक्षिक हो गया। अखबार की अपनी आय प्रभावित हुई तो उसके कर्मचारी के रूप में नीरज कुमार की आय भी प्रभावित हुई। दूसरी बार जुड़ते वक्त 2004 में जो तनख्वाह (8000 हजार रु.) तय हुई, 2012 तक वही बनी रही। कभी अपनी पॉकेटमनी से मनचाही पुस्तक खरीदने वाले नीरज को एक-एक रुपये के लिये मोहताज होना पड़ा। आर्थिक अभाव कई तरह की नई समस्याओं को जन्म देता है। और यही उनके साथ भी हुआ। वे पाइल्स एवं अनिद्रा रोग के शिकार हो गये। इस बीच उनका परिवार भी बिहार के डेहरी ओन सोन से फरीदाबाद आ गया। आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवार को एक-एक पाई के लिये मोहताज होना पड़ा। आरुणी की माँ जो खुद संस्कृत से बी.ए. पास थी, को भी दो-ढाई हजार में एक निजी क्लिनिक में अटेन्डेण्ट के रूप में काम करना पड़ा। बड़ी बहन ने भी परिस्थितियों के अनुरूप बी.सी.ए. करने के साथ पहले गैर-मान्यता प्राप्त निजी विद्यालय में पढ़ाया तथा बाद में प्राइवेट फैक्टरी में भी कुछ दिन काम किया। पिता को अखबार के दफ्तर का काम सम्पादन तक ही सीमित नहीं था अपितु इसके अतिरिक्त भी बहुत-से काम ऐसे करने पड़ते थे, जो अमुमन दूसरे दफ्तरों में छोटे दर्जे के कर्मचारी ही करते हैं। पिता को अखबार का बंडल सिर पर लाते देख कर आरुणी को काफ़ी तकलीफ़ होती। स्कूल में भी एक रोज अध्यापिका कह रही थी “हिन्दी वालों का कोई भविष्य नहीं है।” उस वक्त उसे भी लगता यदि उसके पापा भी अंग्रेजी माध्यम के पढ़े होते तो उन लोगों को तंगहाली में जीना न पड़ता।

एक ठीक-ठाक आर्थिक स्थिति में जहाँ बच्चों को डेहरी के प्रतिष्ठित क्रिश्चन स्कूल में पढ़ते थे वहीं अब उन्हें सरकारी विद्यालय में दाखिला कराने के बारे में सोचा जाने लगा। पर बच्चों ने तथा उनकी माँ ने इसे प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ मुद्दा बना दिया। तब पिता नीरज ने अपने अखबार के प्रकाशक (मालिक) के सहयोग से मध्य स्तर के एक स्कूल में दाखिला करवा दिया। वहाँ की फीस का कुछ अंश भी अखबार के मालिक के प्रभाव से कम हो गया। पर “स्कूल में होने वाले बाकी के फिजूलखर्च का तो कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता और उन फिजूलखर्चों को पूरा न करने की स्थिति में होने वाला बच्चे का अपमान। वह अपमान कैसे होगा, कैसा होगा इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।” स्कूल में आये दिन के फिजूलखर्च और खर्च न कर पाने की स्थिति में होने वाले अपमान से आरुणी हीन-भावना का शिकार हो गयी। घर से उसको अपने दूसरे दोस्तों की तरह खर्च करने के लिए पॉकेट मनी भी नहीं मिलती थी।

धीरे-धीरे आरुणी के दिमाग में यह धारणा बैठ गई कि उसके पिता अपनी आय से उसे नहीं पढ़ा सकते। झूठ पर आधारित प्रतिष्ठा और वह प्रतिष्ठा भी जब खोती हुई नज़र आयी तो उसे अपना जीवन ही निरर्थक नज़र आया। माता-पिता में घर परिवार की स्थिति को लेकर खींचतान आम बात हो गयी थी। इस रोज-रोज की खींचतान का सबसे बुरा प्रभाव बच्चों पर ही पड़ रहा था। इस दिन प्रतिदिन की खींचतान से तंग आकर, एक रोज आरुणी ने आवेग में आकर पिता की नींद की गोलियों का पत्ता एक साथ गटकने का कदम उठाया, अर्थात् आत्महत्या का प्रयास किया।

प्रस्तुत है आरुणी के साक्षात्कार के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु-

आरुणी से उसके घर पर ही बातचीत की गई। यह बातचीत निम्न बिन्दुओं पर केन्द्रित थी -

स्कूल में चलने वाली पठन-पाठन क्रिया के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

स्कूल की गतिविधियों और घर की गतिविधियों में तालमेल।

उन कारकों का पता लगाना जो उसे अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढने हेतु प्रेरित करते हैं।

उसके दोस्तों, भाई-बहनों के बारे में जो उसके अनुभव हैं।

नोट – आरुणी द्वारा किए गए आत्महत्या के प्रयास के लगभग 2 वर्ष बाद यह साक्षात्कार लिया गया है। इस बीच सबसे बड़ी तब्दील यह आई है कि उसके पिता को एक प्रतिष्ठित अखबार में नौकरी मिल गई है। माँ ने भी कम आय वाली कंपाउंडर की नौकरी छोड़ कर थोड़ी बेहतर नौकरी कर ली है। आरुणी का दाखिला भी पहले से बेहतर स्तर के अंग्रेजी माध्यम स्कूल में हो गया है। अब अपने दोस्तों की तरह वह भी पॉकेट मनी प्राप्त प्राप्त करती है। इस दौरान घर की आय में भी कई गुणा बढ़ोतरी हुई है।

प्रस्तुत है आरुणी के साक्षात्कार के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु-

शिक्षण अधिगम क्रिया को लेकर पूछे गये प्रश्नों के जबाब :-

“हमारे स्कूल में पढ़ने-पढ़ाने हेतु माध्यम अंग्रेजी ही है। पर टीचर हमें पढ़ाते वक्त हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग करता है। टीचर पहले अंग्रेजी में बता देते हैं उसी को यदि कोई बच्चा कहता है तो उसे हिंदी में भी बता देते हैं।”

“टैक्स्ट बुक (पाठ्य पुस्तक) का प्रयोग कम ही करते हैं, सिर्फ पढ़ने के लिए, अर्थात् बुक रीडिंग लिखवाया मुख्यतः गाइड से ही जाता है। गाइड में जो लिखा होता वही उतरवा दिया जाता है।”

“घरेलू गतिविधियों को शामिल करना तो दूर वे सिर्फ वही उदाहरण लेते हैं जो किताब में लिखे होते हैं। कभी-कभी यदि किसी और गाइड में कोई नया प्रश्न अलग-सा दिख जाता है तो उसे भी लिखवा देते हैं।”

“आठवीं तक तो काम चल जाता था। चाहे हमारा डेहरी वाला स्कूल हो या फरीदाबाद वाला, दोनों जगह जो शिक्षक क्लास में प्रश्न उत्तर लिखवाते थे, उन्हीं में से प्रश्न पूछ लेते थे। इसलिए हमें किसी प्रकार की दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ता था। पर अब नवीं क्लास में क्या करें? पेपर तो सीबीएसई से आता है। अब सीबीएसई में जो प्रश्न पूछे जाएँगे वो जरूरी नहीं कि वे वही हो जो हमें क्लास में लिखवाये गए थे। चूँकि हमने भी प्रश्न को रटा ही होता है अतः यदि थोड़ा भी घुमा फिरा के प्रश्न पूछ लें तो समस्या आन पड़ती है।”

“समझा होता तो कैसे भी लिख देते पर चूँकि रटा होता है इसलिए यदि थोड़ा घुमा के पूछ लें तो हम लिख नहीं पाते।”

“यदि हिंदी में, मतलब हमारी भाषा में होता तो हम अपने मन से भी लिख लेते पर चूँकि अंग्रेजी में है अतः किताब से पढ़ कर ही लिख पाते हैं। अंग्रेजी में रटना ही पड़ता है अतः हम अपने मन से बना के नहीं लिख सकते।”

“हिंदी में तो आ रहा होता है पर उसकी अंग्रेजी ना आने की वजह से कई बार लिख नहीं पाते।”

“समझ में अंग्रेजी बाधा बन के आ रही है। टोटली अंग्रेजी हमें पूरी तरह समझ नहीं आता और उसमें हिंदी में भी दिक्कत आती है। मिक्स करके पढ़ाने में ज्यादा समझ में आता है।”

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढ़ने हेतु प्रेरित करने वाले कारकों के जबाब :-

अच्छे से पर्सनालिटी इम्प्रूव होना, लोगों से बात करना, सीबीएसई वालों को आसानी से जॉब मिल जाती है।”

“अंग्रेजी जानने वालों को आसानी से जॉब मिलती है।”

“सुनने में आता है कि अच्छी यूनिवर्सिटी में सिर्फ अंग्रेजी में ही पढाई होती है।”

“अच्छी यूनिवर्सिटी जैसे- आई.आई.टी., बी.आई.टी., मानव रचना यूनिवर्सिटी, दिल्ली विश्वविद्यालय। इन सब में अंग्रेजी में पढाई होती है। आते-जाते ऐसा सुनने में आ जाता है।”

“आई.आई.टी., बी.आई.टी. के बारे में हमारे अम्बुज भैया ने बताया। मानव रचना यूनिवर्सिटी में निशु दीदी की दोस्त पढ़ती है। हमारे स्कूल के दोस्तों के भाई बहन भी इस स्कूल में पढ़ते हैं। नीचे वाली दीदी ने दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.एस.सी. किया है। वो भी बताती हैं कि सभी अच्छी यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई होती है।”

“अच्छी यूनिवर्सिटी में टीचर सिर्फ अंग्रेजी में ही पढ़ाते हैं। यूनिवर्सिटी में सिर्फ अंग्रेजी में ही पढ़ाना पड़ता है।”

“नेहरू कॉलेज (कमतर माना जाने वाला फरीदाबाद, हरियाणा का कॉलेज) में पढ़ाई हिंदी माध्यम से होती है। पर वहाँ ज्यादातर बच्चे गाँव के होते हैं। पर वहाँ का पढ़ाई का स्तर ज्यादा अच्छा नहीं है।”

“अंग्रेजी में पढ़ने पर ज्यादा इम्पॉर्टेंस मिलती है।”

“अंग्रेजी स्कूल में सीखी, घर परिवार तथा आस-पड़ोस के लोगों से हिंदी-भोजपुरी में ही बात होती है।”

“यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर अंग्रेजी में पढ़ाते हैं तथा वहाँ पढ़ने वाले बच्चे अंग्रेजी में बातचीत करते हैं।”

“यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले बच्चे अच्छे घरों से ही आते हैं। गाँव में पढ़ने वाले बच्चे यूनिवर्सिटी में नहीं आते।”

“सरकारी स्कूल के बच्चे हिंदी में बात करते हैं। गाँव वाले भी गाँव की हिंदी में बोलते हैं पर यूनिवर्सिटी में सभी अंग्रेजी में ही बोलते हैं। यदि यूनिवर्सिटी में छोटी फॅमिली के बच्चे जाते भी हैं तो उन्हें अंग्रेजी के साथ मैनेज करना पड़ता है।”

“स्कूल में प्रार्थना में बारी-बारी से हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग होता है। पर हम ग्रामीण हरियाणवी बोली में प्रार्थना नहीं कर पाते।”

“पापा कहते हैं कि अंग्रेजी का प्रयोग करो।”

“अम्बुज भैया! कहते हैं अंग्रेजी मूवी देखो, अंग्रेजी मूवी देखोगे तो फायदा होगा। हिंदी मूवी देखने का कोई फायदा नहीं होगा।”

“स्कूल की गतिविधियों में हिंदी का प्रयोग कम होता है। हिंदी को हिंदी दिवस वाले दिन महत्व दिया गया था। उस दिन हिंदी टीचर को भी महत्व दिया गया था।”

“पर क्विज़ आदि सब अंग्रेजी में ही होता है। स्पीच आदि बच्चे इन्टरनेट से डाउनलोड कर बस में याद करते हैं और सुना देते हैं।”

“स्कूल में यदि कोई बच्चा फीस नहीं देता तो उसे स्कूल में आने नहीं दिया जाता।”

“पर जो फीस नहीं देता तो उसके लिए सरकारी स्कूल ही एकमात्र चारा है।”

“अंग्रेजी माध्यम की अच्छी शिक्षा के लिए पैसा होना जरूरी है।”

“हमारे स्कूल की एक लड़की है जो कम आय वाले परिवार से है। वह गैट-टुगैदर के लिए पैसा खर्च नहीं कर पाती। इसलिए कोई उसे महत्व नहीं देता।”

“गाँव से आने वाले बच्चे हरियाणवी-गुजरी बोली बोलते हैं। स्कूल में जैसा मन में आता है वे वैसा बोलते हैं। टीचर हरियाणवी-गुजरी बोलने पर डाटते हैं। लेकिन फिर थोड़ी देर में वैसे ही बोलना प्रारम्भ कर देते हैं।”

”

पिता नीरज कुमार से इस बारे में चर्चा किये जाने पर उनके जबाब इस प्रकार से थे:-

शोधकर्ता - “आपने अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में क्यों नहीं डाला? आर्थिक स्थिति खराब होने पर भी निम्न दर्जे का प्राइवेट स्कूल ही क्यों चुना?”

नीरज कुमार- “इसलिए क्योंकि सरकारी स्कूलों की दुर्दशा से मैं भली-भाँति वाकिफ हूँ। सरकारी स्कूलों से तो वह घटिया निजी स्कूल भी बढ़िया ही है।”

शोधकर्ता - “उतने ही खर्च पर हिंदी मीडियम में कहीं अधिक बेहतर प्राइवेट ट्रस्ट के स्कूल भी तो हैं। आप उसमें डाल सकते थे। निम्न दर्जे के प्राइवेट स्कूल में तो शिक्षक भी क्वालिफाइड नहीं होते।”

नीरज कुमार- “हां, मूल कारण यही है। सरकारी स्कूलों का माहौल बहुत-ही खराब है। वहाँ अपनी बच्चियों को भेजने से उनके व्यक्तित्व पर बुरा असर पड़ सकता था। वैसे, निजी स्कूलों के माहौल को भी मैं बढ़िया नहीं मानता, पर सरकारी स्कूलों से वह बेहतर तो है ही। आपके दूसरे सवाल पर कहना यह है कि नजदीक होने के कारण मैंने वहाँ एडमिशन कराया। जहाँ तक उतनी ही

फीस में अच्छे स्कूलों की बात है, मुझे इसमें संदेह है। यह बच्चे पर निर्भर करता है कि वह पढ़ाई के प्रति कितना जागरूक है। स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा पर मेरा भरोसा नहीं।”

शोधकर्ता - “निजी हिंदी मीडियम के स्कूल भी उतने ही पास में हैं, यह आप अच्छी तरह से जानते हैं।”

नीरज कुमार - “अरे, हिंदी-अंग्रेजी मीडियम ढकोसला है। हर जगह पढ़ाई हिंदी में ही होती है।”

शोधकर्ता - “पर फिर अपने बच्चों पर किताबों का बोझ क्यों डाला जाए? बच्चे अंग्रेजी में ही क्यों रटें? पढ़ाई हिंदी में होती है तो परीक्षा भी हिंदी में क्यों नहीं?”

नीरज कुमार - “नहीं, यह सिस्टम है। एक आदमी चाह कर भी इस सिस्टम के खिलाफ कैसे जाए। और क्या हिंदी के माध्यम से उच्च शिक्षा पाना संभव है। हिन्दी में तो किताबें ही नहीं हैं। हिंदी साहित्य और भाषा का उच्च अध्ययन करने के लिए भी अंग्रेजी की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। हम अपनी भाषा को विकसित नहीं कर पाए। यह सिस्टम का दोष है। चीन और जापान में वहाँ की भाषा में ही पढ़ाई होती है और तकनीक एवं सभी क्षेत्रों में उनका कोई मुकाबला नहीं। पर भारत में हम मानसिक गुलामी की अवस्था से गुजरते रहे हैं।”

“हाँ, ये सही बात है। हिंदी में इतना काम नहीं हुआ कि इसके सहारे किसी भी विषय में उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त की जा सके। यह एक पिछड़ी हुई भाषा है। इसके ऐतिहासिक कारण हैं। हम इन पर विस्तार से बाद में चर्चा करेंगे। मैं आपसे बाद में बात करूँगा। अभी जरा निकल रहा हूँ।”

शोधकर्ता को जो जबाब चाहिए था वह मिल चुका था।

(नोट- नाम परिवर्तित है।)

अध्याय 8

विपिनचन्द्र एवं उनकी पुत्री

उच्च स्तरीय स्कूल में दाखिले का प्रयास करते एक पिता जिसका दावा है “मैंने तो अपनी बेटी की मातृभाषा ही ‘इंग्लिश’ बना दी है।” शोधकर्ता से उसका संपर्क एक ‘हाई-फाई’ अर्थात् उच्च स्तरीय कहलाने वाले स्कूल के स्वागत कक्ष में हुआ। पिता अपनी पुत्री के दाखिले के सिलसिले में वहाँ आया हुआ था। पिता विपिनचन्द्र की समस्या यह थी कि उसकी पत्नी का ‘ट्रान्सफर’ हरियाणा के हाँसी स्थित सरकारी स्कूल से फरीदाबाद में हो गया था। सरकारी स्कूल में पढ़ाने वाली माँ और वकील पिता की इच्छा थी कि वे अपनी बेटी का दाखिला फरीदाबाद के किसी ‘हाई-फाई’ स्कूल में करवाएँ। अभी उनकी पुत्री सुगन्धा हाँसी के ‘हाई-फाई’ अर्थात् उच्च दर्जे के प्राइवेट इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ती है। हाँसी का वह स्कूल भी इसी स्कूल की ही फ्रेंचाइजी ब्रांच है। पर शहर बदलने के साथ उच्च वर्ग की परिभाषा में भी परिवर्तन आ जाता है। तो उसके मापदंडों में भी परिवर्तन आ जाता है। विश्वविद्यालय तक पढ़ा और आर्थिक रूप से संपन्न यह दंपति, हाँसी के हिसाब से तो उच्च एलिट वर्ग में आता है। पर फरीदाबाद और दिल्ली शहर में हाई-फाई वर्ग में शामिल होने के लिए

आर्थिक रूप से संपन्न होने के साथ हाई-फाई वर्ग की भाषा बोल पाने की शर्त भी थी। पर अनुसूचित जाति एवं कस्बाई परिवेश से सम्बन्धित इस दम्पति की अपनी विश्वविद्यालय तक की औपचारिक शिक्षा क्षेत्रीय (हिन्दी) माध्यम से ही हुई थी। पर आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ, अब उनकी भी तीव्र इच्छा थी कि वे भी हाई-फाई वर्ग में शामिल हों। अपनी बच्ची के दाखिले के सिलसिले में आए इस पिता से जब उसके अंग्रेजी बोल पाने की क्षमता पर सवाल पूछा गया तो उसका जबाब था, 'मेरी छोड़िए मेरी बच्ची की अंग्रेजी पर बोलने की पकड़ देखिए। (जो उस वक्त वहाँ उपस्थित नहीं थी)। हमारी ना सही हमारी बच्ची की मातृभाषा तो अंग्रेजी ही है, जी।' यह अपने आप में अचम्भित कर देने वाला दावा था। एक व्यक्ति जो एक आम हिन्दुस्तानी परिवेश से सम्बन्ध रखता हो। जिसके खुद के माता-पिता देहाती पृष्ठभूमि के हों तथा जिसे खुद अंग्रेजी भाषा बोलने पर धाराप्रवाह पकड़ ना हो। उसकी बेटी की मातृभाषा अंग्रेजी कैसे हो सकती है? यह दावा अपने आप में इतना अनोखा था कि शोधकर्ता ने विपिनचन्द्र की बेटी और उसके परिवार को केस स्टडी के लिए चुन लिया। हालांकि उसका दावा महज अंग्रेजियत के वर्चस्व से प्रभावित व्यक्ति का दावा मात्र साबित हुआ।

वस्तुस्थिति को समझने के लिए क्रमवार दम्पति एवं बच्चे से विस्तृत बातचीत की गयी।

बच्ची सुगन्धा के पिता विपिनचन्द्र ने बताया कि वे पेशे से वकील हैं तथा दिल्ली स्थित तीसहजारी कोर्ट में 'प्रेक्टिस' करते हैं। उसकी पत्नी सुषमा हरियाणा राज्य के सरकारी विद्यालय में प्राथमिक स्तर की शिक्षिका हैं। विपिनचन्द्र के पिताजी सन 1974 में उत्तर प्रदेश के खुर्जा जिले से हरियाणा के हाँसी शहर में आकर बस गए थे। विपिनचन्द्र का जन्म उसी वर्ष खुर्जा जिला में ही हुआ था। पर जन्म के बाद की सारी परवरिश हाँसी की ही है। घर में विपिनचन्द्र से बड़ी उसकी चार बहनें और चार भाई हैं। इस प्रकार विपिनचन्द्र का एक भरा-पूरा परिवार है। विपिनचन्द्र की सबसे बड़ी बहन तथा विपिनचन्द्र की उम्र में लगभग 22 वर्ष का तथा सबसे बड़े भाई तथा विपिनचन्द्र की उम्र में 20 वर्ष का अंतर है। बड़े दो भाइयों को औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष कामयाबी नहीं मिली तथा वे दोनों स्कूल की दहलीज पार करने से पूर्व ही दर्जी का काम करने लगे। बहनों के सन्दर्भ में विशेष बात यह है कि उनके पिता ने सामाजिक विरोध के बावजूद उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयास किया। विपिनचन्द्र के दोनों बड़े भाई काफी छोटी उम्र से ही अपने पिता के आर्थिक कामों में हाथ बँटाने लग गए थे। फलस्वरूप विपिनचन्द्र तथा उनके दो बड़े भाइयों के वक्त में उनके घर की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार आया। परिवार छोटे तीनों भाइयों की औपचारिक शिक्षा का खर्च उठाने की स्थिति में आ गया। कुछ आरक्षण तथा कुछ पारिवारिक प्रयास की वजह से विपिनचन्द्र से क्रम में बड़े भाई ने एमबीबीएस में दाखिला लेने में सफलता हासिल की। इस प्रकार, क्रम में सबसे बड़े दो भाई जहाँ दर्जी का काम करते हैं वहीं छोटे तीनों भाई औपचारिक शिक्षा हासिल कर क्रमशः एमबीबीएस डॉक्टर (एस.एम.ओ.), दिल्ली पुलिस में इंस्पेक्टर और वकील हैं। तीनों को

सुशिक्षित बनाने में उसके दोनों बड़े भाइयों तथा बड़े जीजाजी (बहन के पति) का विशेष हाथ है। विपिनचन्द्र के जीजाजी खुद पेशे से वकील हैं। विपिनचन्द्र के सन्दर्भ में विशेष बात यह भी रही कि उसकी बड़ी बहन भाइयों के बच्चे तथा वह साथ-साथ पढ़े हैं। विपिनचन्द्र की माँ जीवन भर वही बोली बोलती रही थी जो वह खुर्जा से आते वक्त लेकर आई थी। विपिनचन्द्र की दोनों बड़ी भाभियों का सम्बन्ध भी उत्तर प्रदेश से होने की वजह से उनकी बोल-चाल में उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय बोलियों का ही पुट है। समय के साथ उन्होंने हरियाणा की क्षेत्रीय बोली को भी अपना लिया है। पर अंग्रेजी को छोड़ो, शुद्ध परिष्कृत मानक हिंदी से भी इनका दूर-दूर का सरोकार नहीं है।

विपिनचन्द्र की अपनी शिक्षा मानक भाषा हिंदी में ही हुई है। उसके अपने परिवेश की बोल-चाल में क्षेत्रीय बोली हरियाणवी तथा खुर्जा की बोली का ही बोल-बाला रहा है। अपनी स्कूली शिक्षा हाँसी से सम्पन्न कर के उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु एम् डी विश्वविद्यालय रोहतक पहुँचा। यहीं से उसने अपने जीजाजी के मार्गदर्शन में एलएलबी में दाखिला भी लिया। एलएलबी के दौरान भी उसकी शिक्षा का माध्यम हिंदी ही रहा है। इंग्लिश का पर्चा तो उसके लिए स्कूल के दिनों से ही चुनौतीपूर्ण रहा है। पर हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की अच्छी खासी संख्या होने के बावजूद भी विश्वविद्यालय की कक्षाओं में अंग्रेजी का ही बोल-बाला रहा है। जिन पुस्तकों का सन्दर्भ विश्वविद्यालय में दिया जाता था, वे अधिकतर अंग्रेजी में ही होती थीं। विपिनचन्द्र की उन पुस्तकों को

पढ़ने में कभी रुचि नहीं रही। वह तो किसी तरह से हिंदी में छपी गाइडों के सहारे ही कक्षा को 'पास' करने का जुगाड़ कर लेता था। इस प्रकार खीच-तान कर उसकी एलएलबी किसी तरह पूरी हो गई। पर अंग्रेजी का दंश उसी को नहीं उसके साथ पढ़ने वाले सभी देहाती और कस्बाई छात्रों को भी झेलना पड़ा था। स्वयं विपिनचन्द्र के शब्दों में, 'हमारी गिनती कक्षा के विलनों में ही होती थी। प्रोफेसर की नज़र में हम सिर्फ कक्षा को डिस्टर्ब करने के लिए ही आते थे। पर हम करें क्या, उनके एक शब्द भी तो हमारे पल्ले नहीं पड़ते थे। उनके हीरो तो इंग्लिश मीडियम से पढ़ कर आए विद्यार्थी ही होते थे। वे ही कक्षा में इंग्लिश में चट-पट बोल पाते थे। वे हमसे योग्य नहीं थे, पर फिर भी योग्य थे।' इस प्रकार एलएलबी तो किसी तरह हो गयी। पर असल समस्या विपिनचन्द्र को प्रैक्टिस के दौरान आई। इंग्लिश पर पकड़ ना होने की वजह से वह कभी सुप्रीमकोर्ट तो दूर हाईकोर्ट में भी अपने केस की पैरवी नहीं कर पाया। उसे सुप्रीमकोर्ट और हाईकोर्ट में केस ले जाने के लिए उन वकीलों का सहयोग लेना पड़ता था जिनका अंग्रेजी भाषा अच्छा नियंत्रण होता था। सिर्फ अंग्रेजी पर बेहतर पकड़ की वजह से ये वकील समान्य वकीलों से कई गुना अधिक फीस चार्ज करते थे। उसने बताया, 'एलएलबी के दौरान मेरे साथ पढ़ने वाले जो इंग्लिश मीडियम के लल्लू-पंजू (अति सधारण) छात्र भी थे। वे धड़ल्ले से सुप्रीमकोर्ट और हाईकोर्ट में प्रैक्टिस कर रहे हैं और हम लोअर कोर्ट के लोअर कोर्ट में अटके हुए हैं। बडी शर्म-सी महसूस होती है जब हमें सुप्रीमकोर्ट और हाईकोर्ट के मैटर के लिए इनसे अनुरोध करना पड़ता है। जबकि एलएलबी के दौरान ये लोग समझने से जयादा रटने पर ही जोर देते थे।' आगे विपिनचन्द्र ने बताया कि जजों की नियुक्ति के लिए ली जाने

वाली परीक्षाएँ भी मूलतः अंग्रेजी में ही होती हैं। बेचारे सधारण पढ़े-लिखे लोगों के लिए तो कोर्ट की भाषा ही समझ के बाहर होती है। कोई सधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति कोर्ट में प्रयोग की जाने वाली हिंदी की शब्दावली को देखे तो उसे हिंदी से अंग्रेजी ही आसान लगेगी। दिल्ली में कोर्ट की सारी कार्यवाही अंग्रेजी में ही होती है। इसीलिए वकीलों की चाँदी भी है।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि विपिनचन्द्र के क्रम में तीसरे और चौथे, अर्थात् उससे क्रम में बड़े दो भाई क्रमशः डॉक्टर तथा पुलिस इंस्पेक्टर हैं। इन दोनों के पारिवारिक अनुभवों ने भी विपिनचन्द्र के नज़रिये को ढालने में विशेष मदद की। विपिनचन्द्र के अनुसार उसकी सबसे बड़ी दोनों भाभियाँ निरक्षर ही हैं। विपिनचन्द्र का भाई जो पुलिस इंस्पेक्टर है उसकी पत्नी भी सामान्य पढ़ी लिखी है। पर जो भाई डॉक्टर है उसकी पत्नी खुद भी डॉक्टर है। विपिनचन्द्र के अनुसार, 'मेरी डॉक्टर भाभी के पिता सरकारी महकमे में इंजिनियर थे। इस प्रकार उसकी पढ़ाई-लिखाई भी शुरू से इंग्लिश मीडियम स्कूल में हुई है। चूँकि हमारी जाति (अनुसूचित जाति में से एक में) में ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के आसानी से नहीं मिलते हैं अतः यह रिश्ता आसानी से हो गया। पर डॉक्टर भाभी शादी के बाद थोड़े समय ही घर में रही। वे जल्द ही गाज़ियाबाद शिफ्ट हो गए। यहीं पर उन्होंने एक कॉलोनी में मकान भी खरीद लिया। उनके बच्चों की शिक्षा भी उसी कॉलोनी में स्थित दिल्ली पब्लिक स्कूल जैसे हाई-फाई स्कूल में हो रही है। उनके बच्चे धड़ाधड़ अंग्रेजी बोलते हैं।' वहीं जब पुलिस वाले भाई के बारे में पूछा गया तो उसने बताया, ' ठीक है सरकारी

महकमे में है, ऊपर और नीचे की मिला कर अच्छी आमदनी भी हो जाती है। दिल्ली में सीमापुरी में अपना मकान है। उसके बच्चे भी प्राइवेट स्कूल में पढ़ते हैं। पर जो स्टैंडर्ड डॉक्टर भाई के बच्चों का है, वो इंस्पेक्टर भाई के बच्चों में नहीं है। सब इलाके, माहौल और स्कूल का फर्क है। इसके अतिरिक्त विपिनचन्द्र को लगता है कि इसके पीछे का एक महत्वपूर्ण कारण उनकी भाभियों का अपना बैकग्राउंड भी है। 'चूँकि डॉक्टर भाभी का बैकग्राउंड हाई-फाई इंग्लिश मीडियम का रहा है। इसलिए वह अपने बच्चों को भी उसी के अनुरूप परवरिश कर रही है।' अतः विपिनचन्द्र ने अपने अनुभवों से यह सीख लिया है कि जिस इलाके में व्यक्ति रहता है। उसका सम्पूर्ण परिवेश, स्कूल का स्तर ये सभी बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। अतः बच्चे शुरू से जिस माहौल में रहेंगे, वे माहौल को ही धीरे-धीरे अपना लेते हैं। 'हाई-फाई' स्कूलों में 'हाई-फाई' इलाकों के बच्चे ही कामयाब हो पाते हैं और फिर वे ही हाई-फाई सोसाइटी में एडजस्ट हो पाते हैं।

अब सवाल पैदा होता है कि इन सब बातों का विपिनचन्द्र की बच्ची की मातृभाषा अंग्रेजी होने से क्या सम्बन्ध हो सकता है। इस बात को समझने के लिए पुनः विपिनचन्द्र और उसकी पत्नी के सम्बन्धों में झाँकना पड़ेगा। विपिनचन्द्र की पत्नी सुषमा ने भी हरियाणा के छोटे-से शहर से हिंदी माध्यम से एम.ए., बी.एड. तक की औपचारिक शिक्षा प्राप्त की है। शादी के उपरांत वह भी दिल्ली आ गई। विपिनचन्द्र का प्रयास था कि उसके अनिश्चित आय में पत्नी थोड़ा-ही सही पर कुछ स्थाई योगदान दे। अतः

सुषमा ने दिल्ली के बहुत-से निजी स्कूलों में नौकरी का प्रयास किया पर छोटे शहर से सम्बन्ध रखने तथा अंग्रेजी भाषा पर पकड़ ना होने की वजह से उसे कहीं पर भी नौकरी न मिली। उसने दिल्ली के सरकारी स्कूलों में टीजीटी पद के लिए आवेदन किया पर उसे वहाँ भी तुरंत सफलता हासिल नहीं हो सकी। उसको लगता है कि टीजीटी परीक्षा में इंग्लिश वाला भाग उसकी पकड़ से बाहर था। इस बीच उनकी बेटी सुगन्धा ने जन्म लिया। पत्नी सुषमा बीएड के आगे भी पढना चाहती थी। पर विपिनचन्द्र ने उसे वह पढाई करने हेतु प्रेरित किया जिससे परिवार की आय सुरक्षित हो सके। वह या तो अंग्रेजी भाषा को सीख कर हो सकती है या कोई ऐसा कोर्स करके जिससे आसानी-से छोटे स्तर की भी कोई नौकरी हसिल हो सके। प्राथमिक शिक्षकों की बढ़ती मांग को देखते हुए जेबीटी का कोर्स उन्हें सबसे सुरक्षित नजर आया। एम.ए, बी.एड. कर चुकी सुषमा ने दिल्ली के साथ लगे हरियाणा के गुडगाँव के डाइट कॉलेज में जेबीटी कोर्स करने हेतु दाखिला लिया। उस वक्त उसकी बेटी 15 महीने की हो चुकी थी। समस्या अब बेटी को किसी सुरक्षित हाथों में छोड़ने की थी। दो उपाय थे- पहला, घर से किसी को बुलाया जाए अथवा किसी क्रेच में छोड़ा जाये। विपिनचन्द्र के अनुसार सुषमा के दाखिले को लेकर परिवार में मतभेद था अतः घर से शुरू में कोई आने को तैयार नहीं हुआ। अतः उसने उसे क्रेच में दाखिल करवाया। पत्नी सुषमा सुबह कॉलेज जाने से पूर्व उसे क्रेच में छोड़ कर जाती और देर शाम को उसे वहाँ से लेकर आती। विपिनचन्द्र के शब्दों में, 'पूर्वी पटेल नगर दिल्ली स्थित यह क्रेच अपने इलाके का सबसे हाई-फाई क्रेच था। वहाँ हाई-फाई घरों से ही बच्चे आते थे। वहाँ की मैडम भी इंग्लिश बोलना जानती थी। जो मैडम उसे चलाती थी वह भी

हाई-फाई परिवार से थी तथा इंग्लिश बोलती थी।' उसने आगे बताया, 'इस प्रकार लगभग डेढ़ वर्ष तक मेरी बच्ची उस क्रेच में ही पली। फीस तो उसकी ज्यादा थी पर जब वह घर आकर इंग्लिश का प्रयोग करती तो मुझे और सुषमा को अच्छा लगता था। हमें लगता कि हमारा पैसा खर्च करना सार्थक हो गया है।' विपिनचन्द्र ने आगे कहा, 'बच्चों को शुरू से जिस वातावरण में रखो, उसकी भाषा को वह अपना लेता है। बीच में, कुछ समय वह हमारे हाँसी के घर तथा अपने ननिहाल में भी गयी और उसने अपनी नानी और ताई दोनों को अंग्रेजी सीखा दी।' सुषमा का जेबीटी का कोर्स जब खतम हुआ तब हमारी बेटी की उम्र तीन-सवा तीन साल की हो गई थी। विपिनचन्द्र के अनुसार अब वह नर्सरी स्कूल में डालने की उम्र में आ गयी थी। अतः उन्होंने उस क्रेच से ही संबंधित प्राइवेट स्कूल में उसे दाखिल करवा दिया। विपिनचन्द्र ने आगे बताया कि जब उनकी बेटी साढ़े चार – पाँच साल की थी तभी उसकी पत्नी का 'सिलेक्शन' जेबीटी के आधार पर हाँसी स्थित हरियाणा के सरकारी स्कूल में हो गया। चूँकि माँ की पोस्टिंग के साथ बेटी का भी हाँसी जाना निश्चित था। अतः उसने अपनी बेटी के भविष्य को सुनिश्चित करने हेतु हिसार और हाँसी शहर के बीच स्थित देश के प्रतिष्ठित स्कूलों में गीने जाने वाले दिल्ली पब्लिक स्कूल की फ्रेंचाइजी शाखा में करवाया। विपिनचन्द्र के अनुसार, 'यह स्कूल फुल्ली इंग्लिश मीडियम स्कूल है। स्कूल के चपरासी, जमादार, मेड, ड्राइवर और स्कूल बनाने में पैसा लगाने वाले मैनेजर के अलावा कोई देहाती भाषा तो छोड़ो हिन्दी का भी प्रयोग नहीं कर सकता है। सभी टीचर और स्टूडेंट के लिए अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य है।' जब इस बारे में विपिनचन्द्र की पत्नी सुषमा से शोधकर्ता ने पूछा कि आप खुद तो सरकारी

स्कूल में पढ़ाती हैं तथा अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम प्राइवेट स्कूल में भेजती हैं। क्या आप मानती हैं कि सरकारी स्कूल की शिक्षा बेहतर नहीं है। इस पर सुषमा जी ने जबाब देते हुए कहा , 'बात यह नहीं कि सरकारी स्कूल में पढ़ाई नहीं होती। बच्चे की शिक्षा में सिर्फ शिक्षक ही नहीं उसका वातावरण भी शामिल होता है। सरकारी स्कूलों में जिस तरह के बच्चे आते हैं उनका बैकग्राउंड देहाती होता है, उनके बोलचाल की भाषा भी देहाती ही होती है। आपको क्या लगता है, ऐसे परिवेश में बच्चा क्या सीखेगा? ऐसी बात नहीं कि इन बच्चों में सीखने की क्षमता ही नहीं होती, पर इंग्लिश न आने की वजह से इनकी सारी की सारी योग्यता धरी की धरी रह जाती है। हम भी तो इंग्लिश न आने की वजह से ही इस स्कूल में हैं। शायद फ्लूएंट इंग्लिश आती तो शायद हम इससे कहीं अच्छी जगह होते। अब क्या आप चाहेंगे कि इंग्लिश न आने की वजह से जो दिक्कत हमने फेस की, वे हमारे बच्चे भी फेस करें?' जब जिज्ञासावस शोधकर्ता ने पूछा, "क्या आप अपने बच्चे का स्कूल से मिलने वाला होमवर्क खुद करवाती हैं?" जबाब मिला, "नहीं, स्कूल से आने के बाद खा-पीकर थोड़े देर आराम करती हैं। फिर शाम चार बजे करीब इसकी मैडम (घर पर पढ़ाने वाली होम ट्यूटर, अर्थात् शिक्षिका) आ जाती है। वही इसका सारा होमवर्क वही करवाती है... और इंग्लिश स्पीकिंग का कोर्स भी।" शोधकर्ता ने आगे पूछा – "घर परिवार और दूसरे लोगों के साथ गुजारने के लिए कितना वक्त मिल पाता है?" जबाब था – "बस छुट्टी का दिन, उस दिन भी कई बार इधर-उधर चले जाते हैं। लम्बी छुट्टियाँ पड़ती हैं तो हम विपिनचन्द्र के पास दिल्ली आ जाते हैं।" शोधकर्ता – "आपके घर में तो आपको छोड़ कर बाकी सभी देहाती बोली (पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा

हरियाणा की बोली) बोलते हैं। क्या यह बच्ची अपने ताया-ताई की बोली समझ पाती है?" सुगंधा की माँ का जबाब था – "नहीं! पूछती है कि ताया-ताई कैसे बोलते हैं? समझ तो जाती है पर देहाती बोलियों को तो बोलना बिलकुल भी पसंद नहीं करती। स्कूल में सिखाते हैं ये बैड लैंग्वेज है। अपने पापा को भी कहती है – "पापा स्पीक इन इंग्लिश" बच्ची की वजह से हम भी अंग्रेजी बोलना सीख रहे हैं। 'स्पून' तो अब इसकी ताई भी बोल लेती है।"

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि बच्ची खुर्जा से ढोकर लायी अपनी दादी की विरासत को छोड़ चुकी है.... और वक्त के साथ जिस हरियाणवी परम्परा के साथ विपिनचन्द्र के परिवार ने रोटी और बेटी का सम्बन्ध जोड़ा, उसे भी नकार कर आगे बढ़ चुकी है पर पिता विपिनचन्द्र को फक्र है कि उसकी बेटी धाराप्रवाह इंग्लिश बोलती है। विपिनचन्द्र के अनुसार, "मेरी बेटी अपनी कक्षा की टॉपर है तथा उसे क्लास में सबसे बेहतर अंग्रेजी बोलने के लिए बैज भी मिला है। सभी टीचर उसकी तारीफ करते हैं।" दूसरी तरफ बच्ची की स्थिति यह है कि वह स्कूल से मिले होम वर्क को करवाने के लिए ट्यूटर पर निर्भर है। जब शोधकर्ता ने बच्ची से बातचीत की तो पाया कि बच्ची अंग्रेजी की गिनती आदि तो बोल पाती है पर हिंदी के साधारण अंकों व शब्दों का अर्थ नहीं बता पाती।

अब मेरे मन में पुनः जिज्ञासा पैदा हुई कि फरीदाबाद में तो बहुत से प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यम स्कूल हैं। ये सज्जन अपने बच्चे को उसी प्रतिष्ठित स्कूल में दाखिला क्यों दिलवाना चाहते हैं? शोधकर्ता ने जब ये सवाल विपिनचन्द्र से पूछा तो उनका जबाब था, “मेरे डॉक्टर भाई के बच्चे भी इसी स्कूल की दूसरी शाखा में पढ़ते हैं। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि अपनी बच्ची का दाखिला उसी स्कूल की दूसरी शाखा में करवाऊँ।”

आर्थिक वृद्धि की दौड़ में तुलना उसके साथ होती है जो आर्थिक रूप से कामयाब हुआ है। वह बेवकूफ और मूर्ख साबित हुआ है जो उस दौड़ में पीछे छूट गया। विपिनचन्द्र के बच्चे अपने ताया-ताई के साथ रह कर भी उनके साथ नहीं हैं। विपिनचन्द्र का डॉक्टर भाई जो परिवार के साथ नगण्य सम्पर्क रखता है वो विपिनचन्द्र के लिए आदर्श है.... और हाँ, सिर्फ स्कूल ही नहीं ‘लोकैलिटी’ भी उसी हिसाब से चुनी जाती है। जब विपिनचन्द्र से पूछा गया कि उसने फरीदाबाद की पोर्स ग्रीनपीस कॉलोनी को ही क्यों चुना। जबाब था, “यहाँ की लोकैलिटी अच्छे परिवारों की है। यहाँ पढ़े-लिखे सम्भ्रांत लोग ही रहते हैं। दूसरे दर्जे की कॉलोनी में देहाती बोलने वाले लोग ही रहते हैं। फिर जैसे वातावरण में रहो, उसी की बोली-भाषा बच्चा सीख जाता है। अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम के अनुरूप बेहतर वातावरण उपलब्ध कराने के लिए ही मैंने इस लोकैलिटी को चुना है।”

विपिनचन्द्र को अपने अनुभवों से जो बात स्पष्ट हुई और उसके मूल्यों का आधार बनी, वे कुछ इस प्रकार से हैं :-

- क्षेत्रीय बोलियों के सहारे आप घर-परिवार आस-पड़ोस और छोटे स्तर के व्यवसायों में तो काम चला सकते हो। जैसे उसके पिता तथा बड़े दोनों भाइयों का चलता रहा है। पर समाज में उच्च स्तर के माने जाने वाले व्यवसायों में कामयाबी हेतु अंग्रेजी अनिवार्य है।
- विपिनचन्द्र के अपने अनुभव से यह धारणा पुख्ता हो चुकी है कि कामयाबी की मंजिल अंग्रेजी की सड़क पर चल कर ही हासिल हो सकती है।
- उसका विश्वास है कि यदि उसकी बेटी अंग्रेजी माध्यम में नहीं पढ़ी, हार्ड-फाई सोसाइटी वाली अंग्रेजी नहीं सीख पाती है तो वह कामयाब नहीं हो पाएगी।

- मूल्य ये बने कि बेटी की शिक्षा पर खर्च करना है और उसके लिए कमाना भी है। बेशक गलत रास्ते का ही प्रयोग करना पड़े। उच्च वर्ग की सोसाइटी में रहना है तो उसकी संस्कृति को भी अपनाना पड़ेगा। उच्च वर्ग की संस्कृति के अनुरूप ढालने के लिए उसके इंग्लिश मीडियम वाले कल्चर को भी अपनाना जरूरी है।
- इस क्रम में, यदि उसके माता-पिता के बराबर के भाई-भाभी पीछे छूट जाते हैं और उसका आदर्श डॉक्टर भाई और भाभी हैं जो इंग्लिश मीडियम कल्चर को अपनाकर आगे बढ़े हैं।
- औपचारिक शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक कामयाबी है। इसके लिए मौलिक समझ की कुरबानी और संस्कृति का त्याग सब मंजूर है।
- कोर्ट में इंग्लिश मीडियम का वर्चस्व आम जनता को कोर्ट की कार्यवाही से काटे रखता है। बेशक इंग्लिश न बोल पाने की क्षमता की वजह से विपिनचन्द्र हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट में प्रैक्टिस न कर पाता हो, पर लोअर कोर्ट में प्रैक्टिस का आधार इंग्लिश ही है। यदि कोर्ट की भाषा जन-साधारण की भाषा होती तो उसके क्लाइंट अपनी अपील खुद कर सकते थे। पर क्लिष्ट प्रक्रिया और बेगानी भाषा ने उनके कोर्ट की लडाई को वकीलों के आगे कोरे कागज पर हस्ताक्षर करने तक समेट दिया है।

- इंग्लिश शोषण, भ्रष्टाचार और गैर-बराबरी को बनाए रखने का आधार है।

नोट : - साक्षात्कारदाता की मांग पर नाम परिवर्तित किया गया है।

अध्याय 9

चाय वाले भैया और उनके बच्चे

चाय वाले भैया की कहानी कुछ इस प्रकार है कि इन्होंने अपने नाते-रिश्तेदारों के दबाव में अपने दोनों बच्चों- रमेश और उमेश को सीबीएसई के स्कूल में दाखिला दिला दिया, पर न तो उन्हें और ना ही उनके बच्चों को इंग्लिश मीडियम वाली पढाई समझ में आती है। बस रिश्तेदारों का दाबाव और अपने बच्चों को कामयाब बना देने का जूनून है कि हैसियत ना होने के बावजूद भी इन्होंने अपने बच्चों को सीबीएसई से संबंध इंग्लिश मीडियम स्कूल में दाखिल करवा दिया। इंग्लिश मीडियम के स्तर के अनुरूप अपने बच्चों को बनाने की होड़ में न केवल उनका सारा धन ही इंग्लिश मीडियम के हवन-कुंड में स्वाहा हो गया अपितु बच्चों का बचपन भी इस इंग्लिश-देवी को प्रसन्न करने की बलि चढ़ गया। आइए, इसे जानने के लिए आगे का वृत्तांत पढ़ते हैं।

जब शोधकर्ता ने रमेश और उमेश की माँ से बच्चों की पढाई के बारे में जानकारी लेनी चाही तो उन्होंने बताया कि वे इस स्कूल की पढाई से न केवल असंतुष्ट हैं बल्कि उनके अनुसार स्कूल में चलने वाली गतिविधियाँ उनकी समझ के बाहर भी हैं। जब शोधकर्ता ने पूछा कि आप किस आधार पर कह सकते हैं कि बच्चों की पढाई ठीक नहीं चल रही है। तो उन्होंने सिर्फ इतना भर कहा की बच्चों के अच्छे नम्बर नहीं आते हैं। जब से सीबीएसई स्कूल में डाला है, तब से बच्चे खींच-तान कर ही पास हो पा रहे हैं। जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि क्या बच्चे घर आकर स्कूल की पढाई के बारे में विचार-विमर्श करते हैं। इस पर माँ का कहना था, “हमें तो इस स्कूल की पढाई-लिखाई इंग्लिश में होने की वजह से समझ में आती नहीं है। इसलिए हम पढाई के बारे में विचार-विमर्श नहीं कर पाते हैं। हमने बच्चों का ट्यूशन लगा रखा है, ट्यूशन के शिक्षक ही पढाई-लिखाई को देखते हैं। हमने स्कूल के बाद भी ट्यूशन की व्यवस्था कर रखी है। बच्चे सिक्सथ क्लास (छठी कक्षा) से इस स्कूल में आए हैं। इससे पहले वे हरियाणा बोर्ड के ही हिंदी मीडियम प्राइवेट स्कूल में थे।” जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि कि हिंदी मीडियम से इंग्लिश मीडियम में परिवर्तन से उत्पन्न असंतुलन को कैसे भरा। इस पर जबाब था कि दाखिले के एक वर्ष पूर्व ही बच्चों का इंग्लिश का ट्यूशन, इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ाने वाले टीचर के पास लगवा दिया था।

रमेश और उमेश के पिता पढ़े-लिखे नहीं हैं पर उनका का मानना है कि सीबीएसई स्कूल सबसे बेकार हैं (नोट करें फरीदाबाद, हरियाणा के गाँव-देहात के इलाकों में सीबीएसई स्कूल का अर्थ ही इंग्लिश मीडियम स्कूल होता है तथा हरियाणा बोर्ड स्कूल का अर्थ हिंदी माध्यम स्कूल होता है) चाय बेच कर सीबीएसई इंग्लिश माध्यम स्कूल में पढ़ाने वाले इस पिता का कहना है, “इन स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को पढ़ना-लिखना तो कुछ आता नहीं है। इंग्लिश मीडियम की वजह से घमंड करते हैं सबसे ज्यादा। पर इन स्कूलों में पैसे जाते हैं सबसे ज्यादा। छोटी क्लास में तो फिर भी चल जाते हैं पर बड़ी क्लास के बच्चे तो कती (बिलकुल भी) कामयाब नहीं हैं।” जब शोधकर्ता ने इसके पीछे का कारण जानना चाहा तो पहले तो कारण के रूप में इंग्लिश बताया। पर फिर पलट कर कहा, “ इंग्लिश है क्या चीज ! आज की डेट में जो दो क्लास पढ़ लेता है वह ‘इंग्लिश टू इंग्लिश’ बोल लेता है। बस बच्चे में दिमाग होना चाहिए।” पर जब आगे कुरेदा तो उन्होंने कहा, “आज के समय में एक भेड़-चाल शुरू हो गई है, हर कोई अपने बच्चों को बेहतर से बेहतर स्कूल में दाखिला करवाना चाहता है। जितने बड़े स्कूल में पढ़ते हैं उतनी ज्यादा शान। मेरे बच्चे अच्छे-खासे हिंदी माध्यम स्कूल में पढ़ते थे। पर पब्लिक (लोगों) ने हमें जीने नहीं दिया। लोगों ने कहना शुरू किया कि हिंदी मीडियम में क्यों पढ़ाते हो? इंग्लिश मीडियम में क्यों नहीं पढ़ाते? हिंदी मीडियम में क्या रखा है? हिन्दी मीडियम वालों का क्या भविष्य है? इंग्लिश मीडियम के बच्चे ही आगे कामयाब होते हैं। मैं तो सुन कर रह जाता था पर उनकी माँ (अपनी पत्नी की तरफ

इशारा करते हुए) ने भी जब बोलना शुरू कर दिया। तो मुझे सोचने पर विवश होना पड़ा। लोग मुझसे भी अधिक इससे बोलते। लोग बोलते- “अरे! क्या करोगे पैसे जोड़ के? दो ही तो लडके हैं। सीबीएसई (इंग्लिश मीडियम) स्कूल में डालो।

अपने बच्चों की दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहा, “मेरे बच्चे स्कूल से आएँगे, खाना-वाना खा कर सीधे ट्यूशन जाएँगे। पहले इंग्लिश की ट्यूशन जाएँगे, फिर मैथ और साइंस की। ट्यूशन से छः-साढ़े-छः बजे तक आएँगे, आकर स्कूल और ट्यूशन का काम करेंगे। वे कहीं-भी इधर-उधर आते-जाते नहीं हैं.... जिस दिन इंग्लिश मीडियम में डाले उससे एक साल पहले इंग्लिश का ट्यूशन लगवा दिया था। क्योंकि इंग्लिश मीडियम में इंग्लिश चाहिए ज्यादा। मतलब सभी विषय इंग्लिश में होने की वजह से इंग्लिश हार्ड होती है। इसलिए मैंने पहले से ही ट्यूशन लगवा दिया। जिस दिन से इंग्लिश मीडियम में डाले हैं मेरे बच्चों का एक दिन का भी ट्यूशन नहीं छूटा है.... पर फिर भी अच्छा रिजल्ट नहीं आता। अब यदि ट्यूशन वाले से बात करूँ तो वह कहता है स्कूल वाला नहीं पढ़ाता है, स्कूल वाले से बात करूँ तो वह कहता है- ट्यूशन वाला नहीं पढ़ाता है। अब इनकी पढाई तो हमारे समझ की है नहीं, न ही हमें इंग्लिश समझ में आती है। हम तो पैसे ही खर्च कर सकते हैं। पर पैसा खर्च कर कर भी कुछ रिजल्ट न मिले तो हम कहाँ जाएँ। मेरा पैसा काफी मेहनत का है। सुबह चार बजे चारपाई छोड़ देता हूँ और रात के आठ-नौ बजे तक लगा रहता हूँ।” जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि क्या आपके बच्चे जो स्कूल में पढाया जाता है वो घर में डिस्कस करते हैं। इस पर उस विवश पिता

का जबाब था, “डिस्कस तो तब करें जब हम कुछ जानते हों। इनकी पढ़ाई इंग्लिश में है और हम ठहरे हिन्दी वाले। हमारे लिए तो इनकी पढ़ाई काला अक्षर भैस बराबर ही है।”

इसी क्रम में जब बच्चों से बातचीत की तो उनका कहना था।

- “
- समझाने के लिए मैडम हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग करती हैं पर लिखवाने के लिए सिर्फ इंग्लिश का ही प्रयोग कर सकते हैं।”
- “मैडम अधिकतर बुक के ही उदाहरण लेती हैं, बहुत कम होता है जब बुक के बाहर के उदाहरण लिए जाएँ।”

जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि क्या आप स्कूल में जो पढाई होती है उसका बाहर के वातावरण के साथ लिंक जोड़ पाते हो?

उत्तर मिला - "हमारी टीचर हमें पढ़ा देती है। उनके पढ़ाने के बाद हम उदाहरणों को अपने आसपास के परिवेश में ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। पिछले प्रिंसिपल के समय में तो यह संभव नहीं था। पर जब से नयी प्रिंसिपल आई है, अंग्रेजी को लेकर रोक-टोक कुछ कम हो गयी है और इस कारण अब टीचर हिंदी में स्कूल के बाहर के उदाहरण भी देने लगे हैं। जब इंग्लिश पर जोर था तब टीचर सिर्फ बुक के ही उदाहरण दे पाते थे।"

जब शोधकर्ता ने अंग्रेजी में पढ़ने के फायदे जानने चाहे तो इसके जबाब में रमेश का कहना था, "इंग्लिश जानते हैं तो किसी से बात कर सकते हैं।"

जब इसके बारे में अच्छे से खुलासा करने के लिए कहा तो उसने कहा, "बाहर के किसी शख्स या विदेशी व्यक्ति से बातचीत करने में इंग्लिश सहायक है।" उसके अनुसार विदेश में (रूस, जापान जर्मनी आदि) सभी जगह इंग्लिश ही बोली जाती है।

जब शोधकर्ता ने इसके आगे इंग्लिश मीडियम में पढ़ने का महत्व जानना चाहा तो उसका जबाब था, "जॉब के लिए इंग्लिश जरूरी है। आगे पढाई करनी हो तो इंग्लिश की जरूरत पड़ती है।"

जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि ये जानकारी आपको किससे मिली तो उसका कहना था, “टीचर से (ट्यूशन और स्कूल दोनों के), स्कूल की असेंबली में भी यही बताया जाता है।”

इनके केस को और निकट से समझने के लिए इनके दोनों ट्यूशन के शिक्षकों से बातचीत की गयी।

मैथ और साइंस पढ़ाने वाले शिक्षक के अनुसार- “इनकी इंग्लिश इतनी कमजोर है कि समझ तो ये लेते हैं पर समझ लेने के बाद भी लिख नहीं पाते हैं और यही इनके फेल होने या कम नंबर आने का कारण है।”

शोधकर्ता ने पूछा, “मैथ में तो इंग्लिश का प्रयोग कम होता है।”

मैथ और साइंस शिक्षक, “कुछ तो होता ही है। दिक्कत वहीं से शुरू होती है।”

इस विषय में जब अंग्रेजी के शिक्षक से बात की तो उन्होंने बताया -

“इन लोगों का अंग्रेजी का स्तर छठी कक्षा तक समझ लो पूर्णतः शून्य था। पर छठी कक्षा से इन्हें अब सभी विषय अंग्रेजी में ही पढ़ने होते हैं। बस यही समस्या है। इंग्लिश नहीं आती तो कुछ भी नहीं आता। जानते समझते सब कुछ हैं। पर इंग्लिश में लिख नहीं पाते। इस वजह से फेल होते हैं।” शोधकर्ता ने भी पाया कि बच्चे विज्ञान की संकल्पनाओं को अच्छी तरह से व्यक्त कर पा रहे थे।”

उन्होंने आगे कहा, “इंग्लिश इनकी ही नहीं, इस इलाके के सभी बच्चों की समस्या है। मेरे पास तो ट्यूशन आते हैं किसी तरह इंग्लिश में पास करा दो। अब जब इंग्लिश ही नहीं आती, तो इंग्लिश मीडियम में मैथ, साइंस, सोसल साइंस कैसे पढ़ेंगे?”

“बच्चे इस योग्य हैं नहीं कि इंग्लिश में पढ़ सकें। पर इस फ्रिंज इलाके (ग्रामीण और शहरी इलाके का सीमावर्ती क्षेत्र) के लोगो की इच्छा है कि उनके बच्चे इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ें। सारी समस्या का कारण यह ही है।”

अध्याय-10

रविंदर और अजित

रविन्द्र मूलतः फरीदाबाद शहर के अज्रोंदा गांव के रहने वाले है। शहर... क्योंकि यह गांव अब शहर का ही भाग बन गया है तथा हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण (हुडा) द्वारा बसायी गयी शहर की पोरस कॉलोनी यानी सेक्टर से लगा हुआ है तथा अब उसी का भाग है। रविंदर फरीदाबाद स्थित सैसन कोर्ट में प्रेक्टिस करते है। अजित उनके साथी है तथा उन्हीं के साथ प्रेक्टिस करते है। अजित फरीदाबाद की निम्न मध्यम वर्गीय कॉलोनी डबुआ के निवासी है। वे मूलतः पश्चमी यु पी से सम्बन्धित है। आस पास के सेक्टरों में बसा नवधनाडय वर्ग मुख्यतः मानक हिन्दी के अपभ्रंश हिंगलिश में ही बोलचाल करता है। यदाकदा इनमें से कुछ इंग्लिश भी बोल लेते है। रविंदर और अजित, दोनों के घरों में देहाती कहलाने वाली बोलियों के ही बोलने का प्रचलन है। पर पिछले कुछ सालों में कुछ ऐसा घटा कि इन लोगों ने घर में “बैड लैंग्वेज” अर्थात देहाती बोलियों के बोलने पर रोक लग गयी है। यदि बोलते भी है तो बच्चों की अनुपस्थिति में और वह भी यदाकदा ही।

आइये जानने के लिए पढ़े इन दोनों के साथ हुई विस्तृत बातचीत के मुख्य ।

पहले रविन्द्र

रविन्द्र, “मेरे दो बच्चों हैं दोनों बच्चों उच्च कहलाने वाले निजी स्कूलों में पढ़ते हैं । बेटी क्रिश्चन स्कूल में पढ़ती है । जबकि बेटे को फरीदाबाद के बेस्ट माने जाने वाले स्कूल में दाखिला दिलवा रखा है ।”

“बेटे के स्कूल का सिस्टम काफी हाई-फाई है और अब लगता है कि मेरी पहुँच के बाहर है ।” कैसे ? पूछने पर उन्होंने निम्न बिंदु गिनाये । उनके शब्दों में, “

- कल्चरल प्रोग्राम हो रहा हो तो उस दौरान सभी पढाई लिखाई का काम पीछे छुट जाता है । वैसे पढाई लिखाई के लिए उस स्कूल के विद्यार्थियों के माता-पिता ने अपने बच्चों के लिए घर पर ही ट्यूशन की व्यवस्था कर रखी है ।”
- “महगे-महगे टूर लेकर जाते हैं । जैसे गोवा का टूर (2000 km दूर), नशा (यु एस ए) का टूर”

- “बच्चों को भड़का दिया नासा का टूर लेकर जायेगे। बच्चे घर आकर 2 लाख रु की मांग करने लगे। हमने तो बच्चों को नहीं भेजा। पर बच्चों जिद्द तो करते ही है। कुछ माँ बाप ने भेजा होगा। हमारी तो आर्थिक क्षमता इतनी नहीं है कि यूएसए घुमने के लिए भेजे।”
- “बच्चें अच्छे अच्छे स्कूलों में पढ़ते है पर वे घर के संस्कारों के लिए बोलना पडता है। वे उससे विमुख हो रहे है।”
- “बच्चे स्कूल में घर की भाषा का प्रयोग करे तो उन्हें सजा मिलती है।”
- “हिन्दी में बोलने पर फाइन लगा देते है। हमारी देहाती भाषावों की तो आप बात ही ना करों। हमारे बच्चे भी मानने लगे है कि हमारी भाषाएं गवारू ही है।”

पर जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि इसके बावजूद भी आप अंग्रेजी माध्यम स्कूल में क्यों डालनते हो तो जबाब था।

- “हिंदी मीडियम या क्षेत्रीय भाषा मीडियम में डालने से बच्चा आगे आने वाले दौर में प्रतियोगिता कम्पटीशन्स में टिक नहीं पायेगा।”

- “जॉब में जाना है तो इंग्लिश जरूरी है ।”
- “उच्च शिक्षा के लिए भी इंग्लिश जरूरी है । इंजिनियरिंग मेडिकल के फिल्ड में इंग्लिश जरूरी है ।”
- “हम लोग इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ा रहे हैं इसके पीछे कारण यही है कि बच्चे कम्पटीशन (प्रतियोगिता) में बने रहे । हम लोग इतनी अच्छी इंग्लिश नहीं बोल पाते हैं ।.. और इंग्लिश ना बोल पाने का मलाल तो रहता ही है । हम नहीं चाहते की इंग्लिश ना बोल पाने की वजह से जो दिक्कत हमें आती है, वह हमारे बच्चों को भी आये ।”

उदाहरण देते हुए, “जैसे कि हम वकील हैं और वकील के लिए जो योग्यता है उसको पूरा भी करते हैं । पर यदि सुप्रीमकोर्ट और हाईकोर्ट के केस लेकर वहा बहस करना चाहे, तो वहां अच्छी इंग्लिश की जरूरत होती है । सेसन कोर्ट में तो काम इंग्लिश हिंदी मिक्स करके चल जाता है । पर सुप्रीमकोर्ट और हाईकोर्ट में नहीं चल सकता है । हम वहां कामयाब नहीं हैं । कानून के चाहे कितने भी बड़े जानकार हो । पर इंग्लिश नहीं आती तो नीरे मुख है ।”

- “कोर्ट में तो इंग्लिश भाषा शेरनी का दूध है, जो पिएगा वो ही दहाड़ेगा ।”

- “स्कूल की भूमिका बच्चों को महज किताबी कीड़ा बनाने कि है । बच्चा किताबों से बहार निकल कर सोच ही नहीं पाता है ।”
- “स्कूल में बच्चों का क्रेज समझने पर नहीं महज रट कर प्रोडूस करने भर का है ।”
- “हमारी जो अदेहती भाषा है उसमे हम आज के दिन घर पर भी बातचीत नहीं करते है ।”

अजित से जब शोधकर्ता ने बात करना चाहा तो पहले तो उन्होंने इस विषय पर बात करने से ही इनकार कर दिया । उलटे शोधकर्ता को सलाह दी कि वे सर्वे रिपोर्ट आदि देखे । पर जब बलना शुरू किया तो अपनी पीड़ा रोक कर भी रोक नहीं पाए ।

अजित-

•

“जो हमारी मदर-टंग है यदि उसमें बच्चा बात करता है तो हमें PTA में बुला कर वॉर्निंग दी जाती है ।”

- स्कूल के अनुसार हमारी भाषा 'बैड लैंग्वेज' है। वे इसे गावरू भाषा कहते हैं,। स्कूल वालों के अनुसार यदि हमारा बच्चा इसमें बोलता है तो इससे दूसरे बच्चों पर भी बुरा प्रभाव पड़ सकता है। कहते हैं, "आपके बच्चों की भाषा जको सुन कर कहीं वे भी 'वाइल्ड एनिमल' हो जाए।" वो इसे गाली गलोच की भाषा करार देते हैं।"
- "तय ये हुआ है कि अब घर पर कोई भी अपनी मदर टंग नहीं बोलेगा।"
- "अब हम घरों में मैक्सिमम इंग्लिश का इस्तेमाल ही कर रहे हैं। हम सभ्य कहलाने वाली भाषा का प्रयोग कर रहे हैं।"
- "का कर रहे हो। कहा जात हो, स्कूल की नजर में ये सब बैड लैंग्वेज है।"
- "आप इंग्लिश बोलोगे तो सभ्य है इसके आलावा कोई भी इंडियन भाषा बोलोगे तो असभ्य कहलाते हैं।"
- "हर परिवार चाहता है कि उसे नम्बर वन बनाना है। इसके लिए इंग्लिश अखबार पढ़ते का दिखावा करते हैं।"
- "कोर्ट में सीनियर लायर और लॉ ऑफिसर पूर्णतया इंग्लिश का प्रयोग ही करते हैं। अन्दर से वो भी हमारी तरह देशी ही हैं। पर उन्होंने अपने आप को सिस्टम के अनुरूप बना लिया है। तब ही वे वहा है।"

- “कोर्ट में भी जज यदि किसी बिंदु पर ध्यानाकर्षण करना चाहता है तो वह इंग्लिश में बोलेंगा । जैसे यदि वह सुनो-सुनो-सुनो कहता है तो कोई गौर नहीं करेगा । पर यदि वह लिसेन-लिसेन-लिसेन करता है तो दोनों पक्षों के वकील का ध्यान सीधे आकर्षित होगा और अलर्ट हो जाएंगे ।”
- “सभी इम्पोर्टेंट चीज तो इंग्लिश में ही है ।”
- आप आज के दिन में यदि थाने में चले जाइये यदि आप हिंदी अथवा देहाती में बोलते हो तो आपको कोई रिगार्ड नहीं देगा परन्तु यदि इंग्लिश में बोलते हो तो आपकी बात ध्यान से सुनेगे ।”
- “थानों में रिपोर्ट लिखने वालो को सख्त हिदायत है कि यदि कोई एप्लीकेशन हिंदी में आती है तो आप उसे खुद डील करे पर यदि एप्लीकेशन इंग्लिश में आती है तो उसको डील करने से पूर्व आप अपने सीनियर अफसर या पब्लिक प्रोसिक्युटर से जरूर सलाह ले । हिंदी में है तो हवलदार भी अपने स्तर पर कार्यवाही कर सकता है । पर यदि इंग्लिश में है तो बड़े अफसर तक बात जाएगी ।”

रविन्द्र तथा अजित से की गई बातचीत से व्यवहार को प्रभावित करने वाली मूल्य , धारणाये और विश्वास सम्बन्धी जो मुख्य बातें बिंदु निकल कर आये ।

- लेकिन अपने बच्चों को आज के समय की प्रतियोगिता में बनाये रखने के लिए इंग्लिश मीडियम स्कूलों में भेज रहे हैं । इस प्रकार अंग्रेजी माध्यम स्कूल में भेजना उनकी विवशता है ।
- अंग्रेजी के बिना न तो बेहतर उच्च शिक्षा ही संभव है , ना किसी सरकारी या प्राइवेट नौकरी में सेलेक्ट हो सकते हो । ना ही हाई कोर्ट सुप्रीमकोर्ट में ही प्रेक्टिस कर सकते हो ।
- वे बच्चों के स्कूल की संस्कृति से संतुष्ट नहीं हैं, पर दोनों ही स्कूल के मूल्यों के आगे विवश हैं ।
- स्कूल से सिर्फ बच्चे ही नहीं पूरा परिवार प्रभावित होता है । पारिवारिक मूल्यों में परिवर्तन आता है । अर्थात स्कूल की वजह से माता पिता अडोस पड़ोस सबका समजिकरण हो रहा है ।

- काफी गहरे में ये बात स्थापित हो चुकी है । अंग्रेजी ही रोब की भाषा है शासन की भाषा है । जो अंग्रेजी जानता है वाही कद्र पा सकता है । सो इस ताकत कि भाषा का ज्ञान हासिल करने हेतु अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के समक्ष अपने [परवारिक मूल्यों प्रम्परावों की कुर्बानी देनी होगी ।



अध्याय 11

समूह वार्ता - ग्रुप केन्द्रित विचार विमर्श

समूह में विचार-विमर्श की परम्परा प्राचीन काल से बनी हुई है। समूह के बीच विचार-विमर्श के माध्यम से समूह के लोगों की किसी भी घटना विशेष को लेकर बनी संकल्पना, अवधारणा, विचार का पता लगाया जा सकता है। साथ ही साथ लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करने वाले कारकों के बारे में समुदाय में प्रचलित मत, विश्वास, तर्क-वितर्क का भी ज्ञान हासिल कर लिया जाता है। विचार विमर्श में भाग लेने वाले लोग अपने तर्क और विचारों को प्रकट करने हेतु स्वतन्त्र होते हैं। पर लोग तर्क को अपने वर्गीय हितों के अनुरूप गढ़ते हैं। बौद्धिक स्तर को नियंत्रण करने वाले वातावरणीय कारकों के आधार पर ही विचार प्रकट होते हैं।

समूह वार्ता के दौरान शोधकर्ता की भूमिका उन्हें विचार-विमर्श हेतु एक भय-मुक्त वातावरण प्रदान करने वाले संचालक की रही है। संचालक की व्यक्तिगत भूमिका फुटबाल मैच के रैफरी के समान ही रहती है। जो खिलाड़ियों को फुटबाल उपलब्ध कराता है, खिलाड़ियों के साथ मैदान में भी होता है, खेल के मैदान में खिलाड़ियों के साथ भाग भी रहा होता है। पर इन सब

के बावजूद भी वह खेल का हिस्सा नहीं होता। उसकी भूमिका फुटबाल को मैदान के दायरे में रखने और मैच को खेल के नियमों के अनुरूप चलाते रहने भर की होती है। इस क्रम में शोधकर्ता ने दो समूह-केन्द्रित विचार-विमर्श कार्यक्रम आयोजित किये।

पहला – इस समूह के विद्यार्थी एक मध्य स्तर के माने जाने वाले निजी विद्यालय में पढ़ते हैं। ये स्कूल के उद्वंड माने जाने वाले विद्यार्थी ही हैं। ये वे विद्यार्थी हैं जिनकी क्लास अक्सर कक्षा के बाहर लगती है। अर्थात् भिन्न-भिन्न कारणों से अक्सर कक्षा से बाहर निकाले जाते हैं।

दूसरा- यह उन विद्यार्थियों का समूह है जो उच्च स्तर के कहलाने वाले निजी विद्यालयों में पढ़ते हैं। ये गंभीर माने जाने वाले विद्यार्थियों का समूह है। स्कूल की पढ़ाई से संतुष्ट हैं। पर बोर्ड की परीक्षा में अच्छे से अच्छे अंक लाने की अभिलाषा उन्हें ट्यूशन सेक्टर तक खींच लाती है।

इन दोनों ही समूह वार्ताओं को स्कूल परिसर के बाहर ही संचालित किया गया है। स्कूल के बहर संचालित करने का उद्देश्य समूह-वार्ता में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को विचार प्रकट करने की अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता प्रदान करना है। जिससे वे ज्यादा-से-ज्यादा मुक्त होकर अपने विचारों को प्रकट कर सकें।

पहला समूह - संक्षिप्त परिचय

जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह उन विद्यार्थियों का समूह है जो एक मध्य स्तर के माने जाने वाले प्राइवेट स्कूल में पढ़ते हैं। लेकिन उससे भी बड़ी विशेषता यह है कि इस ग्रुप चर्चा में भाग लेने वाले विद्यार्थी वे हैं जो अमूमन क्लासों से बाहर निकाल दिए जाते हैं। अतः इस ग्रुप के सदस्यों की विशेषता यह भी है कि ये स्कूल के बिगडैले विद्यार्थी माने जाते हैं। अपने प्रति स्कूल के व्यवस्थापकों के नकारात्मक दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए एक विद्यार्थी बतलाता है, “एक रोज मुझे बिना किसी गलती के क्लास से बाहर निकाल रखा था। उसी वक्त प्रिंसिपल सर ‘राउंड’ (दौरे) पर थे और उन्होंने मुझसे मेरी गलती पूछे बिना ही मुझे दो-चार लगा दिए। उनका कहना था कि क्लास से बाहर है तो गलती की ही होगी।”

इस विचार-विमर्श के द्वारा हम पता लगाने का प्रयास करेंगे कि वे गलतियाँ किस प्रकार की करते हैं और उनके प्रति शिक्षकों के नकारात्मक नजरिये का कारण क्या है।

इस ग्रुप वार्ता में पाँच विद्यार्थी शामिल हैं तथा उनको ट्यूशन पढ़ाने वाले शिक्षक भी शामिल हैं। ट्यूशन पढ़ने वाले शिक्षक उनके स्कूल में एक दूसरी निजी कंपनी द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सर्विस 'स्मार्ट क्लास रूम' के इंचार्ज हैं। उनके साथ विद्यार्थियों का भावनात्मक सम्बन्ध इस प्रकार बनता है कि वे क्लास रूम से निकल दिये जाने के बाद इन विद्यार्थियों का सहारा बनते हैं। बच्चे इनके पास साइंस (विज्ञान) और मैथ (गणित) पढ़ने के लिए आते हैं। विद्यार्थियों के अनुसार ये अनक्वालिफाइड टीचर स्कूल के क्वालिफाइड टीचरों से कहीं बेहतर हैं।

ग्रुप चर्चा का सार

शोधकर्ता का पहला प्रश्न यही है कि आपको ट्यूशन की जरूरत ही क्यों पड़ी। जबाब क्रमशः इस प्रकार से थे -

o

(क) "घर में पढ़ते वक्त जो दिक्कत आती है वह स्कूल का टीचर दूर नहीं कर पाता है। स्कूल के टीचर का ध्येय अपने स्लेबस को समय-से खत्म करना भर होता है।"

o (ख) "स्कूल में ज्यादा बच्चे होने की वजह से शोर भी अधिक होता है। बच्चे पढ़ते कम बोलते ज्यादा हैं।"

- o (ग) “हाँ ! तू तो बड़ा चुप रहता है। अरे समझ में नहीं आया तो बोलेंगे नहीं !”
- o (घ) “एक ऐसी मानसिकता बन गई है कि ट्यूशन में पढ़ेंगे यहाँ तो मस्ती करो।”
- o (ङ.) “फिर स्कूल में बिलकुल बुक की भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरण भी बुक के। बस इंग्लिश में बक दो, हो गयी टीचिंग।”

क्या आपको लगता है कि स्कूल में प्रयोग की जाने वाली भाषा कहीं-ना-कहीं आपकी समझ में बाधा है। शोधकर्ता ने जानना चाहा कि फिजिक्स, केमिस्ट्री आदि विषयों में जो संकल्पनाएँ पढ़ाई जाती हैं क्या उन्हें स्कूल से बाहर के वातावरण के साथ “रिलेट” कर पाते हो अर्थात् उनका तारतम्य बैठा पाते हो?

- o (ख) “हाँ कुछ, जैसे लाइट (प्रकाश), ये भी कि यदि किसी एसिड को पानी में डालें तो वह रिएक्ट करेगा।”

फिजिक्स, केमिस्ट्री में लिखने के लिए आप किस भाषा का प्रयोग करते हो? किताब में लिखी भाषा का या अपनी भाषा का।

- o (ग) “स्कूल में किताब की रटी-रटाई भाषा का ही प्रयोग होता है। हम नहीं करते इसलिए जीरो-काटा पाते हैं।”

- o (क) “जो समझ में आये वो अपनी भाषा में लिखते हैं। जैसे क्लास में नंबर उनके ही ज्यादा आते हैं जो किताब से रट कर लिखते हैं। पर हम लोग रटते नहीं तभी टीचरों को खलते हैं। हमारा लिखा अक्सर काट दिया जाता है।”
- o (ड.) “जो हमें समझ में आता है उसी को इंग्लिश में ‘कन्वर्ट’ करके लिखते हैं अर्थात् समझते तो अपनी भाषा में हैं पर लिखते उसे इंग्लिश में हैं।”

इंग्लिश तो अपनी भाषा है नहीं, पर कभी आपके साथ ऐसा हुआ कि आपको इंग्लिश लिखने में दिक्कत आयी हो।

- o (क) “स्कूलों में अन्य विषयों के मुकाबले इंग्लिश की ज्यादा प्रैक्टिस करवाई जाती है। इसलिए इंग्लिश में लिखने में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं आती है। पर हम समझते अपनी भाषा में है और लिखते इंग्लिश में हैं।”
- o (ग) “हर पीरियड ही इंग्लिश का लगता है। कभी-कभी तो कान में भी दर्द करने लगता है।”

आपको क्यों लगता है कि हमारे देश में इंग्लिश की विशेष प्रैक्टिस की जरूरत है?

- o (क) “हमारा देश एक ‘डेवलपिंग कंट्री’ है और ‘डेवलपिंग कंट्री’ में विकास के लिए इंग्लिश की जरूरत होती है। हमें इंग्लिश आएगी तो एम.एन.सी. हमारे यहाँ निवेश करेगी। अतः डेवलपिंग कंट्री के डवलपमेंट के लिए इंग्लिश की जरूरत है।”

- o (ख) “हमारे देश के नेता जब बाहर जाते हैं तो इंग्लिश में बोलते हैं। जो दुभाषिया होगा वह इंग्लिश से उस देश की भाषा में ट्रांसलेट (अनुवाद) करेगा। उनके देश के नेता अपनी भाषा में बोलेंगे, फिर दुभाषिए हमारे नेताओं को इंग्लिश में बताएगा। पर जो विदेशी आते हैं उनका दुभाषिया उन्हें उनकी भाषा में ही बताएगा।” (गैर-अंग्रेजी भाषी देशों के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा)
- o (ग) “हमारे देश में एक इस प्रकार का एनवायरमेंट बना दिया है कि इंग्लिश ही सब कुछ है। अतः सबका ध्यान सिर्फ इंग्लिश की तरफ है। वरना बच्चा हिंदी मीडियम में भी पढ़ सकता है।”
- o (क) “मैं इससे पूर्व हिंदी मीडियम में पढ़ता था। वहाँ इससे अच्छा समझ में आता था। पर ऐसा माहौल बना दिया गया है कि इंग्लिश मीडियम ही सब कुछ है।”
- o (ग) “हिंदी मीडियम में ऐसे-ऐसे बच्चे हैं जो नवीं क्लास में दसवीं का मैथ ‘सोल्व’ कर देंगे। अर्थात् अधिक योग्य हैं। पर आजकल सब सीबीएसई (इंग्लिश मीडियम) की तरफ भाग रहे हैं।”
- o (क) “सीबीएसई हर साल स्लेब्स कम करती जा रही है। सेमेस्टर सिस्टम ने पढाई को और सिमित कर दिया है। हमें अब सिर्फ इतना पढ़ना होता है जितना एक सेमेस्टर में आता है।”

- o ट्यूशन शिक्षक - “बच्चों की मानसिकता हो गई है कि पास होने लायक पढ़ो। पढ़ो, क्लास पार करो और भूल जाओ।”
मीडियम के फर्क की वजह से समझ में किसी तरह का फर्क उत्पन्न होता भी है अथवा नहीं? अपनी मातृभाषा में ही पढ़ने का चलन होता तो क्या आपकी समझ ज्यादा बनती या कम बनती? आपकी समझ पर मातृभाषा का क्या प्रभाव पड़ता?
- o “मातृभाषा में ज्यादा अच्छी बनती है” (सभी बच्चे एक साथ)
शोधकर्ता - “क्यों?”
- o (ग) “अपनी मातृभाषा में किसी भी बात को आसानी से ‘पिक-अप’ कर लेते हैं। हम उसे आसानी से रिलेट कर पाते हैं। भाषा के फर्क की वजह से कई बार हम सही अर्थ तक नहीं पहुँच पाते। एक ही शब्द को अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग तरह से प्रयोग किया जाता है। एक ही शब्द को इंग्लिश में कुछ और हिंदी में कुछ और प्रकार से प्रयोग करते हैं, इसलिए भ्रम बना रहता है।”
- o (ख) “इंग्लिश में स्पष्ट नहीं होता पर अपनी भाषा में उसकी एक इमेज बन जाती है।”

शोधकर्ता - “इंग्लिश में होने की वजह से क्या ऐसा भी होता है कि आप अपने घर परिवार, आस-पड़ोस वालों से उसी की भाषा में बातचीत नहीं कर पाते हो।”

o (क) “हाँ ! हम किताब में लिखी किसी-भी बात पर अपने माता-पिता से, या किसी दूसरे से चर्चा नहीं कर पाते हैं। क्या चर्चा करें, किसी को हमारी किताब की भाषा ही समझ नहीं आएगी।”

शोधकर्ता - क्या इंग्लिश में निःसंकोच बिना याद किये बोल पाते हो?

o (ख) “नहीं ! इंग्लिश में बोलने पर डर-सा लगता है, हम बोलते वक्त सोचते हैं कि कहीं गलत ना बोल जाएँ।”

शोधकर्ता - भाषाओं को छोड़ें तो स्कूल में देहाती बोलियों को लेकर क्या नजरिया है?

(एक ने स्पष्टीकरण मागते हुए कहा, वो जिसमें हम आपस में बातचीत करते हैं। शोधकर्ता ने सहमति जताई)

o “गँवार टाइप का” (सब एक साथ) आगे एक ने कहा, “लफंगे” (एक ने कहा)

o “हमें गँवार और लफंगे कहा जायेगा, हमें गलत निगाह से देखा जाएगा।”

शोधकर्ता - "पर क्यों?"

- o (क) "क्योंकि वे कुछ ज्यादा ही पढ़-लिख गए" कुछ गुस्से में जबाब दिया।
- o (ख) "इंग्लिश मीडियम स्कूल हैं इसलिए।"

शोधकर्ता - "क्या आपको लगता है - जो प्यार, जो जज़्बात, जो मोहब्बत इन गँवारु कहलाने वाली भाषाओं में बन सकती है क्या दूसरी भाषाओं में भी बन सकती है? जब आपके ऊपर कोई दबाव नहीं होता तो आप कौन सी भाषा का प्रयोग करते हो?"

- o (क) "हम अपने आली में बोलते हैं। मतलब देहाती बोलियों में ही बातचीत करते हैं।"
- o (ख) "जितनी आसानी से हमें हमारी बोलियों में समझ आता है, उतनी आसानी से इंग्लिश और यहाँ तक स्कूल वाली हिंदी में भी समझ नहीं आता।"
- o (ग) "समझ में तो इसी भाषा में आता है। बेशक पढ़ें किसी में भी। हम हर बात को अपनी भाषा में ही समझते हैं। इंग्लिश में तो ट्रांसलेट कर के ही लिखते हैं।"

- o (घ) "हम जब मुक्त होकर बैठते हैं तो अपनी भाषा का ही प्रयोग करेंगे।"

शोधकर्ता - क्या स्कूलों में देहाती भाषा की लोक-कथाओं को पढ़ने-पढ़ाने के दौरान प्रयोग किया जाता है?

- o (घ) "नहीं।"
- o (क) "औरों का तो पता नहीं, हमारी हिंदी वाली शिक्षिका कभी-कभी हिंदी कविता-कहानियाँ सुनाती हैं।"

शोधकर्ता - "और साइंस के टीचर..."

- o (ख) "साइंस के टीचर से कह दिया तो वो तो क्लास से ही बाहर निकाल देंगे।"
- o (क) "वो तो आते ही इंग्लिश में डिक्टेसन देना शुरू कर देते हैं।"
- o (क) "स्कूल के अन्दर का एक सिद्धांत है 'रटो, याद करो, पास हो जाओ और नेक्स्ट क्लास में'।"
- o (क) "कोई भी शिक्षक हमें प्रयोग के लिए प्रेरित नहीं करता, जिससे एक व्यावहारिक समझ बने। घर में करेंगे तो घर वाले कहेंगे - बेटा पढ़ ले, फालतू काम ना करा।"

शोधकर्ता - "जब यही बात है तो आपने सीबीएसई से संबद्ध इंग्लिश मीडियम स्कूल ही क्यों चुना?"

- o (क) "लोगों की ऐसी धारणा है कि सीबीएसई (इंग्लिश मीडियम) स्कूल बेहतर है। यदि हम किसी को बताते हैं कि हम हरियाणा बोर्ड या हिंदी मीडियम से पढ़ते हैं तो वे हमें सम्मान नहीं देंगे।"
- o (ग) "लोग सीबीएसई की पढ़ाई को ज्यादा वैल्यू देते हैं।"

शोधकर्ता - स्कूल में होने वाले भाषण आदि किस भाषा में होते हैं?

"हिंदी इंग्लिश में होते हैं। पर देहाती भाषाओं का कोई स्थान नहीं होता।"

शोधकर्ता - आप उसे किस प्रकार तैयार करते हो?

- o (क) "इंग्लिश के लिए तो इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। इंटरनेट से उतारते हैं, रटते हैं और सुना देते हैं।"
- o (ख) "हिंदी में हमें रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि इंटरनेट से लिया भी होता है तो अपने शब्दों में बता देते हैं।"

शोधकर्ता - स्कूल की असेम्बली या वार्षिकोत्सव में किस प्रकार की गतिविधियों पर जोर होता है?

- o (क) “असेम्बली में इंग्लिश प्ले करवाया जाता है। चाहे किसी को समझ आये या ना आए, पर प्ले होगा इंग्लिश में। सिर्फ ये दिखाने के लिए कि स्कूल इंग्लिश मीडियम है। प्ले का सम्बन्ध समझ से नहीं, इंग्लिश मीडियम से है।”
- o (ग) “प्रिंसिपल मैडम कहती है - हिंदी की मात्रा कम रखना।”
- o (ख) “देहाती बोलियों का प्रयोग वर्जित है।”
- o (ग) “नाटक में गँवार टाइप का आदमी दिखाने के लिए देहाती बोली का प्रयोग होता है। यदि हिंदी नाटक हुआ तो।”

दूसरा, उन बच्चों का समूह है जो उच्च स्तर के कहलाने वाले निजी विद्यालयों में पढते हैं।

यह समूह वार्ता फरीदाबाद के उच्च स्तर के कहलाने वाले पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियों के साथ की गई। यहाँ लडकियों का एक ग्रुप है। यह 12 वीं-बोर्ड कक्षा की छात्राएँ हैं तथा पढ़ाई के सम्बन्ध में गम्भीर मानी जाती हैं। समूह वार्ता का स्थान स्कूल के बाहर चलने वाला एक कोचिंग सेण्टर है। कोचिंग सेण्टर पर जो शिक्षक पढ़ाते हैं वे क्वालिफाइड हैं तथा एक मध्य स्तर के

निजी स्कूल में पढ़ाते हैं। उनकी खुद की शिक्षा क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से ही हुई है। इस ग्रुप के विद्यार्थी जिन स्कूलों से सम्बन्ध रखते हैं, उन स्कूलों के प्रबंधकों का दावा है कि उनके स्कूलों में शिक्षा का माध्यम पूर्णतया अंग्रेजी है तथा कक्षा में पूर्णतया अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता है। इन स्कूलों के प्रचार्य ने यह बात जोर देकर साक्षात्कार के दौरान कही। इस स्तर के स्कूल के दो प्रिंसिपलों के साक्षात्कार अलग खण्ड में हैं। इन स्कूलों ने कक्षा एवं स्कूल के अन्दर अवलोकन की इज्जाजत नहीं दी। इस स्तर के कुछ स्कूल के प्राचार्यों ने साक्षात्कार देने से भी मना कर दिया।

शोधकर्ता ने यह समूह वार्ता निम्नलिखित उद्देश्यों से आयोजित की -

- उन कारणों को समझना जिनकी वजह से बच्चे ट्यूशन सेण्टर की तरफ रुख करते हैं,
- इनके स्कूलों के अन्दर के वातावरण के बारे में जानना,
- स्कूल में पढ़ाई-लिखाई, सीखने-सिखाने को लेकर जो समझ है, उसे जानना।
- स्कूल तथा ट्यूशन के बाद बचे समय में बच्चों के परिवेश के बारे में समझना।

विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाएँ -

(क) “इंग्लिश मीडियम स्कूल हैं, पर हमें हिंदी (इनका हिंदी से तात्पर्य इंग्लिश से है) में ही पढाया जाता है। इंग्लिश टीचर को छोड़ कर।”

(ख) “हमें परीक्षा में इंग्लिश में लिखने में कोई दिक्कत नहीं आती। क्योंकि हम शुरू से ही इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ रहे हैं। यदि शुरू से ना पढ़ रहे होते तो जरूर दिक्कत आती।”

(ग) “दसवीं कक्षा तक इंग्लिश पर विशेष जोर होता है पर 11वीं 12वीं में यह प्रेशर खतम हो जाता है। टीचर और स्टूडेंट अपनी सुविधा के अनुसार बोलते हैं।”

(घ) “कॉन्वेंट स्कूल में भाषा को लेकर सख्त नियम है। वहाँ हम किसी-भी क्लास में हिंदी नहीं बोल सकते, हर क्लास में इंग्लिश अनिवार्य है।”

शोधकर्ता - “कब आप बेहतर समझें जाओगे। समाज की प्रतिष्ठा का भाषा से कोई सम्बन्ध है। आपको कब ज्यादा अवसर मिलेंगे।”

(ख) “अवसर तो तब ही ज्यादा मिलेंगे जब इंग्लिश में बोलेंगे।”

(क) “यदि बाकि सब विषयों में कितना भी बेहतर कर लूँ पर यदि इंग्लिश में बेहतर नहीं कर सकी तो मेरी जिंदगी खराब है।”

(घ) “किसी भी मल्टीनैशनल कंपनी में जाना है तो इंग्लिश जरूरी है।”

(ड.) “इंटरव्यू के दौरान पर्सनालिटी का मूल्यांकन इंग्लिश के आधार पर ही होता है। स्कूल में बताया जाता है कि यदि इंग्लिश अच्छी है तो ही आप ग्रो कर सकते हो।”

शोधकर्ता - अच्छा जॉब, इंटरव्यू के अलावा भी कहीं और इंग्लिश सहायता करती है?

(क) “हाँ! कॉलेज इंटरव्यू में इंग्लिश हेल्प करती है। एडमिशन के बाद भी टीचर को इम्प्रेस करने में इंग्लिश हेल्प करती है। टीचर भी चाहते हैं कि इंग्लिश बोलने वाले बच्चे ही कॉलेज में आएँ क्योंकि यदि बाहर जाते हैं और जब जॉब इंटरव्यू को फेस करते हैं तो उनके साथ कॉलेज का नाम भी जुड़ा होता है। स्टूडेंट यदि इंटरव्यू में चुना जाता है तो इससे कॉलेज का रेप्युटेशन भी बढ़ता है।”

(घ) “मैं सहमत नहीं हूँ/ आई डोंट एग्री.” उन विद्यार्थियों में से घ ने अपने से पहले वाले वक्ता का विरोध करते हुए कहा “इंटरव्यू में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कौन-सी लैंग्वेज का प्रयोग करते हो। आप जिस भी लैंग्वेज का प्रयोग करो पर बेहतर तरीके से करो।”

(ड.) “यदि आपका इंग्लिश में कमांड नहीं है तो उसमें क्यों बोलना? आप जिस भी भाषा में बोलो, पर वो ही बोलो, जिसमें आप सुविधा अनुभव करते हो। हिंदी में यदि सुविधा अनुभव करते हो तो हिंदी का ही प्रयोग करो। इंग्लिश में बोलते वक्त यदि दिक्कत अनुभव होती है तो इंग्लिश के स्थान पर हिंदी का प्रयोग करो।”

क ने विरोध करते हुए कहा, “परीक्षा में तो इंग्लिश में ही लिखना पड़ता है।”

जिसका जबाब ड. ने दिया, “परीक्षा और इंटरव्यू दो अलग-अलग बातें हैं, एग्जाम में सोचने का वक्त है पर इंटरव्यू में नहीं। हम एग्जाम में सोच कर लिख सकते हैं। पर इंटरव्यू में तो तुरंत जबाब देना होता है। इसलिए इंटरव्यू में हमारी लैंग्वेज ही बेहतर है।”

इंटरव्यू में इंग्लिश का प्रयोग हो या बोलचाल की भाषा का, इस विषय को लेकर ग्रुप में गहरा मतभेद है। एक ग्रुप मानता है कि इंटरव्यू में इंग्लिश सहायक है। उसके अनुसार इंटरव्यू इंग्लिश में ही होना चाहिए। दूसरा मानता है इंटरव्यू की भाषा वह होनी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों को सुविधा हो।

(क) “कॉलेज में दाखिले में अब मार्क्स के आलावा इंटरव्यू की भी भूमिका है।” अ छात्र ने जोड़ा और “और वो इंटरव्यू इंग्लिश में होता है।”

(ख) “सरकारी स्कूल के विद्यार्थी वहाँ सहज अनुभव नहीं करते।”

(घ) “सरकारी स्कूल के बच्चे मैनर के मामले में काफी पिछड़े होते हैं। उनकी भाषा भी प्रॉपर नहीं होती। हिंदी में भी कई बार काफी रूढ़ चले जाते हैं। (अर्थात् देहाती बोलियों का प्रयोग करते हैं)

(क) “क्रिश्चियन स्कूलों का अनुशासन सख्त है। वहाँ ड्रेस आदि के साथ भाषा को भी सख्ती से लागू किया जाता है। यदि कोई बच्चा हिंदी बोलता है तो उसे फाइन भरना पड़ता है।”

(ग) “भारत की इंग्लिश यूएसए तथा यूके से भिन्न है और यदि हम पहली बार किसी विदेशी से मिलते हैं तो दिक्कत होगी ही।”

शोधकर्ता - "देहाती बोलियों में साइंस पढना सम्भव है या नहीं है।"

"नहीं है।" सभी एक साथ।

(ग) "हिंदी की मुख्य समस्या वैज्ञानिक शब्दावलियों को लेकर आती है। काफी टफ होती है।"

(ख) "मुझे तो अभी-से डर लग रहा है। कॉलेज में एक सब्जेक्ट हिंदी भी पढना पड़ेगा।"

उच्च मध्यम वर्गीय विद्यार्थियों का मानना है कि देहाती भाषा में पढाई नहीं हो सकती।

शोधकर्ता - "स्कूल, आने जाने तथा ट्यूशन में कितना समय खर्च होता है।"

(क) "हमारा स्कूल 6 घंटे + 2 घंटे की बस यात्रा + 3 घंटे का ट्यूशन आना जाना।"

शोधकर्ता - "इंग्लिश कहाँ-कहाँ जरूरी है।"

क ने कहा, "मेरी एलएलबी करने वाली बहन ने बताया हाईकोर्ट तथा सुप्रीमकोर्ट में बहुत हाई स्तर की इंग्लिश चाहिए होती है।"

(ख) “इंग्लिश जिसकी अच्छी है वो इंग्लिश कि वजह से डोमिनेंट करेगा। बेशक दूसरे विषयों में कमजोर ही क्यों न हो।”

(ग) “हमें बचपन से सिखाया जाता है कि इंग्लिश में बोलो, इसलिए हमारी यह धारणा है। वरना कोई भाषा बेकार नहीं”

अध्याय-12

प्राचार्य : अंग्रेजी माध्यम के संरक्षक

क्या अंग्रेजी माध्यम स्कूल, अपने विद्यार्थियों के सामुदायिक सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश को अपने स्कूली परिसर में स्थान दे रहे हैं? इस बात का पता लगाने हेतु प्रबंधकों/प्राचार्यों से बातचीत की गयी एवं अवलोकन करके स्कूल परिसर के अन्दर और उसके बाहर के वातावरण का पता लगाया गया।

स्कूल प्राचार्यों/प्रबंधकों को इस अध्ययन में समाहित करने की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी क्योंकि यह वर्ग ही स्कूली परिसर के मानदंड तय करता है। वे ना केवल उन मानदंडों के अनुरूप शिक्षकों एवं विद्यार्थियों (कानूनी दबाव के बावजूद भी) का चयन करते हैं अपितु स्कूली परिसर में उन नियमों और मानदंडों के अनुरूप चलने की पूरी व्यवस्था भी करते हैं। प्राचार्य और प्रबंधक ही विद्यार्थी, अभिभावक और शिक्षक के बीच के लिंक को स्थापित करता है।

इस उद्देश्य की पुष्टि के दौरान शोधकर्ता यह पता लगाना चाहता है कि स्कूल परिसर का वातावरण विद्यार्थी के परिवेश-विशेष की संस्कृति को कितना समाहित कर पाया।

इसका पता लगाने हेतु शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए गए-

प्राचार्यों का असंरचित साक्षात्कार,

स्कूलों का अवलोकन (नोट- बहुत से स्कूलों में इसकी इजाजत नहीं मिली),

स्कूल-अध्यापकों का साक्षात्कार,

उन लोगों से बातचीत की, जो अमूमन स्कूली वातावरण का निकट से अवलोकन करते हैं, जैसे- चपरासी, गेटकीपर, कैंटीन-वाले, स्कूल के बाहर खड़े रिक्शा वाले।

प्राचार्यों का असंरचित साक्षात्कार एवं स्कूलों के अवलोकन से जो मुख्य बिंदु निकल कर आए, वे इस प्रकार हैं।

शोध एवं लेखन का उद्देश्य किसी व्यक्ति एवं संस्था विशेष पर व्यक्तिगत हमला करना नहीं है। इसलिए व्यक्ति एवं संस्थाओं के वास्तविक नाम को उजागर करने के स्थान पर A, B, C, D जैसे काल्पनिक नाम दिए हैं। सुविधा के लिए जो स्कूल का नाम है, उसी नाम से प्राचार्य एवं प्रबंधकों को संबोधित किया गया है।

अतिविशिष्ट माने जाने वाले इस प्रतिष्ठित स्कूल को हम A नाम देते हैं और उसके प्राचार्य के संबोधन के लिए भी A नाम का प्रयोग करेंगे।

A स्कूल के मुआयना करने दौरान निम्नलिखित मुख्य बिन्दु उजागर हुए :-

स्कूल A के अवलोकन में पाया कि यह स्कूल ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बीच स्थित है।
स्कूल परिसर में स्कूल बसों का एक बड़ा काफ़िला (लगभग 40-50 बसों का या इससे भी ज्यादा) मौजूद है। यह इस बात का संकेत है कि इस स्कूल में स्कूल से दूर के विद्यार्थी आते हैं।
बस ड्राइवरों से बात करने पर ज्ञात हुआ कि शहर और गाँव की सरहद पर स्थित इस स्कूल में शहर के पॉश इलाकों से विद्यार्थी आते हैं। ग्रामीण क्षेत्र से विद्यार्थी न के बराबर हैं।
न केवल स्कूल के आधे ग्राउंड को इन बसों ने घेर रखा है अपितु स्कूल के बाहर भी बड़ा क्षेत्र इन्हीं बसों के कब्जे में है।
स्कूल ऑफिस के बाहर एक सुन्दर 'लॉन' है, जो बाहर से आने वाले आगंतुकों को आकर्षित करता है। पर यहाँ एक भी बच्चा उछल-कूद करता नहीं दिखा। ना ही स्कूल के ग्राउंड में कोई बच्चा खेलता दिखा।
आम तौर पर स्कूलों में जो शोरगुल सुनाई पड़ता है, वह इस स्कूल में नहीं है। स्कूल परिसर में शांति है।
स्कूल की बिल्डिंग तथा साफ-सफाई किसी पाँच सितारा होटल से कम नहीं (जिसका दावा भी प्राचार्य ने अपने साक्षात्कार में किया)। स्कूल परिसर फुल्ली एसी अर्थात् पूर्ण वातानुकूलित है।

स्कूल में कक्षाओं के निरीक्षण की इजाजत शोधकर्ता को नहीं मिली।

स्कूल परिसर में जगह-जगह कैमरे लगे हैं।

प्राचार्य-कक्ष में प्रवेश करने पर पाया कि प्राचार्य एक पिता को स्कूल में प्रवेश हेतु लिये जाने वाले टेस्ट की जानकारी दे रहे हैं। टेस्ट 'इंग्लिश', 'मैथ्स', 'साइंस' का होगा, जिसमें इंग्लिश का स्तर उच्च रहेगा। यह भी प्राचार्य साथ-साथ स्पष्ट कर रहे हैं। प्राचार्य का संक्षिप्त परिचय यह है कि वे एक वे फरीदाबाद में देश के प्रतिष्ठित स्कूल ब्रांड के संस्थापक प्राचार्य (फाउंडर प्रिंसिपल) रह चुके हैं। उन्होंने तीस साल तक उस स्कूल में प्राचार्य के रूप में काम किया है। रिटायरमेंट के बाद उन्होंने ये स्कूल किसी बिज़नेस फ़र्म के साथ मिल कर खोला है।

प्राचार्य ने साक्षात्कार के दौरान बताया कि -

“जिस परिवेश के बच्चे की आप बात कर रहे हैं, वह हमारे यहाँ नहीं पढता। स्कूल में आने वाले सभी छात्र उच्च-मध्यम वर्गीय परिवारों के हैं, जिनके माता-पिता भी 'क्वालिफाइड' हैं। माता-पिता के 'क्वालिफाइड' होने से तात्पर्य है वे माता-पिता जिन्होंने विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर रखी हो तथा जो अंग्रेजी बोलना जानते हों।” इस प्रकार जब प्राचार्य ने विद्यार्थी के परिवेश में उसके माता-पिता को ही समाहित किया, तो माता-पिता के अलावा, परिवार के अन्य सदस्यों, जैसे- ताया-ताई, दादा-दादी, तमाम नातेदारी, आस-पड़ोस, रिक्शेवाले,

ठेलीवाले आदि की भूमिका को नकार दिया। बार-बार उकेरने पर भी यही कहा कि शहरी नव-मध्यमवर्गीय परिवारों में बच्चे का अधिकतर संपर्क अपने माता-पिता से ही होता है, उनके दोस्त भी उसी स्तर के होते हैं। इस स्कूल में आने वाले सभी विद्यार्थी अच्छे इलाकों के होते हैं... और उनके अनुसार वहाँ भी बोलचाल के लिए इंग्लिश और हिंग्लिश का प्रयोग होता है।

जब प्राचार्य ने इस बात से इंकार कर दिया कि उनके इलाको में आने वाले छात्रों में ग्रामीण एवं निम्न मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के लोग नहीं हैं, तो शोधकर्ता ने अंतिम हथियार के तौर पर आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस / EWS) की बात की। इस पर कुछ इस प्रकार-से जबाब प्राप्त हुए-

“कानून बनाने से क्या होता है। आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस/EWS) का कोई भी विद्यार्थी इस स्कूल में नहीं है और ना ही कभी पढ़ सकता है।”

“गलती से कभी आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस/EWS) का कोई विद्यार्थी आ भी गया तो यहाँ टिक नहीं पायेगा। सरकार के नियम के अनुरूप सिर्फ ‘फीस’ ही तो माफ की जा सकती है। स्कूल में चलने वाली अन्य गतिविधियों का तो मूल्य देना पड़ेगा, जैसे- बस ‘यूज’ करेगा तो बस का चार्ज देगा। रेडीमेड ड्रेस और छपे-छपाए नोट्स के पैसे अलग से देने होंगे। यह बिल्डिंग और उसकी साफ-सफाई सरकारी वाली तो है नहीं। तो क्या उसका चार्ज अलग-से नहीं होना चाहिए। फिर स्कूल में समय-समय पर चलने वाली अन्य गतिविधियों का खर्च भी तो होता है, जैसे- टूर, पिकनिक आदि क्योंकि हमारे बच्चे ऐसी-वैसी जगह तो जाते नहीं हैं।”

आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस/EWS) के विद्यार्थी के माता-पिता हमारे स्कूल के अन्य खर्च वहन नहीं कर सकते।” शोधकर्ता प्राचार्य की व्यक्तिगत ईमानदारी एवं स्पष्टता की कद्र करता है। जिस ईमानदारी और स्पष्टता से उन्होंने ये बात कबूल की है कि एलीट वर्ग के लिए खुले उच्च दर्जे के निजी अंग्रेजी माध्यमस्कूलों का वातावरण, निम्न दर्जे के स्कूलों के अनुरूप नहीं है। यह बात शायद आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस /EWS) को 25% सीट उपलब्ध कराने की वकालत करने वाले तथाकथित शिक्षाविद् ने भी नहीं की हो। वे इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था को ‘इन्क्लुसन’ (समावेशन) की संज्ञा देते हैं।

शोधकर्ता ने इसी प्रकार के इन्क्लुसन (समावेशन) का एक नज़ारा जसोला विहार स्थित गुड स्मार्टन स्कूल में अपने शिक्षण अनुभव के दौरान देखा। यह एक अंग्रेजी माध्यमका स्कूल है, पर यहाँ आने वाले विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या दिल्ली के स्लम इलाकों की है। माता-पिता में इंग्लिश के प्रति जो क्रेज़ है। उसकी वजह से वे अपने बच्चों का दाखिला चैरिटी के नाम पर खुले इस स्कूल में करवा रहे हैं। इस स्कूल में आने वाला पैसा भी अमेरिका और ब्रिटेन स्थित विदेशी संस्थाओं का है। चूँकि यह स्कूल गरीब बच्चों को शिक्षित कराने का काम करता है अतः दिल्ली सरकार ने इस स्कूल को मुफ्त के बराबर मूल्य पर ज़मीन भी दी है। पर होता क्या है कि मध्यमवर्गीय एवं स्लम इलाकों अर्थात् दोनों क्षेत्रों से आने वाले बच्चों में स्लम इलाकों के बच्चे पिछड़ते जाते हैं। दो सेक्शन में बँटे दो वर्गों के बच्चों में स्लम इलाकों के बच्चे अधिक उद्वंड घोषित कर दिए जाते हैं। ‘फ़्लूएंट इंग्लिश’ में पढ़ाने वाले इन शिक्षकों के अनुसार ये बच्चे कक्षा में पढ़ने में रुचि ही नहीं लेते। जबकि हकीकत यह है कि जो विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है, वह उनके पल्ले ही नहीं पड़ता है और नतीजा

यह निकलता है कि आठवीं- नवीं कक्षा तक दो सेक्शनों में बटे दो वर्गों के ये बच्चे जब नवीं कक्षा से फेल होना प्रारंभ होते हैं तो बारहवीं कक्षा तक सिर्फ मध्यम वर्ग के ही बच्चे शेष रह जाते हैं। यदि इस अनुभव को प्राचार्य A के वक्तव्य के साथ जोड़ कर देखें तो A प्राचार्य का वक्तव्य अधिक ईमानदार एवं स्पष्ट है।

प्राचार्य ने आगे कारण स्पष्ट करते हुए बताया, “आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस/EWS) का विद्यार्थी हमारी अंग्रेजी की परीक्षा कभी पास ही नहीं कर सकता। हमारे यहाँ तो नर्सरी से ही सभी विषय अंग्रेजी में ही पढाये जाते हैं। जबकि शिक्षा अधिकार अधिनियम के तहत आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ईडब्ल्यूएस / EWS) के लिए की गयी आरक्षण की व्यवस्था पहली कक्षा से प्रारंभ होती है। इस प्रकार पहली कक्षा से जिस बच्चे का दाखिला होगा वह उन बच्चों के सामने कैसे टिक पायेगा, जो नर्सरी कक्षा से ही अंग्रेजी में पढ़ रहा है।” अतः स्पष्ट होता है कि पहली कक्षा से ही, दोनों वर्गों से आने वाले विद्यार्थियों में अंग्रेजी भाषा एक भेद बना कर रखती है।

प्राचार्य के अनुसार “अंग्रेजी माध्यममें पढने के लिए शुरू से इंग्लिश होना जरूरी है, आप सोचो कोई बच्चा आठवीं कक्षा में आकर यदि अंग्रेजी में पढ़े तो नहीं पढ़ पायेगा। और बड़ी कक्षा में तो और अधिक दिक्कत होगी।”

जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि आप अंग्रेजी के अनुरूप शिक्षण के लिए माहौल कैसे तैयार करते हैं? तो इस संबंध में प्राचार्य का स्पष्ट जबाब था, “शिक्षकों को नियुक्त कर के” “कैसे?” “हम उनको ही शिक्षक नियुक्त करते हैं जो शुरू से अंग्रेजी माध्यमसे अच्छे पब्लिक (प्राइवेट) स्कूल में पढ़े हों, अच्छी ‘यूनिवर्सिटी’ के ‘ग्रेजुएट’ और ‘पोस्ट-ग्रेजुएट’ हों। कुल मिलाकर उसकी ‘स्पोकन इंग्लिश’ अच्छी होनी

चाहिए और दूसरा हम एडमिशन भी उन्हीं 'बैकग्राउंड (पृष्ठभूमि) के बच्चों को देते हैं, जिनके माता-पिता का बैकग्राउंड अच्छा हो।" अर्थात् स्कूल के शिक्षक एवं माता-पिता दोनों का बैकग्राउंड अंग्रेजी माध्यमकल्चर का होने पर ही उन्हें स्कूल परिसर में प्रवेश मिलता है।

"स्कूल में बातचीत सिर्फ इंग्लिश में ही होती है। कोई शिक्षक बच्चों से हिंदी में बात नहीं कर सकता। "

जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि ऐसी आवश्यकता क्यों पड़ी, इस बात पर प्राचार्य का स्पष्ट मानना है कि इंग्लिश के बिना वह कहीं टिक नहीं सकता है। ना 'हायर एजुकेशन' में, न एम.एन.सी. में, ना वर्ल्ड के किसी कोने में, उसे दूर छोड़ो आपके साउथ (भारत देश के साउथ) में भी बिना इंग्लिश के नहीं पहुँचा जा सकता।

जब प्राचार्य से यह पूछा गया कि जापान, जर्मनी, रूस, चीन आदि देश कैसे टिके? "आपके पास अपने वेद नहीं हैं, जर्मनी में उसका जर्मन अनुवाद है, आज अमेरिकन संस्कृत सीख रहे हैं।"

कुछ विशेष बातें जो प्राचार्य से संबंधित हैं वो ये कि ये देश के सबसे प्रतिष्ठित निजी स्कूल ग्रुप की फरीदाबाद इकाई के 'फाउंडर प्रिंसिपल' रह चुके हैं और वर्तमान में नव-स्थापित प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यमस्कूल के 'प्रिंसिपल डायरेक्टर' हैं। मात्र हिंदी बोलने पर

शिक्षकों को घर का रास्ता दिखाने और देहाती बोलने पर बच्चों को टी.सी. थमाने वाले प्राचार्य A के टेबल पर हिंदी का अखबार नवभारत टाइम्स रखा था, जो आजकल हिंगलिश में छपता है।

जब स्कूल के बाहर खड़े स्कूल के वॉचमैन से बात करनी चाही तो उसने जबाब देने से मना कर दिया। पर साथ खड़े ड्राइवर ने बताया, “बच्चे इतने अच्छे स्कूल में पढ़ते हैं पर कई बार बस में ऐसी-ऐसी हरकतें करते हैं कि हमें शर्म आ जाती है। अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नहीं हैं।”

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्कूल A के आस-पास के ग्रामीण सामुदाय की संस्कृति का स्कूल परिसर में कोई स्थान नहीं है। नव-धनाड्य उच्च-मध्यम वर्गीय परिवारों के बच्चे ही यहाँ टिक सकते हैं। शहरों में भी माता-पिता के आगे किसी और को बच्चे के परिवेश में शामिल नहीं करते हैं। आस-पड़ोस तो दूर, नाते-रिश्तेदार भी परिवेश में नहीं आते हैं। पिकनिक और टूर के लिए जो जगह चुनी जाती है, वह प्राकृतिक परिवेश ना होकर अम्यूजमेंट पार्क तथा यू.एस.ए. स्थित नासा है।

B स्कूल एवं B प्राचार्य (काल्पनिक नाम)

181

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’, टैट इज ‘अंग्रेजी राज’ : ‘अष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’ (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN – 978-93-5156-895-7)
लेखक – अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

स्कूल B भी फरीदाबाद का एक अंग्रेजी माध्यम का एक नव स्थापित प्रतिष्ठित विद्यालय है। शोधकर्ता को स्कूल परिसर में विस्तारित अवलोकन की इजाजत तो नहीं मिली परन्तु जहाँ तक वह देख पाया, स्कूल के क्लास-रूम आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न हैं। स्कूल में 'प्राइमरी विंग' की कक्षाओं में स्मार्ट-बोर्ड लगे हुए हैं। शोधकर्ता अवलोकन हेतु जिस वक्त वहाँ पहुँचा, उस वक्त वहाँ कुछ माता-पिता बच्चों के प्रोफाइल-बुक के लिए फोटो खिंचवाने आए हुए थे। माता-पिता से बातचीत करने पर पता चला कि स्कूल में प्राथमिक कक्षाओं में कम बच्चे रखे जाते हैं ताकि हर बच्चे पर अधिक ध्यान दिया जा सके और एक बात जो और उन्होंने बतायी वह यह थी कि स्कूल में 'अंग्रेजी माध्यमके अनुरूप इंग्लिश स्पीकिंग कल्चर' है। (नोट- लेखक ने 'अंग्रेजी माध्यमकल्चर' और 'इंग्लिश स्पोकन कल्चर' इन सज्जन से ही उधार लिया।) पर इस इंग्लिश स्पीकिंग कल्चर वाले स्कूल में काफी मिन्नत-मशक्कत के पश्चात् ही प्राचार्य के साक्षात्कार का मौका मिला।

प्राचार्य B के अनुसार -

“इंग्लिश स्पीकिंग कल्चर से तात्पर्य उस कल्चर से है जहाँ बच्चे हर समय इंग्लिश ही बोलते हों।”

“स्कूल में बोलचाल पूर्णतः अंग्रेजी में होती है। यदि विद्यार्थी को शिक्षक से कुछ भी पूछना है तो उसे अंग्रेजी में ही पूछना होगा।

यदि कोई छात्र क्षेत्रीय भाषा या हिंदी में बोलता भी है तो शिक्षक जबाब नहीं देता।”

प्राचार्य ने अपना ही उदाहरण देते हुए कहा, “यदि मेरे पास कोई बच्चा आकर क्षेत्रिय भाषा या हिंदी में बोलता है तो मैं कोई जबाब नहीं देती।” प्राचार्य के अनुसार वे कह देती है, “माय इअर कान्ट हियर व्हाट यू हैव स्पोकन / My ear can't hear what you have spoken.” (आपने जो कुछ भी बोला उसे मेरे कान नहीं सुन पाए)

“हमारे यहाँ क्लास रूम में पूर्णतः अंग्रेजी का प्रयोग होता है। शिक्षक अपना ‘लेक्चर’ अंग्रेजी में ही देता है। यदि किसी बच्चे को कुछ पूछना भी होता है तो वह सिर्फ अंग्रेजी में ही पूछता है।”

“स्कूल में होने वाली तमाम गतिविधियाँ, सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी में ही होती हैं, जैसे- डिबेट, असेम्बली आदि”

“समय-समय पर बाहर से अतिथि (गेस्ट) बुलाये जाते हैं वो भी सिर्फ अंग्रेजी में ही बोलते हैं और बच्चों को भी इंग्लिश स्पीकिंग के लिए मोटिवेट करते हैं।”

“इस प्रकार स्कूल में इंग्लिश के शिक्षण हेतु वातावरण बनाने के लिए हिंदी, क्षेत्रिय भाषाओं और बोलियों पर पूर्ण रोक लगा दी जाती है।”

आगे, जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि क्या आपके स्कूल में क्षेत्रिय भाषा, हिंदी एवं क्षेत्रिय बोलियों जैसे हरियाणवी, गुर्जरी आदि का बिलकुल-भी प्रयोग नहीं होता? इस प्रश्न के जबाब में आगे प्राचार्य ने बताया, “ऐसा भी नहीं है कि हम हिंदी का प्रयोग ही नहीं

करते 'पेट्रियोटिक डेज़' पर हिंदी का इस्तेमाल किया जाता है। उन दिनों में हम प्यूर (शुद्ध) हिंदी (Pure Hindi) का प्रयोग करते हैं। अर्थात् स्पष्ट है कि क्षेत्रीय बोलियों के लिए कोई स्थान नहीं है।

“पर आज समस्या यह आन खड़ी है कि बच्चे ना तो अच्छी हिंदी जानते हैं ना ही इंग्लिश”

जब शोधकर्ता ने जानना चाहा कि किस प्रकार बाहरी वातावरण को स्कूली परिवेश में समाहित करते हैं। इस पर प्राचार्य ने जो जबाब दिया वह सवाल को 'बाई-पास' करने वाला था। “हम माता-पिता से कहते हैं कि आप इंग्लिश नहीं बोल पाते, कोई बात नहीं, आप अपने बच्चों को प्रोत्साहित करो कि वे घर में भी अंग्रेजी ही बोलें।”

जब शोधकर्ता ने और अधिक स्पष्टीकरण चाहा कि आप बहरी वातावरण को किस प्रकार स्कूली वातावरण में समाहित करते हैं। प्राचार्य का जबाब था, “हम विद्यार्थी को न्यूज़पेपर पढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं।”

अब शोधकर्ता ने अपने प्रश्न को और अधिक स्पष्ट किया और उदाहरण देकर पूछा, जैसे- पंचायत के कार्य को लेकर होने वाली बातचीत, दुकानदारों से होने वाली बातचीत, आस-पड़ोस के लोगों, रिक्शेवालों-ठेलेवालों से होने वाली बातचीत आदि... आदि...

इस पर प्राचार्य का जबाब था, “वे (विद्यार्थी) सुनते जरूर हैं पर सोचते अंग्रेजी में ही हैं। इंग्लिश में ट्रांसलेट करने से इंग्लिश नहीं आएगी। अंग्रेजी में सोचना होगा। अतः हम अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते हैं कि वे अंग्रेजी में ही सोचें।”

स्कूल में अध्यापक और प्राचार्य के आलावा भी तो अन्य स्टाफ है। “पब्लिक स्कूलों के अन्दर मेड को भी प्रशिक्षण दिया जाता है, जैसे छोटे बच्चों को उनसे बोलना ही क्या होता है- आंटी वाश हैंड / Anti wash hand... और मेड समझ जाती है। अंग्रेजी माध्यमस्कूलों में मेड को भी एटिकेट्स सिखाए जाते हैं कि वो भी थोड़ी-बहुत इंग्लिश समझ ही सके।”

बड़े बच्चों के लिए “ऐसा नहीं है कि हम अपने बच्चों को हिंदी बोलने से पूर्णतः रोकते हैं। वे ड्राइवर, कंडक्टर, चपरासी आदि से हिंदी में बोल सकते हैं।”

शोधकर्ता - “क्या क्षेत्रीय भाषा-बोली में भी?” नहीं, हमारा कोई भी स्टाफ ‘रफ़ भाषाओं’ का प्रयोग नहीं करता। ये पब्लिक स्कूल के एटिकेट्स के खिलाफ है।

शोधकर्ता ने आगे जानना चाहा, “क्या इतना होने के बावजूद भी बच्चे इंग्लिश में समझ बना पाते हैं?”

प्राचार्य ने अपनी विवशता जाहिर की - “देखिये, बच्चे हमारे पास छः घंटे ही रहते हैं। शेष समय वे अपने घर पर ही रहते हैं। उनके इंग्लिश में समझने की क्षमता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उनके घरों में अंग्रेजी का प्रयोग कितना होता है।”

C स्कूल तथा उस स्कूल के प्राचार्य C

स्कूल C मध्य स्तर का वह स्कूल है जहाँ की प्राचार्य इस बात को स्वीकार करती है कि उनके स्कूल में अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी का भी प्रयोग होता है। उनके अनुसार उनके स्कूल में आने वाले अधिकतर विद्यार्थी उन निम्न-मध्यम वर्गीय परिवारों के हैं, जो ग्रामीण क्षेत्र से परिवर्जित होकर शहरों में बसे हैं। पर जब उनके स्कूल में ग्रामीण परिवेश के लोगों की ग्रामीण बोलियों की बात आई तो इस विषय पर उनका कहना है कि वे अपने स्कूल परिसर में क्षेत्रीय (ग्रामीण) बोलियों के प्रयोग को वर्जित करती हैं।

पाठकों की जानकारी में दो बातें और लाना चाहेंगे। प्रथम केस स्टडी का छात्र रमेश इसी स्कूल C का विद्यार्थी है। पहले ग्रुप परिचर्चा के छात्र भी इसी स्कूल से सम्बन्धित हैं। जो बताते हैं, “प्रिंसिपल मैडम हमें साँस्कृतिक प्रोग्रामों में हिन्दी की मात्रा कम रखने को कहती हैं।” इसका अर्थ है कि साँस्कृतिक प्रोग्राम में अंग्रेजी का ज्यादा-से- ज्यादा प्रयोग किए जाने पर बल दिया जाता है। सवाल उठता है कि जब माता-पिता एवं बच्चे ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तो साँस्कृतिक कार्यक्रमों में अंग्रेजी का प्रयोग किसके लिए होता है? इसी स्कूल के संस्कृत भाषा के एक शिक्षक ने बच्चों के संस्कृत में जमा कराए प्रोजेक्ट दिखाते हुए बताया कि, “साइंस,

सोशल साइंस को छोड़िए... मैडम तो संस्कृत भी अंग्रेजी माध्यममें पढ़ाने को कहती हैं। शोधकर्ता ने चार बार प्राचार्य से मिल कर स्कूल के अन्दर का वातावरण देखना चाहा, पर स्कूल के अन्दर जाने की इजाजत नहीं मिली।

प्राचार्य के साक्षात्कार से निकले कुछ मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं -

“आज के समय में इंग्लिश के बिना चलना मुश्किल है।”

“यह लैंग्वेज एक आदमी की पर्सनालिटी को डिफ़ाइन करती है। स्टेटस, लिविंग स्टैण्डर्ड सभी, इस भाषा का प्रयोग करने वालों का लिविंग स्टाइल ही डिफरेंट है।”

एक स्कूल की ख्याति को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि वह अपने अंग्रेजी माध्यमका स्तर ऊँचा रखे।

हर स्कूल के लिए अंग्रेजी माध्यम का एक-समान स्तर बनाये रखना संभव ही नहीं है। स्कूल के अंग्रेजी माध्यम के स्तर को निर्धारित करने वाले कारको में सबसे महत्वपूर्ण है कि स्कूल का बैकग्राउंड क्या है, वह किस लोकैलिटी में स्थित है, उसमें आने वाले छात्र किन परिवारों से आते हैं।

घर का परिवेश बच्चे की भाषा को बहुत ज्यादा प्रभावित करता है।

स्कूल के मीडियम का स्तर काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि स्कूल कहाँ पर स्थित है, उसमें किस प्रकार के परिवारों के बच्चे आते हैं।

हम यहाँ बच्चों के साथ छह घंटे बिताते हैं, छह में से तीन घंटे भी उनसे इंग्लिश में बातचीत करें तो भी वे घर जाकर उसी कल्चर में ढल जाएँगे। इस प्रकार हमारे सारा प्रयास/एफर्ट बेकार जाता है।

यदि डीपीएस के साथ अपने स्कूल को कम्पेयर करें तो सिर्फ स्कूल का ही नहीं, स्कूल में आने वाले बच्चों का भी फर्क होता है। डीपीएस में आने वाला बच्चा हाई क्लास का है। यदि सर्विस क्लास भी है तो वह ऐसी-वैसी नहीं, हाई पोस्ट पर काम करने वाले माता-पिता हैं। डीपीएस में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता भी क्वालीफाईड होते हैं। वे अपने बच्चों से इंग्लिश में बात करते हैं।

जबकि हमारे स्कूल में आने वाले बच्चों के माँ-बाप छोटा-मोटा काम-धंधा करते हैं। ये लोग पढ़े-लिखे कम होते हैं, ये बच्चों के साथ इंग्लिश में बात नहीं कर सकते। हमारे यहाँ आने वाले बच्चे अपने घरों में बिहारी, मुसलमानी, गुर्जरी आदि भाषाएँ बोलते हैं।

स्कूल से निकलने के बाद वे रिक्शेवाले से, चायवाले से तो इंग्लिश में बात करेगा नहीं।

जब शोधकर्ता ने कहा कि डीपीएस का बच्चा भी तो स्कूल से बाहर निकलता है, इसका जबाब देते हुए प्रिंसिपल ने कहा, “डीपीएस का बच्चा बाहर निकल कर रोड़-साइड वाले से बात नहीं करता। उसके पेरेंट उसको लेकर अच्छे-अच्छे मॉल में जाते हैं। डीपीएस का बच्चा फाइव-स्टार होटल में जाता है, जहाँ का बैरा भी इंग्लिश में बात करता है। जबकि मेरे स्कूल के पेरेंट उसको लेकर महँगे होटलों में नहीं जा सकता। ये सब बातें भी बच्चे के इंग्लिश बोलने की क्षमता को प्रभावित करती हैं।

जिस आदमी के पास पैसा आ गया, वह भी अपने आप को हाई सोसाइटी वालों के साथ खड़ा करना चाहता है कि चलो, हम तो नहीं बोल सकते पर हमारे बच्चे तो उस कल्चर को अपनाएँ, इसके लिए वह अपने बच्चों को महँगे अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में डालना शुरू करता है तथा अपने बच्चों को हाई सोसाइटी में भेजना शुरू करता है।

अतः बच्चों की अंग्रेजी भाषा पर पकड़ लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का प्रतिफल है।

प्राचार्य के अनुसार बच्चे की भाषा पर स्कूल के शिक्षकों का भी प्रभाव पड़ता है। हर स्कूल की अपनी पेइंग कैपेसिटी होती है। मेरे स्कूल की पेइंग कैपेसिटी महँगे स्कूलों से कम है। इसलिए मेरे पास आने वाला शिक्षक भी, वो नहीं जो महँगे स्कूलों का है। मेरे पास

आने वाला शिक्षक हरियाणा बोर्ड हरियाणा की यूनिवर्सिटी का पढ़ा है। दिल्ली यूनिवर्सिटी का पढ़ा होता तो उसकी इंग्लिश बेहतर होती। मेरे यहाँ के टीचर की इंग्लिश इतनी अच्छी नहीं है। पर 'सब्जेक्ट कमांड' उतना ही है अतः मैंने उसका एक प्लस तथा दूसरा अपना माइनस देख कर उसे रख लिया है।

जैसा कि आपने बताया बच्चों का बैकग्राउंड तो नहीं है। पर पढ़ने वाले सभी सब्जेक्ट इंग्लिश में हैं तो क्या इससे बच्चों की समझ पर कोई प्रभाव पड़ता है? इसके जबाब में प्राचार्य ने कहा, "हमारे टीचर मिक्स करके पढ़ाते हैं, इंग्लिश के साथ थोड़ा हिंदी में।" पर परीक्षा में तो बच्चों को इंग्लिश में ही लिखना पड़ता है। "लिखने में यही दिक्कत आती है। हमने उन्हें सिखा रखा है कि थोड़ा याद करके लिखें। छोटी क्लास में टीचर उत्तर डिकटेट करते हैं। अर्थात् लिखवा देते हैं, बच्चे उसी को लिखते हैं क्योंकि हमारे पास कोई विकल्प नहीं है। बड़ी क्लास में भी हम बच्चे को हिंदी इंग्लिश मिक्स करके समझाते हैं। पर हम बच्चों को कहते हैं थोड़ा याद भी करे लिखें। क्योंकि अंतिम लक्ष्य होता है की बच्चे को समझ भी आना चाहिए। अतः लिखते समय थोड़ा याद भी किया। क्योंकि खुद से लिखेगा तो गलती होने कि आशंका रहती है। हम भी तो अपनी बहुत-सी बातों को लिखते हैं। लिखने-पढ़ने के लिए इंग्लिश कल्चर को डेवेलप करना इतना आसन नहीं होता।

आपके यहाँ पालक-शिक्षक-सम्मेलन (पी.टी.एम.) में क्या माँ-बाप आते हैं?

हाँ! इसे में पिता कम आते हैं पर माताएँ अक्सर आती हैं।

हमारे यहाँ स्थानीय भाषाओं का प्रयोग नहीं होने दिया जाता। के कर रहा है ये सब हमारे यहाँ नहीं चलता। हिंदी और इंग्लिश ये भाषा ही प्रयोग करें। इंग्लिश के लिए दबाव नहीं बना सकते, बस मॉरली ही मोटिवेट कर सकते हैं।

मोटिवेट करने का पहला यही तरीका होता है- हम बच्चों को समझाते हैं कि जब आप यहाँ से बाहर जाओगे तो हमारी सिखाई भाषा ही काम आएगी। चाहे जॉब के लिए जाओ या यूनिवर्सिटी में पढ़ने हेतु।

मोटिवेट करते समय समझाने के पाँच मुख्य बिंदु इस प्रकार से हैं-

पहला पर्सनालिटी,

आपके पेरेंट ने आपको यहाँ डाला ही इसलिए है ताकि आप वो चीज़ सीख कर जाएँ जो वे आपमें चाहते हैं। स्कूलिंग क्या होता है- पॉलिशिंग। हमारा मिशन तो तब ही सार्थक होता है जब बच्चा पॉलिश हो जाय। आप पॉलिश तक माने जाओगे, जब आपकी लैंग्वेज (इंग्लिश) इम्प्रूव होगी।

यदि इंग्लिश नहीं आती तो ऐसा स्टूडेंट कॉलेज में जाकर काम्प्लेक्स अनुभव करेगा।

भाषा ना आने की अवस्था में आगे की शिक्षा में थोड़ी बाधा आएगी।

स्कूल के स्तर पर जो बच्चा नहीं सीख पाता है उसे कॉलेज के स्तर पर सीखना ही पड़ेगा क्योंकि इसके बिना काम नहीं चल पायेगा।

आप असेंबली किस तरह करते हैं?

असेम्बली में गायत्री मन्त्र होता है, हिंदी इंग्लिश में थॉट बुलवाए जाते हैं, न्यूज़ प्रेजेंटेशन होती है। इनके लिए मूलतः इंग्लिश का इस्तेमाल होता है।

प्राचार्य D , स्कूल D

स्कूल D के अवलोकन से जो मुख्य बिंदु निकल कर आये वो कुछ इस प्रकार हैं-

यह स्कूल ग्रामीण और शहरी फ्रिंज इलाके में स्थित है। इस स्कूल में ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्र के विद्यार्थी भी आते हैं। स्कूल के सामने दुकान चलाने वाले एक दुकानदार ने बताया कि शुरू में तो सिर्फ शहरी बच्चे ही स्कूल में आते थे पर जैसे-जैसे ग्रामीण क्षेत्र में जमीनों के रेट (मूल्य) बढ़ते गए इस स्कूल में और आस-पास के दूसरे स्कूलों (शहर के बीच स्थित) में भी गाँव की तरफ़ के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है। साथ खड़े एक दूसरे शख्स ने इसमें एक तथ्य जोड़ा, “गाँव और शहर के बीच यहाँ एक नहर है। नहर के ऊपर संकरा पुल है। आप सुबह सात बजे आ जाओ, अक्सर उस पर जाम मिलेगा और यह जाम स्कूल की बसों की वजह से होगा।”

अतः इस स्कूल को अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए अपने स्तर को शहरी क्षेत्र के अन्य स्कूलों के बराबर रखना है। स्कूल के कार्यालय एकाउंटेंट से मिली जानकारी के अनुसार, “यहाँ बच्चे तो दोनों क्षेत्र के आते हैं। पर शिक्षक लगभग सभी शहरी ही हैं। स्कूल में बच्चों की इंग्लिश को सुधारने पर विशेष जोर दिया जाता है। नई प्रिंसिपल थोड़ी लिबरल है, पहले के डायरेक्टर तो बहुत सख्त थे।”

काफी इंतज़ार एवं तीन चार बार फोन पर संपर्क करने के बाद प्राचार्य ने मिलने का समय दिया था। प्राचार्य ने अपने साक्षात्कार के दौरान जो साक्ष्य/तथ्य दिए, वे नीचे प्रस्तुत हैं -

प्राचार्य D ने कहा :-

“हमारे स्कूल में ग्रामीण तथा शहरी दोनों बैकग्राउंड के बच्चे आते हैं।

शहरी ग्रामीण क्षेत्र से मिडल, लोअर-मिडल क्लास दोनों के स्टूडेंट आते हैं। दोनों बैकग्राउंड में भाषा का अंतर है।

यदि आप शुरू से (नर्सरी कक्षा से) बच्चे को एडमिशन देते हो तो शहरी ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों में कोई फर्क नहीं आता है, पर यदि कोई बच्चा हिंदी मीडियम से इंग्लिश में बड़ी उम्र में आता है तो दिक्कत आती ही है।

बीच में आने वाले विद्यार्थियों की 'लर्निंग हेम्पर' (सीखने में बाधा) होती ही है।

इंग्लिश को लागू करने के पीछे का कारण यह है कि 200 वर्ष का इंग्लिश राज आज भी हमारे खून में, हमारी सोच में हावी है।

मातृभाषाओं को दोगुना दर्जा दे रहे हैं। कम्युनिकेशन के लिए इस देश में सिर्फ इंग्लिश का प्रयोग कर रहे हैं।

नॉन ब्रिटिश कॉलोनी वाले देश अपनी ही भाषा का इस्तेमाल करते हैं। (सही तथ्य- जो देश कॉलोनी नहीं रहे वे शिक्षा में अपनी ही भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। प्राचार्य के कहने का आशय भी यही है।)

उदाहरण देते हुए, छोटा-सा देश कोरिया, चाइना, फ्रांस सभी अपनी भाषा में शिक्षा देते हैं। यदि रूस पढ़ने जाओ तो पहले आपको रूसी सीखनी पड़ती है।

भाषा ही एक कारण नहीं, जो आपको अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान देती हो। भाषा की वजह से हम कहीं-न-कहीं आज भी गुलाम हैं। जबकि हम भारतीय भाषाओं में कहीं ज्यादा उन्नति कर सकते हैं।

इंग्लिश के लिए साँस्कृतिक वातावरण (कल्चरल एनवायरनमेंट) नहीं है और ना ही हो सकता है। ग्रामीण पृष्ठभूमि के विद्यार्थी के लिए अंग्रेजी विशेष रूप से बाधा है।

शहर का बच्चा आसानी से अंग्रेजी सीख लेता है जबकि गाँव के बच्चे के लिए यह ही समस्या है। कारण है वातावरण।

स्कूल में हमारी जिम्मेदारी अंग्रेजी पढ़ाने की नहीं अपितु पाठ्यक्रम (करिकुलम) की होती है। पर हमारी समस्या यह है कि हमें पाठ्यक्रम (करिकुलम) से हटा कर सारा ध्यान (फोकस) लैंग्वेज (इंग्लिश) पर डालना होता है।

पाठ्यक्रम (करिकुलम) में हिंदी को छोड़ सब कुछ इंग्लिश में है और बच्चों के सीखने को ये प्रभावित करेगी।

अंग्रेजी भाषा पर पकड़ ना होने की वजह से बच्चे की सीखने (लर्निंग) की प्रक्रिया प्रभावित होगी ही, और वह कभी सीख नहीं पायेगा।

अंग्रेजी माध्यम में सामाजिक संपर्क (सोशल कनेक्टिविटी) का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

40 बच्चों की कक्षा में मुश्किल से 15 बच्चे ही इंग्लिश समझ पाते होंगे, धाराप्रवाह (फ्लूएंट) तो इक्का-दुक्का ही होंगे और वे ही फिर कक्षा को प्रभावित (डोमिनेट) करते हैं।

इस समस्या से पार पाने के लिए हम दो भाषाओं (इंग्लिश एवं मानक हिंदी) को मिक्स करते हैं। बोलियों को शामिल नहीं करते।

बच्चे पर भाषाओं का दबाव रहता है। इस कारण उसके सीखने की क्षमता प्रभावित होती है।

जब वही बात अपनी भाषा में करवाई जाती है तो उसे सीखना आसान होता है और वही जब अंग्रेजी में करवाई जाती है तो सीखना कठिन होता है।

हम भाषा नहीं सिखाते, हम पाठ्यक्रम करवाते हैं और पाठ्यक्रम इस मान्यता पर बना होता है कि बच्चे को माध्यम-भाषा आती है।

पब्लिक स्कूलों (प्रतिष्ठित निजी स्कूलों की तरफ इशारा कर के) में जो पेरेंट का इंटरव्यू है वो क्या है? उस प्रक्रिया में यह ही तो देखा जाता है कि जो बच्चा आ रहा है उसकी पृष्ठभूमि/बैकग्राउंड क्या है।

बच्चा भाषा की वजह से अपने 'सामाजिक पर्यावरण / सोशल इन्वार्यामेंट' से कट (डिटैच) रहा है।

स्कूल में शिक्षक की नियुक्ति में शैक्षिक योग्यता / क्वालिफिकेशन के आलावा उसकी इंग्लिश बोलने की क्षमता भी देखी जाती है।

पुराने समय के शिक्षक जो ज्यादा क्वालिफिकेशन नहीं रखते थे पर उन्हें ज्यादा समझ होती थी, क्योंकि वे अपने पर्यावरण/इन्वार्यामेंट से ज्यादा जुड़े होते थे।

हम तो अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में रोट लर्निंग करवाते हैं। बच्चे को कोई भी जीवंत अनुभव (लाइफ एक्सपीरियंस) नहीं होता।

हम सीखने (लर्निंग) की नहीं, नम्बरों की दौड़ में भाग रहे हैं।

सीखना (लर्निंग) है तो अनुभव (एक्सपीरियंस) काउंट करो ना।

बच्चों को मुक्त करो ताकि वे अपने अनुभवों से सीख सकें। पर भाषा/लैंग्वेज रूपी बाधा/बैरियर लगते ही बच्चे की गति रुक जाती है। वह अपने सीखने में अनुभव को शामिल नहीं कर पाता।

इंग्लिश को यदि लैंग्वेज के रूप में सिखाएँ तो बच्चे जल्दी सीखेंगे, पर माध्यम के रूप में थोपने पर वही भाषा बाधा बन जाती है।

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) होता है अधिगम (लर्निंग) नहीं होता।”

ये सभी बिंदु प्राचार्य के शब्दों में, महत्वपूर्ण बिंदु रेखांकित किए गए हैं।

प्राचार्य के साक्षात्कार से मूल्यों, विश्वासों, धारणाओं एवं मानदंडों से सम्बन्धित जो बातें निकल कर आईं, वे इस प्रकार हैं-

हम आज भी 200 वर्ष की गुलामी से पैदा हुई व्यवस्था को ढोने के लिए विवश हैं।

सीखने की क्रिया तो बच्चे की अपनी ही भाषा में हो सकती है। अंग्रेजी माध्यम स्कूल में तो व्यवस्था की जरूरत अनुरूप ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) ही होता है।

जब तक भाषा की बाधा है तब तक सीखने की क्रिया कभी-भी रचनात्मक नहीं हो सकती।

समय की मांग के आगे हम विवश हैं और अपने यहाँ भी उसी मीडियम में शिक्षण करवाते हैं।

शिक्षकों की नियुक्ति का मानदंड यह है कि वह इंग्लिश फ्लूएंट होना चाहिए।

धारणा यह है कि निजी स्कूल बाज़ार की मांग के अनुरूप नहीं चलेगा तो वह बाज़ार में नहीं टिक पायेगा।

धारणा यह भी है कि माता-पिता भी अपने बच्चों को अंग्रेजी बोलते हुए सुनना चाहते हैं।

इसका परिणाम यह है कि अपना ध्यान पाठ्यचर्चा से हटा कर भाषा शिक्षण पर लगाना पड़ता है।

भाषा पर कमजोर पकड़ की वजह से निम्न वर्गीय तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे शिक्षा की इस व्यवस्था में पिछड़ते हैं।

स्कूल E तथा प्राचार्य E

स्कूल E, गाँव तथा तथा शहर को जोड़ने वाली सड़क पर स्थित है। स्कूल के पास गाड़ियों का अच्छा-खासा काफ़िला है। जो आस-पास के गाँवों से विद्यार्थियों को स्कूल तक लेकर आता है। स्कूल की बसों का रूट समझते हुए प्राचार्य ने कहा, “प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना का एक फायदा यह भी हुआ कि अब गाँवों के बच्चे भी शहरों के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भी पढ़ सकते हैं।” अपने आप को ‘इंटरनेशनल’ घोषित करने वाले इस स्कूल में पढ़ने आने वाले अधिकतर विद्यार्थी ग्रामीण परिवेश के हैं। शिक्षकों का एक वर्ग निकटतम मेट्रोपोलिटन शहर दिल्ली तथा फरीदाबाद से आता है। जबकि शेष स्थानीय शहर के हैं। पी.टी.आई. अर्थात् शारीरिक शिक्षा के शिक्षक, जिनका मुख्य काम स्कूल में अनुशासन बनाना है वो निकट के गाँव के हैं। प्राचार्य कुछ माह पूर्व ही इस स्कूल में नियुक्त हुए थे और उन्होंने अपनी प्राथमिकता को गिनाते हुए बताया कि वे इस स्कूल में तेजी से इंग्लिश का वातावरण पैदा करना चाहते हैं।

प्रस्तुत है उनसे हुई बात चीत के मुख्य अंश -

उन्होंने कहा, “मुझसे पहले जो प्राचार्य थे, वे खुद भी बोल-चाल में इंग्लिश का प्रयोग नहीं करते थे। इस कारण ना तो शिक्षक और ना विद्यार्थी ही इस दिशा में कदम बढ़ाते थे।” उन्होंने आगे बताया, “मुझे अपॉइंटमेंट लेटर (नियुक्तिपत्र) देते हुए स्कूल के प्रबंधकों ने स्पष्ट किया है कि वे इस स्कूल में *इंग्लिश मीडियम कल्चर* चाहते हैं। अतः मेरी प्रथमिकता इस स्कूल में अंग्रेजी माध्यम वातावरण पैदा करने की है।”

जब शोधकर्ता ने *इंग्लिश मीडियम कल्चर* का अर्थ स्पष्ट करने को कहा तो उन्होंने बताया, “एक ऐसा वातावरण जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी इंग्लिश भाषा में कम्यूनिकेट (संचार, बातचीत) कर सकें।”

“तो इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आप क्या कर रहे हैं?” शोधकर्ता ने आगे पूछा।

“सबसे पहले तो मेरी कोशिश है कि मैं इस स्कूल के स्टाफ़ को ही बदल दूँ और यह बात मैंने अपने प्रबंधकों को स्पष्ट कर दी है। इस शहर और आस-पास के गाँवों से आने वाले शिक्षकों का खुद अंग्रेजी भाषा पर नियंत्रण नहीं है। वे खुद हिंदी, यहाँ तक की ग्रामीण भाषाओं में बोलते पाए जाते हैं। ऐसे शिक्षक भला बच्चों को क्या अंग्रेजी बोलना सिखाएँगे।” थोड़ा रुक कर, “मैंने अपने

प्रबंधकों को स्पष्ट कर दिया है कि यदि आपको 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' चाहिए तो पहले आप अपने टीचिंग स्टाफ़ को बदलिया थोड़े महँगे पड़ेंगे, पर आप भी, x,y,z स्कूल (कुछ प्रतिष्ठित माने जाने वाले स्कूलों का नाम लेते हुए) की तरह अपने स्टाफ़ को दिल्ली अथवा फरीदाबाद से बुलवाइए। इस शहर और आस-पास के लोगों को खुद अंग्रेजी बोलनी नहीं आती, वो भला आपके बच्चों (विद्यार्थियों) को क्या इंग्लिश बोलना सिखायेंगे?"

शोधकर्ता ने इसे और अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा से पूछा, "फरिदाबाद तथा दिल्ली का टीचिंग स्टाफ़, यह बात कुछ स्पष्ट नहीं हुई।"

प्राचार्य, "हमारे शहर में जितने भी बड़े स्कूल हैं, वे अपना स्टाफ़ दिल्ली अथवा फरिदाबाद से लाते हैं।" एक प्रतिष्ठित माने जाने वाले स्कूल का नाम लेकर बताना शुरू किया कि किसका कितना-कितना स्टाफ़ बाहर से आता है। अपने आँकड़े देने के बाद प्राचार्य कुछ क्षणों के लिए रुके, फिर मुस्कुराते हुए बोले, "इस शहर के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे जहाँ इस शहर के साथ आस-पास के गाँवों से आते हैं वहीं स्कूलों की कोशिश अपने स्टाफ़ को दिल्ली और फरीदाबाद से लाने की है। *दिस इज़ ऑल मनी गेम/This is all money game ये सब कुछ पैसों का खेल है।* देखिये राजधानी के पास होने तथा शहर के विस्तार के साथ इस इलाके के लोगों की इनकम (आय) तेजी से बढ़ी है। पहले ये होता था कि शहर के खाते-पीते लोग ही अपने बच्चों को अंग्रेजी

माध्यम वाले स्कूल में पढ़ाते थे। गाँव के तथा निम्न-मध्यम वर्ग के बच्चे सरकारी स्कूल में ही पढ़ते थे। आज जिसके पास पैसा आ गया है वो अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूल में डाल रहा है। गाँव में रहने वाले की भी ख्वाहिश इंग्लिश बोलने की है। बाकी बच्चा क्या सीखता है नहीं सीखता है। यह बात उसके समझ के बाहर की ही समझो। घर पहुँचने पर पेरेंट यह नहीं पूछता कि क्या पढ़ाया, क्या नहीं पढ़ाया। वह यह पूछता है कि किस भाषा में पढ़ाया। बाकी उसकी समझ के बाहर की बात है।”

शोधकर्ता- “इस बात का फरीदाबाद तथा दिल्ली से शिक्षक बुलाने से क्या सम्बन्ध है। यदि लोकल शिक्षक होगा तो उसे बच्चों के परिवेश की अच्छी समझ होगी।”

प्राचार्य- “मैं वही तो बताने की कोशिश कर रहा हूँ। प्राइवेट स्कूलों के तेजी से ग्रोथ की वजह से जिस हिसाब से शिक्षकों की माँग बढ़ी है, उस हिसाब से अंग्रेजी में पढ़ा सकने वाले शिक्षक इस छोटे से कसबेनुमा शहर में उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए हमें अपने शिक्षक दिल्ली और फरीदाबाद से लाने पड़ते हैं। बहुत-से स्कूल तो अपने विज्ञापनों में भी इस बात को बताते हैं कि उनका स्टाफ़ दिल्ली और फरीदाबाद से आता है।”

थोडा रुक कर, प्राचार्य ने आगे कहा, “हमारे समय में माँ-बाप पूछते थे कि क्या सीखा? आज माँ-बाप पूछते हैं कि अंग्रेजी बोलना आया कि नहीं। मैं पहले एक स्कूल में पढ़ाता था वहाँ मैं उप प्राचार्य का भी काम देखता था। क्रिएटिव कामों को करवाने पर बल देने वाले एक टीचर ने बच्चों को इन्फ्लेशन का कॉन्सेप्ट समझाने हेतु बच्चों को घर में इस्तेमाल होने वाली 10 वस्तुओं के नाम लिखकर और उनके पाँच साल के अनुमानित मूल्य पता लगाने के लिए कहा था। जब घर जाकर बच्चों ने पूछा तो कुछ माँ-बाप उस शिक्षक की शिकायत करने आ गए। कि ये सर पढ़ाते कम और फालतू के काम ज्यादा करवाते हैं। आज पेरेंट इंग्लिश के पीछे इस कदर पागल हैं कि वे रवीन्द्रनाथ का प्रकृतिवाद, गाँधी जी का रचनात्मकतावाद आदि सब गौण बातें हैं। इंग्लिश बोल कर हर कोई हाई सोसाइटी के साथ जुड़ना चाहता है।”

शोधकर्ता- “आप अपने स्टाफ़ को कैसे मोटिवेट (प्रेरित) करते हैं कि वे इंग्लिश में ही पढ़ाएँ।”

प्राचार्य- “सबसे पहले तो मैंने सबको वार्निंग दे दी है कि स्कूल परिसर में हर टीचर इंग्लिश ही बोलेगा। इसका नतीजा यह निकला है कि कम-से-कम स्कूल में शिक्षकों ने देहाती भाषा में बोलना बंद कर दिया है। दूसरा, मैं जब स्कूल में राउंड पर निकलता हूँ और क्लास में जाता हूँ तो वहाँ शिक्षक से सिर्फ इंग्लिश में बात करता हूँ, ऐसी अवस्था में या तो टीचर इंग्लिश में बात करे या तौहीन करवाए।” हँसते हुए, “इनमें-से बहुतों ने इंग्लिश सीखने के लिए रेपिडैक्स तो कम-से-कम खरीद ही ली होगी। मैं भी क्या

करूँ, मेरी भी मजबूरी है। मैं इन टीचरों की निगरानी करता हूँ और इस स्कूल का चपरासी जो आठवीं क्लास भी पास नहीं है वह मेरी निगरानी करता है। वह मनेजमेंट का सबसे खास आदमी है।” शोधकर्ता की तरफ देख कर मुस्कराते हुए, “ये बात ना छाप देना। मनेजमेंट सोचता है ये बात मुझे मालूम नहीं है।”

शोधकर्ता- “माता-पिता को आप कैसे विश्वास में लेते हैं कि आगे आने वाले समय में आपके स्कूल में अंग्रेजी माध्यम के मानदंडों के अनुरूप ही शिक्षण होगा।”

प्राचार्य- “आप हँसोगे, पर मुझे करना पड़ता है। माँ-बाप मुझसे मिलने आते हैं तो मैं उनसे अंग्रेजी में बात करता हूँ। तब तक अंग्रेजी ही बोलता हूँ जब तक कि वो ना कह दे कि सर हमें कुछ नहीं समझ आया। जब वो ऐसा कहते हैं तो उसके बाद मैं उनसे शुद्ध हिंदी (मानक हिंदी) में बात करना शुरू करता हूँ। मुझसे पहले वाले प्रिंसिपल यही तो गलती करते थे। ग्रामीण माँ-बाप से ग्रामीण भाषा में ही बात करना शुरू कर देते थे। अरे! उसे ग्रामीण भाषा में ही बोलना सीखना होता तो वे अपने बच्चे को वहीं गाँव के किसी स्कूल में ना डाल देता। क्या जरूरत है उसे अपने बच्चे को 10-15 किलोमीटर दूर भेजने की।” रुक कर, “आज हर माँ-बाप अपने बच्चे को इंग्लिश में ही ग्रूम (विकसित) करना चाहता है। चाहे वो ग्रामीण हो, शहरी हो, झाड़ू लगाने वाला जमादार हो या दिहाड़ी करने वाला मजदूर। इसलिए हर एक की हैसियत के अनुरूप अंग्रेजी माध्यम के स्कूल भी हैं।”

शोधकर्ता- “बच्चों को आप इंग्लिश बोलने के लिए कैसे प्रेरित करते हैं?”

प्राचार्य- “मैं उनको कहता हूँ टूटी-फूटी बोलो, पर इंग्लिश बोलो। अभी रिसेस (मध्यांतर) की बात बताता हूँ कि एक बच्चे से दूसरे बच्चे को धक्का लग गया। बच्चे अपनी शिकायत लेकर आए। मैंने कहा इंग्लिश में बोलो तब ही सुनूँगा। बच्चों ने एक्सप्लेन किया।”

प्राचार्य ने अब अपना जीवन वृत्तांत शुरू किया, “मेरी 12 तक की शिक्षा हिंदी माध्यम से हुई है। मैंने जब बी.एससी. में दाखिला लिया तो मेरा सामना अंग्रेजी से हुआ। मैंने एम.डी. यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया था। वहाँ की सारी पढाई इंग्लिश में होती थी। मेरे घर में मुझसे बड़े मेरे भाई थे। वे आर्ट से पढ़ रहे थे। हालाँकि उनके पास एक ही सब्जेक्ट इंग्लिश का था, बी.ए. पार्ट-I में उनकी कम्पार्टमेंट आ गई। उन्हें कम्पार्टमेंट तोड़ने के दो अवसर भी मिले, पर दोनों में सफल नहीं हुए और पार्ट-I के साथ पार्ट-II में भी इंग्लिश में कम्पार्टमेंट आ गई। बस, उसके बाद तो उनके पास एक ही रास्ता था, फिर से पार्ट-I में दाखिले का और इसी शर्मिन्दगी में उन्होंने पढाई ही छोड़ दी। मुझे उनकी ये हालत देख कर घबराहट होने लगी। एक बार तो मैंने भी पढ़ने से मना कर दिया। बी.एससी. में इंग्लिश 50 नंबर की होती है और बी.ए. से आसान भी होती है। फिर फिजिक्स और केमिस्ट्री का क्या करूँ। तो समझाया ग्रामर की गलती का ख्याल ना करना। एसिड इस रियेक्टेड / आर रियेक्टेड / वाज़ रियेक्टेड, जो मन में आए, लिख देना, कैन/कूड कुछ भी। इसलिए मैं इन बच्चों को भी यही सलाह देता हूँ कि आप ग्रामर की चिंता मत करो, बस बोलो।”

शोधकर्ता- “पर क्या इस प्रकार आप अंग्रेजी बोलने की क्षमता हासिल कर पाए?”

प्राचार्य- “नहीं इसने एम.एस.सी. तक साथ दिया। थोड़ी राहत बी.एड. में मिली क्योंकि वहाँ अंग्रेजी नहीं थी। पर जब अपनी एजुकेशन (शिक्षा) पूरी करने के बाद जॉब की तलाश में आए, तब इंग्लिश की वैल्यू पता चली। एक इंटरव्यू का फीड-बैक था, मिस्टर (नाम) आपका सब्जेक्ट कमांड तो बहुत अच्छा है पर भाषा पर पकड़ ना होने की वजह से हम आपको जॉब में नहीं रख सकते। और उसके बाद मैंने तय किया कि अपनी अंग्रेजी सुधारूँगा और अंग्रेजी सुधारने का ही नतीजा है कि आज मैं यहाँ हूँ।”

स्कूल F तथा प्राचार्य F

स्कूल F पर गाँव खेतों के बीचों-बीच भिड़की गाँव के बाहरी पूर्वी छोर पर स्थित है। यह स्कूल एक नव स्थापित माध्यमिक स्कूल है। गाँव के लोगों के बीच यह स्कूल चर्चा का विषय है क्योंकि यह गाँव का पहला सीबीएसई पाठ्यक्रम से औपचारिक शिक्षा देने वाला स्कूल है। इस स्कूल में भिड़की गाँव ही नहीं, अपितु उसके आस-पास के अन्य गाँवों के बच्चे भी आते हैं।

स्कूल के प्राचार्य F से हुई वार्ता का संक्षिप्त विवरण-

“हमारे स्कूल के पास 12वीं तक की मान्यता है पर हमने तय किया है कि अपने ही विद्यार्थियों को लेकर स्कूल को आगे बढ़ाएँगे। 5वीं क्लास के बाद नए बच्चे नहीं लेंगे।”

“इसका कारण यह है कि यहाँ के लोगों की लैंग्वेज प्रॉब्लम बहुत है। 5वीं, 6वीं, 7वीं क्लास में विद्यार्थियों को लेने से स्कूल के वातावरण पर प्रभाव पड़ सकता है।”

“इन क्लासों में हम जब तक बच्चों का टेस्ट नहीं ले लेते, तब तक दाखिला नहीं देते।”

“टेस्ट इंग्लिश, हिंदी और मैथ का लेते हैं।”

“स्कूल में इंग्लिश और शुद्ध हिंदी का प्रयोग करते हैं। शुद्ध हिंदी मतलब- शहरी हिंदी।”

“स्कूल का सारा स्टाफ़ फरीदाबाद शहर से आता है। सिर्फ़ एक क्लर्क गाँव का रखा है। इधर-उधर के काम के लिए।”

“ऐसा नहीं कि इस गाँव में क्वालिफाइड लोग नहीं हैं। पर कितने भी क्वालिफाइड हों भाषा की प्रॉब्लम तो रहती ही है।”

“बच्चे की वजह से माता-पिता की भाषा में भी बदलाव आ रहा है। वे पहले से कम ‘रूढ़’ हुए हैं। यहाँ से सीख कर जाने के बाद माता-पिता को भी सिखाता है। वे भी अब इंग्लिश के बहुत-से शब्दों का प्रयोग कर पाते हैं। कम-से-कम मेरे और आप की तरह शुद्ध हिंदी का प्रयोग तो कर ही पाते हैं।”

XXXX

अध्याय-13

शिक्षकों के साक्षात्कार : आगे कुआँ पीछे खाई

शिक्षकों के साक्षात्कार के मुख्य बिंदु -

विद्यार्थियों से शिक्षण अधिगम के दौरान यदि किसी का सीधा सरोकार होता है, तो वह है शिक्षक। शिक्षक ही वह शख्स है जो पाठ्यक्रम और विद्यार्थियों के बीच कड़ी स्थापित करता है। शिक्षकों को नियंत्रण करने वाली एक डोर यदि स्कूल प्रबंधक है तो दूसरी डोर माता-पिता की महत्वकांक्षा, तीसरी डोर खुद विद्यार्थी होते हैं जो अपने जो परिवार से मिली कुछ खास तरह की आकांक्षा पाले स्कूल परिसर में आते हैं और शिक्षक इन सभी डोरों से बंधा पपेट यानी कठपुतली होता है। उसे इन विषम स्थितियों का सामना करते हुए कक्षा कक्ष में घुसना होता है और कक्ष में सामना करना पड़ता है। इससे विद्यार्थियों को, जिनका परिवेश तो उन्हें साँस्कृतिक भाषा में ही समझने की इजाजत देता है, पर उनकी प्राथमिक तथा द्वितीयक समाजीकरण द्वारा स्थापित मूल्य, 'अंग्रेजी में ही पढ़ें' इस बात पर बल देते हैं। इन के बीच खड़ा शिक्षक इन सब में तालमेल स्थापित करने का प्रयास करता रहता है। शिक्षकों का साक्षात्कार इन्हीं बातों को स्पष्ट करेगा।

शिक्षक – 1 – श्री महावीर

श्री महावीर गणित विषय के अहर्तायुक्त शिक्षक हैं। वे पिछले 08 वर्षों से यह विषय निजी स्कूलों तथा कोचिंग संस्थाओं में पढ़ा रहे हैं। उन्होंने इस दौरान तीन संस्थाओं को अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। चार वर्ष तक फरीदाबाद के फ्रिंज इलाके में पढ़ाने के बाद अप्रैल 2012 से फरीदाबाद के पास स्थित एक छोटे शहर के इंटरनेशनल कहलाने वाले निजी विद्यालय में पढ़ा रहे हैं। इस इंटरनेशनल कहलाने वाले स्कूल में भी ग्रामीण तथा शहरी इलाकों के फ़ीस अदा करने की क्षमता रखने वाले परिवारों के विद्यार्थी आते हैं।

महावीर के अनुसार, “हालाँकि उनका व्यक्तिगत पढ़ने वाला विषय ऐसा है जिसमें भाषा-विशेष मायने नहीं रखती। क्योंकि गणित विषय में लिखने के लिए संकेतों की अपनी ही लिपि है। फिर भी देखने में आया है कि बच्चे कई बार सवाल इसलिए गलत करते हैं क्योंकि वे दी हुई ‘स्टेटमेंट’ का अर्थ ही नहीं समझ पाते। इसके पीछे कारण उनकी अंग्रेजी भाषा पर कमजोर पकड़ ही है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा पर कमजोर पकड़ उनकी गणित सीखने की क्षमता को भी प्रभावित करती है।”

“अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में ग्रामीण क्षेत्र से आने वाले विद्यार्थियों को शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों से कहीं ज्यादा दिक्कत का सामना करना पड़ता है।”

“अंग्रेजी की वजह से ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी शहरी क्षेत्र के मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों से पिछड़ रहे हैं तथा कहीं-ना-कहीं भाषा को लेकर उनके मन में हीनभावना उत्पन्न हो रही है।”

“शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों से आने वाले दस में से चार या पाँच विद्यार्थी ही अंग्रेजी माध्यम के बैरियर (अवरोध) को पार कर पाते हैं, वहीं ग्रामीण इलाकों के दस में से एक।”

“जो इस भाषा को माध्यम के रूप में प्रयोग कर लेते हैं, वे अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठतर/सुपीरियर समझने लगते हैं।”

“क्लास में देहाती बोली बोलने की बिलकुल भी इजाजत नहीं होती, ना ही शिक्षकों को ना विद्यार्थियों को। इस कारण कई बार विद्यार्थी खुल कर अपनी समस्या बता भी नहीं पाते। हमें निर्देश होता है कि बच्चों को टूटी-फूटी ही सही पर अंग्रेजी में बोलने के लिए प्रेरित करो।”

“प्रबंधकों की सोच है कि क्लास में यदि हम विद्यार्थियों की भाषा बोलने पर अंकुश लगा दें तो वे अंग्रेजी बोलना सीख जाएँगे। पर क्लास से निकलते ही वे अपनी बोली बोलना शुरू कर देते हैं। आप कहाँ-कहाँ अंकुश लगाओगे?”

“मैं अपने घर पर निजी कोचिंग भी चलाता हूँ पर जिन बच्चों को स्कूल में पढ़ाता हूँ, उन्हें कोचिंग-सेंटर पर नहीं पढ़ाता। अपने निजी कोचिंग पर हमें ज्यादा स्वतंत्रता होती है क्योंकि यहाँ के नियम हम खुद तय करते हैं और कोचिंग के लिए आने वाले अधिकतर विद्यार्थियों की समस्या ही मीडियम की है। पर वे इसे स्वीकारते नहीं हैं। शायद अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने का उनका ईगो सामने आता है। शायद सामाजिक प्रतिष्ठा का तिलिस्मा इसलिए थोड़ा इंग्लिश, ज्यादा हिंदी, कभी-कभी कठिन बातों को रिलेट करने के लिए देशी भाषा।”

शिक्षक - 2 - श्री मनवीर

श्री मनवीर ने लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली से अपनी शिक्षा ग्रहण की है तथा पिछले तीन सालों से शिक्षण कर रहे हैं। एक साल नवोदय विद्यालय विद्यालय में पढ़ाया। दूसरे साल एक प्रतिष्ठित धार्मिक संस्था द्वारा संचालित एक निजी आवासीय विद्यालय में पढ़ाया, वर्तमान में वे एक निजी मध्य स्तर के स्कूल में पढ़ा रहे हैं।

“यदि मैं अपने विषय के बारे में बताऊँ तो यही कहूँगा कि इस विषय का कोई भी कोचिंग नहीं लेता। क्योंकि यह विषय अंक प्राप्त करने में जितना सहायक है उतना ही आर्थिक रूप से अनुपयोगी है।”

“सिर्फ अपने-आप को उच्च स्तर के घोषित करने वाले स्कूल ही नहीं अब तो केंद्रीय विद्यालय भी संस्कृत शिक्षकों के स्थान पर विदेशी भाषाओं, जैसे- फ्रेंच, जर्मन आदि पढ़ाने पर बल दे रहे हैं। जो त्रिभाषा फॉर्मूले का सीधा-सीधा उल्लंघन है।”

“हमारे विषय को स्कूल में इतना स्थान नहीं दिया जाता। स्कूल में प्राचार्य हमें संस्कृत भी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने पर बल देते हैं।”

“हमारी प्राचार्य तथा मैनेजमेंट हमें (सभी शिक्षकों को) ‘इंग्लिश मीडियम कल्चर’ विकसित करने पर बल देते हैं।”

“आर्थिक रूप से अनुपयोगी होने की वजह से विद्यार्थियों का लक्ष्य भी नंबर प्राप्त करना होता है, ना की समझ बढ़ाना। कुछ तो इस विषय को लेते ही सिर्फ नम्बरों के लिए हैं।”

शिक्षक - 3 – श्री शास्त्री

214

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’, टैट इज ‘अंग्रेजी राज’ : ‘अष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’ (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN – 978-93-5156-895-7)
लेखक – अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

श्री शास्त्री के अनुसार, “वे पिछले आठ सालों से फ्रिज इलाके के स्कूलों में पढ़ा रहे हैं।”

उन्होंने अपनी सबसे बड़ी समस्या को उजागर करते हुए कहा, “हमारी तनखाह अंग्रेजी की शिक्षिका से आधी से भी कम होती है। इन्क्रीमेंट भी नहीं मिलता। उच्च स्तर के स्कूलों में तो संस्कृत अध्यापकों की तो पोस्ट भी नहीं निकल रही है।”

“हमारे पास आठवीं कक्षा तक ही संस्कृत पढ़ाई जाती है। नवीं कक्षा में आते ही बच्चे दूसरे विषयों की तरफ भागते हैं।”

स्कूल के वातावरण के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा, “अब तो नहीं हमारे स्कूल के पिछले डायरेक्टर के समय में स्कूल में इंग्लिश बोलने पर विशेष जोर होता था। वे खुद बेशक इंग्लिश में चार ही लाइनें बोलें, पर शिक्षकों तथा बच्चों पर पूरा दबाव होता था कि वे इंग्लिश में ही बोलें। वे क्लास में जाकर विशेषतः इसी बात को देखते थे। बच्चों को समझ में आया कि नहीं आया, यह सब उनके लिए गौण है।”

“उन्होंने अपने समय में एक ऐसे व्यक्ति को स्कूल कॉर्डिनेटर बना रखा था। जो शिक्षक बनाने की भी योग्यता नहीं रखता था। उसकी अहर्ता भी बी.ए. थी तथा वह यहाँ से 60 किमी दूर पश्चिम दिल्ली से आता था। उसकी भूमिका ही स्कूल में इंग्लिश का

वातावरण बनाने की थी। बिना योग्यता के उसे सामाजिक विज्ञान और यहाँ तक कि ग्यारवीं कक्षा को इकोनॉमिक्स तथा बिज़नेस स्टडीज़ तक पढ़ने के लिए दिता गया परन्तु मुझे नहीं लगता उसे अंग्रेजी बोलने के आलावा भी कुछ आता होगा।”

“उनके (डायरेक्टर के) जाने के बाद हमारे स्कूल में नई प्रिंसिपल आईं, वे शिक्षा की अच्छी जानकार हैं। वे शिक्षकों को कक्षा में दोनों भाषाएँ इस्तेमाल करने की छूट देती हैं। बच्चे भी क्लास में दोनों भाषा का प्रयोग कर सकते हैं। पर इसका नतीजा यह निकला कि यह अफ़वाह फैल गई कि इस स्कूल में तो अब हिंदी मीडियम में पढ़ाई होती है। फलस्वरूप इस साल ग्रामीण इलाकों से भी नए एडमिशन कम आये। शहरी इलाकों के माँ-बाप ने तो अपने बच्चों को स्कूल से भी निकालना शुरू कर दिया है।”

शिक्षक - 4 – श्री अजय

श्री अजय, एम.ए. (अर्थशास्त्र), एम.कॉम, बी.एड. की अहर्तायुक्त ट्रेड शिक्षक हैं तथा उन्हें पढ़ाने का 12 वर्ष का अनुभव है। निम्न तथा मध्य स्तर के स्कूलों में पढ़ने के बाद अप्रैल 2010 से एक प्रतिष्ठित स्कूल की फ्रेंचाइजी शाखा में पढ़ा रहे हैं। उनके अनुसार

-

“आज बड़े कहलाने वाले पब्लिक स्कूलों में एक शिक्षक के इंग्लिश में बोलने की क्षमता को ही पढ़ाने की क्षमता कहा जाता है। मैं एक प्रतिष्ठित स्कूल में इंटरव्यू देने गया। मैं जब क्लास में ‘डेमो’(नमूना क्लास) दे रहा था तो देखा कि बच्चे क्लास में पेपर पर कुछ निशान लगा रहे हैं। जब उस पेपर को देखा तो पता चला बच्चे मेरा मूल्यांकन कर रहे हैं। उस मूल्यांकन में एक बिंदु ‘प्रोफिसेन्सी इन इंग्लिश लैंग्वेज’ भी था। अजीब लगने वाली बात यह थी कि उस स्कूल में यह बात बच्चे चैक कर रहे थे।”

हमारे स्कूल में भी इस बात पर विशेष जोर रहता है कि हम इंग्लिश में ही पढ़ाएँ। जबकि हमारे पास सिर्फ़ शहर के ही नहीं आस-पास के गाँवों के बच्चे भी आते हैं। पर हमारे सामने प्रमुख समस्या ऐसे गाँवों के बच्चों को अंग्रेजी में पढ़ाने की होती है। जिनके घर तो दूर अडोस-पड़ोस में भी कोई अंग्रेजी नहीं बोलता।”

तो क्या आप जब कक्षा में हिंदी-इंग्लिश मिक्स करके पढ़ाते हैं तो विद्यार्थियों को बेहतर समझ आता है, “नहीं! यदि कोई शिक्षक पढ़ाते वक्त हिंदी या देहाती बोलियों का प्रयोग करे तो प्रबंधक से पहले विद्यार्थी ही उसके खिलाफ़ खड़े हो जाएँगे। आज का छात्र एक शिक्षक की पढ़ाने की योग्यता का आकलन ही उसके अंग्रेजी बोलने की क्षमता के आधार पर करता है। उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं कि उसे समझ में आ रहा है या नहीं। उसे तो बस इंग्लिश में बोलता हुआ पपेट चाहिए। मैं आपको अपने स्कूल के एक फंक्शन की घटना बताना चाहूँगा। एक लड़का सभी टीचर की इंग्लिश बोलने के तरीके की मिमिक्री कर रहा था। विषय था- कौन शिक्षक कैसे

इंग्लिश बोलते हैं। एक दक्षिण भारतीय शिक्षक की मिमिक्री करते हुए उसने कहा कि ये तो इस प्रकार बोलते हैं जैसे दो-चार पैग लगा कर (शराब पी कर) आए हों, फिर एक्टिंग करते हैं। फिजिक्स के एक बहुत ही योग्य शिक्षक हैं, बच्चों को उनके परिवेश के उदाहरण लेकर समझाते हैं, उनके लिए कहता है कि ये तो आते ही गाँव में पहुँच जाते हैं। आप इससे क्या अंदाजा लगाएँगे।”

जब इस विषय पर प्रबंधकों की प्रतिक्रिया जाननी चाही, “प्रिंसिपल और प्रबंधक पीछे बैठ कर ताली पीट रहे थे। प्रिंसिपल ने अपने भाषण में उस लड़के की विशेष तारीफ़ की और कहा कि टीचर इससे सीख लेंगे और अपनी इंग्लिश सुधारेंगे। प्रबंधक ने उसे विशेष उपहार दिया।”

शोधकर्ता- “इस पर शिक्षकों की क्या प्रतिक्रिया है?”

शिक्षक - (कुछ रुक कर) “हाँ जी की नौकरी, ना जी का घर। आज के समय में हर शिक्षक दो गाली खाने के बाद भी कहता है ‘यु आर राईट सर’। एक शिक्षक थे क्रान्तिकारी, शिक्षाशास्त्र के बखान करने वाले। क्या हुआ? बीच सेशन में निकाल दिया और ऐसे शिक्षक को नियुक्त कर दिया जो एक लाइन बोलने से पहले किताब में देखता था। ये लोग पहले दो तीन साल तो किसी को पक्का करते नहीं हैं, जब ये आश्वस्त जाते हैं कि ये टीचर हमारा पक्का गुलाम है, तब जाकर रेगुलर अपॉइंटमेंट देते हैं।”

अंग्रेजी माध्यम के इस निजी स्कूल में स्थाई हो चुके इस शिक्षक ने कुछ रुक कर कहा, “टीचर की नहीं, अंग्रेजी बोलने वाले गुलामों की जरूरत है।”

शिक्षक - 5 – सुश्री मीनाक्षी

सुश्री मीनाक्षी की शैक्षिक योग्यता बी.कॉम, एन.टी.टी. है। इस प्रकार वह नर्सरी तक के बच्चों को ही पढ़ाने के योग्य है। पर उसे प्राइमरी क्लास भी पढ़ने के लिए दी जाती है। जिस स्कूल में वह पढ़ाती है वह स्कूल आठवीं तक का है तथा यह एक निम्न मध्यम वर्गीय इलाके में स्थित है। यह इलाका ग्रामीण इलाके भी निकट है। अतः इस इलाके में ग्रामीण तथा शहरी निम्न मध्यम वर्गीय इलाके के बच्चे आते हैं। सुश्री मीनाक्षी ने जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही वह यह है-

“हमें क्लास में पढ़ाते समय विशेष हिदायत होती है कि हम बच्चों को कुछ इस प्रकार के अंग्रेजी के शब्द सिखाएँ जिसे बच्चे घर जाकर प्रयोग कर सकें, जैसे- ‘स्पून’, इसी प्रकार और भी कई अंग्रेजी शब्द सिखाए जाते हैं, जो दिन प्रतिदिन इस्तेमाल होते हैं।”

शोधकर्ता ने कहा, “यह तो एक अच्छा चलन कहा जा सकता है।” इस पर सुश्री मीनाक्षी ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, “यह सब कुछ बच्चे को सिखाने के लिए नहीं होता। इसके पीछे का मकसद माँ-बाप को यह विश्वास दिलाना होता है कि आपका बच्चा

इंग्लिश बोलना सीख रहा है। जब बच्चा 'चम्मच' को 'स्पून' कहता है तो देहाती और निम्न मध्यम वर्गीय इलाकों के माँ-बाप को विश्वास हो जाता है कि उनका बच्चा इंग्लिश बोलना सीख गया।”

सुश्री मीनाक्षी ने आगे बताया, “चम्मच को 'स्पून' सिखाने की प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है। यदि बच्चा 'चम्मच' को 'चम्मच' बोलता है तो उसे अपमानित किया जाता है, यह साबित किया जाता है कि तुम एक अपमानजनक भाषा का प्रयोग कर रहे हो। इस प्रकार बच्चा घर जाकर 'चम्मच' को सिर्फ 'स्पून' ही नहीं कहता, वह माँ-बाप को भी कहता है कि वे 'चम्मच' को 'स्पून' कहें।”

सुश्री मीनाक्षी ने दाखिले के लिए चलने वाले अभियानों की जानकारी देते हुए कहा, “हमें दाखिले अभियानों के दौरान हिदायत होती है कि हम बच्चों के माँ-बाप को विश्वास दिलाएँ कि हमारे यहाँ अंग्रेजी में ही शिक्षा होती है। इसके लिए हमें माँ बाप के आगे इंग्लिश बोलने की एक्टिंग करनी होती है। यह एक नाटक के सामान होता है। हम पहले स्कूल में इंग्लिश में बात करने का अभ्यास करते हैं। इस अभ्यास के लिए डायलॉग पहले से तय होते हैं। (हँसते हुए) हम भी उसे रटते हैं और फिर पेरेंट के सामने आपस में बातें करते हैं ताकि पेरेंट इम्प्रेस हो जाएँ।”

बस, इसके बाद शोधकर्ता सुश्री मीनाक्षी से आगे कुछ भी पूछने की स्थिति में नहीं था।

शिक्षक - 6 – सुश्री कुमुद

सुश्री कुमुद अंग्रेजी विषय की एक अहर्तायुक्त शिक्षिका हैं। उनकी अहर्ता एम.ए. बी. एड. है। विवाह से पूर्व वो दिल्ली में अपने माता-पिता के साथ रहती थीं तथा एक प्रतिष्ठित एम.एन.सी. में कार्यरत थीं। विवाह उपरांत वे फरीदाबाद आईं और परिवार के साथ तालमेल के साथ काम करने की इच्छा ने उन्हें बी.एड. करने हेतु प्रेरित किया और उन्होंने फरीदाबाद के स्थानीय कॉलेज से बी.एड. कर फरीदाबाद के स्कूलों में पढ़ाना शुरू किया। वे पिछले छह-सात वर्ष से फरीदाबाद में पढ़ा रही हैं। वे स्कूल में पढ़ाने के बाद घर संभालती हैं, प्राइवेट ट्यूशन नहीं लेतीं।

सुश्री कुमुद की शिकायत थी कि, “मैं जिस हिसाब से मेहनत करती हूँ, उस हिसाब से मुझे रिजल्ट नहीं मिलता।” शोधकर्ता को लगा शायद वो तनख्वाह को लेकर असंतुष्ट होगी। पर आगे सुश्री कुमुद ने स्पष्ट करते हुए कहा, “मैं यहाँ अपनी सेलरी के बारे में बात नहीं कर रही हूँ। भगवान का दिया हमारे घर में सब कुछ है। मैं यहाँ अपने बच्चों (विद्यार्थियों) के साथ जो मेहनत करती हूँ, उसकी बात कर रही हूँ। कितना भी करा लो, इन बच्चों के दिमाग में कुछ जाता ही नहीं है। आखिर कक्षा में टीचर कितना सिखा सकता है? स्कूल से बाहर निकलते ही वापस उसी माहौल में ढल जाते हैं।”

“वैसे इन बच्चों का भी अपना कसूर नहीं, भाषा सीखने के लिए वातावरण भी तो चाहिए।”

“क्लास में हम बच्चों को इंग्लिश में बोलने हेतु प्रेरित करते हैं। बुलवाते भी हैं, पर मैं 35-40 मिनट के पीरियड में कितना करवा सकती हूँ? समस्या और भी विकराल हो जाती है, जब कोई हिंदी माध्यम का बच्चा कक्षा में आ जाता है। चूँकि एडमिशन का फैसला हमारे हाथ में नहीं है। पर हमें उन बच्चों को भी इन्टरटेंट तो करना ही पड़ता है। नैतिक रूप से हम उसे छोड़ भी नहीं सकते। पर समस्या यह होती है कि हमारे स्कूल की इंग्लिश की पुस्तकों का स्तर और हिंदी मीडियम वाली इंग्लिश की पुस्तकों में काफी फ़र्क होता है।”

“बच्चा सिर्फ़ इंग्लिश सीखता, तो अलग बात होती। वह बाकी विषयों को भी इंग्लिश में ही पढ़ता है। अब क्योंकि उसकी इंग्लिश अच्छी नहीं है इसलिए बाकी सभी विषयों में हेम्पेर (बाधा) उत्पन्न होती है। बाकी विषयों में वह इंग्लिश का इस्तेमाल किसी-भी तरह कर सकता है इसलिए उसकी इंग्लिश में हेम्पेर (बाधा) उत्पन्न होती है।” (नोट- सबसे महत्वपूर्ण बात कही गई।)

शोधकर्ता- “इसे आप एक बार फिर से स्पष्ट करें।”

सुश्री कुमुद- “इंग्लिश ढंग से नहीं आती इसलिए बच्चे बाकी के विषय साइंस, सोशल साइंस यहाँ तक कि मैथ भी रटते हैं। इन विषयों में इंग्लिश का इस्तेमाल बच्चा बिना सर-पाँव के करता है। ना इन विषयों को समझ पाते हैं, ना इंग्लिश को। इन विषयों को पढ़ने के दौरान, जो इंग्लिश के प्रति समझ बनती है, वो आगे उनकी इंग्लिश को प्रभावित करती है। इसलिए इंग्लिश भी बिना सर-पाँव के लिखता और बोलता है। ग्रामर के नियम का तो इस बुरी तरह प्रयोग करते हैं कि बस मत पूछो ! **‘इंग्लिश मीडियम एजुकेशन कल्चर’** बाकी सभी विषयों की समझ के लिए ही नहीं, स्वयं इंग्लिश के लिए भी घातक है।” उन्होंने हँसते हुए अपनी बात सरल शब्दों में समझाई।

आगे उन्होंने कहा, “आप पहले के हिंदी मीडियम के पढ़े लोगों की इंग्लिश देखें, उनकी भाषा शुद्ध होती है। पर आज अच्छे-से-अच्छे पब्लिक स्कूल में पढ़े हुए बच्चों को ले लो, उनकी इंग्लिश बेतुकी होती है।”

शिक्षक - 7 – श्री पवन

श्री पवन, एक प्रतिष्ठित स्कूल की फ्रेंचाइज ब्रांच में भौतिक विज्ञान के शिक्षक हैं। उनकी अहर्ता एम.एससी. (भौतिक विज्ञान) तथा बी.एड. है। पिछले दस वर्षों के शिक्षण के दौरान उन्होंने तीनों प्रकार के बोर्ड के स्कूलों में पढाया है। वर्तमान में स्कूल के

अतिरिक्त, उनके निजी कोचिंग सेण्टर पर भी तीनों ही बोर्ड के विद्यार्थी पढ़ते हैं। हफ्ते में तीन दिन वे पलवल, हरियाणा में पढ़ाते हैं, तो तीन दिन कोशी (उत्तर प्रदेश) में भी पढ़ाते हैं।

उन्होंने मिलते ही शोधकर्ता को स्पष्ट किया कि, “स्कूल के बारे में जो भी जानना चाहें, खुल कर पूछें। मैं अब स्कूल की बैसाखियों से मुक्त हूँ।”

शोधकर्ता ने अपने विषय को स्पष्ट करते हुए बताया, “मैं सिर्फ शिक्षा के माध्यम के फलस्वरूप शिक्षण अधिगम पर पड़े प्रभाव तथा विद्यार्थियों के मूल्यों में आये परिवर्तन मात्र को जानना चाहता हूँ।”

उन्होंने कहा, “हिंदी और अंग्रेजी माध्यम, दोनों की ही समस्याएँ हैं।”

“सबसे पहले मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि स्कूल का माध्यम या पढ़ाई का माध्यम कुछ भी हो, समझ का माध्यम तो अपनी भाषा ही है। आप दूसरी भाषा में रट सकते हैं, समझते सिर्फ अपनी ही भाषा में ही हैं। घर पर मेरे कोचिंग सेण्टर पर तो हर तरह के स्कूलों के बच्चे आते हैं। सरकारी स्कूल के बच्चों के लिए मैं फीस में भी विशेष छूट देता हूँ। मैंने अपने अनुभव में पाया कि सरकारी स्कूल के या हिंदी माध्यम से पढ़े बच्चे फिजिक्स की किसी भी प्रोब्लम को लेकर लम्बे समय तक जूझते हैं। जबकि अंग्रेजी माध्यम वाले जल्द ही हौंसला खो बैठते हैं।”

ये बात अलग है कि अंग्रेजी माध्यम वाले बच्चे अच्छे खाते-पीते परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। उनका परिवार उनकी कोचिंग पर विशेष पैसा खर्च कर सकता है। दिल्ली और कोटा में खुले कोचिंग सेण्टर उन्हें ड्रिल करके आई.आई.टी. तक पहुँचा सकते हैं। पर जूझने की जो क्षमता हिंदी माध्यम वाले स्कूल के विद्यार्थी में है, वो अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी में नहीं है।”

शोधकर्ता ने 'जूझने' का अर्थ स्पष्ट करने को कहा तो श्री पवन ने बताया, “जूझने का अर्थ है कि कोई छात्र फिजिक्स की किसी प्रॉब्लम पर कितना दिमाग लगाता है। मान लो एक आंकिक सवाल (न्यूमेरिकल) थोडा कठिन है, तो अंग्रेजी माध्यम वाला छात्र दो-से-तीन बार में प्रयास करना छोड़ देता है, वहीं हिंदी माध्यम का देहाती माने जाने वाला छात्र 10 से 15 बार तक प्रयास करता है। समझ की बात करें तो यह मायने नहीं रखता कि किसने ठीक किया, मायने यह रखता है कि किसने कितना प्रयास किया।” रुक कर, “समझ प्रयास पर निर्भर करती है।” जूझने की संस्कृति ही समझ की संस्कृति को पैदा करती है। “पर बड़े कहलाने वाले प्राइवेट अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में होता क्या है, हम वहाँ बच्चे को जूझने के लिए नहीं परीक्षा के लिए तैयार करते हैं। वहाँ लक्ष्य 'समझ' नहीं 'नंबर (परीक्षा के अंक)' होता है। हम उन्हें नम्बरों के लिए तैयार करते हैं। हम इतने सालों से पढ़ा रहे हैं, हमें भी मालूम है कि परीक्षा में किस-किस तरह के प्रश्न पूछे जाने हैं और हम उन्हीं की प्रैक्टिस करवा देते हैं और इस तरह बच्चों के सीबीएसई में अंक आते हैं। पर क्या समझ भी आती है? मुझे तो लगता नहीं ...”

शोधकर्ता - “परंतु इसका मीडियम के साथ क्या सम्बन्ध है?”

शिक्षक - “हाँ है। शुरू से अंग्रेजी मीडियम में पढ़ा छात्र सीमित मात्रा में (लिमिटेड) पढ़ने का आदि हो चुका होता है। जूझने की क्षमता उसकी खत्म हो चुकी होती है। इसलिए अंग्रेजी माध्यम वाला बच्चा सिर्फ नम्बरों को केंद्र में रख कर, केवल उतना ही पढ़ता है, जिससे नंबर आ जाएँ... किसी अच्छी जगह एडमिशन हो जाये... बस...”

शोधकर्ता - “आपने कहा... समस्या दोनों माध्यमों के विद्यार्थियों के साथ आती है।”

श्री पवन- “जहाँ अंग्रेजी माध्यम में समस्या भाषा को लेकर आती है, वहीं हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की समस्या टर्मिनॉलॉजी (शब्दावली) को लेकर आती है। हिंदी में कई बार ऐसे-ऐसे शब्दों/टर्म का प्रयोग किया जाता है, जिसको हम भी ध्यान नहीं रख पाते हैं। दूसरा, हिंदी में आगे अभ्यास/प्रेक्टिस के लिए किताबें कम हैं। यदि कोई आई.आई.टी. आदि के स्तर के सवाल करना चाहे तो हिंदी में एक तो किताबें उपलब्ध नहीं हैं, दूसरा यदि बच्चे इंग्लिश की किताबों से अभ्यास/प्रेक्टिस करना भी चाहें, तो उसकी समस्या शब्दों/टर्म की आती है और इसी प्रकार कोई अंग्रेजी माध्यम का छात्र खुद से पढ़ कर समझना चाहे तो उसकी भी समस्या भाषा की नहीं, शब्दों/टर्म की आती है।”

“यदि शब्दावली/टर्म एक कर दें तो हिंदी और इंग्लिश, दोनों की समस्या ही खत्म हो जायेगी।”

शिक्षकों से लिए गए असंरचित साक्षात्कारों के दौरान उनके व्यवहार को निर्धारित करने वाले मूल्यों, विश्वासों, धारणाओं तथा मानदंडों सम्बन्धी निम्नलिखित बातें निकल कर सामने आईं -

निजी क्षेत्र के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में कार्यरत शिक्षकों का एक समान विश्वास है कि यदि निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में कार्य करना है तो अपने अल्प-शिक्षित प्रबंधकों के शिक्षाशास्त्र के मूल्यों को अपनाना होगा। यदि शिक्षण अधिगम क्रिया में उन्होंने अपनी मर्जी से गाँधीजी और गुरुदेव टैगोर का शिक्षा शास्त्र प्रयोग किया, तो उन्हें घर का रास्ता दिखा दिया जाएगा। जैसा कि एक शिक्षक ने कहा भी, **“हाँ जी की नौकरी, ना जी का घर।”** निजी अंग्रेजी माध्यम शिक्षण में प्रबंधकों के मूल्यों को लागू करने का यह अलिखित-मानदंड पहले से तय ही है। प्रबंधकों का मानदंड उनके पास दाखिला करने वाले माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं से निर्धारित होता है। प्रबंधक, शिक्षकों को उन महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति होती हुई दिखाई दे, ऐसा भ्रामक शिक्षाशास्त्र अपनाने पर बल देते हैं।

वहीं शिक्षकों का भी विश्वास है कि बच्चे की अपनी समझ उनकी परिवेश की बोली/भाषा में होती है और विद्यार्थी भी तब ही आनन्द लेता है जब उसे रचनात्मक तौर पर उसकी बोली में ही पढाया जाए। पर घर में जो महत्वकांक्षा का ठीकरा बच्चों के सिर फोड़ा जाता है तथा स्कूल में 'स्पीक इन इंग्लिश' की जो घुट्टी पिलाई जाती है, उसका नतीजा यह होता है कि बच्चे भी अंग्रेजी की कुंठा लेकर घर आते हैं और अंग्रेजी के लेक्चर को ही शिक्षण मानते हैं। इसलिए उन्हें रचनात्मक शिक्षण के शिक्षाशास्त्र को दरकिनार कर लेक्चर विधि को ही अपनाना पड़ता है। शिक्षकों की ऐसी धारणा है। ट्यूशन में यह धारणा कुछ कमजोर पड़ती है, पर टूटती नहीं है इसलिए शिक्षक कुछ हद तक परिवेश की भाषा का प्रयोग कर लेता है। इस प्रकार हर शिक्षक अपने अनुभवों से जनता है कि विद्यार्थी की समझ तो उसकी अपनी बोली-भाषा में ही होती है। शिक्षकों के अनुसार अंग्रेजी माध्यम स्कूल में बच्चों को डालने का मुख्य मकसद ही यह होता है कि वह 'अंग्रेजी बोल-चाल की संस्कृति' को अपनाए। 'अंग्रेजी बोल-चाल की संस्कृति' को ही अपनाना निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की शिक्षा का मकसद है। प्राचार्य एवं शिक्षक इन मानदंडों से बँधा हुआ 'सेवक-मात्र' है। कुछ हद तक, शिक्षक का अपना खुद का समाजीकरण भी आड़े आता है। पर उसने अपने अनुभव से जान लिया (अर्थात् विश्वास हासिल कर लिया) है कि 'जूझने तथा समझने' की जो ताकत अपने परिवेश की भाषा के माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थियों में होती है, वह ताकत अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में नहीं होती। अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले विद्यार्थी अपने माता-पिता के धन के बल पर ही कामयाब होते हैं। ऐसा भी शिक्षकों का मानना है।

प्रबंधकों के प्रशंसा-पात्र बनाने की अभिलाषा, उन्हें प्रबंधकों के मानदंडों को अपनाने के लिए प्रेरित करती है। प्रशंसा-पात्र बने रहने का अर्थ है - नौकरी तथा पदोन्नति की सुरक्षा।

शिक्षकों के व्यक्तिगत अनुभव -

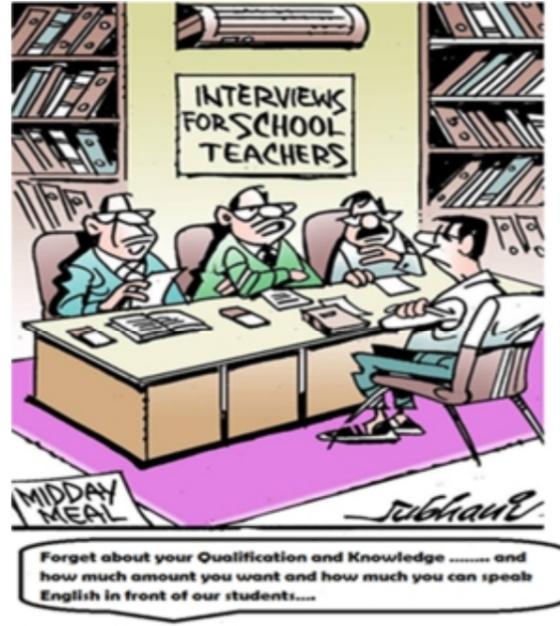
शिक्षकों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों में पाया कि स्कूल प्रबंधन का एकमात्र दबाव भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग करने का रहता है, ताकि उनके स्कूल की प्रतिष्ठा बढ़े। प्रबंधकों का विशेष आदेश रहता है कि कक्षा में अंग्रेजी का ही प्रयोग करें। चाहे वह विद्यार्थियों को समझ आए अथवा न आए। शिक्षकों के चयन के दौरान शिक्षकों का ज्ञान तथा शिक्षाशास्त्रीय समझ को, वे द्वितीयक प्राथमिकता में रखते हैं। प्रथम तो उनकी अंग्रेजी बोलने की क्षमता ही रहती है। शिक्षकों की तनख्वाह और स्थायित्व, उनकी अंग्रेजी बोलने की क्षमता पर ही नहीं, अपितु इसको कितना आगे बढ़ा सकते हैं, इस बात पर भी निर्भर करता है। स्कूलों में कुछ अध्यापकों को तो सिर्फ इसलिए नियुक्त किया जाता है क्योंकि वे अंग्रेजी बोलने में महारथ रखते हैं। इन अध्यापकों की जिम्मेदारी अंग्रेजी में बात ना करने वाले शिक्षकों पर नैतिक दबाव बनाने की रहती है। ये शिक्षक ही स्कूल की असेम्बली, पी.टी.एम., साँस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र में होते हैं। इसके अतिरिक्त, इन शिक्षकों का विशेष दायित्व विद्यार्थियों को अंग्रेजी में वार्तालाप करने हेतु प्रेरित करने का होता है। ऐसे में, शिक्षक चाहे तो भी, विद्यार्थियों के सामाजिक परिवेश को कक्षाओं में नहीं ला

पाता। यदि कोई अध्यापक शिक्षण के दौरान क्षेत्रीय भाषा-बोलियों को शामिल भी करना चाहे, तो वह उसे शामिल नहीं कर सकता।

अंग्रेजी माध्यम के इन निजी स्कूलों में विद्यार्थियों से यह तो उम्मीद की जाती है कि वे अपने प्राचार्य, शिक्षक एवम् आपसी बातचीत आदि में सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी का प्रयोग करें। यहाँ तक कि स्कूल पुस्तकालय में अखबार/न्यूज़-पेपर, मैगज़ीन तक इंग्लिश की पढ़ें। यदि वे इन मानदंडों का उलंघन करते हैं तो सज़ा के पात्र बनते हैं। परन्तु चपरासी, गेट-कीपर, के साथ बातचीत करने हेतु वे मानक भाषा (हिन्दी) का प्रयोग कर सकते हैं। यही उम्मीद विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक अपने विद्यार्थियों से करते हैं कि वे कक्षा-शिक्षण के दौरान अंग्रेजी का प्रयोग करें। पूरा-पूरा लेक्चर इंग्लिश में देने के बाद पीरियड खत्म होने के वक्त कहते हैं कि जिसको समझ में नहीं आया हो, वह हिन्दी में पूछ लो।

बहाना कुछ भी हो, अंग्रेजी रोजगार की गारंटी देती है या इंग्लिश हाई स्टेटस सोसाइटी में बने रहने के लिए जरूरी है। अतः अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में छोटे दर्जे के कर्मचारियों से बातचीत करने के लिए तो आप हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग कर सकते हैं, पर उच्च दर्जे के लोगों से सम्पर्क करने के लिए आपको टूटी-फूटी ही सही, अंग्रेजी में ही बातचीत करनी होगी। ये सारी घटनाएँ अंग्रेजी को श्रेष्ठ और उच्च दर्जे की भाषा के रूप में स्थापित करती हैं।

ये सभी बहाने अंग्रेजी माध्यम के साँस्कृतिक वर्चस्व को पैदा करते हैं। अंग्रेजी माध्यम कल्चर वास्तव में साँस्कृतिक वर्चस्व है, जो स्कूलों के माध्यम से समाज के मानस पर आरोपित किया जाता है। स्कूल के अध्यापक का वास्तविक काम विद्यार्थियों के ज्ञान-निर्माण में सहायता करने का नहीं, अपितु इसी साँस्कृतिक वर्चस्व को बनाए रखने का हो गया है।



अध्याय 14

आत्महत्या को विवश करता इंग्लिश मीडियम सिस्टम

जहाँ न्युपा (NUEPA) के उपकुलपति प्रॉ. आर गोविंदम और दिल्ली स्थित डॉ. भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रॉ. श्याम बी मैन्नन अपना उदाहरण देते नहीं थकते हैं कि किस तरह से उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा क्रमशः तेलगू और मलयालम माध्यम से लेकर उच्च शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में ग्रहण की ।

श्याम बी मैन्नन की माने तो उन्होंने पहले अपनी क्षेत्रीय भाषा मलयालम में ही पढ़ना लिखना सीखा था । अंग्रेजी तो तीसरी कक्षा के बाद ही सीखना प्रारंभ किया और उच्च माध्यमिक कक्षा तक आते आते इंग्लिश साहित्य की क्लासिकल (श्रेष्ठ माने जाने वाली रचनाओं) का अध्ययन करने लगे थे । आर गोविंदम भी अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं कि उन्होंने पहले अपनी प्राथमिक क्षेत्रीय भाषा पर पकड़ हासिल की और तत्पश्चात उनके लिए अंग्रेजी सीखना सहज हो गया । पर ये दोनों ही शिक्षाविद इस बात का जिक्र नहीं करते कि स्कूल के बाहर के वे कौन से मध्यम वर्गी 'जैक' (सहारे) थे जिसकी वजह से वे आसानी से

अंग्रेजी पर पकड़ हासिल करने में सफल हो सके । .. और परिणाम स्वरूप वे यूनिवर्सिटी(विश्वविद्यालय) स्तर की कक्षाओं में बीना बाधा के अंग्रेजी के प्रयोग में सफल रहे । साथ ही वे इस बात का जिक्र नहीं करते हैं कि उनके साथ पढ़ने वाले उनके कितने साथी सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी न सीख पाने की वजह से उच्च शिक्षा से वंचित रह गए । हालांकि हमारी केस स्टडी के दौरान ऐसे अनेकों केस आये जिसमें लोग सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी न आने की वजह से यूनिवर्सिटी के गेट से धकिया दिए गए ।

हम इस अध्याय में उन केसों के आलावा कुछ अखबारों की सुर्खियों में छाने वाली घटनाओं का जिक्र करेंगे । कुछ ऐसे केस जिसमें उच्च शिक्षा के मंदिरों में होनहार विद्यार्थियों ने सिर्फ 'इंग्लिश मीडियम' के दबाव में आत्महत्या कर ली । इंग्लिश मीडियम का यह दबाव 'इंग्लिश मीडियम पढ़ाई' से ज्यादा 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' का था । किसी भी सिस्टम का अपने आप को बनाए रखने का अपना एक गुण होता है । ..और औपनिवेशिक काल में स्थापित इस सिस्टम में जैसे ही कोई ऐसा व्यक्ति दाखिल होता है जो सिस्टम के मूल्यों के अनुरूप न हो तो सिस्टम उसे धकियाने लगता है । आइये अखबार की सुर्खियों में छानें कुछ ऐसे केसों पर नज़र डालते हैं कि किस प्रकार 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' ने 'इंग्लिश मईया' को प्रसन्न करने हेतु ग्रामिण –क्षेत्रीय कस्बाई पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों की बलि दी । हर जाति-मजहब के निम्न एवं निम्न मध्यम वर्गी

Clipping 1- The death of Anil Meena

Suicides by Dalit and tribal students is a story of discrimination

Reference Source <http://archive.indianexpress.com/news/the-death-of-anil-meena/923471/>

Merit is important — students have to go through gruelling entrance tests to prove their worth before joining any educational institution to become doctors, engineers, scientists.

In 2010, **Anil Meena, from a tribal family of agriculturalists, a school topper, with 75 per cent marks in 10+2, covered the distance of over 500 km from his village in Baran district, Rajasthan, to Delhi.** He had again proved his merit in one of the toughest medical entrance exams to become a

doctor at one of the country's prestigious educational institutions — the All India Institute of Medical Sciences (AIIMS).

However, within two years of his stay at this prestigious institution, on March 3, 2012, he hanged himself. The reasons, according to the AIIMS administration, are that he was “depressed”, developed “psychiatric” problems because of his inability to cope with the rigorous academic environment combined with his lack of skills in the English language.

Anil was 22 years old.

It is mere coincidence that on the same day, March 3, in 2010, Balmukund Bharti, a Dalit student at AIIMS, committed suicide in similar fashion, but this coincidence does not end with the date. A son of a Class III employee, a native of village Kundeshwar, Tikamgarh district, Bundelkhand (MP), one of

the most backward regions of the country, Balmukund was also a school topper from Navodaya Vidyalaya and possessed many certificates of academic excellence, including one from the president of India, before getting admission into AIIMS after proving his merit in its entrance exam.

We are told that he was also “depressed” and committed suicide by hanging himself in his hostel room due to “his inability to cope up with academic performance” demanded by the institution. Balmukund was 25 years of age, and was just a couple of months away from becoming a doctor from AIIMS, something his parents say has not happened in the surrounding areas in the last 50 years.

AIIMS is not a lone institution. There is a long list in the recent past that includes almost all premier educational institutions — various IITs, Indian

Institute of Science (IISc) Bangalore, University of Hyderabad and many more, where otherwise brilliant Dalit and Adivasi students, school and college toppers, gave up their hopes and chose to commit suicide.

The conventional wisdom is that these students got admission through reservations with “lesser merit” and gave up their lives unable to match the academic expectations of these premier educational institutions. And the definition of this “merit” is defined strictly in terms of marks at the entrance level, conveniently discounting various other factors **like social background, family, medium of instruction in school, the rural-urban divide that play a major role in the performance of the students.**

Unhealed-Wounds

<http://caravanmagazine.in/reportage/unhealed-wounds>

“Rajendra was well aware of Anil’s woes. Both had come from government schools where they were taught in Hindi; at AIIMS, classes were only in English, and they barely understood the lectures. “It’s a different world,” Rajendra told me. “We were toppers in Hindi, now we are failures.” The AIIMS students struggling with the transition to English tend to study on their own—meticulously going through textbooks with the aid of a dictionary—and seek assistance from older students from similar backgrounds, rather than attending lectures they can’t follow. Anil had spent much of the previous year in his hostel room, translating his way through the course materials, sentence by sentence, to prepare for his exams. But shortly before the test, in June 2011, Anil was told he wouldn’t be allowed to sit the exams because his class attendance was below 50 percent. This was an unpleasant

surprise: the rule was not a new one, but it had rarely if ever been enforced before. In August, he appeared for the supplementary examinations instead, but—to his surprise—failed in all three subjects. Since then, he had been trying to meet with senior faculty members to request that his papers be re-evaluated; he believed that a last-minute change in the assessment process had prevented him from passing in at least one subject, but nobody seemed willing to listen.”

“A real investigation of this malady will have to recognize first that the occurrence is not institute-specific. It will also have to be acknowledged that neither Meena nor most of the other students who suffered similar fates lacked merit — and cleared the entrance examinations just because of the quota system — **as has been the perception in some quarters. What they**

lacked, perhaps, was a firm grasp of the English language. According to reports, Meena struggled to understand lectures in English as his school education was in the Hindi medium. Many students across India who have been taught in the regional languages in school will identify with Meena's problem.

When they enter higher education, such students often find themselves engaged in a strange tussle with a language foreign to them. Moreover, they find their fellow students and faculty from the privileged classes far more at ease with English. To add to their woes, the academic environment has an entrenched bias against them. There is a widespread tendency among the middle classes of this country to look down upon those who do not speak English well; many a time, a student

not fluent in English is seen as generally 'incompetent'. Often, leading English-medium institutes encourage their students to converse only in English, and the usage of the native tongue is discouraged. This bias afflicts the professional sphere too. As a result, it is tremendously difficult for students of the vernacular-medium schools to cope with higher education and measure up in the professional field."

??हमारा सवाल??

क्या अनिल मीणा की जगह कोई और ग्रामिण कस्बाई गैर इंग्लिश मीडियम पृष्ठभूमि का तथाकथित स्वर्ण माने जाने वाली जाति का ही विद्यार्थी होता, तो क्या एम्स का एलिट-इंग्लिश मीडियम सिस्टम उसके प्रति सहानुभूति रखता और सिर्फ एम्स के शिक्षण-अधिगम के लिए अपनायी गयी इंग्लिश भाषा को त्याग कर क्षेत्रीय बोलियों में एम्स में शिक्षण प्रारंभ कर देता ?

या कोई अनुसूचित जाति-जनजाति के ही शहरी इंग्लिश मीडियम सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी को भी इंग्लिश मीडियम कक्षाओं में उसी तरह दिक्कत आती जिस प्रकार ग्रामिण

क्षेत्रीय पृष्ठभूमि का होने की वजह से अनिल मीणा को आयी । इंग्लिश मीडियम पृष्ठभूमि के उस अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थी को भी क्लास बंकर अंग्रेजी के पाठ्यक्रम को हिन्दुस्तानी में समझने के लिए किसी सहारे की जरूरत पडती?

Clipping 2- Engineering student ends life over poor English skill

http://www.newindianexpress.com/states/tamil_nadu/Engineering-student-ends-life-over-poor-English-skill/2013/11/14/article1889808.ece#.UzjHNajoQfQ

A 19-year-old engineering student, who was upset over his poor English skills, committed suicide by jumping in front of a train here on Wednesday.

Sources said Prasanth, son of Malaisamy from Alagappa Nagar, was a first year engineering student of a private college located near Sivakasi.

Earlier ,he completed his Plus Two in Tamil medium from TVS Sundaram Higher Secondary School with a score of 1100. Though Prasanth was not interested in engineering studies, he joined Computer Engineering course owing to pressure from his parents.

As he finished his schooling through Tamil medium, he faced trouble in

following the subjects at the college as they were taught in English.

Because of his poor English knowledge he could not put up a good performance. Other students too started isolating him and due to this he was in a dejected mood, said one of his friends, who studied with him in the school.

.....

Police, who recovered the body, found a suicide note in which he had mentioned that he could not cope up with engineering studies due English medium and did not like the college and hostel. He had also apologised to his mother, 'I am sorry Amma', for the extreme decision, said the GRP personnel. **He is the third engineering college student to commit suicide here in the last three days.**

??हमारा सवाल??

गैर अनुसूचित जाति पृष्ठभूमि के इस तमिल माध्यम विद्यार्थी को आत्म हत्या करने के लिए विवश क्यों हो गया ।

इस क्षेत्र के नेताओं ने ही तो नारा दिया था, “No Hindi ! English to Continue, No Hindi English For Ever!” तो फिर उसी प्रदेश में लोग आज इंग्लिश की वजह से आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? कास उन्होंने इंग्लिश की जगह तमिल-तेलगू के पक्ष में आवाज उठाई होती तो....

Clipping 3

First-year student at Anna University commits suicide

<http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/firstyear-student-at-anna-university-commits-suicide/article3325338.ece>



S. Dhyriya Lakshmi

Left a note saying she could not cope with college studies

A 19-year-old student of Anna University committed suicide by hanging herself inside a hostel, on campus on Tuesday morning. **Police said she left a suicide note stating that she decided to take the extreme step as she was**

not able to cope with her college education.

S. Dhyriya Lakshmi, a native of K.V. Palayam in Villupuram district, was a first-year student of Civil Engineering in College of Engineering, Guindy (CEG). She was a resident of a hostel at the Kondrai Block on campus, where she was staying with five students in a room.

The **girl's father Sakhivel**, is expected to arrive in the city on Wednesday morning..**Speaking to *The Hindu* over the phone, Sakhivel, who is a farmer, said that Dhyriya Lakshmi was his eldest daughter and had scored 92 per cent in the class XII exams. "I took a bank loan and put her in college after a lot of struggle," he added.**

Her classmates noted that she had attended a class in the morning, "But she kept saying that she was finding studies increasingly difficult, due english "

said one of her friends.

Dhyriya Lakshmi had had a 7.85 CGPA in her first semester exams and an attendance of over 93 per cent. But she found it very difficult to pass her internal assessment exams in the second semester, especially because she came from a Tamil medium school, her friends said. “Of the two internal assessment rounds, she did not appear for one and had poor results in the other. The thought that she had lost a year was bothering her very much,” one of them said.

हमारा सवाल

92% अंकों के साथ पास होने वाली एस धरिया लक्ष्मी कॉलेज में आते ही पिछड़ने क्यों लगी?

क्या तमिल बैंक ग्राउंड का होना ही इस किसान की बेटी का कसूर तो नहीं ?

For Dalit students, it's a nightmarish leap from Tamil medium to English

<http://www.thehindu.com/news/national/tamil-nadu/for-dalit-students-its-a-nightmarish-leap-from-tamil-medium-to-english/article4686735.ece>

Many realise the need to learn English only after they finish school education



students attend a session on spoken English at St. Joseph's College in Tiruchi on Saturday.

Photo: M. Moorthy

?? हमारा सवाल??

हमारा सवाल जितना जोर दलित ग्रामिण पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों को अंग्रेजी सीखाने में लगाया जा रहा है उसका आधा भी जोर यदि दलित भाषाओं और काम को शिक्षा की धुरी में लाने पर किया गया होता तो दलित वर्ण नहीं तमाम जातियों के दलित वर्ग के लोग शिक्षा की धुरी पर होते ।

"When people spoke in English, I used to scorn them, till I sat for an engineering entrance exam in Madurai," narrates Chandra, a student from a **Tamil medium school**, awaiting her Class XII exam results. **"The instructions were in English and all around me, students were asking questions in English. Though I too had doubts to ask, I felt too embarrassed to speak."** A top-ranking student in her school, unnerved by the experience, Chandra did not perform well in keeping with her preparation.

The transition from school to college is a leap in itself, but for **Dalit**

students like Chandra from Tamil medium schools, who also happen to be first-generation college goers and hail from poor families, the switch is riddled with nightmarish fears. Most students realise the need for learning English only after finishing school, says John, a student from Kumbakonam. "In school, I saw English only as a subject I had to pass. After the exams, everyone was talking about college. When a relative asked me if I knew that all the subjects would be taught in English, it scared me."

Students from various districts attending a residential programme in spoken English for Dalit youth at St. Joseph's College in Tiruchi, shared their anxieties about sitting in a classroom where subjects would be taught in a language they did not understand. Some students admitted they were still not sure what a noun meant.

With English being one of the subjects in school, how did they

manage to pass all these years? "Teachers mark important questions for us to learn," says Deepa from Salem. Tilak, a student from Musiri, explains what seems to be the popular method, "I mug up all the words in their proper order for every sentence, though I might not understand the meaning of half the words. The trouble is if I forget one word, then the rest of the sentence falls apart."

Among the careers these students wish to pursue are medicine, engineering, commerce, bio-technology and civil services. "Why do we have to learn subjects in Tamil all through school, and then learn them in a different language in college?" demands Sujitha, a student from a government school in Perambalur.

"I wanted to learn to speak in English, but there was little I could have done about it. Perhaps if my parents had more money, they could have sent me to an English medium school," wonders Britto Raj from Kumbakonam.

"Even if we manage to get a course in Tamil, don't recruiting companies demand knowledge of English?" asks Tilak.

A firm grounding in basic English grammar and ensuring Tamil medium students know how to speak in English could make them more confident, feels Surya, from Tiruvarur.

??हमारा सवाल??

ये सिस्टम विद्यार्थियों को इंग्लिश मीडियम में ढालने के बजाए खुद को उनकी भाषा में क्यों नहीं ढालता??

'Suicide' of 13 year old boy shrouded in mystery

<http://thecanaratimes.com/epaper/index.php/archives/23849>

MANGALORE: The case of suspected suicide of a 13 year old boy at Talapady in Ullal police station limits after his mother reportedly refused money to buy biscuits, has been shrouded in mystery.

...When his mother peeped into his room in the evening, she found him hanging.

The boy committing suicide in the evening after pestering his mother for biscuits in the morning, has raised much suspicion. **The boy who had studied in Kannada medium upto sixth standards was admitted to the**

Joyland English Medium School recently. It is learnt he was finding it difficult to mingle with the English medium students and there is also a suspicion that he had pressure from teachers. As if to substantiate it the school authorities refused to speak to the media on the issue. There is also an allegation that the Principal had lied that the school did not have the photograph of the boy.

??हमारा सवाल??

सीखते रहना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है । फिर उसने सीखने से डर कर आत्महत्या क्यों किया??

http://www.business-standard.com/article/pti-stories/bpharma-student-attempts-suicide-113090400470_1.html

B. Pharma student attempts suicide

A 19-year-old BPharma student jumped from the third floor of her college building . Sambul Ishaq, a BPharma student at M C Saxena Institute of Engineering and Management, was severely injured after she jumped from the college building yesterday, police said.

Her father Abu Ishaq has lodged a police complaint and investigations are on, they said.

According to her father, Sambul was being ragged at the college.

Her peers, however, said she was facing problems adjusting to English medium of teaching at the college. She was often ridiculed over it, due to which she was in depression, they said.

??हमारा सवाल??

क्या मजहब की वजह से इस विद्यार्थी के प्रति भेदभाव किया गया या या यहाँ भी वजह इंग्लिश ही है ??

चूँकि मैरिट आधारित वर्तमान व्यवस्था समान्य वर्ग के ग्रामिण या निम्नवर्गीय पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के उच्च शिक्षा के मंदिरों में दाखिले की संभावना को पहले ही बंद कर चुकी है । अब यदि ग्रामिण या निम्नवर्गीय पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों के लिए कुछ संभावना बाकी है तो वह है अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के विद्यार्थियों की है । अतः ऊपरी तौर पर देखने में लगता है कि यह आरक्षण की व्यवस्था का सहारा लेकर दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के विद्यार्थियों के प्रति स्वर्ण जाति बहुल व्यवस्था का पक्षपातपूर्ण रवैया है । पर हकिकत में यह 'एलिट-इंग्लिश मीडियम सिस्टम' केन्द्रित शहरी उच्च मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि लोगों का तमाम ग्रामिण-कस्बाई-निम्न और निम्न मध्यम वर्गीय गैर इंग्लिश मीडियम पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों पर दबदबा है । इंग्लिश मीडियम की यह तलवार हर जाति के गैर इंग्लिश मीडियम विद्यार्थियों पर समान रूप से चली है । जाति की राजनीति तो सिर्फ मुद्दे को भटकाने मात्र के लिए है ।

इंग्लिश मीडियम सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के सभी जाति एवं मजहबों के विद्यार्थी इससे बच जाते हैं तो गैर इंग्लिश मीडियम सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी इसकी चपेट में आ जाता है ।

ये तमाम केस दर्शाते हैं कि इंग्लिस मीडियम सिस्टम उच्च शिक्षा की सुरंग से उन को ही पार होने देता है जो इंग्लिश के रंग में रंग जाते हैं । वे सभी दरवाजे पर ही रोक लिए जाते हैं , कत्ल कर दिए जाते हैं जो इंग्लिश के रंग में नहीं रंगते हैं ।

जो रंग जाते हैं वे सिस्टम के आदर्श बन जाते हैं । वे ही बताते हैं कि उन्होंने किस प्रकार क्षेत्रीय माध्यम से प्रथमिक शिक्षा ग्रहण कर उच्च शिक्षा अंग्रेजी में ग्रहण की । अनिल मीणा और धारू लक्ष्मी जैसे केस तो कुछ समय तक आकबारों की सुर्खियों में रहने के बाद भूला दिये जाते हैं । इस तरह के केसों को इसतेमाल सिस्टम हद से हद जाति धर्म की राजनीति परोसने के लिए करता है ।

सभार क्लिपिंग –

<http://archive.indianexpress.com/news/the-death-of-anil-meena/923471/>

<http://caravanmagazine.in/reportage/unhealed-wounds>

<http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/firstyear-student-at-anna-university-commits-suicide/article3325338.ece>

<http://www.thehindu.com/news/national/tamil-nadu/for-dalit-students-its-a-nightmarish-leap-from-tamil-medium-to-english/article4686735.ece>

<http://thecanaratimes.com/epaper/index.php/archives/23849>

http://www.business-standard.com/article/pti-stories/bpharma-student-attempts-suicide-113090400470_1.html

कुछ और लिंक-

<http://drmaaleem.blogspot.in/2012/10/language-barrier-upto-students-suicides.html>

[http://www.samachar.com/Third-in-a-month-Chennai-engineering-student-commits-suicide-](http://www.samachar.com/Third-in-a-month-Chennai-engineering-student-commits-suicide-merpN3biiga.html)

[merpN3biiga.html](http://www.samachar.com/Third-in-a-month-Chennai-engineering-student-commits-suicide-merpN3biiga.html)

<http://www.countercurrents.org/akumar140312.htm>

<http://www.ndtv.com/topic/student-suicide/news/page-13>

<http://www.ndtv.com/article/delhi/aiims-mourns-death-of-medical-student-who-committed-suicide-182699>

<http://www.dnaindia.com/mumbai/report-maharashtra-tops-student-suicide-list-2002506>

<http://madmax.lmtonline.com/textarchives/051601/s12.htm>

<http://newsnow.in/news/youths-ensure-an-english-medium-school-for-poor>

http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/tamil-out-for-college-assignments-tests/article4747213.ece?utm_medium=referral&utm_source=t.co

http://www.reddit.com/r/india/comments/1qlth1/engineering_student_ends_life_over_poor_english/

http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/tamil-out-for-college-assignments-tests/article4747213.ece?utm_medium=referral&utm_source=t.co

<http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/tamil-out-for-college-assignments->

[tests/article4747213.ece?utm_medium=referral&utm_source=t.co](http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/tamil-out-for-college-assignments-tests/article4747213.ece?utm_medium=referral&utm_source=t.co)

अध्याय 15

भाषा एवं संस्कृति को समझने हेतु किये कुछ विशेष अध्ययन

भाषा और संस्कृति का गहरा सम्बन्ध है। भारत जैसे देश में जहाँ 'अंग्रेजी माध्यम शिक्षण' अपने आप में एक गंभीर समस्या का रूप ले चुका है। ग्रामिण, निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के लगभग सभी बच्चे इंग्लिस मीडियम शिक्षण व्यवस्था में सिर्फ अंग्रेजी भाषा की बाधा को न पार कर पाने की वजह से किसी भी विषय को नहीं समझ पाते और पिछड़ते जाते हैं। आज भी बोर्ड की परीक्षाओं में ग्रामिण एवं शहरी निम्न एवं निम्न मध्यम वर्ग के अधिकतर विद्यार्थी अंग्रेजी में ही फेल होते हैं। यह मिथक भी प्रचलित है कि बिना अंग्रेजी के आप दुनिया के किसी दूसरे हिस्से से संपर्क ही नहीं कर सकते, बाहर के देशों में नौकरी नहीं कर सकते। "आपका ज्ञान ग्लोबल ज्ञान बने इसके लिए सिर्फ अंग्रेजी भाषा सीखना ही काफी नहीं है अपितु बाकी सभी विषयों को भी अंग्रेजी में पढ़ना और ज्ञान हासिल करना जरूरी है। तब ही आप दुनिया के किसी भी कोने में 'सर्वाइव' कर पावोगें, अन्य देशों तथा एम् एन सी में जॉब कर पावोगे।" "सरकारी नौकरी कौन सी बीना अंग्रेजी के मिल जाती है। सरकारी नौकरी की हर स्तर की परीक्षा के लिए अंग्रेजी अनिवार्य है।" "लेकिन यहाँ एक सवाल यह भी पैदा होता है कि पुराने समय में जो लोग बिना भाषा ज्ञान

के ही एक देश से दूसरे देश में किस प्रकार जाते थे और वे वहाँ किस प्रकार से विचार विनमय करते थे।” “जिन दिनों ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने पांव भारत की सर जमी पर कदम रखे, उस वक्त भारत में किसकों अंग्रेजी आती थी। अंग्रेजी बोलने वाले लोग मिलेगे तब ही व्यापार होगा। इस आधार पर तो अंग्रेजों को एशिया और अफ्रिका की सरजमी पर कदम ही नहीं रखना चाहिए था।” नालंदा और तक्षशिला में पढ़ने आने वाले विदेशी विद्यार्थी क्या भारत के इन विश्विद्यालयों में प्रचलित भाषा सीख कर पढ़ने आते थे।” “आज कल तो कहते हैं कि अंग्रेजी की वजह से ही विदेशी एमएनसी कपनियाँ भारत में निवेश कर रही हैं। अंग्रेजी माध्यम के शिक्षित लोग नहीं मिले तो ये कम्पनियाँ वापस लौट जाएगी। देश के विकास का पैमाना कहलाने वाला जीडीपी का ग्राफ नीचे गिर जायेगा है। अतः देश के विकास के लिए अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा जरूरी है।”

ये सब बातें कुछ यक्ष प्रश्न के रूप में लोगों से बातचीत के दौरान मिली। मैंने तो बस उन कुछ बातों को जोड़ कर ऊपर का पहरा भर लिखा है। असल सवाल तो इससे भी कहीं ज्यादा बड़ा है। यह तो संभव नहीं कि नालंदा एवं तक्षशिला में आने वाले विद्यार्थियों की केस स्टडी करने के लिए हम बीते समय में जाए। पर हम कुछ ऐसे व्यक्तियों को तो खोज ही सकते हैं, जिन्होंने अपने ‘प्राथमिक-भाषा-परिवेश’ से बाहर निकलकर ‘दूसरे- भाषा-परिवेश’ में जाकर दूसरी भाषा को सीखा हो और उस क्षेत्र में जीवन जीने के माध्यम के रूप में प्रयोग भी किया हो।

भाषा तथा संस्कृति के सम्बन्धों को समझने हेतु कुछ विशेष साक्षत्कार उन लोगों के हैं, जो जब अपने मूल सांस्कृतिक परिवेश में थे तब उन्हें दूसरे सांस्कृतिक परिवेश की भाषा का कोई ज्ञान हासिल ही नहीं था। उस भाषा को उस नए सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में जाकर ही सीखा। एक डेढ़ वर्ष के बच्चे की केस स्टडी भी है जो अपनी प्रथम भाषा को सीखने की प्रक्रिया में है।

इस बात को एक्सप्लोर अर्थात् खोजने हेतु निम्न लोगों से भिन्न भिन्न तरीकों से केस स्टडी की।

1) ज्योतिसंग जी जिनका भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में हिन्दुस्तानी, पंजाबी आदि भाषाएं आती हैं। स्कूल-कॉलेज में पढ़ कर अंग्रेजी का ज्ञान भी हासिल कर लिया। पर जर्मनी जाकर ही पता चला कि यहां कोई अंग्रेजी नहीं जानता और थोड़ा बहुत कोई जानता भी है, तो वह अंग्रेजी में बात ही नहीं करता।

2) डॉ लाल बहादुर वर्मा जी जिन्होंने भारत में रहते हुए हिन्दी, अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हासिल किया। पूर्वांचल के होने की वजह से अवधी और भोजपुरी उनकी रगों में थी। पर फ्रांस के एयरपोर्ट पर उतर कर ही पहला फ्रेंच शब्द सुना और तीन वर्ष पश्चात फ्रेंच में ही अपनी पोस्ट डोक्टरेट रिसर्च प्रस्तुत की। अब तक अनेकों पुस्तकें फ्रेंच से हिन्दी में अनुवादित कर चुके हैं।

- 3) रवि रंजन जी ने तो कभी रूसी के बारे में सोचा भी न था। पर आजकल रूसी भाषा में ही सपने देखते हैं। वह तो इफतिफाक था कि भारत के किसी भी इंजिनरिंग कॉलेज में जब दाखिला नहीं हुआ तो तो रूस से इंजिनरिंग करने की सोची।
- 4) ईराक में पैदा हुए पले बड़े अब्बास खिदर साहब, जिन्होंने ईराक में अपनी खर्द जुबान में लिखना शुरू किया। पर सद्दाम के डर से जर्मनी भागें। एक बार तो उम्मीद ही छोड़ दी की वे अब लिख भी पाएंगे। फिर एक रोज जब उन्हें लगा कि रात को उन्होंने जर्मन में स्वपन देखा है। तो उन्होंने जर्मन में लिखना प्रारम्भ किया।

ज्योति संग जी

ज्योतिसंग 1970 के दशक में जमीन के रास्तें 9 महीने की लम्बी यात्रा के पश्चात् जर्मनी पहुंचे। अपने इस प्रवास के दौरान सिर्फ भारत से अफगानिस्तान तक की यात्रा ही उन्होंने वायु मार्ग से की, इसके आगे की यात्रा हेतु उन्होंने सड़क मार्ग, रेल मार्ग का प्रयोग किया। उनके ही शब्दों में, "सड़क मार्ग में, मैंने सिर्फ बस की सवारी ही नहीं की अपितु इक्का-तांगा जो मिला उससे अपनी यात्रा को आगे बढ़ाया। इस दौरान पश्चिम एशिया तथा पूर्वी यूरोप के कई देशों के बॉर्डर को भी पार किया। अलग अलग देशों में

अलग अलग भाषाओं का भी सामना किया। जब संपर्क स्थापित करने का कोई रास्ता ना बचता तो इशारों की भाषा से भी काम चलाया जाता था। इस प्रकार लम्बी परन्तु कठिन यात्रा के उपरांत मैं जर्मनी पहुँचा।”

ज्योतिसंग जी से जब पूछा गया कि जर्मनी जाने से पूर्व भारत में क्या करते थे? और जर्मनी जाने की योजना किस प्रकार अंजाम दिया?

इस पर ज्योतिसंग जी का जबाब था, “जर्मनी जाने से पूर्व मैं भी वही कर रहा था जो देश के अन्य मेरी उम्र के युवा करते हैं अर्थात पढाई पूरी करके, मैं एक कंपनी में काम करता था। जर्मनी जाने का फैसला एका-एक लिया फैसला था जिसकी कोई योजना तय नहीं थी। बस मैं रोज की दिनचर्या से ऊब गया था। एक रोज जब मेरे पास 1500 रुपये इक्के हो गए तो मैंने अपने घर में अपनी जर्मनी जाने की इच्छा व्यक्त की और निकल पड़ा।”

लेखक ने आगे पूछा, “पर जर्मनी ही क्यों? फ्रांस, जापान, इंग्लैंड भी तो जा सकते थे।”

ज्योति संग जी “ये तो मेरे लिए भी कहना मुश्किल है। हमारा परिवार बंटवारे (भारत पाकिस्तान) के समय पश्चिम पाकिस्तान से भारत आया था। मेरी खुद की पैदाइश भारत की ही थी। पर जब से होश संभाला तब से मन में एक इच्छ थी कि उस सर जमीन

को देखू जहाँ मेरे पुरखे रहते थे। पर भारत पाकिस्तान की 1971 की लड़ाई के बाद पाकिस्तान जाने का रास्ता बंद हो गया। इसी क्रम में बचपन से एक और इच्छा पैदा हो गयी थी कि जर्मनी जाना है। शायद अन्दर की अंतःप्रेरणा रही हो, कुछ कह नहीं सकता। “बस एक रोज मन में आया सूटकेस उठाया और चल दिया। पासपोर्ट तो पहले से था ही हाँ वीजा की व्यवस्था रास्तों भर करते रहे।”

लेखक ने आगे पूछा “कभी आपके मन में नहीं आया अलग अलग देश अलग अलग भाषाएँ किस प्रकार पार पायेंगे।”

ज्योति संग जी, “जैसा की आज भी हर हिन्दुस्तानी के दिमाग में एक भ्रम है कि अंग्रेजी पूरी दुनिया में बोली और समझी जाती है। हमारे दिमाग में भी यही था। हलाकि मेरी शिक्षा यही फरीदाबाद के सरकारी स्कूल में ही हुई। हमारे समय में प्राइवेट स्कूलों का कोई ऐसा चलन भी ना था। चलन नहीं था क्योंकि लोगो के पास पैसे भी नहीं थे। अंग्रेजी भी छठी क्लास के बाद ही शुरू होते थी। पर दुनिया देखने की इच्छा ने मुझे अंग्रेजी सीखने को प्रेरित किया। मैं समझता था कि दुनिया के दूसरे मुल्कों में भी लोग हमारी तरह अंग्रेजी पढ़ते होंगे और अंग्रेजी की दो चार लाईनें बोल कर खुद को शहनशाह समझते होंगे।”

लेखक ने आगे जानना चाहा, “तो आपको प्रवास के दौरान अंग्रेजी भाषा का फायदा हुआ।”

“ये मेरा भ्रम था, जो इस यात्रा के दौरान टूटा। जब आप हवाईजहाज से यात्रा करते हैं। तो आपको आभास नहीं होता। उसमें आपको अटैंड करने वाली ‘ट्रेंड’ होस्टेस होती है। हवाईअड्डे का स्टाफ़ भी ‘ट्रेंड’ होता है। पर जब आप जमीन के रास्ते यात्रा करते हैं तो आपका सामना जमीन के लोगो से होता है और ये लोग ना तो ट्रेंड होते हैं ना ट्रेंड लोगो की तरह नकली मुस्कान और बनावटी भाषा लिए हुए होते हैं। अतः इस प्रवास में मुझे इन्हीं लोगो से रूबरू होना पड़ा। हर तरह के लोग, कुछ ने गाली दी तो कुछ ने प्यार भी जताया। इस प्रक्रिया में वो भाषा काम में आई जो हर देश के एक विशेष किस्म के लोग इस्तेमाल करते हैं वो हैं गूँगों की भाषा। अर्थात् अफगानिस्तान से जर्मनी तक की यात्रा में ‘इशारों की भाषा’ ने ही ज्यादा साथ दिया।”

लेखक ने विचार विमर्श को गति देने के लिए कहा, “फिर जर्मनी में काम कैसे चला। क्या इंग्लिश ने आपको सहायता प्रदान की?”

“जर्मनी में पहले तो कोई इंग्लिश जानता नहीं और यदि कोई जानता भी तो बोलने को तैयार नहीं। बड़ी अजीब सी स्थिति हो गई थी, मेरी। वही इशारों की भाषा से काम चलता रहा। पर आश्चर्य तब हुआ जब बिना किसी कोचिंग के, मैं कुछ ही दिनों में कुछ शब्द बोलना सीख गया। शब्द मानों खुद ब खुद मेरे अन्दर आकर बस रहे थे। हर रोज जर्मनी के कुछ ज्यादा करीब आ जाता। वहां पर मेरी जिन्दगी को सहारा एक जर्मन छात्रा ने दिया जिसकी रुचि हिंदू माइथोलॉजी (पुराण-विद्या) में थी। इस रुचि की वजह उसे भी कुछ-कुछ हिंदी आती थी और मेरी हालत उस वक्त कुछ साधुओं की सी हो गई थी। कपड़े फटे हुए दाढ़ी बढ़ी

हुई। पर जब मैंने बताया कि मैं ग्रेजुएट हूँ तो उसे आश्चर्य हुआ। मैंने उसे रामायण और महाभारत की कहानियों का सार बताया। वह अगले दिन मुझे अपने साथ अपने विश्वविद्यालय ले गई। वहाँ भारतीय माइथोलॉजी में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों का एक समूह था। वहाँ रामायण की कहानी सुनाई जिसका उसने जर्मन अनुवाद उन छात्रों को समझाया। वार्ता के अंत में उसने मेरा परिचय उन छात्रों से करवाया और फिर क्या था मेरे रहने और खाने की समस्या हल हो गई। रहने के रहने के लिए उन्हीं छात्रों के होस्टल में जगह भी मिल गई और खाने के लिए 'कूपन' भी।" (नोट : जर्मन सरकार उन दिनों विद्यार्थियों को मैस में भोजन के फ्री कूपन उपलब्ध कराती थी।) और काम के रूप में भारतीय माइथोलॉजी की क्लास, सब एक साथ मिल गया।"

कुछ देर रुक कर ज्योतिसंग ने आगे साँस खींचते हुए कहा, "जर्मनी में वो विद्या काम नहीं आई जो मुझे कॉलेज से मिली थी। वहाँ वो विद्या और कला काम आई जो मुझे घर परिवार से विरासत के रूप में मिली थी।" ज्योतिसंग जी ने बताया कि रामायण महाभारत आदि की कहानियाँ उन्होंने माँ-दादी से सुनी थी और उसे कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने की कला पिता से सीखी। मेरे पिता रंगमंच के कलाकार थे तथा रामलीला में भी भाग लेते थे।"

लेखक ने वापस उन्हें विषय पर लाने के लिए पूछा, "फिर जर्मन भाषा कैसे सीखी। क्या जैसे भारत में इंग्लिश सीखने के लिए इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स 'ज्वाइन' करते हैं। उसी प्रकार आपने जर्मन स्पीकिंग कोर्स ज्वाइन किया।"

ज्योतिसंग, “नहीं! कोई कोर्स ज्वाइन करने की जरूरत नहीं पड़ी। हर रोज सुबह उठने के साथ लगता आज कुछ नया सीख लिया है। ठीक उसी तरह जैसे एक बच्चा सीखता है। धीरे धीरे जैसे जैसे मैं उनकी संस्कृति को समझता गया वैसे-वैसे उनकी भाषा भी सीखता गया।”

लेखक ने फिर कुरेदा, “तो फिर क्या आपने जर्मन सीखने हेतु किसी संस्था में दाखिला नहीं लिया?”

“नहीं अगले दो वर्ष तक कोई नहीं। इस बीच मैं अच्छा खासा जर्मन बोलने लग गया था। जर्मन में ही रामायण और महाभारत के किस्से भी सुनाया करता था। पर दो साल बाद जब मैंने यूनिवर्सिटी में कोर्स ज्वाइन किया। जिसका उद्देश्य जर्मन सीखना कम और जर्मनी की सरकार छात्रों को जो फायदे प्रदान करती है वो लेना अधिक था।”

लेखक “तो फिर इस कोर्स से कुछ तो फायदा हुआ ही होगा।”

ज्योति संग जी, “फायदा ! यदि मैं आर्थिक फायदे की बात करू तो हाँ, विद्यार्थियों को मिलने वाले फ्री कूपन, पार्ट टाइम वर्क परमिट, आदि आदि, पर भाषा के विषय में बात कहूँ तो नहीं।” थोडा रुक कर, “देखो! दो सालों के अन्दर जो जर्मन मैंने सीखी वह लोगों से संपर्क के जरिये सीखी, मतलब वह स्ट्रीट की भाषा थी। ये जर्मन मैंने उन छात्रों के बीच रहकर तथा इधर उधर के

लोगों से संपर्क में आकर सीखी इस शहर उस शहर जो मैंने प्रोग्राम किये, इन सब के दौरान जो लोगों से बातचीत हुई, उससे सीखी। यह स्ट्रीट की जर्मन थी। पर जब मैंने यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया तो वहाँ जो सीखाया गया, वह स्थापित मानक जर्मन था। उस जर्मन में जर्मनी के एक कोने से दूसरे कोने की विविधता, मेल और प्रेम गायब था। पूर्व की जर्मन पर रूसी भाषा का प्रभाव दिखता है। तो पश्चिम की जर्मन पर फ्रेंच का। पर विश्वविद्यालय की जर्मन में ये दोनों ही गायब होती हैं।”

एक बार रुक कर, “जर्मनी ही नहीं, किसी भी देश का, कोई भी विश्वविद्यालय संस्कृति की भाषा नहीं सिखा सकता। भाषा सिखाने का जो कारोबार है वह महज स्थापित भाषा को सिखाने तक ही सीमित है। हिंदुस्तान में जो हिंदी और अंग्रेजी सिखाने का जो कारोबार है वह क्या है? स्कूल कॉलेजों की हिंदी लोगों द्वारा बोले जाने वाली आम बोलचाल की भाषा से भिन्न है और हमारे यहां पढ़ाए जाने वाली इंग्लिश भी इंग्लैंड अमेरिका में बोली जाने वाली इंग्लिश से भिन्न है। दुनिया का कोई भी विश्वविद्यालय संस्कृतिक भाषा को नहीं सीखा सकता है।”

डॉ लाल बहादुर वर्मा जी

डॉ. लाल बहादुर वर्मा का संक्षिप्त परिचय ये है कि ये इतिहास के एक प्रतिष्ठित विद्वान हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात सामाजिक रूप से सक्रिय हैं। फ्रेंच की बहुत सी मूल पुस्तकों को हिंदी में अनुवादित कर चुके हैं।

डॉक्टर लाल बहादुर वर्मा जिन दिनों गोरखपुर विश्वविद्यालय में थे। उन दिनों (1967) उन्हें फ्रांस सरकार से पोस्ट डोक्टोरेट रिसर्च हेतु फेलोशिप प्राप्त हुई। तीन साल के फ्रांस प्रवास के दौरान ना केवल उन्होंने अपना रिसर्च कार्य पूरा किया अपितु उस रिसर्च को उस भाषा में लिखा जिससे वो तीन साल पूर्व तक परिचित भी नहीं थे।

लेखक ने उनकी बाकी उपलब्धियों को पीछे रख उन्होंने फ्रेंच भाषा पर जो अल्पकाल में पकड़ हासिल की उसके बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही।

लेखक, “क्या आपको फ्रांस जाने से पूर्व फ्रेंच भाषा का ज्ञान था?”

डॉ वर्मा, “नहीं मुझे फ्रांस जाने से पूर्व फ्रेंच भाषा का कोई ज्ञान नहीं था। यह भाषा पूर्णतः फ्रांस प्रवास के दौरान ही सीखी। सिर्फ सीखी ही नहीं तीन साल बाद अपना रिसर्च थीसिस भी उसी भाषा में जमा कराया।”

लेखक, “आपको फ्रेंच भाषा सीखने में कुल कितना समय लगा?”

डॉ वर्मा, “चूँकि यह पहले से ही तय था कि मुझे अपना काम फ्रेंच में ही करना है। अतः सीखने की प्रक्रिया तो एअरपोर्ट पर उतरने के साथ ही शुरू हो गई थी। पर विश्वविद्यालय में जिस प्रकार से सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के साथ सिखाया गया तथा जो सामाजिक सम्पर्क स्थापित हुआ उसने सीखने में गति प्रदान की, इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय में भी भाषा सिखाने हेतु विशेष तकनीक का प्रयोग भी होता था, जैसे ऑडियो विजुवल साधनों का प्रयोग, उच्चारण सिखाने के लिए ऑडियो। पहले हम बोलते फिर उसी का उच्चारण सुनते और गलती को सुधार कर फिर से उच्चारण करते। इस प्रकार अगले 9 महीने में इस योग्य हो गए की फ्रेंच में काम करने लगे। मैं ही नहीं मेरे साथ के दूसरे स्कॉलर थे, वे सभी भी।

लेखक, “क्या सिखाने के दौरान इंग्लिश या किसी अन्य भाषा का भी प्रयोग हुआ?”

डॉ। वर्मा, “सिखाने की प्रक्रिया में किसी भी दूसरी भाषा का प्रयोग वर्जित था। हमने सीधे फ्रेंच से ही फ्रेंच सीखनी थी। संपर्क करते गए, जानते गए और सीखते गए। इस प्रक्रिया में क्लासरूम से कहीं ज्यादा भूमिका क्लास रूम के बाहर के वार्तालाप की

भी थी। सब जानते थे कि ये नए हैं, इसलिए सभी सहयोग भी करते थे। और बाहरी लोगों के लिए भी अपनी जरूरत पूरा करने हेतु फ्रेंच के सीवा कोई दूसरा विकल्प नहीं था।”

लेखक, “तीन वर्ष बाद आपने थीसिस किस भाषा में लिखी तथा क्या उस दौरान कोई दिक्कत आई?”

डॉ। वर्मा, “मैंने अपनी थीसिस फ्रेंच में प्रस्तुत की 9 महीने बाद जब अनुसन्धान का काम शुरू किया वह पूर्णतः फ्रेंच में ही था। थीसिस लिखने में भी मुझे कोई दिक्कत नहीं आई। हाँ! प्रूफ रीडिंग के दौरान जरूर मैंने थोड़ी मदद ली। देखिये, थोड़ा गैप तो बना ही रहेगा। एक वो जो शुरू से वहां रह रहे हैं और दूसरे हम जो इस संस्कृति से उस में गए हों।। निसंदेह एक जो वहां शुरू से रह रहे हैं, उनकी भाषा पर पकड़ हमसे बेहतर ही होगा।”

लेखक “यदि फ्रेंच सीखने और इंग्लिश सीखने में तुलना करनी हो तो।”

लाल बहादुर वर्मा जी, “बात फ्रेंच और इंग्लिश की नहीं है। बात किस तरह सीखे इसकी है। हम भारत में इंग्लिश कैसे सीखते हैं। हम उसे अनुवाद करते हुए सीखते हैं। अंग्रेजी के ग्रामर में शब्दों को भरते हुए सीखते हैं, जैसे। के साथ Have लगेगा He और She के साथ has हम महज ऊपरी तौर पर भाषा को जानते हैं। पर हम वहा प्रयोग करते हुए सीखते हैं। तो सीखना आसान हो

जाता है। इस सीखने की प्रक्रिया में मोची, नाई, धोबी, बच्चा बूढ़ा हर एक हमारा गुरु होता है। पर हम भारत में अंग्रेजी कैसे सीखते हैं। हम सीखते हैं पुस्तकों से, एक अंग्रेजी का जानकार है। वो हमें सिखा रहा है और हम उसे रट रहे हैं। इसलिए 15-20 साल पढ़ने के बाद भी इंग्लिश में हमारी समस्या बनी रहती है।”

लेखक “फ्रांस प्रवास के दौरान कुछ विशेष अनुभव ।”

डॉ वर्मा, “हिंदुस्तान में हमें यूरोप का वही साहित्य मिल पाता है जो इंग्लिश में अनुवादित है या इंग्लिश में ही छपा। हम इंग्लिश अनुवाद को ही सत्य मानते हैं। पर वास्तविक स्थिति उससे भिन्न है। यूरोप के साहित्य (ज्ञान विज्ञान) का एक अंश ही अंग्रेजी में अनुवादित है। उसमें भी बहुत सी खामियाँ हैं।”

रवि रंजन जी

रवि रंजन 1991 में कंप्यूटर इंजीनियरिंग में एम् टेक का कोर्स करने के लिए रसियन एम्बेसी के माध्यम से रसिया गए थे। कोर्स के पश्चात उन्होंने वही नौकरी की। बाद में वही से बिज़नेस भी शुरू किया। बीच बीच में वे भारत आते रहते हैं पर मूलतः अब वे रूस में ही रहते हैं।

रवि रंजन के अनुसार, "जैसा कि भारत में आम धरना है कि कंप्यूटर इन्जीनियरिंग जैसा कोर्स सिर्फ अंग्रेजी में ही हो सकता वहां हमें यह कोर्स रूसी भाषा में करना था। रूस में सारी शिक्षा नर्सरी से विश्वविद्यालय तक रूसी भाषा में ही है। अब विदेश से आने वाले विद्यार्थियों के लिए अंग्रेजी की व्यवस्था है। पर उस वक्त ऐसा कुछ भी नहीं था। आपको रूसी भाषा सीखनी ही पड़ती थी।"

लेखक "तो आपने यह भाषा कैसे सीखी?"

रवि रंजन, "कोर्स का प्रथम वर्ष का मुख्य फोकस रूसी-भाषा सीखना ही था। हमें क्लासरूम तथा बाहर के लोगो से बातचीत के द्वारा ही भाषा सीखनी थी। विश्वविद्यालय की क्लास में ऑडियो विजुअल साधनों का भी प्रयोग होता था। इस काम में हमारे रूसी साथियों से भी काफी मदद मिल जाती थी। नए लोगो से सम्पर्क, उन्हें और उनके तौर तरिकों को जानने और समझने की जिज्ञासा, नए लोगो से दोस्ती ने हमारे काम को आसान कर दिया। वरना क्लास रूम की गतिविधि तो पकाऊ (उबाऊ) ही थी। इस प्रकार एक साल के बाद हम उस स्थिति में आ गए की हम रूसी भाषा में ही एम टैक का कोर्स कर सके। हमने एक साल में रूसी भाषा पर एक अच्छी खासी पकड़ भी हासिल कर ली थी। हम वो सब रूसी में व्यक्त कर सकते थे, जो हमने भारत में हिन्दी और अंग्रेजी में पढ़ा और सीखा था। मैं समझता हूँ कि रूसी सीखने की प्रक्रिया में क्लासरूम से ज्यादा भूमिका क्लासरूम के बाहर के लोगो से बातचीत की ही रही होगी। क्लास रूम की भूमिका तो बस 'कैटलिस्ट' के समान ही थी, जो सीखने की क्रिया

को थोड़ा गति प्रदान करता है। सीखने के पीछे का मकसद इस नए संसार को एक्सप्लोर करना ही रहा होगा। क्लासरूम से सीखना तो उबाऊ ही था।”

लेखक “क्या आपने रूस जाने से पूर्व भारत में ही रूसी भाषा का किसी प्रकार का ज्ञान हासिल किया था?”

रवि रंजन, “नहीं ! बिलकुल नहीं रूसी का ज्ञान रूस में जाकर ही हुआ। हो भी कैसे सकता था। भारत में घर पर मैथिली बोलते थे। स्कूल में हिंदी, इंग्लिश के आलावा कभी किसी और भाषा के बारे में बताया ही नहीं गया है। यही समझ में आता था कि इंग्लिश के सहारे दुनियां चलती है। वहाँ जाने तक हमारे दिमाग में रूसी का कोई आईडिया ही नहीं था।”

लेखक, “रूस में रहते हुए आपको कितने साल हो गए हैं तथा आज आप रूसी भाषा के साथ कैसा महसूस करते हैं ?”

रवि रंजन, “आज रूस में रहते हुए मुझे 21 वर्ष हो चुके हैं। आज स्थिति ये है कि मैं रूसी भाषा के हर उतार-चढ़ाव को समझता हूँ। जहाँ रूसी भाषा के साथ मेरे सम्बन्धों का सवाल है। आज इसके साथ सम्बन्ध इतने गहरे हो चुके हैं कि रात को सपनें भी रूसी में ही आते हैं। यहाँ तक के सपने में जब कभी घर परिवार के लोग दिखते हैं तो वे भी रूसी परिधानों को पहने होते हैं और

रूसी भाषा में ही मुझसे बातचीत भी करते हैं। मुजफ्फरपुर भी रूस जैसा ही लगता है। हाँ! पर जागृत अवस्था में तो घर परिवार वालों से मैथली और हिंदी में ही बातचीत होती है।”

इसी क्रम में उनके भाई रजनीश ने बताया, “भैया! जब गुस्सा जाते हैं तो हमसे भी रूसी बोलने लगते हैं। हमें याद दिलाना पड़ता है अभी आप भारत के लोगो से बातचीत कर रहे हो।”

लेखक “रूसी भाषा के बिना आप रूस में कितना काम चला सकते हैं।”

रवि रंजन, “रूसी के बिना आप बाज़ार से एक साधारण इन्टरनेशनल ब्रांड का कोक तक नहीं ले सकते। बैंक, स्कूल दफ्तर हर जगह रूसी में ही काम-काज होता है। रूस में स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा रूसी में ही है। अंग्रेजी की व्यवस्था तो बाहर वालो के लिए ही है। मेरी महिला साथी बैंक में इकोनॉमिस्ट है तथा वह अपना सारा काम काज रूसी में ही करती है।”

इदास खीदर साहब

इदास खीदर ईराकी मूल के जर्मन है। लिखने का शौख बचपन से ही था। अपनी युवा अवस्था के दिनों में, जब उन्होंने अपनी कलम को धार देना प्रारंभ किया था। उन दिनों ईराक के पूर्व राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के भी बुरे दिन भी चल रहे थे। राष्ट्रपति के सैनिक हर दूसरे व्यक्ति को शक की निगाह से देखते। लिखने पढ़ने वालों से तो विशेष खौफ रहता था। इस कारण वे अकसर गिरफ्तार भी हुए। बार बार की यातना के बाद उन्होंने ईराक छोड़ने की सोची। और फिर बीना विजा के एक देश से दूसरे देश का शफर शुरू हो गया। जो अंत में जर्मनी में जाकर रुका। उनका लक्ष्य तो स्विडेन जाना था। पर जर्मनी की पुलिस ने आगे के सफर की संभावना खतम कर दी। सजा फिर अध्ययन की सहायता इस प्रकार तीन चार साल जर्मनी में ही गुजार दिए। इस बीच उन्होंने जर्मन भाषा सीख ली। पर उन्होंने एक लेखक के रूप में समाज में स्थापित होने की संभावना छोड़ दी। पर फिर क्या एक रोज सुबह उठने के बाद महसूस हुआ कि रात का स्वप्न जर्मन में देखा है। फिर क्या अगले दिन ही उन्होंने फिर से कलम उटा ली और जर्मन में लिखने लगे। आज जर्मनी के वे स्थापित लेखकों में से एक है। इदास खीदर की आत्म कथा से मिली जानकारी से साभार।

इन चारों अध्ययनों में तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाते हैं –

जहाँ ज्योति संग जी ने जर्मन भाषा में बिना किसी कोर्स के महज़ लोगो से संपर्क एवं समझ के माध्यम से जर्मन का ज्ञान हासिल किया। वही डॉ लाल बहादुर वर्मा एवं रवि रंजन के केस में विश्वविद्यालय में चलाये जाने वाले कोर्स की भी कुछ हद तक भूमिका थी। भाषा सीखाने के लिए विश्वविद्यालय में आडिओ - विजुअल साधनों का प्रयोग भी किया गया। पर इन सब की भूमिका कैटलिस्ट से ज्यादा महीं थी। कैटलिस्टजो किसी क्रिया को गति प्रदान करने के लिए है।

और जैसा कि रवि ने भी बताया विश्वविद्यालय के कोर्स की भूमिका तो महज़ 'कैटलिस्ट' की ही थी और क्लास उबारू भी लगती थी। अर्थात भाषाई समझ तो सामाजिक अंतःक्रिया का ही परिणाम था। यही बात डॉ लाल बहादुर वर्मा जी के केस में देखने को मिली लोगो से बात कर के जो समझ प्राप्त हो सकती है वह पुस्तकों से नहीं। पुस्तकों से सिर्फ शब्द और उसके शब्दकोष के अर्थ ही हासिल कर पायेगे, परन्तु संस्कृति में उसी को सम्पूर्ण सांस्कृतिक भाव, विश्वास मूल्यों, के साथ जीते हुए हासिल किया जाता है। जो भाषा यहाँ पर किताबों को रट कर थोडा बहुत सिखते है। वह वहाँ पर मूल्यों परम्पराओं के सांस्कृतिक सन्दर्भ को कुरेदते हुए सहजता से आत्मसात करते है।

चुकिं प्राथमिक समाजीकरण उस भाषा में नहीं होता अतः उस संस्कृति के मूल निवासियों के टोन तथा द्वितियक भाषा के रूप में अपनाने वालों की भाषा में अंतर तो रहता है, पर समय के साथ यह अंतर दूर होता जाता है। भाषा विशेष के समाजिक

सांस्कृतिक सन्दर्भों को समझाना ही उस भाषा विशेष को सीखाना होता है। जैसे जैसे परिवेश के साथ सहज होते जाते हैं। भाषा आत्मसात होती जाती है।

पर भाषा सीखने की यह प्रक्रिया भारतीय स्कूलों में अंग्रेजी सिखाने की प्रक्रिया से आसान है, क्योंकि इसमें व्यक्ति सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में जाकर वातावरण के माध्यम से भाषा का ज्ञान हासिल करता है।

भारतीय परिवेश में 20-20 साल तक अंग्रेजी पढ़ने पर अपनी अधिकतर उर्जा लगा देने के बाद भी व्यक्ति अंग्रेजी में अटकता है। इसके पिछे का कारण सिर्फ इतना भर है कि वह बिना सांस्कृतिक संदर्भ के भाषा सीख रहा होता है। इस कारण वह सिर्फ रटने की क्रिया भर कर रहा होता है।

उच्च मध्यमवर्गीय विद्यार्थियों के मुकाबले ग्रामिण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यम वर्गीय विद्यार्थियों का 'इंग्लिश मीडियम एजुकेशन' में पिछड़ने की मूल वजह भी परिवेश में अंग्रेजी भाषा के संदर्भों का आभाव ही है। जहां उच्च वर्ग के कृत्रिम परिवेश में इंग्लिश भाषा के होने के वजह से वे तुलनात्मक रूप से ग्रामिण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यम वर्गीय विद्यार्थियों के मुकाबले इंग्लिश को आसानी से ग्रहण कर पाते हैं। फलस्वरूप वे अंग्रेजी में चलने वाले पाठ्यक्रम को आसानी से समझ पाते हैं।

ज्योतिसंग जी के केस में यह बात और भी स्पष्ट होती है कि भाषा सीखाने का विषय ही नहीं है, भाषा तो सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण के संपर्क से स्वतः आत्मसात होने वाला ज्ञान है, जिस प्रकार हमारा भौतिक शरीर समय के साथ नए वातावरण के

साथ ढल जाता है, उसी प्रकार हमारा मन भी धीरे धीरे नए सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप ढलने लगता है। और जैसा रवि और इदास खीदर के केस में देखा एक लम्बे अंतराल के बाद स्वप्न भी उस नए परिवेश की भाषा में आने लगते हैं।

और जब आप नयी भाषा सीख जाते हो। तो उस भाषा को सीखने के पहले के ज्ञान को भी उस नयी भाषा में व्यक्त कर सकते हो। जैसा कि इदास खीदर के केस में देखा कि जो लेखन का गुण उन्होंने खुद भाषा में हासिल किया था, वह भाषा को आत्मसात करने के बाद इस नयी भाषा में भी बना रहा। व्यक्ति का पुराना कौशल नयी भाषा के साथ जाता नहीं है।

विश्वविद्यालय की भाषा शासक वर्ग की शासन की जरूरतों को पूरा करने का साधन मात्र होती है। अतः यह मानक-भाषा सपाट होती है। बिल्कुल उच्च इंजीनियरिंग तकनीक से बनी सड़क के समान। जो किसी खास मंजिल पर जाने के लिए तैयार की जाती है। पर स्ट्रीट की भाषा पहाड़ी पखंडंडियों के सामान होती है जो संस्कृति के गर्भ से खुद बे खुद पैदा होती जाती है। कौन पहली बार चला उस रस्ते पर पता नहीं लोग चलते गए और रास्ता बनता गया। स्ट्रीट की भाषा कुछ पखंडंडियों के सामान ही होती है।

नए सांस्कृतिक परिवेश में बीना किसी कोचिंग के भाषा सीखने में ठीक उतना ही समय लगता है जितना कि एक बच्चा एक दो शब्द बोलने से एक वाक्य बोलने में लेता है। अर्थात डेढ़ से दो वर्ष का समय।

अध्याय 16

हिन्दुस्तानी – औरंगाबाद शहर में हिन्दुस्तान की मिली जुली संस्कृति की खोज (मराठी – हिन्दुस्तानी)

महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर में बिहार-युपी से प्रवास कर बसे परिवारों तथा उनके अडोस पड़ोस के मराठी परिवारों से संपर्क के फलस्वरूप पैदा हुई मिली-जुली संस्कृति और भाषा को खोजने का प्रयास ।

शहर में घुमने फिरने के दौरान जो जानकारी मिली इसके अतिरिक्त मध्यमवर्गी कालोनियों के मुल मराठी एवं प्रवासी निवासियों, स्कूलों में पढने वाले विद्यार्थियों और उनके मातापिता, भाई-बहन, जन समान्य से बातचीत के माध्यम से जो कथानक जानकारियां हासिल हुई । शोधकर्ता आगे उसके कुछ मुख्य बिन्दुओं को विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है ।

औरंगाबाद के मूलतः रहने वाले लोग आपस में बात करते वक्त अकसर गर्दन हिलाते हैं, लड़ाई के लिए दोनों हाथों की अँगुलियों को विशेष प्रकार से मिला कर संकेत भाषा का भी प्रयोग करते हैं। इस तरह की संकेत भाषा उत्तर भारत के लोग इस्तमाल नहीं करते हैं। यह बात बिहार-युपी से प्रव्रजन कर बसे लोगों की पहली पीढ़ी के बच्चों तथा बाल अवस्था में ही प्रव्रजन कर बसे बच्चों के व्यवहार में भी देखने को मिलती है। बड़ी उम्र में प्रव्रजन करने वाले लोगों पर इस प्रकार की संकेत भाषा के प्रयोग का प्रभाव भी कुछ हद तक देखने को मिला। वे सभी इस संकेत भाषा को अच्छी तरह समझते थे।

पुरुषों के मुकाबले महिलाओं के बोलचाल में मराठी का प्रभाव अधिक दिखा। हिन्दी भाषी क्षेत्र कहलाने वाले उत्तर भारत से आ कर बसी महिलाओं में भी विश्वविद्यालय तक तथाकथित हिन्दी की शिक्षा ग्रहण करने वाली महिलाओं की अपेक्षा अल्प शिक्षित या अशिक्षित कहलाने वाली महिलाओं ने मराठी लोगों की भाषाई संस्कृति को अच्छे से आत्मसात किया है।

एक महिला के अनुसार, “मराठी और बिहारी लोगों के बीच प्रेम भाव के साथ ‘रोटी’ का संबंध कायम है। कही कही ‘बेटी’ का संबंध भी देखने को मिलता है। पर वह लडके लडकी के अपने पहल से ज्यादा शरू होता है।” इस प्रकार के संबंध नयी संस्कृति का सृजन के वाहक रहे हैं। “हम एक दूसरे के रीतिरिवाजों में शामिल भी होते हैं और अपनाते भी जाते हैं।”

एक मराठी महिला जो मूलतः भुसावल महाराष्ट्र की ही रहने वाली है, उन्होंने बताया की विवाह पूर्व वे भुसावल जिले के गांव में रहती थी। शादी के बाद शहर में आई। वह कभी स्कूल नहीं गई। उसने लोगों से बात करते करते मराठी लहजे की हिन्दुस्तानी

अर्थात आम बोलचाल की हिन्दी बोलना सीखा लिया। आज वह उत्तर और पूर्व भारत के लोगो से इसी हिन्दी में बात-चीत करती है। वे भी उसकी हिन्दी(मराठी लहजे की) को समझते हैं तथा वह भी उनकी हिन्दी(उत्तर भारत एवं भोजपुरी लहजे की) को समझती है। “हम इसीच में बातचीत करते हैं, यदि कभी लड़ाई हो गयी तो बराबर ऐसे इच में गली-गलौच भी कर लेते हैं। अपन को न तो प्रेम भाव से बातचीत करने में कोई दिक्कत आता एच, न अपन को लड़ने में ही। बरोबर” पाठक समझ ले कि बوليوड की फिल्मों में जिस भाषा को मुम्बई के भाई लोगो की भाषा के रूप में दिखाया जाता है, वह ही मराठी भाषी क्षेत्र की समान्य बोलचाल की भाषा है।

महाराष्ट्र के बी टेक तक पढ़ चुके युवा ने बताया कि पुरे महाराष्ट्र की मराठी एक सामान नहीं है। महाराष्ट्र के बाहर के लोगो को लगता है की पुरे महाराष्ट्र में एक सामान मराठी बोली जाती है। पर हकीकत इससे परे है। महाराष्ट्र के चार खंड हैं और चारों खंड में बोले जाने वाली मराठी अलग अलग है। पर स्कूलों में पढाये जाने वाली मराठी और मराठी भाषा मे छपी शेष विषयों की पुस्तकों पर पुणे की शहरी मराठी का प्रभाव अधिक दिखता है। उन युवकों के अनुसार शायद इस का कारण यह रहा हो की राज्य का टैक्स्ट बुक निगम पुणे में स्थित है।

महाराष्ट्र में सात वर्ष की उम्र में बिहार से आ कर बसी प्रियंका के अनुसार, “मैंने 12 वीं तक की शिक्षा महाराष्ट्र हिंदी भवन से की, जहाँ शिक्षा का माध्यम हिंदी था।” “स्कूल में मराठी तीसरी भाषा के रूप में पढ़ी परन्तु स्कूल के बाहर यह हमारी महाराष्ट्र

में बसने के एक साल के भीतर ही प्रथम भाषा हो गई थी। आगे कॉलेज में बी ए तथा एम् ए की पढाई मराठी माध्यम से ही की। “आज हम (वह और उसके भाई बहन) मराठी भाषा को उसके संकेतो का प्रयोग करते हुए, उसी धारा प्रवाह के साथ बोल सकते हैं जिसमें एक आम मराठी बात करता है। जब तक हम खुद ना बताये कोई दूसरा अंदाजा नहीं लगा सकता की हम महाराष्ट्र के बाहर के हैं।” “मराठी भाषा सीखने में लोगो का संपर्क अधिक कारगर रहा, बजाये स्कूल में पढाई मराठी के। स्कूल में हम बेशक हिंदी की पुस्तकों से पढ़ते थे पर स्कूल के बाहर या कक्षा के बाद और यहाँ तक कि कक्षा में भी मराठी में ही विचार विमर्श करते थे।” इस साक्षत्कार के इस संक्षिप्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का माध्यम परिवेश उपलब्ध करता है, ना की स्कूल।

लेखक ने औरंगाबाद स्थित एक निजी अंग्रेजी माध्यम क्रिश्चन स्कूल का भी अवलोकन किया। इस स्कूल की स्थिति फरीदाबाद, पलवल, होडल के स्कूलों से इस प्रकार भिन्न है कि इसके पास एक ही स्कूल बस है जबकि फरीदाबाद के इलाकों के लगभग हर स्कूल के पास बसों का एक अच्छा खासा काफिला होता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि औरंगाबाद शहर के इस स्कूल में आस पास के विद्यार्थी ही आते हैं, दूर दराज के गावों से बसों में भर कर बच्चे लाने का चलन कम से कम इस स्कूल में नहीं दिखाता है।

इंग्लिश माध्यम स्कूल में पढ़ने वाले प्रवासी एवं मूल मराठी विद्यार्थियों के अनुसार, “स्कूल में पढाई इंग्लिश में होती है, टीचर थोडा बहुत हिंदी का प्रयोग कर सकता है पर मराठी पर प्रतिबंध है “प्रिंसिपल कहते हैं कि महाराष्ट्र के अन्दर ही मराठी का प्रयोग

कर सकते हो महाराष्ट्र के बाहर इस भाषा में काम नहीं चलेगा।" "स्कूल की असेम्बली में भी इंग्लिश और कभी कभी हिंदी का प्रयोग होता है। मराठी का प्रयोग सिर्फ मराठी भाषा की क्लास में ही कर सकते हैं।" "मिस (शिक्षिका) से बात करने के लिए इंग्लिश ही बोलते हैं।" "स्कूल से घर आने के एक घंटे बाद हम लोग ट्यूशन जाते हैं। वहां के शिक्षक मराठी हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं का प्रयोग करते हैं।" "इंग्लिश के 'टर्म' (शब्दावली) और मराठी भाषा में उदाहरण, कहानी आदि" हम इस तरह से अधिक समझ आता है। "स्कूल में छः तथा ट्यूशन पर तीन घंटे खर्च होते हैं। परीक्षा के दिनों में वही (ट्यूशन) पर रात के 9 बजे तक अध्ययन करते हैं।" "खेलने के लिए बहुत कम समय मिल पाता है। अवकाश के दिन ही खेलने को मिलता है।" उनके मातापिता भी समझते हैं कि शिक्षा बौद्धिक काम है, इसका सम्बन्ध पुस्तकों से, प्रयोगशाला से है ना की घर की रसोई और खेल के मैदान से।

जब मराठी भाषा का अंग्रेजी भाषा के साथ अंतःक्रिया हुई तो उसने उस संस्कृति के अनुरूप उसका अपभ्रंश तैयार किया और मराठी में ग्राहे युक्त शब्दों को पैदा किया, जैसे 'झेरोक्स' 'इंगरेजी' 'फ्लावर' आदि। भारत में शायद मराठी लोग ही फूलगोभी की सब्जी को 'फ्लावर' कहते हैं।

अंत में मैं, लेखक और शोधकर्ता अपना बहुत ही व्यक्तिगत अनुभव आपके साथ सांझा करना चाहूंगा। मैं चाहता था कि मेरी पुत्री अपने दिन का कुछ समय मराठी भाषी बच्चों के साथ बिताए। ताकि उसके बोलचाल पर उन बच्चों के सम्पर्क के फल

स्वरूप मराठी भाषा के प्रभाव को आसानी से देखा जा सके । उसके ननिहाल के आस पास प्ले स्कूल तलासने का प्रयास किया गया । परन्तु मेरे आश्चर्य का ठीकाना नहीं रहा जब मैंने देखा कि आस पास का एक भी प्ले स्कूल मराठी भाषी नहीं था । छोटे से बड़े स्तर पर खुले सभी प्ले स्कूलों में इंग्लिश का बोलबाला था । मतलब साफ है कि प्ले स्कूल तक इंग्लिश मीडियम में । मैं यह देख कर दंग रह गया कि इन स्कूलों में भी बच्चों को मराठी छोड़ कर अंग्रेजी भाषा को अपनाने का दबाव बनाया जाता है । फलस्वरूप बच्चों के चेहरे पर खामोशी छा जाती है । उन प्ले स्कूलों में जितने समय बच्चे रहते हैं, उतने समय वे खामोश ही रहते हैं । कारण साफ है । अंग्रेजी में आप बोल नहीं सकते और मराठी बोलने की इजाजत नहीं । वहीं अंग्रेजी की कुछ प्रचलित पोयमों का रटा लगवाया जाता है । बच्चे डरे और सहमें रहते हैं । बच्चे यदि डरते सहमते कुछ शब्द बोल अंग्रेजी के बोल देते हैं । तो इसे प्ले स्कूल के शिक्षक विजय श्री के रूप में देखते हैं । ..और बड़े गर्व से बताते हैं कि हम बच्चे को आने वाले भविष्य के लिए तैयार कर रहे हैं । मुझे आश्चर्य होता है कि यह वही महाराष्ट्र है जहा पर कुछ समय पूर्व मराठी मानस के नाम पर किसी छुट भईया नेता ने दंगे करवाये थे । मुम्बई समेत महाराष्ट्र के तमाम शहरों से गैर मराठी भाषी लोगों को निकालने का प्रयास किया था । उसने आरोप लगाय कि गैर मराठी लोगों महाराष्ट्र में आकर मराठी लोगों के रोजगार के अवसरों को खा रहे हैं । पर आश्चर्य कि अंग्रेजी जिसने स्थाई तौर पर मराठी भाषी लोगों की सीमा तय कर दी है उसके खीलाफ किसी नेता का आक्रोश फट कर बाहर नहीं नजर आता है । मराठी और गैर मराठी के बीच दंगे करा कर वोट बैंक की राजनीति की जा सकती है । पर आम जनता को

सत्ता के गलियारे से बाहर करने के लिए करने के लिए अंग्रेजी का वर्चस्व जरूरी है। इसलिए सत्ताधारी वर्ग इंग्लिश मीडियम सिस्टम को लेकर खामोश है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में भी निम्न बातें विशेष रूप से निकल कर आई :-

जितना स्वभाविक रूप से किसी संस्कृति के संपर्क में आयेगे उतना ही उसकी भाषा बोली को अपना आसान होगा। पुरुषों के कार्यस्थल का औपचारिक वातावरण कहीं न कहीं संस्कृतिक सम्पर्क में बाधा उत्पन्न करता है। वहीं तथाकथित शिक्षित कहलाने वाली महिलाओं का श्रेष्ठता भाव भी संस्कृतिक सम्पर्क में बाधा उत्पन्न करता है। वहीं अशिक्षित अथवा अल्प शिक्षित महिलाओं एवं बच्चे इन सब से बंधनों से मुक्त होते हैं। अतः अधिक स्वभाविक रूप से संस्कृति को ग्रहण करते हैं।

यह बात लेखक ने दिल्ली स्थित क्रिश्चन माइनोंरिटी स्कूल में भी देखी कि जहाँ दक्षिण से प्रव्रजित होकर आये स्टाफ में नॉन टीचिंग स्टाफ के कर्मचारियों ने दिल्ली की प्रादेशिक भाषा को अपना लिया है तथा तमिल-मलयालम भाषा के लहजे के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं। वहीं विश्वविद्यालय तक की शिक्षा ग्रहण कर के आयी सम-उच्च मध्यमवर्गीय परिवेश की महिला

शिक्षिकाओं का प्रयास रहता है कि वे यही दिखाए कि उन्हें हिन्दी नहीं आती है। उन शिक्षिकाओं में एक शिक्षिका तो ऐसी भी है, जो न तो शिक्षकों और न ही बच्चों से हिन्दी में बात करती है। जबकि उनको इस स्कूल में ही पढ़ाते हुए ही 7-8 वर्ष हो चुके हैं। पर वे दक्षिण के नॉन टीचिंग स्टाफ़ से तमिल में ही बात करती है। जहाँ स्टाफ़ रूम में साथी शिक्षकों और विद्यार्थियों से बातचीत करने के लिए अंग्रेजी को वे उच्ची आवाज में उच्चारित करती है। वही नॉन टीचिंग स्टाफ़ से बातचीत करते वक्त अवाज को नीची रखती है। महिला शिक्षकों में अधिकतर शिक्षकों की कौशिश रहती है कि वे दिखाए कि वे हिन्दी नहीं जानती है। पश्चिम बेगाल से प्रव्रजित होकर आयी एक महिला शिक्षिका ने हिन्दी में छपी बुकलैट लेने से मना कर दिया और कहा कि उसे हिन्दी नहीं आती है। जबकि स्टाफ़ रूम में वह दूसरे सहकर्मियों के साथ हिन्दी में बात चीत ही करती है। वही पुरुष शिक्षक जो मुख्यतः सम-मध्यमवर्गीय परिवेश से निकल कर आए हैं। वे परिवेश की बोली को सहजता से अपनाते हैं। पर दिखावा करने के लिए हिन्दी से परहेज उनमें भी देखने को मिलता है।

बच्चों को सीखने में वह भाषा ही अधिक सहायक है जो वे अपने परिवेश से ग्रहण करते हैं। प्रव्रजित वर्ग के बच्चे ना तो माता-पिता की मातृभाषा में सहज हो पाते हैं और न ही परिवेश की बाहर की भाषा में। अब वह चाहे हिन्दी हो या अंग्रेजी में। वे तो उस भाषा में सहज होते हैं जो उनके परिवेश की मूलतः बोली जाती है। बच्चों की मातृभाषा वास्तव में उनके परिवेश की बोली ही होती है।

- भाषाएं जब एक दूसरे से स्वतंत्र संपर्क में आती हैं, तो वे एक दूसरे से मिल कर ठीक उसी तरह एक हो जाती हैं जैसे नदी की दो धाराएं । मैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के साइनबोर्ड का उदाहरण दूंगा । मराठी भाषा का अंग्रेजी भाषा के साथ जो परस्पर-क्रिया हुई, उसने मराठी संस्कृति के अनुरूप उसका मिला जुला रूप तैयार किया । परिणाम अंग्रेजी मराठी में ग्राह्य हुई और उसका(अंग्रेजी का) मराठीकरण हुआ । जैसे इंग्लिश के लिए इंग्रेजी, ज़ेरोक्स के लिए जिरोक्स । इंग्लिश शब्द फ्लावर का अर्थ फूल होता है पर मराठी बोलने वाले औरंगाबाद शहर के लोगों के लिए फ्लावर का अर्थ फूलगोभी है । सड़कों पर लगे साईन बोर्ड चूकि आम लोगों की समझ को प्रतिबिंबित करता है । अतः साईन बोर्ड में प्रयुक्त इंग्लिश शब्द के अपभ्रंश मराठी में रच चुके मराठी ही हैं ।

इस पूरे पर्यवेक्षण से स्पष्ट होता है कि लोगों की भाषा का निर्धारण इस बात से होता है कि वे किस प्रकार के लोगों के संपर्क में आते हैं । अतः किसी व्यक्ति की भाषा उसके सम्पर्क से निर्धारित होता है । कोई व्यक्ति जिस जिस प्रकार के लोगों के संपर्क में आता है । उस प्रकार की भाषा को अपनाता जाता है । इस से यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि उच्च मध्यमवर्गीय बच्चों का सम्पर्क चूकि समाज के उस तबके से पडता है जो अंग्रेजी भाषी होता है । अतः उनके लिए अंग्रेजी भाषा को सीख पाना अपेक्षाकृत आसान होता है । जबकि निम्न मध्यम वर्ग, ग्रामिण पृष्ठभूमि के बच्चों का अंग्रेजी का भाषायी सम्पर्क शिक्षक और

पुस्तकों के अतिरिक्त किसी और से नहीं होता है। इस वजह से वे इस भाषा को सीखने में असमर्थ हो जाते हैं। वे अंग्रेजी में पढ़ाए जाते वाले पठों को समझ नहीं पाते हैं। पर चूँकि उनका सारा पाठ्यक्रम ही अंग्रेजी में होता है। अतः वे बाकी विषयों के नाम पर भी सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी ही रटते हैं। इस प्रक्रिया में वे कुछ हद तक अंग्रेजी भाषा पर अपने परिवेश के अन्य विद्यार्थियों के मुकाबले बेहतर स्थिति में आ जाते हैं। और इस प्रकार इंग्लिश उनके लिए प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ मुद्दा बन जाती है। वे महज अंग्रेजी में रटते हैं पर वे समझते हैं कि वे अंग्रेजी में सीख पा रहे हैं। वे इस मिथ का शिकार होते हैं कि इंग्लिश मीडियम में सीखा जा सकता है। यही कारण है कि अधिकतर ग्रामीण एवं निम्न मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के बच्चे न केवल अंग्रेजी माध्यम स्कूली व्यवस्था में पिछड़ते हैं। अपितु सबसे ज्यादा अंग्रेजी भाषा में ही असफल भी होते हैं। और इस सब का सीधा फायदा उच्च एवं उच्च मध्यम वर्गी विद्यार्थियों को होता है।

Surface Culture

LANGUAGE

ARTS, LITERATURE

RELIGIONS, MUSIC, DRESS

Folk Culture

DANCE, GAMES, SPORTS, COOKING

//////////////////////////////////// awareness level boundary //////////////////////////////////////

Invisible

NOTIONS OF MODESTY CONCEPTS OF BEAUTY

EDUCATION CHILD RAISING RULES OF DESCENT

COSMOLOGY RELATIONSHIP TO THINGS, ANIMALS & PLANTS

COURTSHIP PRACTICES CONCEPT OF JUSTICE MOTIVATION TO WORK

CRITERIA FOR LEADERSHIP DECISION MAKING PROCESSES DEITIES DEATH

IDEAS OF CLEANLINESS LOCUS OF CONTROL THEORY OF DISEASE PHYSICAL SPACE

DEFINITION OF SANITY, FRIENDSHIP, LOVE, MURDER, LIFE, GENDER, FACIAL EXPRESSIONS

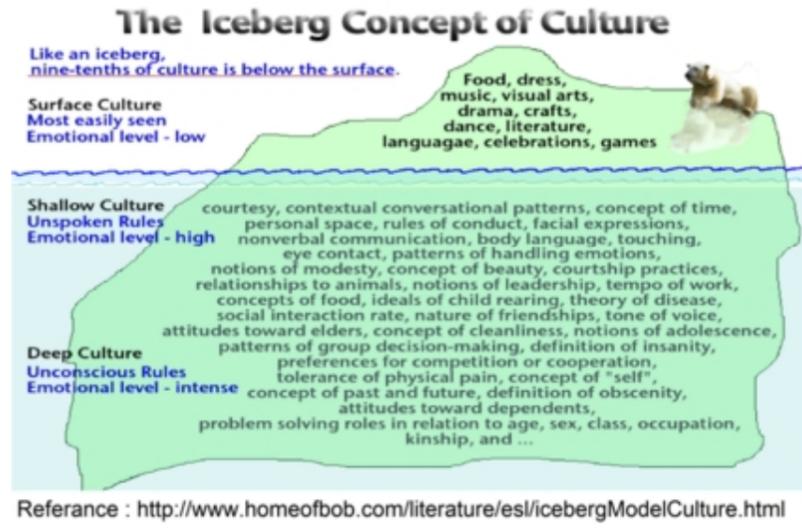
ROLES IN RELATION TO STATUS BY AGE, GENDER, CLASS, KINSHIP, OCCUPATION, RELIGION,

CONVERSATIONAL PATTERNS IN VARIOUS SOCIAL CONTEXTS, CONCEPTION OF TIME & SPACE

PREFERENCES FOR COMPETITION, COOPERATION, INDIVIDUALISM OR GROUP NORMS, SIN, GRACE

NOTION OF ADULTHOOD, NOTION OF LOGIC AND VALIDITY, PHYSICAL SPACE ARRANGEMENTS, LIFE

ODORS, HANDLING OF EMOTIONS, ACCEPTANCE OF FRUSTRATION OR PAIN, CONCEPT OF FAITH



इंटरनेट के सहयोग से प्राप्त यह चित्र दर्शाता है कि किस प्रकार कोई भी भाषा अपने परिवेश के सांस्कृतिक वातावरण से संबंधित होती है। भाषा का जो स्वरूप सतह पर दिखता है वह कहीं गहराई में समाजिक मूल्यों में जुड़ा हुआ होता है। बिना उस सांस्कृतिक परिवेश को समझे भाषा को समझना सतही कवायत होती है। और उस भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग करना या तो मूर्खता आने वाली नयी पीढ़ी को स्थायी रूप से मानसिक गुलाम बनाने की राजनीति ही होगी।

“भाषाएं जब एक दूसरे से स्वतंत्र संपर्क में आकर ही विकसित होती हैं। भाषाएं एक दूसरे के साथ मिलकर वैसे ही एक हो जाती हैं, जैसे बहती नदियों की धाराएं मिल कर एक हो जाती हैं। शुरू में प्रकृत होता है कि ये एक नहीं दो अलग-अलग धाराएं हैं। एक ठोले के बाद कठला मुश्किल हो जाता है कि कौन सा पानी किस धारा का है। मैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के साइलबोर्डों का उदाहरण दूंगा। मराठी भाषा का अंग्रेजी भाषा के साथ जो परस्पर-विन्धा हुई, उससे मराठी संस्कृति के अलुरूप उसका मिला जुला रूप तैयार किया। परिणाम अंग्रेजी मराठी में भाषा हुई और उसका अंग्रेजी का (मराठीकरण हुआ। जैसे इंग्लिश के लिए इंग्रेजी, ज़ेरोक्स के लिए जिरोक्स। इंग्लिश शब्द फ्लावर का अर्थ फूल होता है पर मराठी भाषा में फ्लावर का अर्थ फूलगोभी है। सड़कों पर लगे साईल बोर्ड चूकि आम लोगों की समझ को प्रतिबिंबित करता है। अतः साईल बोर्ड में प्रयुक्त इंग्लिश शब्द के अपभ्रंश मराठी में रच-बस चुके मराठी ही हैं.....”

अभिनी - 'इंग्लिश जीवितम सिस्टम', टैट इज 'अंग्रेजी राज'



अध्याय-17

मातृभाषा का अर्थ माँ-बाप की भाषा नहीं होती है

बच्चे की मातृभाषा अथवा मदरटंग क्या है? इस बात को लेकर बहुत मतभेद है। भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष 1994 से लंबित भाषा नीति का मुद्दा संवैधानिक बेंच को स्थानान्तरित किया गया है और संविधान पीठ के समक्ष निम्न सवालों उठाया गया है।

मातृभाषा से क्या तात्पर्य है? यदि यह वह भाषा है जिसके साथ बच्चा सहज महसूस करता है तो इसे तय करने का अधिकार किसे हो?

क्या एक छात्र या एक माता पिता या एक नागरिक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का एक माध्यम का चयन करने का अधिकार है ?

किसी भी तरह से मातृभाषा को थोपने से अनुच्छेद 14, 19, 29 और संविधान के 30 के तहत मौलिक अधिकार प्रभावित होता है?

सरकार से मान्यता प्राप्त स्कूलों में सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और निजी और गैर सहायता प्राप्त स्कूलों दोनों के समावेश किया सकता है ?

क्या राज्य संविधान के अनुच्छेद 350 A के अनुसार प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम के रूप में मातृभाषा को चुनने के लिए भाषाई अल्पसंख्यकों को मजबूर किया जा सकता है ?

अब यदि प्रश्न संख्या 4 को छोड़ दे तो शेष प्रश्न बच्चे की मातृभाषा को लेकर गंभीर प्रश्न खड़े करते हैं। मातृभाषा को समर्पित इस पाठ कुछ बिन्दु तो ऐसे भी हैं जिनका 'औपचारिक एवं अनौपचारिक वातावरण' वाले पाठ में जिक्र हो चुका है। पर फिर भी विषय के तुलनात्मक महत्व को देखते हुए उन बिन्दुओं का इस पाठ में पुनः उल्लेख करते हुए। शोध के आधार पर इस बिंदु पर गंभीरता से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार उन्हें फिर से उल्लेखित करते हुए मातृभाषा से संबंधित कुछ और नये आयामों को तलासने का प्रयास भी किया

एक बच्चा बोली भाषा कैसे सीखता अथवा आत्मसात करता है। इस बिंदु को लेकर एक बच्चे पर उसके उम्र की एक से ढाई वर्ष की अवस्था में दो अलग अलग परिवेशों में लेजाकर उसके व्यवहार का अवलोकन किया गया तथा पता लगाने का प्रयास किया गया कि बच्चा परिवेश की भाषा बोली को किस प्रकार ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त यह भी जानने का प्रयास होगा कि बच्चा परिवेश की बोली को आत्मसात करता है अथवा सीखता है।

जैसा कि हम पहले भी 'औपचारिक एवं अनौपचारिक वातावरण' के अध्याय में अनौपचारिक वातावरण के प्रभाव का जिक्र करते हुए देख चुके हैं कि व्यक्ति अपने परिवेश की बोली-भाषा को सीखता नहीं है अपितु परिवेश की संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया में आत्मसात करता जाता है। इस प्रकार परिवेश की बोली-भाषा महज एक भाषा नहीं अपितु समस्त सांस्कृतिक ज्ञान को प्रतिबिंबित करती है। उसी क्रम को इस अध्याय में आगे बढ़ाते हुए एक जन्म से दो साल के बच्चे के भाषा सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण करेंगे। जिसके मुख्य निष्कर्षात्मक बिन्दु कुछ इसप्रकार हैं।

लेखक ने यह जानने की चेष्टा कि बच्चा क्या जिन शब्दों को बोल नहीं पाता है। क्या उसे समझ भी नहीं पाता है? या उसे समझ सकता है? लेखक ने इसके लिए कुछ प्रयोग किये। लेखक ने जब अनुसन्धान के दौरान पूछा आपके खिलौने कहाँ हैं? तो वह खिलौने उठा लाई। जबकि वह सवां साल की अवस्था में 'खिलौने' शब्द का उच्चारण नहीं कर पा रही है। इसी प्रकार चम्मच

लाने को कहा गया जो उसकी पहुँच के बाहर रखा है। तो उस चीज को देने हेतु अपनी माँ को इशारे से 'उड़-उड़' कहा। यह 'उड़-उड़' शब्द बच्चों ने अपनी सुविधा अनुसार खुद गढ़ा है। जब भी कोई वस्तु जो उसके पहुँच के बाहर हो तो उसे लेने हेतु वह 'उड़-उड़' या इसी प्रकार के कुछ और शब्दों का प्रयोग करता है। इस प्रकार 'उड़-उड़' की ध्वनि या उच्चारण एक प्रकार से 'वह या उस' के स्थान पर प्रयोग कर रही है। अतः 'उड़-उड़' एक प्रकार से उसके द्वारा गढ़ा गया सर्वनाम है। इसी प्रकार जब एक रोज जब उसे चिड़ियाघर ले जाया गया तो वह वहाँ के जानवरों को देख कर काफी उत्तेजित हुई और हर नए जानवर को देख कर "गोदा-गोदा" बोलती गोदा शब्द उसके परिवेश में कहीं प्रयोग नहीं होता है। उसने यह शब्द खुद गढ़ लिया है। इस प्रकार "गोदा-गोदा" शब्द उसके द्वारा किया गया 'संज्ञा' का अवविष्कार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चा न केवल बोलना सीखने से पहले ही भाषा मुक्त वस्तुओं के लिए प्रयोग किए जाने वाले शब्दों को सीख अथवा आत्मसात कर चुका होता है तथा नए शब्दों के सृजन भी करता है।

उस बच्चे की दोस्ती कुत्ते से है। वह कुत्ते को कालू कह कर पुकारता है। जब उसने पहली बार बकरी को देखा तो उसे कालू ही कहता है। लेकिन दो तीन दफे देखने के बाद उसने कहा ये कालू न (नहीं) है। यानि जो देखा उसका अन्तः विश्लेषण किया। इस प्रकार बच्चों में तुलना करने की भी क्षमता होती है। और उसे बोली-भाष के रूप में अभिव्यक्त कर सकता है।

लेखक ने भी अपने अनुसन्धान में पाया कि सवा-डेढ़ साल का बच्चा बेशक कुछ ही शब्द बोलता हो पर वह उन सभी शब्दों को समझता है जिसके भौतिक अस्तित्व से वह परिचित है। लेखक ने इस बात को परखने के लिए अपनी डेढ़ वर्ष की पुत्री को जुराबें दी तथा जब उसे बाल्टी में रखने के लिए कहा तो उसने बाल्टी में और जब जूतों में डालने को कहा तो जूतों में और जब अपनी माँ को दे कर आओ तो वह माँ को देकर आई। इस प्रकार जो संज्ञान में है उन वस्तुओं का उच्चारण करने पर उसने उन्हीं को उठाया। है। प्रयोग को थोड़ा कठिन बना कर जब बाल्टी की तरफ इसारा कर जुराब को जूतों में रखने को कहा तो कुछ देर सोच कर उसने उसको चुना जिसे उसने सुना अर्थात् जूता।

इन दो अवलोकनों को देखने के बाद हम कह सकते हैं कि बच्चा सचेत अवलोकनकर्ता होता है। वह जिज्ञासावश अपने आस पास के वातावरण में छुपे रहस्यों को खोजना चाहता है। किसी भी नई चीज को देर तक देखता है। ताकि उसकी छवि को अपने मष्तिष्क में बैठा सके। मनोवैज्ञानिक जेम्स ब्रूनर के अनुसार इस अवस्था का बच्चा परिवेश की वस्तुओं को प्रतिबिम्ब के रूप में छवि निर्मित करता है। वही मनोवैज्ञानिक पियाजे के अनुसार डेढ़ – दो वर्ष का बच्चा अभी सेंसरी मोटर स्टेज में है अतः वो सारी वस्तुएँ जिसको वह छु कर ,देख कर महसूस (सेंसेसन) कर सकता है उनके लिए प्रयुक्त शब्दों को भी समझ जाता है। वह अमूर्त कल्पना की स्थिति में तो नहीं है पर वह वस्तुओं के बीच में तुलना तो कर ही सकता है। इस अवलोकन का व्यवहारवाद के

ओपरेट कंडीशनिंग के आधार पर यदि हम विश्लेषण करे तो पाते है। जब हम किसी एक वस्तु को एक खास शब्द के साथ सम्बन्धित करते है तो बच्चा भी सुन सुन कर उस वस्तु को उस शब्द विशेष के साथ सम्बन्धित करता है। खिलौने बोलने पर खिलौना ही लाता है यानि इस शब्द विशेष के लिए उसके मस्तिष्क में छवि है। बाल्टी और जूतों की भी एक समझ है और दोनों में अंतर कर सकता है। इसी प्रकार चम्मच लाने को कहने पर चम्मच की ही तरफ इशारा करता है ना की कटोरी की तरफ। इसी प्रकार कटोरी कहने पर चम्मच की तरफ इशारा नहीं करता। सबसे बड़ी बात यह कि उसे किस ने बताया है कि यह चम्मच है ये कटोरी है और यह बाल्टी है या यह जूता और जूराब है। इन सब को बताने की जरूरत नहीं पड़ी उसने अपने परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया में स्वतः ही आत्मसात कर जाता है। अब लेखक जो लिखने जा रहा है उसके बाद संज्ञानात्मक क्षमता पर मनोवैज्ञानिकों को पुनः शोध करना पड़ेगा। घर में कोई वस्तु इधर उधर हो गई है, इस बात को लेकर बहस चल रही है, "किधर गई ? किधर गई ?" डेढ़-दो वर्ष का बच्चा चुपचाप लाकर पकड़ा देता है। वह ना केवल उस वस्तु को शब्द के माध्यम से पहचानता है। अपितु उसकी तुलान्तात्मक जरूरत को भी समझता है। इस वाक्ये से लेखक यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चे की भाषा समझने की क्षमता उसके बोलने से कही ज्यादा व्यापक है। वह ना केवल बोलने से पूर्व भाषा को समझता है। अलग अलग प्रकार से किये संबोधन के आधार पर भौतिक परिवेश की वस्तुओं में भेद भी करता है।

जब उसी बच्चे को डेढ़-पौने दो वर्ष की अवस्था में औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में रखा गया। जहाँ उसे बहुभाषी वातावरण मिला, यहाँ उसको घर में उसकी नानी उससे भोजपुरी बोलती, उसके मामा हिंदी और पड़ोस के लोग मराठी। बच्चे ने तीनों भाषाओं के शब्दों को सीखा घर के अन्दर प्रयोग होने वाली वस्तुओं के लिए भोजपुरी बाहर के लिए मराठी। जैसे थाली के लिए 'छिपी' शब्द का उच्चारण बाहर जाने की जिद के लिए 'बहरी' वही बाहर जाने के बाद 'भूर'। 'भूर' बाहर घूमने के लिए प्रयोग होने वाला मराठी शब्द है वही 'बहरी' भोजपुरी।

बच्चे का पिता अकसर अपने अनुसंधान की वजह से फटाई में व्यस्त रहता है। बच्ची देखती है कि जब भी उसका पिता किताब खोलता है तो कहता है, "मैं पढ़ाई कर रहा हूँ।" बच्चा धीरे धीरे किताब को ही पढ़ाई समझ लेता है और किताब को ही पढ़ाई कहने लगता है। जब वह खेल-कुद के दौरान बाकि बच्चों के सम्पर्क में आता है तो धीरे धीरे उनके सम्पर्क में आकर बुक बोलने लगता है। और इस प्रकार खिताब के लिए पढ़ाई और बुक का प्रयोग सीख जाता है। और अब वह जब अपने पिता को जब किताब बोलते हुए सुनता है तो आसानी से बीना सीखाए किताब भी बोलना सीख जाता है।

इस वाक्यों से भाषा सीखने की क्रिया की सामाजिक भूमिका स्पष्ट होती है। अपने परिवेश के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण के अनुरूप भाषाओं को सीखता है। भाषा की जो दीवार हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मराठी की व्यवस्था ने खीच रखी है। उससे बच्चा

अंजान है। बच्चा अपने परिवेश से समंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया में बीना किसी भेदभाव के अपने शब्द कोश में अपने परिवेश की समस्त भाषाओं में प्रचुक्त शब्दों को स्थान देता जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि उत्तरी ध्रुव के पास रहने वाला एस्कीमों प्रजाति के बच्चे छोटी उम्र में बर्फ के लिए 30 से अधिक शब्दों का प्रयोग करना सीख जाते हैं, रेगिस्तान में रहने वाला बच्चा हवा के लिए अनेकों शब्दों को जानता है। इन शब्दों की समझ उसके जीवन को बनाये रखने की लिए जरूरी है। संस्कृति और प्रकृति के सम्बन्धों को उजागर करने के लिए आपको समुन्द्र तट की सैर कराते हैं। गोवा से सम्बन्ध रखने वाली एक शिक्षिका ने बताया कि जितने मुहावरे समुन्द्र को लेकर तटीये इलाको में हैं शायद और कही होंगे। ये स्पष्ट करता है कि प्रकृति और संस्कृति का जुडाव कितना गहरा है। व्यक्ति परिवेश की बोलियों को समाजिक सम्पर्क के दौरान आत्मसात करता जाता है। परिवेश की बोली को सीखने की जरूरत नहीं पड़ती वह स्वतः ही आत्मसात होती जाती है। बच्चे को जबरदस्ती तो वह भाषा सीखानी पड़ती है जो उसके परिवेश में होती ही नहीं है।

इस प्रकार प्रकृतिक रूप से जैविक क्षमता के रूप में, बच्चा काबलियत लेकर तो पैदा होता अर्थात् "शिशु में विभिन्न प्रकार के व्यवहार तथा अनुभवों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने की क्षमता रहती है।" लेकिन काबिल समाजिक अन्तः क्रियाओं के दौरान ही होता है। जन्म के साथ ही यदि किसी बच्चे को जंगल में छोड़ दिया जाये तो वह कभी भी सामाजिक मानव के समान

भाषा का प्रयोग नहीं कर पायेगा। परिवेश के अनुरूप काबिल बनाने की प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहते हैं। इस प्रकार सामाजिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान एक बच्चा अपने परिवार समुदाय क्षेत्र के समाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप आचरण करना, बोलना-बतियाना की क्रिया को आत्मसात करने के दौरान ही परिवेश की तमाम बोलियों को भी आत्मसात भी करता जाता है। व्यक्ति का चलना, व्यक्ति का उठाना-बैठना, बोल चाल, सुख-दुःख में शामिल होना सब कुछ समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश से आता है। और साथ आती है इन सब क्रियाओं के दौरान प्रयुक्त भाषा। इसी प्रकार बोली-भाषा भी समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश का ही उत्पाद है। जहाँ एक समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश में बच्चा भोजपुरी बोली बोलना सीखता है। वही दूसरे में समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश हरियाणवी बोली है, तीसरे समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश में जर्मन चौथे में समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश में रूसी बोली तो पांचवे में समाजिक-सांस्कृतिक-परिवेश अंग्रेजी बोली। दिल्ली के स्लम एवं कच्ची कॉलोनियों के बच्चें एक साथ बहुत सी भाषाओं के पुट बोलना सीख जाते हैं। कारण स्पष्ट है स्लम में देश के भिन्न भिन्न इलाकों के लोग आकर बसे हैं। मसला पानी के झगड़ें का हो या किसी सुख दुख का स्लम के लोगों आपसी अन्तः क्रियाएं होती ही रहती हैं। इस कारण बच्चें तेजी से एक दूसरें की ना केवल एक दुसरे की संस्कृति को जान जाते हैं अपितु एक दूसरें की भाषाओं को भी सीख जाते हैं। यह तथ्य लेखक ने अपनी पुत्री के अवलोकन के सन्दर्भ में भी देखा की दिल्ली में अपने पंजाबी पडोसी के बच्चों के साथ खेलते हुए बहुत से पंजाबी शब्दों का या तो उच्चारण करने लगी या उसका उच्चारण का प्रयास करने लगी। जब

महाराष्ट्र के जिला औरंगाबाद स्थित उसके ननिहाल भेजा गया तो वहां भी काफी जल्दी दिल्ली वाली बोली के साथ भोजपुरी एवं मराठी को भी अपना लिया। जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि ननिहाल के लोग बिहार से प्रव्रजित हैं तथा वो लोग अमूमन घर में हिन्दी अथवा भोजपुरी भाषा का प्रयोग ही करते हैं पर बच्चे पर सिर्फ उनकी भाषा के प्रभाव साथ तथा आसपास के परिवारों की भाषा का प्रभाव भी देखने को मिलाता है। इसके पीछे का कारण स्पष्ट है खाने पीने की जरूरत पूरा होने के बाद बच्चा मुक्त होकर आसपास के अपने से छोटे बड़े बच्चों के साथ खेलता है। इस खेल की प्रक्रिया के दौरान वह बोली-भाषा का प्रयोग करता है। आसपास के दूसरे बड़ों के साथ भी सम्पर्क में आता है और इस सम्पर्क में आने की क्रिया के दौरान परिवेश की भाषा को ग्रहण करता जाता है। इस प्रकार हर बच्चा अपने परिवेश की भाषा (बोली) को आत्मसात करते जाते हैं। भाषाओं का जो विभाजन औपचारिक रूप से व्यवस्था के संचालकों ने किया गया है। वो विभाजन अनौपचारिक सांस्कृतिक वातावरण में देखने को नहीं मिलता है। सांस्कृतिक भाषाएँ अर्थात् बोलियाँ नदी के सामान हैं जो बहती हैं मिलती हैं संगम होता है और फिर आगे बढ़ जाती है। जबकि औपचारिक भाषाएँ एक तालाब के सामान जड़ हो गयी हैं। ये भाषाएँ राज-व्यवस्था, औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के द्वारा बनायी मोटी और मजबूत दीवारों के द्वारा एक दुसरे से बटी हुई हैं। इन दीवारों में एक दीवार लिपि की है। मिथ प्रचलित है देवनागरी हिन्दी की लिपि है, गुरुमुखी पंजाबी की लिपि है तो उर्दू जूबान की पहचान ही फारसी लिपि है। ये कोरी बकवास है। लिपियों का अपना इतिहास भाषा के मुकाबले नगण्य ही रहा है। ये दीवार शब्दकोशों

के माध्यम से भी तैयार की गयी है। ये हिन्दी का शब्द है तो यह उर्दू का और ये अंग्रेजी का। भारत सरकार और तमाम राज्य सरकारों ने तो बकायदा एक तकनीकी शब्दों के लिए विभाग भी तैयार कर रखा है। जिसके अधिकारी ए. सी. कमरों में बैठ कर शब्दों की खोज करते हैं। अब जैसे कम्प्यूटर के लिए संगणक शब्द का प्रयोग। जबकि आज हर व्यक्ति कम्प्यूटर से परिचित है। ग्रामिण हलाकों में भी कम्प्यूटर के लिए कमपूटर शब्द का प्रयोग होता है। पर नहीं जब तक भारी भरकम शब्दों का अविष्कार नहीं होगा तब तक हमारी भाषाई पहचान कैसे बनेगी। एक दीवार व्याकरण के सख्त नियमों की भी है जबकि किसी भी भाषा के व्याकरण के नियम नहीं होते परम्पराएं होती हैं और परम्परा तो पखंडियाँ होती हैं। पर राज्य व्यवस्था ने औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के द्वारा उसे बकायदा पक्की कंकरीट की सड़कों में तबदिल कर दिया है। उदाहरण के तौर पर आम बातचीत में हिंदी उर्दू का कोई भेद नहीं है। यह जैसे भारत में बोली जाती है वैसे ही पाकिस्तान में भी बोली जाती है। व्यवस्था ने इसे पहले तो लिपियों के आधार पर बांटा फिर इस औपचारिकरण की प्रक्रिया में हिंदी को अधिक संस्कृतनिष्ठ बनाने का प्रयास किया और उर्दू को फारसीनिष्ठ बनाने का प्रयास किया गया। पर हकीकत में आमबोलचाल की भाषा न तो संस्कृतनिष्ठ है न फारसीनिष्ठ। हिन्दुस्तानी एक बहती हुई नदी के समान है। जिसके एक किनारे को हिंदी नाम दिया तो दूसरे को उर्दू नाम दे दिया गया है। सच्चाई यह है कि किनारे नदी नहीं होते नदी किनारों के बीच बहती जरूर है। पर नदी और किनारे में एक जबर्दस्त फर्क होता है वह है नदी निरंतर गतिमान होती है और किनारे स्थिर रहते हैं। लोग व्यवस्था द्वारा पैदा किये गए भ्रम से ही किनारों को ही नदी

समझ बैठते हैं। जिसे आप हिन्दी और उर्दू नाम देते हैं, उसका वास्तव में कहीं अस्तित्व ही नहीं है। आप जिसे हिन्दी और उर्दू कहते हैं, वह हिन्दी और उर्दू को छिछली राजनीति है। यह राजनीति इंसानों को न केवल हिन्दु-मुस्लिम में बाटे रखती है अपितु भारत पाकिस्तान के बीच की वास्तविक सीमा रेखा यही है। किनारों को नदी घोषित करना राजनीति नहीं तो क्या है? राष्ट्रवाद, मजहबवाद, क्षेत्रवाद की छिछली राजनीति के सिवाये कुछ भी नहीं है। ये राजनीति की जाती है ताकि लोग किनारों तक तो आये पर प्यासे ही रह जाये। लोग भाषा के आधार पर बटे रहे। हिन्दुस्तानी बोली वह नदी है जो सतलुज, गंगा, नर्मदा, कावेरी के किनारों को तोड़ कर सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में बहती है।

यूनिवर्सल ग्रामर अर्थात् सार्वभौमिक व्याकरण की संकल्पना भाषाविद नोमस् चोमस्की के दिमाग की उपज है। उनके अनुसार मनुष्य के व्याकरण संपन्न होने की योग्यता उसके मस्तिष्क में ही निहित है। अर्थात् प्रकृतिक रूप से मानव व्याकरणिय योग्यता से संपन्न है। अतः मानव की भाषा के रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता बीना पढ़ाये, लिखाये और सीखाये ही प्रकट होती है। अर्थात् ग्रामर सीखने के लिए उसे किसी स्कूल जाने की जरूरत नहीं है। जैसा कि पहले भी कुछ प्रयोगों के आधार पर यह वर्णित किया जा चुका है कि स्कूल की दहलिज पर कदम रखने से पूर्व ही एक बच्चा महज तीन साल की अवस्था में अपनी भाषा के व्याकरण को सीख चुका होता है और वह पूर्ण क्षमता के साथ भाषा के व्याकरण का प्रयोग कर रहा होता है। वास्तव में व्याकरण

एक परम्परा है। जो किसी भी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होता है। और संस्कृति के अनुरूप ढलने की प्रक्रिया के दौरान ही आत्मसात हो जाता है। चोमस्की ने भी परंपरागत व्याकरण के विपरीत, सार्वभौमिक व्याकरण की व्याख्या हेतु संज्ञानात्मक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इस प्रकार मनुष्य का संज्ञान उसकी अपने परिवेश अर्थात् इस संसार को समझने को समझने में सहायक है। मनुष्य इस दौरान जो अनुभूति ग्रहण करता है वह ही मनुष्य के द्वारा इस दुनिया को समझने का आधार भी है। अतः भाषा के व्याकरण के नियम मौन रूप में मानव मन के अवचेतन में ही समाहित है। यही कारण है कि मनुष्य अपने परिवेश की बोली भाषा में जितनी सहजता के साथ अभिव्यक्ति करता है। उतना किसी और भाषा में नहीं कर सकता है। जैसा कि समाजशास्त्री श्याम चरण दूबे भी मानव और संस्कृति नामक पुस्तक में व्याख्या करते हैं कि मनव संस्कृति में तो पैदा होता है पर संस्कृति के साथ पैदा नहीं होता है। संस्कृति को तो मानव भौतिक समाजिक परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने के दौरान ही अत्मसात करता जाता है। कोई मनुष्य जितना ही किसी सांस्कृतिक परिवेश के निकट होता है। उतना ही उस संस्कृति की बोली-भाषा के भी निकट होता है। संस्कृतिक परिवेश की बोली-भाषा के व्याकरण का प्रयोग तो हर एक करता है पर उसकी व्याख्या नहीं कर पाता है। अतः सार्वभौमिक व्याकरण भी मनुष्य के सांस्कृतिक मूल्यों को समाहित करने की संज्ञानिक क्षमता का ही सिद्धांत है न की महज सतही व्यवहार का। भाषा की क्षमता मानव मस्तिष्क की आंतरिक संरचना से संबंधित है।

पर बोली भाषा की काबलियत समाजिक सांस्कृतिक परिवेश का ही उत्पाद होता है। हर संस्कृति के कुछ खास तौर तरिकें होते हैं जो संस्कृति विशेष में ही आने के साथ समाहित होते जाते हैं।

मैं अब एक बच्चे का नहीं अपने एक मित्र का उदाहरण देना चाहूंगा। मेरे ये मित्र बिहार से संबंधित हैं और बीस साल की जिन्दगी बिहार में गुजारने के बाद दिल्ली आये। उसके बाद की दस-बारह साल की जिन्दगी उन्होंने दिल्ली और आस पास के इलाके में गुजारी। अतः इस दौरान कभी भी आगरा से आगे दक्षिण में नहीं बढ़े। जिन्दगी में पहली दफ़े उनको भोपाल में काम करने का मौका मिला। वे भोपाल गये दो तीन महिने वही गुजारे और फिर एक रोज जब उनसे मिलने के विषय में बात चीत चल रही थी। तो उन्होंने जबाब में कहा, “मैं दिल्ली आता हूँ तो ‘अपन’ मिलते हैं।” पाठकों को बता दे ‘हम’ के स्थान पर ‘अपन’ का प्रयोग मध्यप्रदेश महाराष्ट्र के इलाके में ही होता है। अपन शब्द का प्रयोग अमुमन उत्तर भारत और पूर्व में बिहार-युपी में नहीं होता है। यह वाकया बताता है कि किसी व्यक्ति का परिवेश कितनी जल्दी उस पर असर डालता है। महज दो-तीन महिने में ही ‘अपन’, ‘नाके’ जैसे शब्द उनके शब्दकोष का भाग बन गये। आजकल वे इस शब्द का प्रयोग न केवल भोपाल में अपितु दिल्ली और बिहार में भी करते हैं। अतः ये भाषा-बोली का आत्मसातिकरण वह प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है। लोगों के आपसी सम्पर्क के साथ प्रवाहित होती है। यह तो छुत के रोग के समान है जो बड़ी तेजी से एक लोगों के बीच फैलता है। इस रोग को

फैलने से रोकने का जिम्मा राज व्यवस्था ने विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं को भी सौंपा है। इसलिए ही विश्वविद्यालयों में भाषा के अलग-अलग विभागों की स्थापना की गयी है।

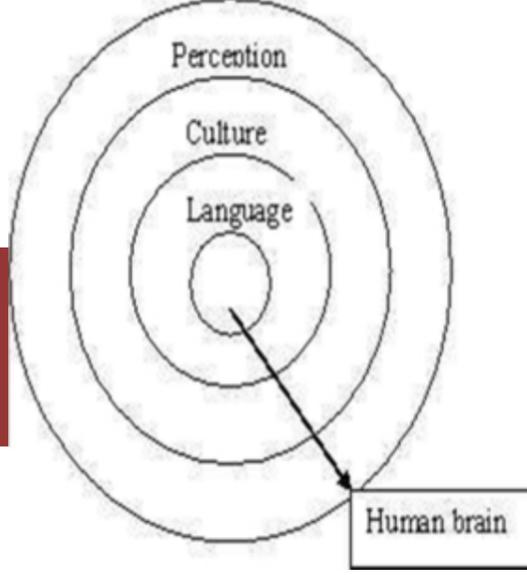
पर सचाई यह है कि मनुष्य अनादिकाल से प्रव्रजन करता रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता के समय में भी लोगो का संपर्क दूसरी सभ्यता के लोगो से होता रहा है। जब विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृति का आपसी समागम होता है तो नई संस्कृति का उदय भी होता है। संस्कृति एक निरंतर बहने वाली नदी है एक नदी दूसरी से मिलती और वह संगम नयी नदी को जन्म देती जाती है और फिर दोनों मिल कर अठखेलियाँ करती हुई आगे बढ़ती जाती है। कोई भी संस्कृति कभी भी स्थिर नहीं रहती। स्थिरता सडान्ध लेकर आती है। पुनर्जागरण काल की संस्कृति जब मध्य युग की संस्कृति से टकराई तो नई संस्कृति का जन्म हुआ। फलस्वरूप यूरोप में भी समानता की लोकतान्त्रिक संस्कृति का उदय हुआ। इसी क्रम में इंग्लैंड में भी जाहिलों और गवारों की भाषा माने जाने वाली अंग्रेजी को लैटिन और फ्रेंच के स्थान पर राज काज, चर्च और विश्वविद्यालय में स्थान मिला। इंग्लैंड के आम जन की बोली इंग्लिश का व्यवस्था में स्थान मिल जाना कोई आसान काम नहीं था। इसके लिए इंग्लैण्ड के लोगो ने एक लम्बा संघर्ष किया है। आज भी अंग्रेजी भाषा के रूप में स्थापित है। पर उसके बावजूद भी आज भी अंग्रेजी पर लैटिन तथा फ्रेंच के वर्चस्व का प्रभाव देखने को मिलता है।

अतः स्पष्ट होता है कि तीन साल की अवस्था में ही व्यक्ति अपने परिवेश की बोली को उसके सम्पूर्ण व्याकरण के साथ अपने परिवेश के सामाजिक- सांस्कृतिक सन्दर्भों की बदौलत सीख चुका होता है। और ये सीखने की प्रक्रिया ता उम्र चलती रहती है। जैसे जैसे वे नये परिवेश के सम्पर्क में आता जाता है। वैसे वैसे उसकी सांस्कृतिक बोली को भी अपने अंदर समाहित करते जाता है। अतः भाषा सीखाने का विषय ही नहीं है यह तो स्वतः ही आत्मसात होते रहने वाली प्रक्रिया है। पर आगे सवाल यह उत्पन्न होता है कि जब तीन साल की अवस्था में बच्चा अपनी भाषा का सम्पूर्ण व्याकरण को सीख चुका होता है। तो स्कूल आने वाले बच्चे को भाषा सिखाने की जरूरत ही क्या है? तमाम दस्तावेज भाषा शिक्षण पर इतना जोर क्यों देते हैं ? जैसाकि महान भाषाविद चैमोसकी के माध्यम से भी स्पष्ट हो चुका है कि भाषा सीखने की क्षमता सार्वभौम रूप से हर एक में होती है और स्वतः आत्मसात भी होती रहती है। ऐसा इसलिए ताकि व्यवस्था अपनी मानकीकृत भाषा को लोगों पर थोपती। इस प्रकार बोली भाषा का मानकीकरण कर परिष्कृत भाषाओं को तैयार किया जाता है। परिष्कृत भाषाओं पर समाज के ऊपरले तबके का दबदबा होता है। अतः यह परिष्कृत भाषा व्यवस्था ऊपरी तबके के दबदबे को बनाने में सहायक है। इसलिए परिष्कृत भाषा ही व्यवस्था औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था को संचालित करने पर बल देती है। यह अंग्रेजी माध्यम, हिन्दी माध्यम, मराठी गुजराती माध्यम सब व्यवस्था का पदव्यवस्था को अभिव्यक्त करती है। अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में ग्रामीण एवं कस्बाई पृष्ठभूमि,

निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय स्लम बस्तियों के विद्यार्थी पिछड़ते क्यों हैं? इन बिंदु पर आगे फिर से विचार करेंगे पर उससे पूर्व इससे पूर्व भाषा और संस्कृति के संबंधों पर कुछ और बिन्दुओं को तलासेंगे।

बोली-भाषा, संस्कृति और मानव अनुभूति

किसी भी भाषा को उसके सांस्कृतिक सन्दर्भों के साथ ही सीखा जाता है। इसे सभार emrersolmaz.wordpress.com/2006/11/07/connections-between-language-culture-and-perception से लिए



इस चित्र के माध्यम से भी देख सकते हैं। इस चित्र के आधार पर स्पष्ट होता है कि मानव मस्तिष्क, मानवीय संवेदना संस्कृति और भाषा के बीच एक गहरा संबंध है। मानव मस्तिष्क मानव की जैविक क्षमता दर्शाता है। और इस जैविक क्षमता के अंदर ही उसके बोलने की क्षमता आती है। मनुष्य की अनुभूतियाँ संस्कृति सापेक्ष होती हैं। बोली-भाषा संस्कृति

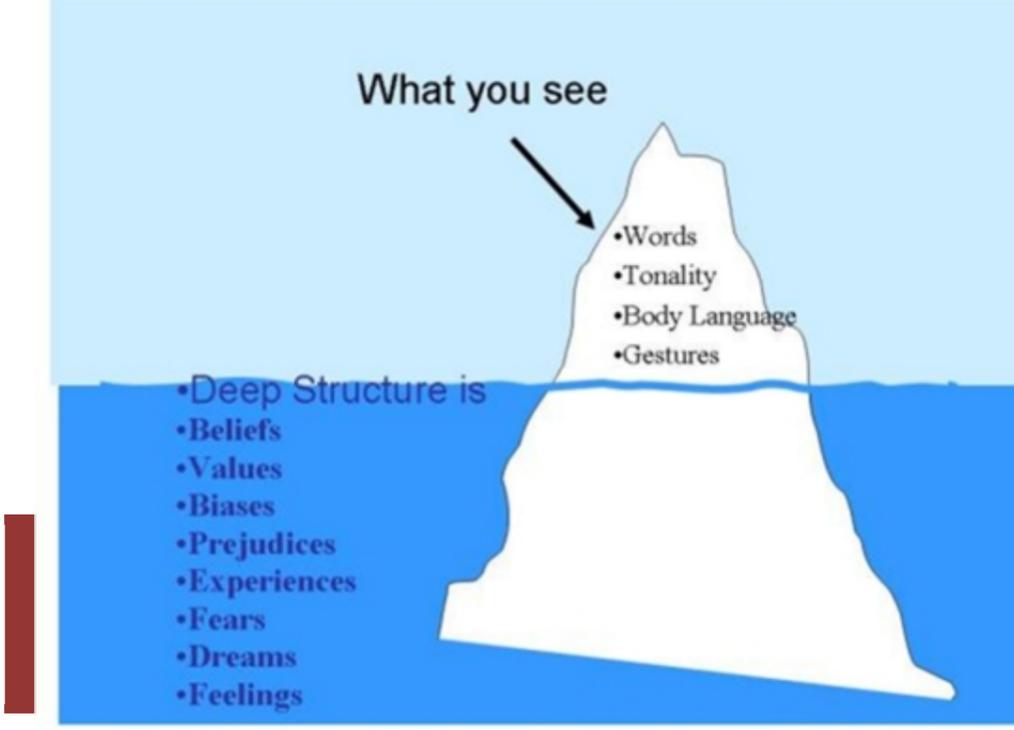
। राज : 'अष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' की व्यवस्था पर 'सांस्कृतिक ठप्पा' (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN - 978-93-5156-895-7)
a.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

विशेष के सामूहिक ज्ञान को दर्शाती है। मनुष्य अपनी अनुभूतियों को बोल कर या इसारों से व्यक्त करता है। चूंकि एक व्यक्ति की अनुभूति दूसरे भी समझ सके इसके लिए एक सामूहिक समझ की जरूरत होती है। वह सामूहिक समझ एक लम्बे अंतः क्रियाओं के दौरान पैदा हुई है। अतः सामूहिक समझ एक सांस्कृतिक समझ है। यह यह सामूहिक संस्कृति समझ ही परिवेश की बोली-भाषा है। मनुष्य अपनी अनुभूतियों को परिवेश की बोली-भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। नयी नयी अनुभूतियों के साथ ही बोली भाषा को आत्मसात करने की प्रक्रिया भी चल पड़ती है। इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ने वाले निम्न वर्ग के छोटे बच्चों की एक सामूहिक समस्या है कि वे कक्षा में कुछ बोलते ही नहीं हैं। लेखक ने भी अपने औरंगाबाद शहर की इंग्लिश मीडियम प्ले स्कूल, गांवों के इंग्लिश मीडियम नर्सरी स्कूल तथा शहर में भी इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के संदर्भ में पाया की वे अंग्रेजी में अभिव्यक्त करने के दबाव में अपने आप को अभिव्यक्त ही नहीं कर पाते हैं। घर में जो बच्चे चहकते रहते हैं। वही बच्चे स्कूलों में खामोश रहते हैं।

मौखिक एवं सांकेतिक बोली-भाषा के माध्यम से लोग अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। चूंकि दुनियां के एक हिस्से में विकसित सांस्कृतिक के संदर्भ दूसरे से भिन्न रहा है। अतः उनकी बोली-भाषा भी भिन्न रही है। इसलिए दुनिया में सभी लोग

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

एक जैसी भाषा का इस्तेमाल भी नहीं करते हैं। किसी भी भाषा सांस्कृतिक परिपेक्ष के बीना समझा ही नहीं जा सकता है। अब सवाल यह उठता है कि भाषा संस्कृति परिपेक्ष को समझे बीना क्या किसी भाषा को सीखा जा सकता है?



अब यदि हम इंटरनेट से उद्धित आईस बर्ग चित्र को देखे तो पाते हैं कि किसी भी भाषा विशेष के जो सांकेतिक और गैर सांकेतिक तत्व सतह पर दिखायी देते हैं वे सतह से कहीं नीचे गहरायी में डुबे सामूहिक मूल्य, विश्वास, पूर्वाग्रहों, पूर्वधारणा,

सांस्कृतिक ठप्पा' (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN - 978-93-5156-895-7)

अनुभव, भय, स्वप्न की सामूहिक अनुभूति द्वारा नियंत्रित होते हैं। अतः बिना इन अनुभूतियों के भाषा को समझना न केवल कठिन है अपितु असंभव भी है।

संस्कृति संदर्भों के बीना भाषा निरर्थक है। बोलियों के माध्यम से लोग एक दूसरे के करीब आते हैं और अपनी अनुभूतियों को साँझा करते हैं। इस प्रकार संस्कृति ही भाषा का निर्माण करती है और भाषा को मूलबिन्दु भी है। संचार और यातायात के साधनों के विकास के साथ दूनियां की संस्कृतियां करीब आयीं। उनके करीब आने के साथ अनुभूतियां भी सांझी हुईं और भाषाओं के शब्दकोश में नए नए शब्द जुड़ते गए। बिना संस्कृति संदर्भ के भाषा को समझना नामुमकिन नहीं तो सतही एवं कठिन जरूर है। फरन्तु जब व्यक्ति नए सांस्कृतिक परिवेश में जाता है तो उस सांस्कृतिक परिवेश के साथ सामंजस्य बैठाने की प्रक्रिया में भाषा विशेष को सीखता जाता है। भाषा पर किये केस स्टडी में ज्योतिसंग जी ने डेढ़ से दो वर्ष में बिना किसी भाषा शिक्षण क्लास के उस नई भाषा को सीखा वाही रवि रंजन एवं लालबहादुर वर्मा जी ने भाषा शिक्षण टूल का प्रयोग कर के भी 1-2 वर्ष का समय लिया। वाही भारत में अंग्रेजी सीखने के उद्देश्य से अंग्रेजी माध्यम स्कूल में जाने वाले विद्यार्थी 12 क्लास तक अंग्रेजी पढ़ कर भी अंग्रेजी नहीं सीख पाते हैं। और अंग्रेजी न आने की वजह से शेष विषयों में भी पिछड़ते जाते हैं। कारण स्पष्ट है विद्यार्थियों के पास सांस्कृतिक सन्दर्भ ही नहीं होता है। फलस्वरूप न भाषा सीख पाते हैं और न उनमें पढ़ाये जाने वाले विषय ही। चुकीं

जब भाषा ही नहीं आती तो उस भाषा में समझाये जाने वाले विषय कहा से आएंगे । अतः हमारे ग्रामिण, कसबाई, और शहरों के निम्न एवं निम्नमध्यम वर्गिय इलाकों से आने वाले विद्यार्थी अन्तः इंग्लिश मीडियम स्कूलों में अंग्रेजी में पढ़ाये पाठों को तोतों की तरह ही रटने पर मजबूर होते हैं । फलस्वरूप पिछड़ते जाते हैं । पर सवाल उठना स्वभाविक है कि भाषा की वजह से ये वर्ग ही क्यों पिछड़ता है? उच्च वर्ग के विद्यार्थी क्यों नहीं? चुकीं उच्च वर्ग के लोगो को उनका परिवेश अंग्रेजी के मामले में तुलनात्मक रूप से कुछ बेहतर स्थिति प्रदान करा देता है । अतः वे यहां कुछ बढ़त हासिल कर लेते हैं पर उनका ज्ञान भी मौलिक नहीं रह पाता है । तो मौलिक ज्ञान किसका होगा? इसका जबाब लेखक विश्व ज्ञान अनुक्रम में देगा ।

फिलहाल सुप्रीमकोर्ट द्वारा पूछे गये सवालों का ऊपर के विश्लेषण के आधार पर जबाब देगे ।

प्रश्न- मातृभाषा से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- परिवेश की बोली ही बच्चे की मातृभाषा है । जो व्यवस्था के संरक्षक विश्वविद्यालय ने जो विभाजन भाषाओं में कर रखा है उसका हकिकत में कही कोई अस्तित्व मनुष्य के परिवेश में नहीं है । बच्चा भी अपने भौतिक-समाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को रचनात्मक एवं सृजनात्मक तरिके जानने की क्रिया के दौरान ही परिवेश की बोली से साक्षात् होता है । परिवेश से संवाद ही

परिवेश की बोली-भाषा को सिखने की प्रक्रिया है। बच्चे के सांस्कृतिक परिवेश में जो भी बोली-भाषा या भाषाएं बोली जाती हैं। उसे बच्चा बड़ी ही सहजता के साथ आत्मसात करता जाता है। परिवेश में परिवर्तन आने पर नये परिवेश की बोली भाषा को भी समय के साथ आत्मसात कर लेता है। मंदरटंग जिसके लिए मानक हिन्दी में मातृभाषा शब्द का प्रयोग होता है। पर मातृभाषा भाषा न होकर बोली है। उसे मातृभाषा कहने के स्थान पर मातृबोली कहना ज्यादा उचित होगा। क्योंकि भाषा व्यवस्था द्वारा तैयार की गयी एक बेलोच संकल्पना है। जबकि बोली बिना भेद भाव के बहता झरना है। अतः मातृ बोली में एक या एक से अधिक भाषाओं का भी मिश्रण हो सकती है। अतः मातृबोली परिवेश परिपेक्ष होती है।

यदि यह वह भाषा है जिसके साथ बच्चा सहज महसूस करता है तो इसे तय करने का अधिकार किसे हो?

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है बोलने की क्षमता जरूर जैविक गुण है परन्तु बोली-भाषा कोई जैविक गुण नहीं है। मानव समाज की हर पिढी में समाजिक संस्कृति के अनुरूप समाजिकरण के दौरान समाहित होती है। मातृभाषा माँ बाप की भाषा नहीं होती है। यह तो परिवेश की बोली होती है। इफितफाकन यदि माँ-बाप और बच्चे का परिवेश एक हुआ तो माँ-बाप और बच्चे की बोली एक होगी परन्तु यदि दोनों अलग है तो उसमें भी बदलाव आएगा। अतः माँ-बाप क्या किसी को भी यह तय करने का अधिकार नहीं है कि बच्चे की मातृभाषा/बोली क्या है। सिर्फ बच्चे का परिवेश देख कर ही पता लगाया जाएगा कि बच्चे की मातृभाषा अर्थात् मातृबोली क्या है। अतः मातृबोली को तय करने का अधिकार न तो माँ-बाप का है न स्कूल का और न ही सरकार का।

स्कूल बच्चे का परिवेश पता लगाये और उस परिवेश में आने वाले लोग(माँ-बाप सहित आस पड़ोस के सभी) जिस-बोली भाषा का प्रयोग कर रहे होते हैं, उस भाषाई मिश्रण को ही बच्चे की मातृबोली अथवा मातृभाषा के रूप में स्वीकारा किया जाये। स्पष्ट है कि माँ-बाप, स्कूल और सरकार बच्चे की मातृबोली को स्वीकार करे न की तय करे।

क्या एक छात्र या एक माता पिता या एक नागरिक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का एक माध्यम का चयन करने का अधिकार है ? यदि शिक्षण रचनात्मक और सृजनात्मक उद्देश्य के लिए है तो प्राथमिक क्या उच्च शिक्षा में भी परिवेश की क्षेत्रिय बोली-भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य बोली भाषा का प्रयोग वर्जित होना चाहिए। पर यदि शिक्षण का उद्देश्य व्यवस्था के अनुरूप प्यादों को तैयार करना है तो हर एक को व्यवस्था के अनुरूप ढलने में जो भाषा सहायक हो सकती है, उसे चुनने का अधिकार होना चाहिए है। जब अंततः व्यवस्था के खाके में फिट होने के लिए अंग्रेजी को ही अपनाना है तो प्राथमिक स्तर क्या बच्चे को पैदा होते ही किसी अंग्रेजी माध्यम क्रेच में डालने का भी अधिकार भी होना चाहिए। व्यवस्था को यह तय करने के स्थान पर कि किसी भी तरह से मातृभाषा को थोपने से अनुच्छेद 14, 19, 29 और संविधान के 30 के तहत मौलिक अधिकार प्रभावित होता है ?

निसंदेह हर व्यक्ति अपने परिवेश की बोली भाषा में ही सहज होता है। परन्तु जब तक व्यवस्था के शीर्ष पर कोई भाषा विशेष हावी रहेगी। लोग उसके पीछे भागे ही। चूंकि वर्तमान में अंग्रेजी ही “भारत देट इज इंडिया” के हर तरह के सत्ताधारी (ज्ञान,

राजनीति, पूँजी और न्यायव्यवस्था) की सत्ता को सुरक्षा प्रदान करने वाली न केवल 'अधिकारिक' अपितु "सांस्कृतिक एवं समाजिक पूँजी" को संरक्षित करने वाली भाषा है। और तो और माननीय सुप्रीमकोर्ट और देश के अधिकतर हाईकोर्ट की अधिकारिक भाषा भी अंग्रेजी ही है। अतः अंग्रेजी के प्रति मोह स्वभाविक है। लोग इसलिए अंग्रेजी माध्यम की तरफ नहीं भागते कि उनके बच्चे अंग्रेजी में अधिक सहज महसूस करते हैं। अपितु वे इसलिए अंग्रेजी माध्यम की तरफ भागते हैं क्योंकि अंग्रेजी कही न कही उन्हें सत्ता व्यवस्था के साथ कदम ताल मिलाने का सुख भी प्रदान करती है। अतः मातृभाषा के साथ थोपना शब्द का प्रयोग ही अनुचित है। थोपी तो व्यवस्था ने समाज पर अपनी 'सांस्कृतिक एवं समाजिक' भाषा है। उसमें माननीय सुप्रीमकोर्ट भी शामिल है। व्यवस्था के अन्य शीर्ष बिन्दुओं के साथ माननीय सुप्रीमकोर्ट की वजह से भी लोग मजबूर हैं। और इस मजबूरी की वजह से ही वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिला दिलाते हैं। मातृभाषा की वजह से संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 के तहत मौलिक अधिकार प्रभावित नहीं होता है? माननीय सुप्रीम कोर्ट ने मातृभाषा के लिए थोपना शब्द का प्रयोग गलत किया है। थोपा तो इस देश में अंग्रेजी और आम जनता के समझ से बाहर की मानक-कार्ययालयी हिन्दी को गया है। इस थोपने वाले संस्थाओं में न केवल औपचारिक शिक्षा के शीर्ष केन्द्र, दाखिले एवं नैकरियों की परीक्षा लेने वाली कैंट एवं युपीएससी जैसी संस्थाएं ही नहीं अपितु स्वयं सुप्रीम कोर्ट भी शामिल है। अतः मातृभाषा की वजह से नहीं अंग्रेजी और परिवेश से कटी मानक-कार्ययालयी हिन्दी को थोपने से संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 के तहत मौलिक अधिकार प्रभावित

होता है । अतः अंग्रेजी को तुरन्त प्रभाव से समाप्त किया जाये । और मानक-कार्ययालयी हिन्दी के स्थान पर मिली जुली हिन्दुस्तानी के प्रयोग पर बल दिया जाये । भारत की हर भाषा बोली का शासन व्यवस्था मे समान स्थान सुनिश्चित हो ।

क्या राज्य संविधान के अनुच्छेद 350 A के अनुसार प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम के रूप में मातृभाषा को चुनने के लिए भाषाई अल्पसंख्यकों को मजबूर किया जा सकता है ?

भाषा का मजहब और जाती के से जोड़ कर देखना ही गलत है । हर बच्चे को उसके परिवेश के अनुरूप प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य की जिम्मेदारी है । अतः बच्चे को स्कूल की भाषा नहीं स्कूल को बच्चे के परिवेश के भाषा का ज्ञान हासिल करना अनिवार्य हो । कोई भी बच्चा तब ही रचनात्मक एवं विवेचनात्मक तरिके से सीख सकेगा, जब वह दबाव मुक्त हो । आज बच्चे के ऊपर सबसे बड़ा दबाव भविष्य में प्रयोग की जाने वाली भाषा का है । जब तक किसी भाषा विशेष का दबदबा सत्ता के शीर्ष केन्द्रों से बना रहेगा । तब तक बच्चा स्वछंद होकर अपने परिवेश की बोली में सीख नहीं पायेगा । लेखक यहां एक विद्यार्थी का उदाहरण देना चाहेगा, जो जब गांव में था तो उसके शिक्षक उसकी ग्रामिण बोली के स्थान पर हिन्दी और अंग्रेजी के प्रयोग पर बल देने को कहते थे । जब दिल्ली शहर आया तो उसके ऊपर अंग्रेजी को सवारने का दबाव आया । अतः इन सब प्रसंगों से स्पष्ट है कि अंग्रेजी का दबदबा संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 के साथ अनुच्छेद 350A को भी प्रभावित करता है । अंग्रेजी नागरिकों के लगभग सभी मौलिक अधिकारों का भी हनन भी करती है ।



अध्याय 18

परिवेश के बाहर की भाषा और

बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र

परिवेश के बाहर की भाषा को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाने से विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता पर पडने वाला प्रभाव

जिस प्रकार कृषि कार्य करने से पूर्व भूमि को फसल की प्रकृति के अनुरूप तैयार करने की आवश्यकता होती है। भूमि वही होती है, पौधे की प्रकृति पर निर्भर करता है कि भूमि को किस रूप में तैयार किया जाए। धान के लिये तैयार भूमि पर गेहूँ की फसल नहीं बोई जा सकती। उस खेत में यदि आलू बो दिया तो निश्चित तौर पर सड़ जाएगा। इसी प्रकार कोई भी फसल तब ही अच्छा उत्पादन दे सकती है, जब वह मौसम एवम् भूमि के अनुरूप हो। अतः किसी भी फसल की कृषि हेतु भूमि, फसल, एवम् वातावरण में एक समंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है। यही बात शिक्षण अधिगम पर भी लागू होती है। जैसे धान के लिए तैयार भूमि पर यदि गेहूँ बोया जायेगा, तो वह सड़ जायेगा और कभी पनप नहीं पायेगा। यही बात शिक्षा पर भी लागू होती है।

जब तक समाज-व्यवस्था (राज-व्यवस्था एवं अर्थ-व्यवस्था) की भूमि बाल-केन्द्रित रचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप ना हो, तो रचनात्मक शिक्षा शास्त्र पर आधारित पाठ्यचर्चा को स्कूली कार्यक्रम में लागू करने से सतही तौर पर कुछ परिवर्तन दिखेंगे, पर कुछ विशेष प्रगतिशील परिवर्तन हासिल नहीं हो पायेगा। अतः बाल केन्द्रित, रचनात्मक एवं विवेचनात्मक पाठ्यचर्चा को लागू करने हेतु न केवल समाज में जन-सामान्य के बीच भी इस शिक्षाशास्त्र की एक सामाजिक एवं साँस्कृतिक समझ होनी जरूरी है, अपितु राज-व्यवस्था का ढाँचा भी इस शिक्षा शास्त्र के अनुरूप होना चाहिए। तब ही स्कूलों में इस शिक्षा शास्त्र पर बोया गया पौधा एक फलदाई वृक्ष बन सकता है।

अतः इस अध्ययन का मूल सिद्धांत यह है कि बाल-केन्द्रित विवेचनात्मक एवं रचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप 'भूमि' (अर्थात् सामाजिक एवं साँस्कृतिक वातावरण) के बिना, बाल-केन्द्रित विवेचनात्मक एवं रचनात्मक शिक्षाशास्त्र पर आधारित पाठ्यचर्चा का स्कूली शिक्षण में प्रयोग सफल ही नहीं हो सकता।

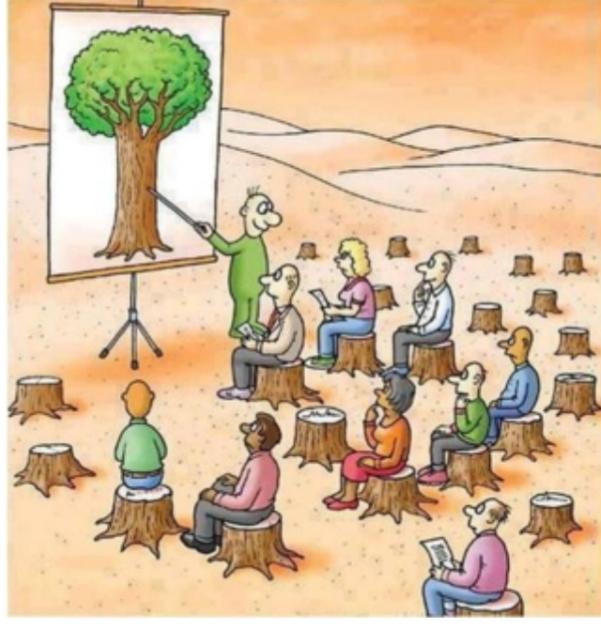
हम इस खंड में, इन दोनों के बीच के तालमेल को खोजने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार हम औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की सम्पूर्ण राज-व्यवस्था एवं समाज-व्यवस्था के संदर्भ में विवेचना करेंगे और उस विवेचना के आधार पर अंग्रेजी माध्यम स्कूली व्यवस्था के प्रति बढ़ते जुनून को ढूँढ़ने का प्रयास करेंगे।

वर्तमान पाठ्यचर्या का आधार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 (National Curriculum Framework/NCF-2005) है जो बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र की वकालत करता है तथा सीखने के रचनात्मक तरीकों के अपनाने पर बल देता है।

वहीं एन.सी.ई.आर.टी. की एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार समझ तथा भाषा का गहरा रिश्ता है। “समझ और भाषा का कुछ इस प्रकार का रिश्ता होता है, जैसे- हवा और उसकी तरंगों का। हमारी समझ अपनी भाषा में ही बनती है।” भाषा के बिना समझ की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। पर स्कूलों में भाषा को एक टूल के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

जब परिवेश गत साँस्कृतिक बोली को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्ष में इतने गहरे तर्क है। इसके बावजूद भी यदि स्कूलों में परिवेश के इतर की भाषा अर्थात् अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाते हैं तो ऐसे में बच्चों की समझ पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या बच्चे अपने साँस्कृतिक परिवेश की बोली-भाषा का प्रयोग कर ज्ञान का स्वाभाविक सृजन कर पाते हैं? क्या साँस्कृतिक-परिवेश के बाहर की भाषा के संदर्भ में भी यह बात लागू होती है? व्यक्ति की जो अभिव्यक्ति साँस्कृतिक बोलियों में हो सकती है, क्या उतनी ही सहज और स्वभाविक अभिव्यक्ति परिवेश के इतर की भाषा में भी हो सकती है?

‘भाषा के रूप में भाषा सिखाना’ और ‘माध्यम के रूप में भाषा का प्रयोग करना’, ये दोनों के पूर्णतः भिन्न प्रक्रियात्मक प्रभाव हैं। इस खंड में, हम इस बात पर विचार करेंगे कि ‘माध्यम के रूप में परिवेश के इतर की भाषा, अर्थात् अंग्रेजी का प्रयोग, बच्चों की सोचने-समझने की क्षमता पर क्या प्रभाव डालता है?’



अध्याय-19

अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में शैक्षिक वातावरण

क्या अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप शिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण संभव भी है?

‘बाल-केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक पद्धति’ ‘औपनिवेशिक नागरिक’ तैयार करने वाली ‘शिक्षक-केन्द्रित एवं पुस्तक-केन्द्रित शिक्षा पद्धति’ से सर्वथा भिन्न है।

शिक्षक-केन्द्रित पद्धति में शिक्षक ही ज्ञान का केन्द्र होता है। विद्यार्थी का काम शिक्षक द्वारा उद्वेले गये ज्ञान को बिना तर्क के आत्मसात करना भर होता है। वहीं पुस्तक-केन्द्रित पद्धति में पुस्तक में लिखी बात ही अंतिम सत्य होती है। पुस्तक-केन्द्रित पद्धति को पुस्तक-केन्द्रित न कह कर यदि सहायक-पुस्तक-केन्द्रित पद्धति कहा जाए तो ज्यादा बेहतर होगा। सहायक-पुस्तक अर्थात् गाईड, कुंजी, गुटका। इस पद्धति

में जो गार्ड में लिखा है, वही अंतिम ज्ञान है। अब चाहे वह कितना भी आधा-अधूरा हो। बेशक वह तर्कहीन, आधारहीन हो, तथ्य भी गलत हो। 'रट लो और फरीक्षा में उतार दो!' बस, इतना भर विद्यार्थी का काम है। शिक्षक-केन्द्रित एवं पुस्तक-केन्द्रित पद्धति के मूल में केवल रटना ही है।

बाल-केन्द्रित पद्धति, दोनों पद्धतियों से सर्वथा भिन्न है। बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक पद्धति में शिक्षक विद्यार्थियों पर ज्ञान को थोपता नहीं है। अपितु वह विद्यार्थी के भौगोलिक, सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश के अनुरूप ऐसा वातावरण तैयार करता है कि विद्यार्थी औपचारिक एवं अनौपचारिक वातावरण में स्वतः ही तालमेल कर संवाद स्थापित कर सके। फलस्वरूप विद्यार्थी ज्ञान के सृजनकर्ता बन जाते हैं। इस प्रकार के शिक्षण का शिक्षाशास्त्रीय उद्देश्य विद्यार्थी में प्रश्न करने एवं विचार करने की क्षमता पैदा करना है, न कि रटे रटाए जबाव देने के लिए तैयार करना है।

राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 में निर्धारित किए गए प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार से हैं -

बड़े होते हुए बच्चे, अपने परिवेश से काफी कुछ सहजता से सीख लेते हैं। वे अपने आस-पास के जीवन तथा दुनिया पर भी नज़र रखते हैं। जब उनके अनुभवों को कक्षा में लाया जाता है, तब उनके प्रश्नों तथा जिज्ञासाओं से पाठ्यचर्चा अधिक समृद्ध और रचनात्मक बनती है।

उत्पादक कार्यों को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाये जाने पर बल दिया जाना चाहिए। उत्पादक कार्य, स्कूली शिक्षा का भाग बन सके, इसके लिए 'कक्षा के ज्ञान' को 'बच्चों के जीवन अनुभवों' के साथ जोड़ा जाए, 'काम से जुड़े कौशलों' को 'स्कूली शिक्षा' में पर्याप्त स्थान दिया जाए एवं 'संचित मानवीय अनुभव तथा ज्ञान' को भी 'संदर्भित' किया जाए।

बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं, जब उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

बाल-केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र का अर्थ है, बच्चों के अनुभवों, उनके स्वयं और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना।

समाज की हर पीढ़ी को विरासत में सांस्कृतिक एवं ज्ञान का एक भंडार मिलता है। जिसे वह अपनी गतिविधियों तथा समझ से समाहित करते हुए नए ज्ञान रचने की सार्थकता महसूस करता है।

समाज में मिलाने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यार्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वभाविक क्षमता विकसित करती है। जिससे विद्यार्थी को अपने आस पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से जुड़ने की क्षमता विकसित होती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'बाल केन्द्रित शिक्षण व्यवस्था' एक प्रकार से 'संस्कृति-केन्द्रित-शिक्षण व्यवस्था' ही है। इस प्रकार के शिक्षण में शिक्षक एक सहायक की भाँति विद्यार्थियों को अपने साँस्कृतिक सन्दर्भों के साथ ज्ञान की पुनरसंरचना करने का अवसर प्रदान करता है।

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का शैक्षिक वातावरण

उक्त सिद्धांतों के संदर्भ में, अनुसंधान के दौरान अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में कुछ और ही परिवेश देखने को मिला। अनुसन्धान के दौरान पाया कि विद्यार्थियों के साँस्कृतिक ज्ञान को अंग्रेजी माध्यम की स्कूली व्यवस्था में कहीं कोई-भी स्थान प्राप्त नहीं है। साँस्कृतिक बोलियाँ जो संचित ज्ञान का प्रतिबिम्ब होती हैं। उन बोलियों को तो अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के स्कूली परिसर में विद्यार्थी एवं अध्यापकों के द्वारा प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध होता है। एक तरफ़ विशिष्ट माने जाने वाले स्कूल तो पूर्णतः अंग्रेजी को ही अपने परिसर की भाषा मानते हैं। वहाँ का तो पूरा 'क्राउड' ही उच्च और उच्च-मध्यमवर्गीय होता है। ('क्राउड' के लिए कुछ लोग

'स्टफ' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। 'क्राउड' या 'स्टफ' अर्थात् स्कूल के संदर्भ में स्कूल परिसर में आने वाले लोग पता नहीं, इसमें 'चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी/क्लास फोर स्टाफ' शामिल हैं अथवा नहीं)

परंतु दूसरी ओर, मध्य स्तर के इन स्कूलों के प्राचार्यों ने माना कि उनके यहाँ आने वाले बच्चे ग्रामीण एवं निम्न मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि के होने की वजह से अंग्रेजी भाषा का किसी भी प्रकार का परिवेशजन्य ज्ञान नहीं रखते। मजबूरन उन्हें अंग्रेजी के साथ-साथ थोड़ी हिंदी के प्रयोग की भी इजाजत देनी ही पड़ती है। पर वे भी परिवेश की साँस्कृतिक बोलियों को अपने परिसर में घुसने नहीं देते। अंग्रेजी के ज्यादा से ज्यादा प्रयोग हेतु नये-नये हथकंडे अपनाते रहते हैं। जैसे- असेम्बली में मंच पर उन्हीं विद्यार्थियों को बुलाना, जो अपेक्षाकृत बेहतर अंग्रेजी जानते हों; स्कूलों में अक्सर अंग्रेजी के प्रयोग की हिदायत वाले नोटिस निकालते रहना; शिक्षकों पर अंकुश लगाकर रखना; स्कूल से शिक्षकों को निकालने के वक्त उनकी अंग्रेजी न बोल पाने की अयोग्यता को आधार बनाना; विषय का ज्ञान न होने पर भी कुछ ऐसे शिक्षकों को नियुक्त करना, जो अंग्रेजी भाषा का प्रभाव रखते हों; ऐसे शिक्षकों को कुछ जिम्मेदार पदों पर आसीन करना; आदि आदि.. इसी प्रकार विद्यार्थियों में भी उनको अधिक तवज्जो देना, जो अंग्रेजी बोल पाते हों; अंग्रेजी न बोल सकने वालों को प्रताड़ित करते रहना; देहाती बोलियों का प्रयोग करते हैं। निस्संदेह उन स्कूलों में भी वातावरण अपेक्षाकृत शहरी मध्यम वर्ग के ही अधिक अनुकूल होता है।

ग्रामीण इलाकों तथा कस्बाई क्षेत्रों में खुले स्कूल अंग्रेजी माध्यम के अनुरूप वातावरण तैयार करने के लिए शहरी क्षेत्र से शिक्षकों को बुलाने का विशेष प्रबंध भी करते हैं। जैसे 'कैब' (लाने-ले जाने वाली विशेष गाड़ी) की व्यवस्था करना, शहरी क्षेत्र से आने वाले शिक्षकों के रहने के लिए कस्बाई इलाकों में होस्टल आदि की व्यवस्था करना, आदि। ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्र के स्कूल-प्रबंधकों को शिक्षकों की नियुक्ति करते वक्त भी डर लगा रहता है कि कहीं ग्रामीण बोली बोलने वाले लोग स्कूल में नियुक्त ना हो जाएँ। अतः नियुक्ति के समय ही भाषा के प्रति दृष्टिकोण का पता लगा लिया जाता है। विशिष्ट वर्ग के लोगों के लिए खुले 'हाई-फाई' स्कूल, जैसे- डीपीएस आदि हों या मध्यम वर्ग एवं जनसामान्य के लिए खुले निम्न दर्जे के स्कूल, अंग्रेजी भाषा के अनुकूल वातावरण तैयार करना सबकी पहली प्राथमिकता रहती है। मज़बूरी में बेशक क्षेत्रीय भाषाएँ आ भी जाएँ, पर नीतिगत तौर पर वे कतई स्वीकार नहीं हैं। देहाती एवं कस्बाई स्कूल तो अपने स्कूल का प्रचार ही इस आधार पर करते हैं कि उनके यहाँ का 100% वातावरण अंग्रेजी का ही है। वे प्रमुखता से इस बात को उठाते हैं कि उनके स्कूल में केवल अंग्रेजी का ही प्रयोग होता है। स्कूल चाहे विशिष्ट दर्जे का हाई-फाई हो या मध्यम स्तर का, सभी के प्रबंधकों को हमेशा यह डर लगा रहता है कि कहीं क्षेत्रीय बोलियों से स्कूल परिसर का माहौल ही गंदा ना हो जाए। आखिर अभिभावक फ़ीस भी तो अंग्रेजी माध्यम के नाम की ही दे रहे हैं।

विशिष्ट समझे जाने वाले स्कूलों का दावा है कि उनके शिक्षक तथा विद्यार्थी, ऐसे परिवारों से आते हैं, जहाँ अंग्रेजी भाषा को बोल-चाल के लिए प्रयोग किया जाता है। वे यह भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ई.डब्ल्यू.एस.) की पृष्ठभूमि वाले बच्चे उनके स्कूल में आते भी हैं। न ही वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि देहाती बोली बोलने वाले बच्चे एवं अभिभावक उनके स्कूलों में आते हैं। उनका मानना है कि आर्थिक-अशक्त-वर्ग (ई.डब्ल्यू.एस.) का विद्यार्थी उनके यहाँ टिक भी नहीं पाएगा। हालाँकि माता-पिता से बातचीत करने पर ऐसा नहीं पाया गया। माता-पिता आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हों या कमजोर वर्ग के, दोनों के घर-परिवार में क्षेत्रीय व देहाती भाषा-बोलियों का प्रयोग होता ही है। हाँ! स्कूलों के दबाव में बच्चों के सामने क्षेत्रीय व देहाती भाषा-बोलियों को बोलने पर कुछ अंकुश जरूर लग गया है। वहीं मध्यम स्तर के स्कूल इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके स्कूल में आने वाले बच्चों के परिवेश में अंग्रेजी के शब्दों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होता भी हो, पर शायद ही पूरी तरह से अंग्रेजी भाषा बोली जाती हो।

एक प्राचार्य के शब्दों में “ न तो शिक्षक, न ही विद्यार्थी ही ऐसे परिवेश से आते हैं, जहाँ अंग्रेजी बोली जाती हो। उनके स्कूल में आने वाले बच्चों के घरों में तो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग शायद ही कभी होता हो।” स्कूल के प्राचार्य के अनुसार, “ स्कूल परिसर में कुछ हद तक अंग्रेजी के साथ हिन्दी के प्रयोग की भी इजाजत दे दी जाती है।”

परंतु स्कूल के शिक्षकों की इस बात पर विपरीत प्रतिक्रिया है - “आपको प्रिंसिपल ने ऐसा कहा होगा, पर हकीकत में हम पर तो अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का दबाव बना रहता है। प्रत्येक स्टाफ-मीटिंग में ‘इंग्लिश कल्चर - इंग्लिश कल्चर’ ही सुनाई देता है। छात्र हो या शिक्षक, सबको हमेशा ‘स्पीक इन इंग्लिश - स्पीक इन इंग्लिश’ बोलते रहते हैं।” इस बात की पुष्टि बच्चों ने भी की और आगे जोड़ते हुए कहा, “सांस्कृतिक कार्यक्रमों / कल्चरल प्रोग्राम में भी इंग्लिश का ही बोलबाला होता है। देखने वाले अंग्रेजी नहीं जानते पर फिर भी ‘इंग्लिश प्ले’ (नाटक) ही होगा।” इंग्लिश स्पीकिंग कल्चर बनाने के लिए स्कूल प्रबंधक साम, दाम, दंड, भेद अर्थात् हर प्रकार की नीति का प्रयोग करते हैं। स्कूल के प्रचार / पब्लिसिटी का आधार भी स्कूल का अंग्रेजी वातावरण ही है। अंग्रेजी वातावरण की एक वजह अभिभावकों की अंग्रेजी की मांग भी है। अभिभावक बेशक अंग्रेजी भाषा का बेसिक भी न जानता हो पर उसकी इच्छा रहती है कि शिक्षक सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी का ही प्रयोग करे। बच्चे को समझ में आ रहा है या नहीं, इससे भी बड़ा प्रश्न यह बन जाता है कि बच्चा अंग्रेजी सुन/समझ रहा है कि नहीं। अतः अपने ग्राहकों, अर्थात् अभिभावकों की संतुष्टि के लिए प्रबंधकों एवं प्रिंसिपल की तरफ से शिक्षकों और बच्चों पर हमेशा दबाव रहता है कि वे स्कूल परिसर में अंग्रेजी का वातावरण तैयार करें। अतः अंग्रेजी वातावरण के दबाव की दूसरी सबसे बड़ी वजह माता-पिता तथा विद्यार्थियों की शिक्षण को लेकर बनी गलत अवधारणा भी है। एक शिक्षक के शब्दों में, “वे अंग्रेजी बोलने को ही शिक्षण समझते हैं। बेशक उन्हें अंग्रेजी में कही बात समझ आए या ना आए। उन्हें तो बस गार्ड में निशान लगा कर दे दो। रट लेंगे बस! बस दो-चार

लाईन अंग्रेजी में बोल दो, तो समझने लगे कि पढ़ाई हो गई।” जबकि विद्यार्थियों से हुई समूह-वार्ता में विद्यार्थियों ने बताया कि उन्हें विज्ञान में पारिभाषाएँ लिखवा दी जाती हैं। उनकी भूमिका उसे याद करके लिखने की होती है। किसी भी प्रकार की दैनिक गतिविधियों को स्कूली-चर्चा में शामिल नहीं किया जाता क्योंकि जैसे ही दैनिक गतिविधियों को शामिल करने की बात आती है, कृत्रिम रूप से बनाए गए अंग्रेजी वातावरण में हिंदी व क्षेत्रीय भाषाएँ/बोलियाँ घुसपैठ करने लगती हैं। अंग्रेजी में रटी-रटाई बातें तो उगली जा सकती हैं पर मौलिक चिंतन के लिए परिवेश की बोली ही अनुकूल होती है। परन्तु परिवेश की भाषा/बोलियों पर अंकुश लगाने से कक्षा में स्वतंत्र रूप से प्रश्न पूछने, विचार-विमर्श करने की प्रक्रिया बाधित रहती है।

“जैसे ही कक्षा की परिचर्चा में दैनिक गतिविधियों को शामिल करने की बात उठती है तिलिस्मी-भाषा का आवरण उड़न-छू हो जाता है और स्कूल परिसर के अंग्रेजीमय वातावरण गन्दा करने वाली साँस्कृतिक बोलियाँ भूतों की तरह स्कूली परिसर में घुस आती हैं।”

इस संबंध में, दसवीं कक्षा की छात्रा आरुणी का वक्तव्य गौर करने लायक है। आरुणी के अनुसार, “ स्कूल में किताब पढ़ा देते हैं। गाइड में से प्रश्न-उत्तर लिखवा देते हैं। यदि दूसरी गाइड में कुछ और प्रश्न मिल जाएँ तो उसे भी लिखवा देते हैं। हम उसे रट लेते

हैं। आठवीं तक तो काम चल जाता था क्योंकि प्रश्नपत्र स्कूल का ही होता था। परंतु नवीं कक्षा में दिक्कत आ रही है क्योंकि प्रश्नपत्र सीबीएसई से छप कर आता है।”

आगे छात्र ने खुद इस समस्या को बताया “यदि हमने समझा होता तो खुद अपने मन से भी लिख देते पर हमने तो रटा है। सीबीएसई से आया प्रश्न थोड़ा-भी घुमा कर आ गया तो उसे नहीं कर पाएँगे।”

इसी प्रकार की प्रतिक्रिया रमेश ने दी, उसके अनुसार, “विज्ञान जैसे विषय को भी नोटबुक में लिखवा भर देते हैं। प्रयोगशाला में भी ले जाकर कुछ-कुछ करा देते हैं। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमने स्कूल के बाहर की किसी वस्तु अथवा घर में प्रयोग किये जाने वाले सामान को स्कूल में प्रयोग के दौरान प्रयोग किया हो या पढ़ाने के दौरान उदाहरण भी दिया हो।”

ऐसा इसलिए, क्योंकि स्कूल के बाहर के प्रयोगों तथा घर में रसोई के सामान के साथ किये प्रयोगों के साथ घर एवं परिवेश की बोली-भाषा भी स्कूल परिसर में प्रवेश करती है। परिचर्चा में शामिल विद्यार्थियों के अनुसार स्कूल में उन्हीं बच्चों को अधिक अंक मिलते हैं जो याद कर लिखते हैं। अतः स्कूली शिक्षण का मुख्य केंद्र याद करना ही है। रमेश को विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक विज्ञान इसलिए अच्छा लगता है क्योंकि उसकी शिक्षिका उसे इस विषय में याद करने को नहीं बोलती। वह मन से

क्लास में सुना सकता है। पर यहाँ भी परीक्षा के लिए याद करने की जरूरत तो पड़ती ही है। स्वयं उस स्कूल की प्राचार्य स्वीकार करती हैं और कहती हैं - “हम बच्चों को कहते हैं कि लिखते वक्त वे थोड़ा याद करके लिखें क्योंकि इंग्लिश में सीधे लिखने पर गलती होने की आशंका बनी रहती है।”

सतत और व्यापक मूल्यांकन पद्धति (सीसीई/CCE) लागू होने के बाद विद्यार्थियों की 9वीं तथा 10वीं परीक्षा सेमेस्टर के अनुसार स्कूल में ही होती है। स्कूल के एक चपरासी ने सीबीएसई के प्रश्नपत्र तथा स्कूल में अध्यापकों के बनाए प्रश्न पत्र में अंतर करते हुए बताया, “स्कूल के टेस्ट में तो ये बच्चे बिना गरदन हिलाए ही कर लेते हैं। पर सीबीएसई से जब पेपर आता है तो ‘सब्जेक्ट टीचर’ को बुलाते-बुलाते मैं थक जाता हूँ” अर्थात् विद्यार्थियों की शंकाओं को दूर करने के लिए विषय-अध्यापक को बार-बार बुलाना पड़ता ही है। रटे-रटाए प्रश्नों को छोड़ दें तो अंग्रेजी में छपे प्रश्नों को खुद समझ पाने में बच्चे असमर्थ रहते हैं।

बेशक सिद्धान्त: सतत और व्यापक मूल्यांकन पद्धति (सीसीई) की मूल्यांकन प्रविधि लागू है और बोर्ड का दावा है कि पाठ्यचर्चा अब बाल-केन्द्रित, रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र पर आधारित है। परन्तु फिर भी, विद्यार्थी यदि विषयों को समझने के स्थान पर महज़ रटने पर जोर देते हों तो आप इसे बाल-केन्द्रित, रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र कैसे कह सकते हैं? वर्ष के अंत में ली जाने वाली परीक्षा की भूमिका कम हुई है पर कक्षा में चलने वाली निरंतर मूल्यांकन-प्रक्रिया

में विद्यार्थी के साँस्कृतिक वातावरण के अनुभवों को किस मात्रा में शामिल किया जाता है? या उसमें भी साल के अंत में ली जाने वाली परीक्षा के अनुरूप साल भर के टेस्ट में तब्दील दिया जाता है? अभिव्यक्ति परीक्षण / एक्सप्रेसन टेस्ट के नाम पर अंग्रेजी में रटी-रटायी बातें उगलना क्या स्वतंत्र अभिव्यक्ति को दर्शाता है? “रटो, याद करो, लिख दो या सुना दो और फिर भूल जाओ” यह किस प्रकार की मानसिकता को दर्शाता है? इसी प्रकार का एक टेस्ट आरूणी ने दिखाया। जिसमें वही प्रश्न टेस्ट में दिये थे जो पुस्तक में छपे थे। प्रोजेक्ट की भूमिका बच्चों को पास कराने के ‘यंत्र’ के रूप में है। बच्चे की किताबों में जो छपा होता है, उसे ही सुसज्जित पुस्तिका / डेकोरेटेड नोटबुक में लिख भर दिया जाता है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर अनुसंधानकर्ता शिक्षण-अधिगम के इस वातावरण को बाल-केन्द्रित, रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप तो दूर, शिक्षक-केन्द्रित भी नहीं कहेगा। इस अवलोकन के आधार पर इसे शुद्ध रूप से पुस्तक-केन्द्रित, वह भी सहायक-पुस्तक-केन्द्रित वातावरण ही कहा जाएगा, जिसमें पकी-पकाई जानकारियों को रटना भर ही ज्ञान कहा जाता है। इसमें, ज्ञान वही है जो सहायक पुस्तको में लिखा है। जैसा कि विद्यार्थियों ने बताया, “ शिक्षक लिखवा भर देते हैं और हम लिख लेते हैं। फिर याद कर लेते हैं, यानी रट लेते हैं। यदि किसी ने थोड़ा-सा घुमा कर पूछ लिया तो हमारे होश उड़ जाते हैं।”

शिक्षकों ने इसी बात पर अपनी परेशानी व्यक्त करते हुए कहा, “वे क्या करें, बच्चों का भाषा का स्तर ऐसा नहीं होता कि वे इंग्लिश में समझ सकें और हम पर प्रबंधकों का इतना दबाव होता है कि हम चाह कर भी उनकी भाषा में समझा नहीं सकते। जो किताब में छपा है, उसी को थोड़ा डायल्यूट (सरल) भर कर देते हैं और फिर कह देते हैं कि जो किताब में छपा है, उसे थोड़ा याद कर लो। ”

अतः इस प्रकार बाल-केन्द्रित, रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र अर्थात् राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 के आधार पर पाठ्यचर्चा लागू होने के बाद भी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का शैक्षिक वातावरण, शिक्षण, अधिगम शिक्षक-केन्द्रित या विषय-केन्द्रित भी नहीं रहा, अपितु पूर्णतः सहायक-पुस्तक(गाइड)-केन्द्रित ही हो गया है। जिसके अनुसार पकी-पकाई जानकारीयों को रटना ही ज्ञान-प्राप्ति कहा जाता है।

इस बार जब मैं गर्मी की छुट्टियों में अपने मामा जी से मिलने उनके घर गया। वहाँ किसी बात पर उन्होंने मुझे डाटते हुए कहाँ,

“ क्या जी ! तुम तो कम्पलीटे बुरबक है। ”

उनकी डाट तो सर आखों पर। पर तब से मेरे मन में एक सवाल चल रहा है कि आखिर उन्होंने डाटने के लिए किस भाषा का प्रयोग किया। उनके द्वारा प्रयोग किए शब्दों का संबंध किस भाषा से है ?

कृपया दोस्तों से अनुरोध है कि इस गुत्थी को सुलझाने में मेरी सहायता करें।

अध्याय-20

अंग्रेजी माध्यम और विद्यार्थियों की दिनचर्या

विचारणीय मुद्दा –

सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश से बाहर की भाषा, अर्थात् अंग्रेजी को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाने से क्या विद्यार्थियों की दिनचर्या भी प्रभावित होती है?

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा-2005 (National Curriculum Framework/NCF-2005) के अंतर्गत औपचारिक शिक्षा में स्कूल के बाहर के साँस्कृतिक वातावरण से सृजित होने वाली अनौपचारिक शिक्षा के योगदान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि 'समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यार्थियों में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वाभाविक क्षमता को विकसित करती है। जिससे विद्यार्थियों में अपने आसपास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यों से जुड़ने की क्षमता बढ़ती है। इसके लिए

ऐसे मौकों का मिलना बहुत जरूरी है, जिससे विद्यार्थी नयी चीजों को आजमाएँ, जोड़-तोड़ करें, गलतियाँ करें और अपनी गलतियों को खुद सुधारें। यह बात भाषा सीखने के लिए भी उतनी ही सच है, जितनी किसी हस्तकौशल या विषय को सीखने के लिए।”

राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा-2005 शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत, संचित मानवीय अनुभवों, ज्ञान और सिद्धांतों को संदर्भित करने हेतु उत्पादन कार्य को प्रभावी शिक्षण का माध्यम बनाये जाने पर बल देता है। काम से जुड़े कौशलों को भी औपचारिक शिक्षा का भाग बनाने पर बल देता है। इसलिए कक्षा के ज्ञान को जीवन अनुभव से जोड़ने की बात उठती है। जब हमें राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा-2005 के इन सुझावों पर अमल करने की बात आती है तो पहला प्रश्न यही उठता है कि बच्चों का अपने सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है तथा वे स्कूली शिक्षण के बाद कितना समय अपने परिवेश के अनौपचारिक-भौगोलिक-सामाजिक-साँस्कृतिक वातावरण के लिए दे पाते हैं?

इस प्रश्न के उत्तर की खोज के लिए शोधकर्ता लेखक ने पहले तो यही पता करने का प्रयास किया कि बच्चे स्कूल के छह घंटों के बाद का समय किस प्रकार बीतता है।

हिसाब-किताब - दिन में होते हैं – 24 घण्टे, उसमे से स्कूल कार्यदिवसों में सैद्धान्तिक और कानूनी तौर पर स्कूल में बीते 6 घण्टे, इस प्रकार शेष बच गए 18 घण्टे। एक स्वस्थ बच्चे को 7-8 घण्टे की नींद लेनी चाहिए, परंतु वास्तविकता तो यह है कि अंग्रेजी माध्यम स्कूली व्यवस्था में आज बहुत-से बच्चों को इतना-भी समय नहीं मिल पाता है कि वे अपनी नींद भी पूरी कर सकें, तथापि, मानने में क्या जाता है, चलो मान लो कि सभी बच्चे 8 घण्टे की स्वस्थ नींद लेते हैं। इस प्रकार शेष बच जाते हैं 10 घण्टे। अब शोधकर्ता इस बचे हुए 10 घण्टों का विश्लेषण करेगा कि विद्यार्थी ये 10 घण्टे कैसे बिताते हैं।

इस सम्बन्ध में, अलग-अलग स्कूलों के बच्चों की अलग-अलग कहानी है। जहाँ विशिष्ट माने जाने वाले मेट्रोपोलिटन सिटी के स्कूल हफ्ते में 5 दिन ही लगते हैं, इस कारण इन स्कूलों के बच्चों के लिए 'वीक-एंड' एक सुखदाई शब्द भी है। जब उन्हें स्कूल के बाहर के परिवेश में अपने माता-पिता के साथ 'एडवेंचर' करने का मौका मिलता है। यहाँ 'एडवेंचर' का अर्थ 'साहसिक कार्य' कदापि नहीं है। 'एडवेंचर' का यहाँ अर्थ है- वह मस्तीभरा क्षण, जो वे अपने माता-पिता के साथ मॉल में, वाटर-पार्क में बिताते हैं। उनके अपने शब्दों में 'वीक-एंड' का अर्थ है कि वह समय, जो वे अपने माता-पिता के साथ 'एन्जॉय' (आनंद) में बिताते हैं। अतः इस 'एडवेंचर' और 'एन्जॉय' के दौरान उनका परिवेश किस प्रकार का होता है, यह जानने के लिए तो हमें मॉल, वाटर-पार्क, फाइव स्टार होटल और यदि छुट्टी लम्बी हो तो सिंगापुर आदि भी जाना पड़ेगा। पर उच्च-मध्यम वर्गीय विद्यार्थियों की तुलना, यदि हम गाँवों एवं कस्बाई इलाकों के निजी स्कूलों के

विद्यार्थियों से करें, तो यह स्थिति बिलकुल ही भिन्न है, क्योंकि इन इलाकों के स्कूल हफ्ते में सातों दिन लगते हैं। अर्थात् गाँव के विद्यार्थियों को रविवार को भी 'एक्स्ट्रा क्लास' (अतिरिक्त कक्षा) झेलनी पड़ती है और बाकी दिनों में भी अमूमन दो घण्टे की 'एक्स्ट्रा क्लास' (अतिरिक्त कक्षा) लगना आम बात है। इस प्रकार से, स्कूल हो गया 6+2= 8 घण्टे का और रविवार व अन्य छुट्टियों के दिन 4 घण्टे का। ये 'एक्स्ट्रा क्लास' बच्चों को सिखाने का कम और माँ-बाप को प्रभावित करने का काम अधिक करती है। पास के कस्बों में जाने वाले बच्चे प्रतिदिन दो से चार घण्टे बसों से आने-जाने में ही बिता देते हैं। कस्बाई इलाके, जैसे- पलवल में भी प्रतिष्ठित ब्रांड के स्कूलों में भी 'एक्स्ट्रा क्लास' का चलन है। इस प्रकार छह घण्टों का स्कूल, आठ से दस घण्टे का हो जाना आम बात है।

अभी तक हम स्कूल की बात कर रहे थे। अब आती है स्कूल के बाहर चलने वाली ट्यूशन कक्षाओं की बात, जो स्कूल के अंग्रेजी माध्यम पाठ्यक्रम का ही प्रतिफल है। यूनेस्को द्वारा प्रकाशित मार्क ब्रे की पुस्तक 'प्रतिछाया शिक्षा - शिक्षा प्रणाली को एक एक चुनौती' में ट्यूशन की समस्या को गंभीरता से उठाया गया है। इस अनुसंधान आधारित पुस्तक के माध्यम से मार्क ब्रे जिस समस्या को संबोधित करते हैं, वह ट्यूशन का बोझ ही है। लेखक के अनुसार पूर्वी एशिया के देशों में तेजी से ट्यूशन का जाल फैल रहा है। उनके अनुसार यह तेजी से विकसित होता हुई बाजार आधारित शिक्षा व्यवस्था है। जिस पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। ट्यूशन की व्यवस्था वास्तव में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की खामियों का ही प्रतिफल है। पर इसका कारण क्या है? क्या सिर्फ पाठ्यक्रम का बोझ ही

इसका कारण है? जैसा कि समूह-वार्ता में भी विद्यार्थियों ने स्वीकार किया और कहा कि सीबीएसई बोर्ड लगातार पाठ्यक्रम कम करता जा रहा है। विद्यार्थियों ने उदाहरण भी दिया और बताया कि 'कलर ब्लाइंडनेस' की संकल्पना पिछले वर्ष पाठ्यक्रम में थी, पर इस वर्ष हटा दी गई है। यदि वास्तव में पाठ्यक्रम का बड़ा होना ही कारण है तो नर्सरी कक्षा के बच्चों की ट्यूशन क्यों लगयी जाती है। केस स्टडी 3 की छात्रा की माँ खुद सरकारी प्राथमिक स्कूल की शिक्षिका है परन्तु उसकी खुद की शिक्षा हिंदी माध्यम में होने की वजह से वह अपनी बच्ची का होम वर्क खुद नहीं करा सकती। यह विचारणीय बिंदु है कि जब एक एम.ए. बी.एड. शिक्षिका प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ने वाली बच्ची का होम वर्क नहीं करा सकती, तो ऐसी स्थिति में उन बच्चों की स्थिति क्या होगी, जिनके माता-पिता अल्प-शिक्षित हैं अथवा पढ़े-लिखे नहीं हैं। अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ने वाला विद्यार्थी नर्सरी का हो या बारहवीं का, हर बच्चा कहीं-ना-कहीं ट्यूशन पर आश्रित तो जरूर है। इस प्रकार प्रतिदिन तीन से चार घण्टे का समय ट्यूशन पर ही बीत जाता है।

अनुसंधान के दौरान सिर्फ प्रतिष्ठित कहलाने वाले स्कूलों के विद्यार्थियों को छोड़ दें, तो शेष सभी ने स्वीकार किया कि स्कूली शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने की वजह से स्कूल में विषय को समझने में दिक्कत आती है और इसी वजह से वे ट्यूशन की तरफ भागते हैं। चाय बेच कर अपने बच्चों को पढ़ाने वाले सज्जन ने बताया, "स्कूल की दो बजे छुटी के पश्चात् तीन बजे वे अपने बच्चों को ट्यूशन के लिए छोड़ कर आते हैं। पहले इंग्लिश वाले शिक्षक के पास जाते हैं, फिर मैथ वाले शिक्षक के पास। इंग्लिश वाले शिक्षक उनके बच्चों को इंग्लिश के

अतिरिक्त सोशल साइंस (सामाजिक विज्ञान) जैसे विषय भी पढ़ाते हैं। मैथ (गणित) वाले शिक्षक मैथ के अतिरिक्त साइंस (विज्ञान) भी देखते हैं।” इस तरह 3 बजे के गए बच्चे साढ़े छह-सात बजे तक घर आते हैं। जब बच्चों के खेल-कूद के सन्दर्भ में जानकारी हासिल करनी चाही तो उसने जबाब दिया, “मेरे बच्चे कहीं-भी इधर-उधर नहीं जाते। स्कूल से घर और घर आकर सीधे ट्यूशन ही जाते हैं। वापस घर आकर ट्यूशन और स्कूल दोनों का काम करते हैं।” जब शोधकर्ता लेखक ने जानना चाहा कि इतना ट्यूशन लगाने की जरूरत ही क्यों पड़ी। तो उनका कहना था, “हम तो पढ़े-लिखे हैं नहीं, हमें तो उनकी पढ़ाई समझ में नहीं आती। तो क्या करें, अब स्कूल वाले कहते हैं मेहनत कराओ, तो ट्यूशन ही भेजेगें ” आगे उसने बताया, “मेरे बच्चे अच्छे-खासे हरियाणा बोर्ड (हिंदी माध्यम स्कूल) में पढ़ते थे। पाँचवी तक कभी ट्यूशन नहीं लगवाया। जब बच्चों को सीबीएसई (अंग्रेजी माध्यम) स्कूल में डालने की बात आई, तो यहाँ डालने से एक साल पहले ही इंग्लिश मजबूत करने के लिए इंग्लिश की ट्यूशन लगवाई। तब से अब तक ट्यूशन के सहारे ही चल रहे हैं।” “बच्चे कहते हैं स्कूल में अंग्रेजी में सारी पढ़ाई होती है पर आज के दिन में अंग्रेजी है क्या चीज, जो दो क्लास पढ़ जाए वो अंग्रेजी बोलना सीख जाता है।” केस स्टडी-1 का रमेश तथा केस स्टडी-2 की आरूणी भी मानती है कि माध्यम की वजह से ही वे सभी ट्यूशन की तरफ भागते हैं। रमेश का कहना है, “टीचर आते हैं, अंग्रेजी में क्या कुछ बोल कर चले जाते हैं कुछ पता ही नहीं चलता है। कुछ पूछो तो जवाब मिला है- *स्पीक इन इंग्लिश*’..... पूछो भी और सबके सामने मज़ाक भी बनो”... ट्यूशन में यह समस्या नहीं होती। हम खुल कर पूछ सकते हैं। समूह वार्ता-1 के विद्यार्थियों से जब अनुसंधानकर्ता ने “*ट्यूशन क्यों पढ़ते हो?*” का सवाल किया, तो उन्होंने कारण गिनवाने शुरू किये – (1) सर्कल (घेरा

) छोटा होता है, (2) क्लास में बहुत बच्चे होते हैं, सब बोलते हैं तो शोर होता है, आदि आदि... पर जो अंतिम बात कही, वह अधिक महत्वपूर्ण थी, वह यह कि "क्लास में टीचर इंग्लिश में ही परिभाषा को लिखवाता है, जैसे- 'Reflection is defined as Bouncing back of light from a reflective surface.' हम यदि उन्हें इसे बताने और समझाने को कहें तो इसी बात को दो-तीन अलग-अलग तरीके से बता देंगे पर कोई देशी-सा उदाहरण नहीं दे सकता। इस प्रकार हम क्लास में कही बात को रिलेट नहीं कर पाते हैं। पर जब ट्यूशन पर वही बात हमारी देशी भाषा-बोली में आस-पास के उदाहरण लेकर बताई जाती है, तो समझना आस हो जाता है। ट्यूशन पर हम खुल कर 'डिसकस' कर सकते हैं। क्लास में नहीं।" कारण स्पष्ट है, स्कूल में भाषा की जो बंदिश होती है, वह ट्यूशन में नहीं होती।

लेखा / अकाउंट विषय के शिक्षक संजीव, जो स्कूल में पढ़ाने के बाद होम ट्यूशन तथा ग्रुप ट्यूशन भी लेते हैं, उनका कहना है, "प्रतिष्ठित माने जाने वाले स्कूलों में बच्चे पढ़ने कम, मस्ती करने ज्यादा जाते हैं। आजकल हिसाब कुछ इस प्रकार का बन गया है कि बच्चे ट्यूशन में ही गंभीर/सिंसियर होकर पढ़ते हैं।"

जबकि भौतिक विज्ञान / फिजिक्स विषय के शिक्षक पवन के अनुसार, "हिंदी माध्यम से अंग्रेजी माध्यम में आने वाले विद्यार्थियों को मुख्य समस्या शब्दावली / टर्मिनॉलॉजी की आती है। इसी प्रकार इंग्लिश मीडियम वाले विद्यार्थी भी हिन्दी के टर्म नहीं जानते, परंतु समझते सब हिन्दी में ही हैं। समझाने के लिए इंग्लिश की शब्दावली/टर्मिनॉलॉजी का ही प्रयोग होता है। ये शब्द/टर्म ही हिन्दी अंग्रेजी का गैप बनाए

रखती है। मेरे पास जो हिंदी माध्यम के बच्चे भी ग्रुप ट्यूशन पढ़ने के लिए आते हैं, उनके साथ समस्या यह होती है कि वे इंग्लिश के शब्द/टर्म ही नहीं समझ पाते। वैसे हिन्दी वालों की समझ, इंग्लिश वालों से ज्यादा होती है।”

आगे, उन्होंने हिंदी तथा अंग्रेजी माध्यम दोनों ही की समस्या का समाधान बताते हुए कहा, “हिंदी माध्यम के बच्चों को अंग्रेजी के शब्द/टर्म भी याद करवाता हूँ, फिर उन्हें सिखाते वक्त उन शब्दों/टर्म का स्थानीय/देशी (देहाती बोली) में जो अर्थ है, वह भी बताता हूँ।”

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा-2005 (National Curriculum Framework/NCF-2005) में पृष्ठ संख्या 97, 101, 109, 139 पर ट्यूशन की समस्या को उठाया गया है। इसमें माना गया है कि ट्यूशन के बोझ का कारण *पाठ्यक्रम एवं गृहकार्य* है। इस पूरे घटनाक्रम को देखने और विश्लेषणात्मक विवेचन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर ही पहुँचते हैं कि वास्तविक बोझ पाठ्यक्रम का नहीं है। **वास्तविक बोझ तो माध्यम और अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की संस्कृति का है।** राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 को लिखने वाले शिक्षाविद् ट्यूशन को लेकर इतने अधिक संवेदनशील हैं कि ट्यूशन पर भेजने वाले माँ-बाप के खिलाफ सख्त कार्यवाही करने की भी हिदायत देते हैं। शोधकर्ता लेखक जानना चाहता है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 के शिक्षाविद् उस पिता को क्या सजा देंगे, जो जान ही नहीं पा रहा कि उसका बच्चा कक्षा में विषय क्यों नहीं समझ पा रहा। चाय बेचने वाले भैया कहते हैं, “मैं सीबीएसई की पढ़ाई समझ नहीं पा रहा हूँ। स्कूल से बच्चों की शिकायत आती है। हम क्या कर सकते हैं। ट्यूशन ही तो लगा सकते हैं? स्कूल वाला

कहता है कि ट्यूशन वाला नहीं पढ़ाता और ट्यूशन वाला कहता है कि स्कूल वाला नहीं पढ़ाता। हम किसकी बात सही मानें?" राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 के शिक्षाविद् उस पिता को क्या सजा देना चाहेंगे, जिसने उच्च समाज के बराबर लाने की अभिलाषा में अपनी आय का आधा हिस्सा ही बच्चों की पढ़ाई पर लगा दिया। उस माँ को क्या सजा मिलनी चाहिए, जिसने खुद शिक्षिका होकर भी, अपनी बच्ची को उच्च समाज के मूल्यों के अनुरूप अंग्रेजी बोल-चाल सिखाने के लिए अलग-से एक शिक्षिका लगावा रखी है। अरे! उन बच्चों को भी तो कोई सजा होनी चाहिए, जो भौतिकशास्त्र की सरल संकल्पना को अपनी बोली भाषा में समझने हेतु ट्यूशन पर जाते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 के शिक्षाविदों का यह कहना कि बच्चे ट्यूशन पर ना जाकर स्वतन्त्र होकर किताबें पढ़ें, ठीक उसी प्रकार की नसीहत है, जो कभी फ्रांस की रानी ने फ्रांस की जनता को दी थी और कहा था - "रोटी नहीं खा सकते तो क्या हुआ केक खाओ"।

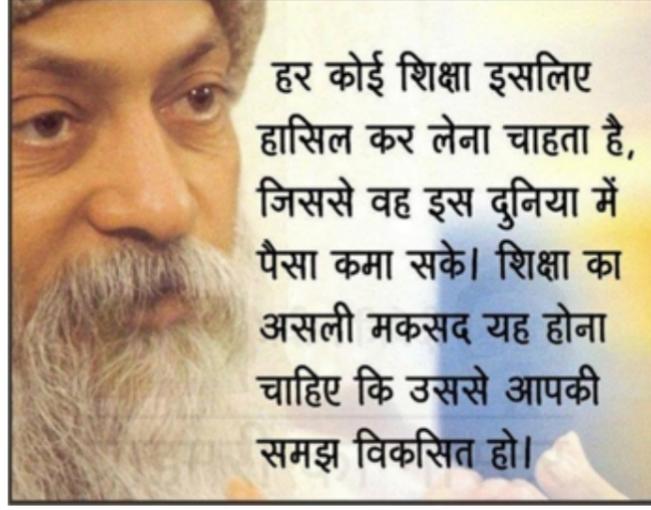
अतः शोधकर्ता लेखक राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 में वर्णित ट्यूशन के कारण को नकारता है और इस बात को स्थापित करता है कि ट्यूशन का मूल कारण स्कूलों में परिवेश के साँस्कृतिक भाषा का प्रयोग ना करना ही है। स्कूल में प्रयोग की जाने वाली मानक भाषा चाहे वो हिंदी हो या अंग्रेजी, समझ में बाधा उत्पन्न करती है। विद्यार्थी, स्कूल में होने वाली शिक्षण अधिगम क्रिया को अपने साँस्कृतिक संदर्भों के साथ समायोजित नहीं कर पाता और इस अवस्था में उसे ऐसे सहारे की जरूरत पड़ती है, जो इस 'गैप को फिल'

कर सके अर्थात् इस अंतर को भर सके। इस अंतर को भरने के लिए 'ट्यूशन' रूपी संस्था का उदय हुआ है। अतः स्कूल की भाषा तथा साँस्कृतिक परिवेश की भाषा-बोली के बीच का अंतर/गैप, जितना अधिक होगा, उतना ही ट्यूशन के प्रति रुझान अधिक होगा।

चूँकि ट्यूशन केन्द्रों की भूमिका भी उन्हीं मूल्यों और मान्यताओं के अनुरूप अपने ग्राहक, अर्थात् विद्यार्थी को सेवा प्रदान करने की होती है, जिन मूल्यों के अनुरूप उन्हें स्कूल में पढ़ाया जाता है। बस, उनका काम उस को थोड़ा और अधिक ग्राह्य अर्थात् आसान बनाना भर होता है। जैसा केस स्टडी-3 की विद्यार्थी की ट्यूशन शिक्षिका का काम, उसके इंग्लिश में मिले होम वर्क को पूरा करना है। साथ ही साथ, इंग्लिश में वार्तालाप सिखाना भी है। काम अभी-भी पूरा नहीं हुआ है, ट्यूशन शिक्षिका का एक काम स्कूल के अंग्रेजी माध्यम वातावरण एवं एलीट वर्ग के अनुरूप आचरण सिखाना भी है।

अब यह सवाल उठता है कि 6 घण्टे का स्कूल, 2 घण्टे का बस का सफर, तीन से चार घण्टे की ट्यूशन और इन सब के साथ स्कूल में चलने वाली एक से दो घण्टे की अतिरिक्त कक्षा। इस समय-सारणी को देखकर शोधकर्ता की, जोड़ करने की गणितीय योग्यता गश खाकर गिर गई है। बस इतना भर कह सकता है कि 10 से 16 घण्टे तक की औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की गुलामी के बाद, अनौपचारिक साँस्कृतिक वातावरण, आप लोगों को परी-कथा जैसा नहीं लगता? ऐसा लगता

है कि राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 में इस परी-लोक के अनुरूप ही पाठ्यचर्या तैयार करने की बात कही गयी है।



अध्याय-21

अंग्रेजी माध्यम और बच्चों का साँस्कृतिक, सामाजिक परिवेश

विचारणीय मुद्दा –

सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश से बाहर की भाषा- अंग्रेजी को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाने वाले स्कूल, क्या स्कूली बच्चों के दैनिक जीवन की गतिविधियों, स्कूल से बाहर के साँस्कृतिक अनुभवों को स्कूली शिक्षा में स्थान दे पाते हैं? तथा क्या वे काम और शिक्षा में सम्बन्ध जोड़ पाते हैं?

जैसा कि इससे पूर्व के अध्याय में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बच्चे के साँस्कृतिक परिवेश से इतर की भाषा (अंग्रेजी) में चलने वाली औपचारिक शिक्षा व्यवस्था बच्चे के जीवन पर पूरी तरह से हावी है। यह बच्चों को इस कृत्रिम परिवेश से बाहर निकलने का मौका ही नहीं देती। बच्चों से अब उम्मीद की जाती है कि सुबह उठते ही स्कूल के लिए तैयार हो, बस स्टॉप पर पहुँच कर बस का इंतज़ार करो, फिर बस में भेड़-बकरियों की तरह ठूस-ठूस कर स्कूल पहुँचो, स्कूल में छह घण्टे तक स्कूली पाठ्यचर्चाओं को झेलो, यदि आप उच्च

कक्षाओं में हो तो, या आपके ऊपर कमजोर होने का लेबल लगा हुआ है, या आपके शिक्षक का कोर्स माध्यम की वजह से निर्धारित गति से पूरा नहीं हो रहा है, या आपके स्कूल के प्रबंधक को लगता है कि अतिरिक्त कक्षा भी लगायी जानी चाहिए, चाहे जरूरत हो अथवा नहीं, तो आप अतिरिक्त कक्षा को भी झेलने के लिए तैयार ही रहें।

उसके बाद, वापस बस की उबाऊ यात्रा के बाद घर पहुँचो। घर पहुँच कर थोड़ा तरो-ताज़ा हुए नहीं कि पुनः किताबें उठाकर ट्यूशन के लिए भागो। इस मशीनी दिनचर्या के बाद भी यदि 'स्कूल से बाहर के साँस्कृतिक वातावरण' के लिए बच्चों का समय बच पाता हो, तो यह किसी अजूबे से कम नहीं होगा। साथ ही, उनकी दैनिक स्कूली गतिविधियों में स्कूल से बाहर की क्रियाएँ शामिल होती होंगी, यह सोचना तो पूर्णतः फिजूल की ही बात होगी। पर इस अनुसंधान का यह उद्देश्य भी है इसलिए आइए थोड़ा-सा विचार इस बारे में कर ही लेते हैं। स्कूल से बाहर के साँस्कृतिक वातावरण के सन्दर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 में कहा गया है कि,

“स्थानीय परिवेश केवल भौतिक-प्राकृतिक नहीं होता, बल्कि सामाजिक- साँस्कृतिक भी होता है। हर बच्चे के घर में उसकी अपनी आवाज होती है। स्कूल के लिए आवश्यक है कि कक्षा में भी वो आवाज सुनी जाए। समुदायों का साँस्कृतिक स्रोत भी प्रचुर होता है। लोककथाएँ, लोकगीत, चुटकले, कलाएँ आदि के माध्यम से स्कूल की भाषा और ज्ञान को हम समृद्ध बना सकते हैं। ”

इस मुद्दे पर बात करने के लिए जैसे ही अनुसंधानकर्ता ने अनुसंधान के दौरान अपनी बात रखी, तो दो टूक से जबाब आया। प्राचार्य सी/C जो स्वीकार करती है कि उनके पास आने वाले बच्चे या तो ग्रामीण हैं या शहरी निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों से हैं, अर्थात् ऐसे परिवारों से आते हैं, जिनमें अब भी रूढ़ मानी जाने वाली जन-बोलियों का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् ऐसे परिवार जिनके परिवेश में जन-बोलियों को बोलने का चलन है। जब अनुसंधानकर्ता ने स्कूली परिसर में जन-बोलियों के प्रयोग की बात उठाई, तो उन्होंने वैसा-ही दो टूक जबाब दिया -

“मैं अपने स्कूल में देहाती बोलियों में बोलने की बिलकुल भी इजाजत नहीं देती हूँ।”

एक अभिभावक (अजित) ने इस संदर्भ में बताया -

“वे (स्कूल) हमारी भाषाओं को बैड लैंग्वेज कहते हैं। यदि स्कूल में बच्चा इसका प्रयोग करे तो हमें अभिभावक-शिक्षक-बैठक (पीटीएम/PTM) में बुला कर फटकारा जाता है और कहा जाता है कि वह ‘रूढ़ भाषाओं’ से स्कूल परिसर को गन्दा करता है। उसे सभ्य भाषा सीखाएँ।”

प्राचार्य एफ/F, जिनका स्कूल ग्रामीण क्षेत्र में है, उनका कहना है -

“स्कूल में हम ग्रामीण क्षेत्र से क्वालीफाईड लोगों को भी टीचिंग स्टाफ़ के लिए नहीं लेते हैं, ना ही स्कूली प्रक्रिया के बीच में (पाँचवी, छठी कक्षा में) किसी बच्चे का दाखिला ही लेते हैं। क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में स्कूली परिसर की भाषा प्रभावित होती है।”

क्या इसके बाद भी जन-संस्कृतियों के स्कूली परिसर में प्रवेश की गुंजाइश शेष बचती है? जो स्कूली परिसर में लोक-कथाओं, लोकगीतों, चुटकुलों आदि को स्कूली परिसर में आने की सम्भावना बना सके। जैसे प्राचार्य सी/C का स्पष्ट मानना है, “आदिवासियों में तो दिमाग ही नहीं होता।” प्रसिद्ध वकील और कम्युनिस्ट विचारधारा की सोशलिस्ट वर्कर पार्टी के नेता राजेश त्यागी जी का तो स्पष्ट मानना है कि आदिवासियों एवं देहातियों की बोली में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को पढ़ाया ही नहीं जा सकता है। यदि अब भी कोई सम्भावना साँस्कृतिक ज्ञान की स्कूली परिसर में प्रवेश करने की शेष बचती है तो वह महज गणतन्त्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, हिंदी दिवस आदि अवसरों पर होने वाले नुमाइशी साँस्कृतिक कार्यक्रम भर ही हैं। जैसा कि अंग्रेजी माध्यम स्कूल की एक प्राचार्या ने कहा भी, “इंडिपेंडेंस डे, रिपब्लिक डे और हिन्दी दिवस को हम शुद्ध हिन्दी में बोलने की छूट देते हैं।”

जैसा कि अपनी पुत्री की मातृभाषा अंग्रेजी बताने वाले अभिभावक के बताया, “हमारी बच्ची जब ताया-ताई को देहाती बोलियों में बात करते हुए सुनती है, तो उनको ‘बैड लेंग्वेज’ के प्रयोग को खतम करने की नसीहतें भी देती है।” एक अन्य अभिभावक अजित ने बताया कि उनके परिवार में तय हुआ है कि अब वे घर में अपनी भाषा, अर्थात् ‘बैड लेंग्वेज’ का प्रयोग नहीं करेंगे।”

राष्ट्रीय पाठ्यर्चा रूपरेखा (NCF)-2005 के अंतर्गत उत्पादक कार्यों को स्कूली व्यवस्था का भाग बनाने की विशेष रूप से वकालत की गई है। इसमें कहा गया है -

“उत्पादक कार्य, प्रभावी शिक्षण का माध्यम बन सकते हैं - (क) कक्षा के ज्ञान को बच्चों के जीवन अनुभव से जोड़ा जाये; (ख) हाशिये के समाजों के बच्चों को, जिन्हें काम से जुड़े कौशल का ज्ञान होता है, अपने संपन्न साथियों का मान-सम्मान पाने का अवसर मिल सकेगा और (ग) संचित मानवीय अनुभव, ज्ञान और सिद्धांतों को इस प्रकार संदर्भित किया जा सकेगा।”

अनुसंधानकर्ता को वर्तमान औपचारिक शिक्षा की उबाऊ व्यवस्था में, कहीं-भी उत्पादक कार्यों के लिए कोई स्थान नज़र नहीं आ रहा है, न ही किसी प्रकार का सम्मान ही। सर्वप्रथम, रमेश की माँ ने अनुसंधानकर्ता को बताया, “कोई भी बालक भैंस के कामों में रुचि नहीं लेता, हर कोई इन कामों को एक-दूसरे पर टालने का प्रयास करता है।”

पीटीएम अर्थात् अभिभावक शिक्षक बैठक के दौरान एक शिक्षक ने ग्रामीण अभिभावक से व्यंगात्मक लहजे में कहा, “आप लोग अपने बच्चों से खेत में ही काम करवाओगे। न्यार (चारा) ही कटवाओगे। अरे! इस तरह-से अंग्रेजी-माध्यम की पढ़ाई नहीं होती। आपके बच्चे

इंग्लिश में कमजोर हैं, इस कारण दूसरे विषय भी नहीं पढ़ पा रहे हैं। खेत और न्यार (चारे) का काम छोड़वा कर ट्यूशन की व्यवस्था करो। इस तरह अंग्रेजी माध्यम नहीं चलता है।”

ऊपर के दोनों वक्तव्यों से क्या आशय निकाला जाएगा? क्या हम कह सकते हैं कि स्कूल ने उत्पादक कार्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया है? क्या हम उम्मीद कर सकते हैं कि दस से बारह घण्टे की उबाऊ स्कूली व्यवस्था के बाद बच्चे उत्पादक कार्यों में रूचि लेंगे? क्या चाय बेचने वाले का बच्चा, अपने पिता के चाय बेचने के काम में सहयोग दे पाता होगा? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था 85% के सीमांत वर्ग को अपने अंदर समाहित कर पाती है? क्या उत्पादक कार्य करने वाले परिवारों और उन परिवारों के बच्चों को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सम्मान मिल पाया है और क्या मिल जाएगा?

जैसा कि भिडूकी गाँव के ग्रामीणों ने बताया, “प्राइवेट सीबीएसई स्कूल जाने वाले बच्चे परिवार के किसी-भी काम में सहयोग नहीं कर पाते। ना तो खेती-किसानी में, ना पशुओं की देखभाल में।”

क्या इसके बाद भी हम कह सकते हैं कि औपचारिक शिक्षा में उत्पादक कार्यों का कहीं-भी कोई स्थान शेष है? क्या इसके बाद भी अंग्रेजी माध्यम स्कूली संस्कृति में कहीं कोई स्थान सामुदायिक संस्कृति के लिए बच पाता है? शायद अभी इसकी उम्मीद करना, 'अति आशावादिता' ही होगी।

अध्याय-22

सीखने का एक-समान अवसर

विचारणीय मुद्दा –

क्या सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश के बाहर की भाषा (अंग्रेजी) का स्कूली शिक्षा में माध्यम के रूप में प्रयोग, सभी विद्यार्थियों को सीखने का एक-समान अवसर प्रदान करता है?

अवसर की समानता परिस्थितियों की समानता पर निर्भर करती है। परंतु विविध संस्कृति वाले समाज में यदि हम एक ही मानकीकृत भाषा (चाहे वह अंग्रेजी हो या कोई अन्य) को सम्पूर्ण समाज पर थोप दें, तो यह कुछ लोगों की तुलनात्मक स्थिति तो बेहतर करेगी, पर बहुसंख्यकों की तुलनात्मक स्थिति तो हीनतर ही होगी। अवसर का पलड़ा हमेशा समाज के उस वर्ग के पक्ष में झुका रहेगा, जिसकी

भाषा को शेष समाज पर थोपा गया है। शेष समाज हाशिए पर खिसकता जाएगा और धीरे-धीरे साँस्कृतिक-हीनता का शिकार भी बनता जायेगा। यही हुआ अंग्रेजी, तथाकथित शुद्ध कहलाने वाली संस्कृतनिष्ठ हिंदी और शहरी हिंदी के वर्चस्व के फलस्वरूप। यह स्थिति, जहाँ समाज के छोटे-से वर्ग को साँस्कृतिक वर्चस्व प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर, समाज की 'साँस्कृतिक पूँजी' को चंद लोगो के अधिकार में रखती है। इस प्रकार साँस्कृतिक पूँजी पैदा कर आर्थिक पूँजी के संरक्षण काम करती है।

जैसा कि 'समझ का माध्यम' नामक पुस्तक में भी कहा है, "हमारी शिक्षा पद्धति, कुछ लोगों की भाषा को स्वीकार करती है और कुछ लोगों की भाषा को नकारती है।" यह नकार शिक्षा पाने के उपकरण या ज्ञान प्राप्त करने के उपकरण भर का नकार नहीं है। अपितु यह तो ज्ञान का ही नकार है। आगे सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश की भाषा-बोली के महत्त्व को रेखांकित करते हुए 'समझ का माध्यम' कहता है "नयी मशीन बनाना, नए शोध करना, अपने और समाज के बारे में नए ढंग से सोचना, तब ही सम्भव होगा, जब हम अपनी भाषाओं में सोच पाएँगे।"

अनुसंधान के दौरान जो साक्ष्य मिले, वे सभी स्पष्ट करते हैं कि अंग्रेजी माध्यम स्कूली व्यवस्था, जहाँ शहरी क्षेत्र के उच्च-मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों की तुलनात्मक स्थिति को बेहतर बनाती है, वहीं निम्न-मध्यम वर्गीय समाज से आने वाले तथा ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों की तुलनात्मक स्थिति को बद से बदतर बनाती है।

आजकल 'फ्रिज' इलाकों में तेजी से इंटरनेशनल कहलाने वाले स्कूल खुल रहे हैं। इन स्कूलों में ग्रामीण तथा शहरी, दोनों क्षेत्रों से विद्यार्थी पढ़ने के लिए आते हैं। पर क्या ये स्कूल सबको सीखने का समान अवसर प्रदान करते हैं। आइए, इस पर एक शिक्षक की प्रतिक्रिया जानते हैं।

हरियाणा राज्य के पलवल शहर में स्थित एक इंटरनेशनल स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक महावीर के अनुसार, "ग्रामीण क्षेत्र से आने वाले विद्यार्थियों में 10 में से एक-दो विद्यार्थी ही भाषा की बाधा को पार कर पाते हैं। वहीं शहरी निम्न एवं सामान्य मध्यम वर्गीय इलाकों से आने वाले विद्यार्थियों में यह अनुपात 10 में से 4-5 तक का होता है। पर शहरी इलाकों के उच्च-मध्यम वर्गीय पढ़े-लिखे परिवारों से आने वाले अधिकतर विद्यार्थी भाषा की बाधा को तो कम से कम पार कर ही जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों की समस्या सिर्फ अंग्रेजी की ही नहीं होती, अपितु शहरी हिंदी भी उनके लिए समस्या होती है। वे हिंदी अंग्रेजी को मिला कर बोले जाने वाली हिंग्लिश को भी नहीं समझ पाते। हमारी समस्या यह होती है कि हम पर प्रबंधकों का पूरा दबाव होता है कि हम सिर्फ अंग्रेजी का ही प्रयोग करें। यदि फिर भी हिंदी बोलने की जरूरत पड़ती भी है तो सिर्फ मानक शहरी हिंदी (हिंग्लिश) का ही इस्तेमाल करें। मैं ग्रामीण पृष्ठभूमि का शहरी व्यक्ति हूँ तथा ग्रामीण बोली को अच्छी तरह जानता भी हूँ। पर क्या करूँ, मजबूर हूँ, बच्चों को कहना ही पड़ता है, 'रूढ़ बोली-भाषाओं-बैड़ बोली-भाषाओं' का इस्तेमाल मत करो।"

अनुसंधानकर्ता ने ग्रामीण इलाके के एक अंग्रेजी माध्यम निजी स्कूल के बच्चे के अवलोकन के दौरान पाया कि बच्चे 'गुड मॉर्निंग' के अलावा एक शब्द भी आगे बोल नहीं बोल पाए क्योंकि उन्हें आदेश दिया गया था कि बाहर से आये आगन्तुक के समक्ष अंग्रेजी में ही बोलें। बच्चे अंग्रेजी में विचार न गढ़ पाने के कारण चुप ही रहते हैं।

'बच्चे की भाषा और अध्यापक' नामक पुस्तक में कृष्ण कुमार लिखते हैं, "बच्चे की भाषा का सम्बन्ध उन अनुभवों से है, जिन्हें वे अपने हाथों और शरीर से स्वयं करते हैं और उन वस्तुओं से भी, जिनके संपर्क में वे आते हैं। बचपन में शब्द और क्रिया-कलाप साथ-साथ चलते हैं। क्रियाकलाप और अनुभवों को आत्मसात करने और व्यक्त करने के लिए शब्दों की जरूरत होती है। कोई अनुभव जब पूरा हो जाता है, तब वह शब्द के रूप में उपलब्ध होता है।"

ग्रामीण क्षेत्र के बच्चे के अनुभव उसके ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित होते हैं और वह उसे अपनी ग्रामीण बोली में बड़ी-ही सहजता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। स्कूल के बाहर वही बच्चा प्रश्नों की झड़ी लगा देता है, परंतु स्कूल में चुप्पी छाई रहती है। अध्यापक के ना रहने पर शोर और अध्यापक के आते ही खामोशी ! क्या आप मान सकते हैं कि इस वातावरण में हर वर्ग और हर क्षेत्र के विद्यार्थी के लिए सीखने के एक-समान अवसर उपलब्ध हैं? एक विद्यार्थी, जो हफ्ते में सिर्फ पाँच दिन ही स्कूल जाता है और दूसरा जो रविवार की छुट्टी वाले दिन भी 'एक्स्ट्रा-क्लास' लेता है। क्या दोनों के अवसर एक-समान हैं? एक, जिसके माता-पिता उसे पाँच

सितारा होटलों में लेकर जाते हैं और वह वहाँ अपने माता-पिता और उनके मित्रों से ही नहीं, अपितु इस पाँच सितारा होटल के बैरे तक से अंग्रेजी में बात करता है। इसके विपरीत, दूसरा बच्चा, जिसके माता-पिता तो दूर, आस-पड़ोस का कोई व्यक्ति भी अंग्रेजी का ज्ञान नहीं रखता। इस बात की पुष्टि प्राचार्य सी/C से मिली जानकारी के आधार पर भी की जा सकती है। एक बच्चा, जिसके स्कूल में शिक्षक के ऊपर पूरा दबाव होता है कि वह अंग्रेजी में ही बोले और इस वजह से वह किताबों में लिखी जानकारी भर बात पाता है और विद्यार्थी भी उसी किताबी भाषा को ही रटते हैं।

शिक्षक को जिस दिन बाहर का रास्ता दिखाना होता है। उस दिन उसके द्वारा स्कूल परिसर में प्रयोग की गई जन-सामान्य-हिंदी एक महत्वपूर्ण आधार बनती है। अतः शिक्षक वर्ग चाह कर भी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग नहीं करता है। बस घिसीपिटी अंग्रेजी का प्रयोग करता है। इस बात की आरूणी, रमेश और रमेश की बहन से मिली जानकारी के आधार पर तथा समूह वार्ता-1 के विद्यार्थियों के वक्तव्यों के आधार पर पुष्टि की जा सकती है। वहीं एक दूसरा अति-विशिष्ट माना जाने वाला स्कूल, जो यह दिखावा करता है कि उसके परिसर में सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी भाषा ही प्रयोग की जाती है, वहाँ पर भी 11वीं 12वीं की बोर्ड की कक्षाओं में शहरी हिंदी अथवा हिंग्लिश के प्रयोग की छूट होती है। इस बात की पुष्टि का आधार प्राचार्य ए/A का वक्तव्य तथा समूह वार्ता-2 के विद्यार्थी हैं। समूह वार्ता-2 के विद्यार्थियों में ए/A स्कूल के विद्यार्थी भी शामिल हैं, जो अपने ही स्कूल के प्राचार्य की बातों को नकार रहे हैं। क्या हम

कह सकते हैं कि अंग्रेजी के वर्चस्व वाली, अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था सभी वर्गों को सामान्य अवसर प्रदान करती है? या इस व्यवस्था में सिर्फ तथाकथित पढ़े-लिखे, उच्च माध्यम वर्ग परिवारों से आने वाले विद्यार्थी ही सफल हो रहे हैं। शेष चाय बेचने वाले सज्जन के समान संतोष करके रह जाते हैं। उनके खुद के शब्दों में, “माँ-बाप पैसे ही तो खर्च कर सकते हैं। यदि बच्चे अंग्रेजी में ना चल पाएँ तो माँ-बाप कुछ नहीं कर सकते।”

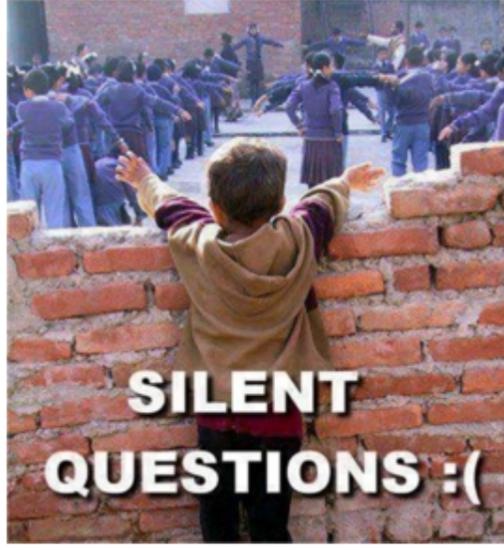
अंग्रेजी भाषा जितनी फरीदाबाद जैसे शहर में हिंदी बोलने वालों के साथ विभेद पैदा करती है। तथाकथित हिंदी, अर्थात् शहरी हिंदी, ग्रामीण इलाकों के लोगों के बीच विभेद का आधार है। गाँव भिड़की में खुले सीबीएसई स्कूल का सारा स्टाफ़ फरीदाबाद-दिल्ली जैसे मेट्रोपोलिटन शहर से आता है। प्राचार्य के अनुसार कारण यह नहीं है कि गाँव में लोग क्वालिफाइड नहीं हैं, पर वे जिस तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं वह भाषा, पब्लिक (प्राइवेट) स्कूल के मानदंडों के ही खिलाफ है। अतः गाँव भिड़की को भाषा की दोहरी मार झेलनी पड़ती है।

अनुसंधानकर्ता ने पुस्तक मेले के दौरान छत्तीसगढ़ राज्य के पाठ्य पुस्तक निगम के स्टॉल पर जो देखा वह कुछ इस प्रकार था। “मैंने वहाँ रखी पुस्तकों को उलटा-पलटा और पाया कि हिंदी की पुस्तक की भाषा कुछ भिन्न है। जब मैंने वहाँ बैठे अधिकारी से पूछा कि क्या ये छत्तीसगढ़ राज्य की बोली में लिखी गयी है। तो उनका जबाब था नहीं इसमें 25% ही छत्तीसगढ़ की बोली समाहित है। शेष तो

मानक हिंदी ही है।” उसके बाद अनुसंधानकर्ता ने विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान की पुस्तकें उठाईं। देख कर दंग रह गया कि ये पुस्तकें शुद्ध संस्कृतनिष्ठ मानक हिंदी में लिखी गयी हैं। जब 25% स्थानीय बोली समाहित करने वाली पुस्तक की भाषा इतनी भिन्न है तो शतप्रतिशत संस्कृतनिष्ठ मानक हिंदी में लिखी पुस्तकें वहाँ की स्थानीय बोली से कितनी भिन्न होगी। ऐसी हिंदी वाली पुस्तक जब छत्तीसगढ़ जैसे राज्य के आदिवासियों को पढ़ने को दी जाएगी तो क्या वह मौलिक चिंतन को प्रस्फुटित कर पाएगी? जब मानक हिंदी वाली भाषा में आदिवासियों को पढ़ाया जाएगा तो वे अपनी समझ को अपने परिवेश की वास्तविकता से कितना जोड़ पाएँगे।

किसी भी समाज की स्कूली व्यवस्था उसकी सामाजिक व्यवस्था का ही प्रतिबिम्ब होती है। राज्य व्यवस्था के केंद्र में अंग्रेजी होने तथा भाषा के आधार पर विभेदीकरण किये जाने से अंग्रेजी माध्यम स्कूलों को बल मिला है। इस विभेदीकरण के पहले पायदान पर यदि अंग्रेजी तो दूसरे पर मानक संस्कृतनिष्ठ हिंदी है और ये दोनों ही जमीनी बोलियों से पूर्ण भिन्न हैं।

संविधान की उद्घोषिका सबको समान अवसर की वकालत करती है। पर क्या आपको लगता है कि अंग्रेजी माध्यम के वर्चस्व वाली शिक्षा व्यवस्था सबको एक-समान अवसर उपलब्ध करा पा रही है? इस विषय पर इस देश का सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट मौन है।



अध्याय-23

अंग्रेजी माध्यम के कारण शिक्षा के प्रति बदलता दृष्टिकोण

विचारणीय मुद्दा –

सामाजिक साँस्कृतिक परिवेश से बाहर की भाषा (अंग्रेजी) को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाया जाने से विद्यार्थियों, उनके माता-पिता एवं जन-सामान्य का शिक्षा के प्रति कैसा दृष्टिकोण गढ़ता है?

अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी का वर्चस्व विद्यार्थियों एवं उनके माता-पिता का शिक्षा के प्रति कुंठित दृष्टिकोण गढ़ने का कार्य करता है और साथ ही परिवेश की साँस्कृतिक विरासत में अविश्वास पैदा कर अंग्रेजियत की संस्कृति के वर्चस्व को बढ़ावा देता है। औपचारिक और अनौपचारिक वातावरण में जो शैक्षिक सामंजस्य स्थापित होना चाहिए, उसकी सम्भावनाओं को ही पूर्णतः खतम कर

देता है। अनौपचारिक शिक्षा अर्थात् परिवेश से हासिल होने वाले व्याहारिक ज्ञान को शामिल किए बिना स्कूल कॉलेज की औपचारिक शिक्षा 'बिना नींव की इमारत' के समान ही होती है। जो तूफान छोड़िए, हलकी-सी आँधी तक का सामना भी नहीं कर सकती। 'आधारहीन ज्ञान' की यह इमारत व्यावहारिक जीवन के हलके झटके को भी बर्दाश्त नहीं कर पाएगी। जीवन की वास्तविकताओं का सामना होते ही औपचारिक शिक्षा का डिग्रीधारी ज्ञान भरभरा कर गिर जाएगा। यह बात आगे के विश्लेषण से स्पष्ट होगी।

विज्ञान वास्तविक घटनाओं के तर्कपूर्ण विवेचन पर बल देता है। अनुसंधान के दौरान पाया गया कि अंग्रेजी माध्यम स्कूली संस्कृति में विद्यार्थी विज्ञान जैसे विषय भी बिना किसी तर्कपूर्ण विवेचन के रटता जाता है। 1960 के दशक में आयी कोठारी आयोग की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य वैज्ञानिक समाज का निर्माण करना है। **अनुसंधान के दौरान पाया गया कि विद्यार्थी विज्ञान जैसे विषय को भी बिना व्यावहारिक अर्थ समझे ही रटते जाते हैं। अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में विज्ञान भी धार्मिक विश्वासों के सामान आँख बन्द कर मान लिया जाता है। विज्ञान को अफ्रीम से भी अधिक नशीला पदार्थ बना दिया गया है। एक ऐसा विषय जो पढ़ कर भी नहीं पढ़ा गया, एक ऐसा विषय जो 'बाय-पास' हो कर पढ़ा जा रहा है। इसी का परिणाम है कि एक एम.एस.सी. पास व्यक्ति भी बिल्ली के रास्ता काटते ही रुक जाता है।** ऐसा कैसे हो रहा है, यह आगे स्पष्ट करेंगे।

अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में माता-पिता की भूमिका ऐसे 'मूक दर्शक' की होती है जो स्कूल से मिलने वाले अंकों के आधार पर ही अपने बच्चों के कृत्य का मूल्यांकन करते हैं। अंग्रेजी माध्यम स्कूल की शिक्षा उसके समझ के बाहर ही होती है। बच्चों की नोटबुक में लाल निशान देख अनुमान लगा लिया जाता है कि उसका बच्चा कुछ गलती कर रहा है। कई बार तो बस उस लाल निशान को देख कर ही, बिना गलती का पता लगाए ही, बच्चों को पीटना तक शुरू कर दिया जाता है। ऐसा लेखक ने अपने शिक्षण अनुभव के दौरान भी पाया है।

प्रमेश आचार्य ने अपनी पुस्तक 'देशज शिक्षा : औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प' में 'पाक ब्रिटिश काल की देशज शिक्षा' लेख में पूर्व ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था का जो वर्णन किया था, उस शिक्षा व्यवस्था में मूल्यांकन प्रक्रिया में अभिभावक भी शामिल था। अभिभावक ही अंतिम मूल्यांकन-कर्ता होता था। बेशक उस व्यवस्था में लाख खामियाँ रही हो, पर अनुसंधानकर्ता उसकी दो विशेषताओं को यहाँ उजागर करना चाहेगा। पहली, उस समय के अभिभावक को ज्ञात था कि उसके बच्चे को उसका शिक्षक क्या पढ़ा रहा है। दूसरा, शिक्षण प्रक्रिया में अभिभावक तथा शिक्षक दोनों का तालमेल बना रहता था।

परंतु साँस्कृतिक परिवेश से बाहर की भाषा (अंग्रेजी) में शिक्षण व अधिगम का परिणाम यह हुआ है कि माता-पिता ही नहीं, आस-पड़ोस के जानकार लोगों तथा समझदार माने जाने वाले रिश्तेदारों तक की समझ से बाहर होता है कि बच्चा आखिर स्कूल में पढ़ क्या रहा है? कौन-सी शिक्षा ग्रहण कर रहा है?

शिक्षण के लिए गैर-परिवेशगत भाषा का प्रयोग शिक्षा को लेकर भ्रम पैदा करने का काम करता है। यह भ्रम उसे शिक्षा के वास्तविक लक्ष्यों से परे ले जाता है।

इस बात कि पुष्टि हम निम्नलिखित साक्ष्यों के आधार पर कर सकते हैं -

जब अनुसंधानकर्ता ने गाँव भिड़की में एक निकट के कसबे होडल में स्थित अंग्रेजी माध्यम स्कूल में जाने वाले बच्चे से यह जानना चाहा कि उसे अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने का क्या फायदा नज़र आता है तो उसका सीधा और सपाट जबाब था - “अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने से इंग्लिश बोलना आ जाता है।” अनुसंधानकर्ता ने जब आगे जानना चाहा कि इंग्लिश बोलने से क्या फायदा होता है तो उसका तपाक-से जबाब था, “आगे जॉब मिलने में आसानी होती है। इंग्लिश बोलने वाले ही अच्छी जॉब ले पाएँगे और आगे डी.यू. के कॉलेज में पढ़ पाएँगे।”

इसका तात्पर्य है बच्चे 'वर्तमान में ज्ञान-प्राप्ति' के लिए नहीं, अपितु 'भविष्य में नौकरी की चिंता के बोझ' के चलते अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की ओर जा रहे हैं! घर-गाँव की वर्तमान वास्तविकताओं से दूर स्थापित अंग्रेजी माध्यम स्कूल में! पर जब जानना चाहा कि वे विभिन्न विषयों को कितना समझ पाते हैं तो उनके जबाब नदारद थे।

गाँव भिड़की के एक ग्रामीण ने अपने गाँव के एक बच्चे से जानना चाहा कि पक्षी कैसे उड़ते हैं, खेत में चना गेहूँ से पहले बोना चाहिए या बाद में, आदि आदि। वह बच्चा उस ग्रामीण व्यक्ति के मित्र का था तथा वह गाँव से 20 किमी दूर पलवल शहर के किसी प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ने जाता था। ग्रामीण ने बताया उसका तपाक से जबाब आया, " ताऊ! मैं अंग्रेजी मीडियम स्कूल में पढ़ूँ हूँ मेरे ती जो बुझणा है अंग्रेजी में बुझा मेरी किताब से बुझा यो फालतू की बातें हमें ना पढ़ावी जावें। हम तो जो किताब में लिखा है बस वही याद करे हैं।" उस ग्रामीण ने हँसते-हँसते बताया। आगे वह जोड़ते हुए बोला, "भाई! यो है! अंग्रेजी मीडियम की पढ़ाई।" अतः स्पष्ट होता है अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में बच्चे व्यावहारिक ज्ञान को 'बाई-पास' करके / एक तरफ़ छोड़ कर, मात्र किताबी ज्ञान ही हासिल कर रहे हैं।

आरूणी को अंग्रेजी माध्यम शिक्षण समझ में नहीं आता, वह और उसके साथी सिर्फ रट कर ही काम चलाते हैं। उसे लगता है कि यदि उसे उसकी भाषा - हिंदी में विज्ञान आदि विषय पढ़ाए जाते तो पढ़ना कुछ आसान होता और आनन्दायक भी। ऐसी अवस्था में उसे गार्डों से रटने की नौबत ना आती। पर खुद से जब-जब हिन्दी माध्यम की पुस्तकों को पढ़ने का प्रयास करती है, उसे हिन्दी के टर्म ही

समझ नहीं आते हैं। आरूणी का कहना है कि उसे कक्षा टेस्ट में जो दस में से दस अंक मिले हैं, वे 'रट्टे' के ही हैं, वे अंक 'समझ' के नहीं हैं। उसने बिना समझे बस रट कर लिख दिया। बोर्ड में जब यही प्रश्न घुमा के पूछ लिया जाएगा तो वह खुद से नहीं लिख पाएगी। तब उसे अपनी विज्ञान की अध्यापिका से उस प्रश्न का तात्पर्य पूछना पड़ेगा। पर वह उसके बावजूद भी उसी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ना चाहती है क्योंकि अंग्रेजी माध्यम स्कूल सामाजिक प्रतिष्ठता से जुड़ा हुआ मुद्दा है। उसके अनुसार, "चाहे आगे अच्छी यूनिवर्सिटी में पढ़ना हो या जॉब करनी हो, हर जगह इंग्लिश ही चाहिए।" अपने भैया के कहने पर वह इंग्लिश 'मूवी' भी देखती है क्योंकि इससे भी 'लैंग्वेज इम्प्रूव' होती है। पर जब अपने पंजाबी दोस्तों के यहाँ जाती है तो वह वहाँ उनके दादा-दादी को पंजाबी भाषा में बोलते सुन कर भी अनसुना कर देती है। जहाँ उसकी ललक परिवेश के बाहर की बोली को अपनाने की है, वहीं परिवेश में आयी एक नयी भाषा को वह नज़र-अंदाज़ कर देती है। वह पंजाबी भाषा को समझने की चेष्टा तक नहीं करती क्योंकि पंजाबी ना तो यूनिवर्सिटी और ना ही जॉब में सहायक है।

अब अनुसंधानकर्ता आपसे पूछना चाहेगा कि यहाँ शिक्षा को लेकर किस प्रकार के मूल्य पैदा हो रहे हैं? समझ में नहीं आ रहा है तो बस रटते जाओ। पर भविष्य सुनिश्चित करना है तो डटो अंग्रेजियत के अखाड़े में। अपने आस-पड़ोस में देशी भाषाएँ बोलते लोगों की बातें मत सुनो, पर 'लैंग्वेज इम्प्रूव' करने के लिए देखो 'विदेशी इंग्लिश मूवी'। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा व्यवस्था बिना 'समझ' के ज्ञान को हासिल करने की कैसी व्यवस्था पैदा कर रही है? क्या इसे हम 'वैज्ञानिक चिंतन' पैदा करने वाली शिक्षा कह सकते हैं?

इसी प्रकार अन्य मामलों में भी देखिए -

साँस्कृतिक कार्यक्रम के लिए प्राचार्य कहती हैं, "हिंदी की मात्रा थोड़ी कम रखना।"

विद्यार्थियों ने स्कूल का शिक्षण सिद्धांत बताया, "रट कर याद करो, परीक्षा में लिखो, अगली क्लास में पहुँचो। "

प्राचार्य बी/B के शब्दों में, "हम बच्चों को हिंदी बोलने की अनुमति नहीं देते। हर समय, हर जगह, कक्षा में, कॉरिडोर में, सभी जगह अंग्रेजी बोलनी होती है, फिर भी अंग्रेजी एक बड़ी समस्या है। छात्र ना तो अच्छी अंग्रेजी जानते हैं और ना ही अच्छी हिंदी जानते हैं।"

(We doesn't allow student to speak Hindi. Every time, English in class, in corridor, everywhere but still English is a big problem. Students neither knows a good English nor no a good Hindi.)" यह 'ऑल टाइम इंग्लिश'

आखिर किस प्रकार के मूल्य पैदा कर रही है? किस प्रकार के दृष्टिकोणों को गढ़ रही है?

ऊपर जो घटनाक्रम दर्शाए गए हैं वे शिक्षा संबंधी निम्नलिखित दृष्टिकोण पैदा करते हैं -

उतना ही पढो जितना परीक्षा में पूछा जाये।

समाज में प्रचलित भ्रम के अनुसार 'अहर्ता' ही शिक्षा है और 'अंक' योग्यता का पैमाना।

इसलिए रटो, याद करके परीक्षा में लिखो, अंक लो, अगली क्लास में पहुँचो और पिछला भूल जाओ!

स्कूली पढाई अभिव्यक्त नहीं की जा सकती क्योंकि स्कूल में वो भाषा (अंग्रेजी) होती है जो स्कूल के बाहर सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश में होती ही नहीं।

अंकों की दौड़ में गहन, विचारशील, सृजनशील, खोजी प्रवृत्ति वाले विद्यार्थी, 'स्मार्ट' और तथाकथित ऊपर वर्णित लक्ष्य केन्द्रित विद्यार्थियों से काफी पीछे छूट जाते हैं।

यह भ्रम विद्यार्थी ही नहीं, माता-पिता की सोच का दायरा भी सीमित करता है। विद्यार्थी प्राकृतिक, साँस्कृतिक, सामाजिक सन्दर्भों को देखे बिना, सिर्फ उतना ही अध्ययन करता है, जितना 'अहर्ता' हासिल करने के लिए आवश्यक होता है। यह सोच, रटने की प्रकृति को ही बल देती है। शिक्षा को पाठ्यक्रम की सीमा में ही बाँध कर छोड़ देती है।

इस मुद्दे का निष्कर्ष एक अध्यापक द्वारा व्यक्त किए गए अनुभव के साथ निकाला जा सकता है। अध्यापक के शब्दों में -

"इंग्लिश ढंग से नहीं आती इसलिए विद्यार्थी बाकी के सब्जेक्ट जैसे साइंस, सोशल साइंस यहा तक की मैथ भी रटते हैं। इन विषयों में इंग्लिश का इस्तेमाल बिना सर पाँव के करते हैं। ना इन विषयों को समझ पाते हैं ना इंग्लिश को। इन विषयों को पढ़ने के

दौरान जो इंग्लिश के प्रति समझ बनती है, वो आगे जाकर उनकी इंग्लिश को भी प्रभावित करती है। इसलिए इंग्लिश भी बिना सर पाँव के लिखता और बोलता है। ग्रामर के नियम का तो इतनी बुरी तरह प्रयोग करते हैं कि बस पूछो मत! अंग्रेजी माध्यम एजुकेशन कल्चर, बाकी सभी विषयों की समझ के लिए ही नहीं, स्वयं इंग्लिश के लिए भी घातक है।”

अनुसंधानकर्ता ने अपने एकल अध्ययनों के दौरान पाया कि विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम कि वजह से ही रचनात्मक रूप से सीख नहीं पा रहे हैं तथा सिर्फ रटते हुए एक कक्षा से दूसरी कक्षा की तरफ गमन कर रहे हैं। यह बात विद्यार्थी, माता-पिता, शिक्षक तथा प्राचार्य से मिले साक्ष्यों के आधार पर की जा रही है कि विद्यार्थियों की शिक्षा, महज किताबी है और अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों के गूढ़ रहस्य को समझने के चक्कर में वह सामाजिक जीवन से भी कटता जा रहा है। स्वतंत्र रूप से पढ़ने की रुचि तो समाप्त ही समझो। वह अपनी उर्जा तथा जीवन अवधि का एक मूल्यवान समय सिर्फ अंग्रेजी भाषा को सीखने में गँवा देते हैं और उसके बाद भी वे पढ़ाए जाने वाले विषयों को समझ ही नहीं पाते।

.....

जैस कि अनुसंधानकर्ता ने दूसरे साँस्कृतिक परिवेश में जाकर भाषा सीखने वालों पर भी प्रयोग किया और पाया कि दूसरे साँस्कृतिक परिवेश में जा कर भाषा सीखना उतना कष्टकर नहीं है। दूसरे साँस्कृतिक परिवेश में भाषा सीखने में उतना ही वक्त लगता है, जितना कोई बच्चा एक-दो शब्द बोलने से पूरे-पूरे वाक्य बोलना प्रारम्भ करने में लेता है। ये इसलिए आसान होता है क्योंकि आप साँस्कृतिक सन्दर्भों के साथ उसे लेते हैं और जैसे-जैसे आप नई संस्कृति में रमते जाते हैं, वैसे-वैसे भाषा आपके अन्दर बसती जाती है।

**If Classroom is not a
place to sleep**



**Then home is also not
a place to study**

अंग्रेजी माध्यम के संदर्भ में शिक्षा व अधिगम की संकल्पनाएँ

विचारणीय मुद्दा –

सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश से बाहर की भाषा (अंग्रेजी) के औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में माध्यम के रूप में वर्चस्व बने रहने से, अर्थात् 'शिक्षा का अंग्रेजी माध्यमीकरण' करने के फलस्वरूप जन-सामान्य के बीच 'शिक्षा', 'शिक्षण' और 'अधिगम' को लेकर किस तरह की धारणाएँ पनपी हैं? क्या वे बाल-केन्द्रित शिक्षा शास्त्र के सिद्धांतों को बल प्रदान करती हैं? क्या वे औपनिवेशिक शिक्षाशास्त्र के सिद्धांतों की जड़ता को ही बनाये रखती हैं?

स्कूल के अन्दर का एक सिद्धांत है- 'रटो, याद करो, पास हो, अगली कक्षा में जाओ'

बच्चों की मानसिकता हो गई है- 'पास होने लायक पढ़ो, कक्षा पार करो, भूल जाओ'

ये बिंदु विद्यार्थियों की मानसिकता को व्यक्त करने के लिए अपने आप में पर्याप्त हैं।

जैसा कि प्राचार्य ई/E ने भी कहा कि 200 वर्षों की गुलामी हमारे खून में इस तरह समाई है कि इसने हमारी 'शिक्षा' सम्बन्धी संकल्पना को पूरी तरह से कुंद करके रख दिया है। अपने निहित स्वार्थों के चलते स्वतंत्रता के बाद भी व्यवस्था के कर्णधारों ने अंग्रेजों द्वारा स्थापित संकल्पना को ही न केवल पोषित किया, अपितु उसे और अधिक बढ़ाया। उसी का परिणाम है कि आज अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का फलता-फूलता बाज़ार है। अभिभावकों से जो वर्णात्मक जानकारी हासिल हुई उसमें भी इस बात का पुष्टि होती है कि शिक्षा बस कक्षा पास करने की क्रिया भर है। यदि हम देशज शिक्षा व्यवस्था के साथ वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तुलना करें तो पाते हैं कि अंग्रेजों से पूर्व हमारे देश में शिक्षा कभी भी 'अहर्ताओं' की गुलाम नहीं थी। वह जैसी भी थी व्यक्ति की अंतर्निहित-क्षमताओं को अंकुरित करने हेतु ही थी। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम शिक्षा को 'अहर्ता' से जोड़ा और 'अहर्ता' को रोजगार से। 'अहर्ताओं' को प्राप्त करने के लिए कुछ खास तरह की 'परीक्षाओं' का आयोजन किया और उन 'परीक्षाओं' को पास करने हेतु कुछ 'खास पाठ्यक्रमों' की रचना भी की और इन 'खास पाठ्यक्रमों' की भाषा 'अंग्रेजी' रखी। हालांकि वुड डिस्पेच के बाद की नीतियों में

औपचारिक प्राथमिक शिक्षा, क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध रही, परंतु उच्च शिक्षा की भाषा पूर्णतः अंग्रेजी ही रही। हम प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' के हवाले से कह सकते हैं कि उस समय का पाठ्यक्रम व्यक्ति की सोच को सीमित करने का ही साधन था न कि मानसिक क्रांति लाने का। इस प्रकार शिक्षा द्वारा व्यक्ति के आत्म विकास की अवधारणा काफ़ी पीछे छूट गई, जो बची रह गई वह किताबी पंडित तैयार करने की संकल्पना भर थी और यही संकल्पना धीरे-धीरे रच-बस भी गई। इसके साथ ही, काम और शिक्षा का जो सम्बन्ध था वह भी पूरी तरह-से समाप्त हो गया। व्यक्ति की शिक्षा का पैमाना उसके द्वारा अर्जित अहर्ताएं बन गईं और धीरे-धीरे 'अहर्ता' ही शिक्षा का पर्याय बन गई। जब साधन साध्य बन जाता है तो स्थिति और भी जटिल हो जाती है। यही हथ्र हमारे समाज में शिक्षा का हुआ। 'अहर्ता' ही शिक्षा है यह इतना जटिल मिथ है कि जिससे पार पाना सम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था ने इस तथ्य को और भी पुख्ता किया। विद्यार्थियों तथा अभिभावकों से मिली जानकारी के अनुसार क्रिश्चियन स्कूल हिंदी बोलने पर जुर्माना भी लगाते हैं। दूसरे स्कूल जुर्माना ना भी लगाते हों, पर अंग्रेजी बोल पाने की क्षमता रखने वाले विद्यार्थियों को ही इनाम और प्रोत्साहन देते हैं।

अंग्रेजी माध्यम शिक्षा व्यवस्था में दी जाने वाली शिक्षा, माता-पिता की समझ से बाहर ही है, जैसा कि चाय बेचने वाले सज्जन ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया- "सीबीएसई की पढ़ाई हमारी समझ के बाहर है।" ऐसा पिता जिसके बच्चे की शिक्षा उसकी समझ से

बहर है, वह भला शिक्षा को किसके पैमाने पर आँकेगा? निस्संदेह 'अंकों' एवं 'अहर्ता' के पैमाने पर। परिणामस्वरूप 'अहर्ता' ही व्यक्ति के ज्ञान, योग्यता एवं क्षमता को आधिकारिक रूप से मान्यता प्रदान करती है और 'अंक' उसकी गुणवत्ता का स्तर आँकने का आधार प्रदान करते हैं।

एक शिक्षित व्यक्ति की निशानी ही मान ली गई है, उसकी दो लाइन अंग्रेजी बोलने की क्षमता। परिणाम यह निकला कि 'शिक्षा', यथार्थ रूप में शिक्षा न रहकर 'अंकों की प्रतियोगिता' भर बन गयी है। इस प्रतियोगिता ने लोगों में छिपी सृजनात्मक क्षमता का हास करके सिर्फ व्यवस्था के साँचे में ढलने के लिए साक्षर कामगारों की फ़ौज को तैयार किया है। इस प्रकार शिक्षा सिर्फ और सिर्फ रोज़गार प्राप्ति का साधन बन कर रह गयी है।

अंकों की होड़ ने शिक्षा को सामूदायिक-सामूहिक-सहभागी क्रिया के स्थान पर व्यक्तिगत प्रतियोगिता बना कर रख दिया। फलस्वरूप शिक्षा ने मनुष्य में प्रेम एवं समता-भाव पैदा करने के स्थान पर व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष पैदा करने के साधन का ही कार्य किया। हम पहले ही विचार कर चुके हैं कि किस प्रकार स्कूल आज लोगों के बीच ईर्ष्या पैदा करने का साधन हो गए हैं। शिक्षित करने की इस चूहा दौड़ पद्धति ने शिक्षित व्यक्ति को स्वार्थी ही बनाने का कार्य किया। इसके फलस्वरूप, जो जितना अधिक शिक्षित, वह सामाजिक रूप से उतना ही अधिक उदासीन। अपवादों को छोड़ दें तो अंकों की प्रतियोगिता के फलस्वरूप जो अति

महत्वाकांक्षाओं के बीज मनुष्य में फूटे, उसने ही उस शिक्षित व्यक्ति को भ्रष्ट बनाया। शिक्षा, आत्म-विकास का माध्यम न होकर महज़ धन अर्जन हेतु रोज़गार प्रप्ति का साधन बन कर रह गई। इसका अर्थ यह भी हुआ शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया न हो कर, मात्र धनार्जन का स्रोत, अर्थात् लाभदायक रोज़गार प्राप्ति के साथ ही समाप्त होने वाली प्रक्रिया भर बन कर रह गयी।

शिक्षा के अवमूल्यन में तीसरी सबसे बड़ी भूमिका अंग्रेजियत के वर्चस्व ने निभायी। शिक्षा जब बाजार के साथ जुड़ गई तो बाजार के रंग-ढंग को भी उसने अपने में समाहित कर लिया। अंग्रेजों ने शासन में भागीदार कर सकने वाले अपने सहयोगियों को तलाशने तथा अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान थोपने की जो प्रक्रिया प्रारंभ की, वह तथाकथित स्वतंत्रता के बाद भी कायम रही। मैकाले के मानस-पुत्र कहलाने वाले इस सहयोगी वर्ग ने ही स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजी के परचम को लहराने का काम किया। मैकाले का मानस-पुत्र कहलाने वाला यह छोटा-सा सहयोगी वर्ग ही आज राज्य व्यवस्था, कोर्ट तथा विश्वविद्यालयों पर काबिज है। परिणामस्वरूप अंग्रेजियत के वर्चस्व वाली 'साँस्कृतिक पूँजी' का जन्म हुआ। इस 'साँस्कृतिक पूँजी' ने विश्वविद्यालयों तथा सत्ता केन्द्रों को सदैव अपनी गिरफ्त में रखा। यही वर्ग सत्ता, पूँजी, विचारधारा आदि के शीर्ष पर छाया रहा। देश के ज्ञान-केन्द्रों पर इस अंग्रेजी-भाषी लोगों का कब्ज़ा ही अंग्रेजियत के मूल्य का आधार बना। चूँकि ये सभी लोग सबल और सफल थे अतः इनकी भाषा (अर्थात् अंग्रेजी) सफलता के मंत्र के रूप में प्रचारित की गई। इन्होंने अपने वर्चस्व को बनाये

रखते हुए शासन, प्रशासन, कोर्ट आदि में अपनी मानस भाषा (अंग्रेजी) स्थापित की। यह प्रक्रिया अघोषित तौर पर पर चली। अंग्रेजीवां लोगों के शिक्षा, शासन, प्रशासन, कोर्ट, उद्योग आदि में वर्चस्व ने लोगों के जहन में यह बात धीरे-धीरे स्थापित कर दी कि अंग्रेजी ही कामयाबी की भाषा है। यह बात स्थापित हो चुकी है कि बिना अंग्रेजी के उच्च शिक्षा संभव ही नहीं है। ये इतना पुख्ता स्थापित तथ्य है कि परिवेश की भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा की वकालत करने वाले लोग भी उच्च शिक्षा की बात आते ही अंग्रेजी की ही वकालत करने लगते हैं। इस प्रकार 'अंग्रेजियत' को अपना ही शिक्षा का उद्देश्य है और यह उद्देश्य अघोषित तौर पर शिक्षा के उद्देश्य के रूप में इस कदर स्थापित हो चुका है कि आज शिक्षित होने का अर्थ ही बन गया है, अंग्रेजी में बोलने भर की क्षमता। यही अंग्रेजी के वर्चस्व वाली संस्कृति का मूल्य है। धीरे-धीरे यही अवधारणाएँ व्यक्ति के मानस पर इस कदर रच-बस गईं कि अब शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य कहीं पीछे छूट गए और अंग्रेजियत की मानसिकता को गढ़ना ही शिक्षण प्रक्रिया का एक मात्र मकसद रह गया है। आज निचले स्तर के प्राइवेट स्कूल से लेकर ऊपरी स्तर के प्राइवेट स्कूल को देख लें, सबका लक्ष्य महज़ अंग्रेजियत की संस्कृति का ही प्रसार करना भर है। अंग्रेजियत का वर्चस्व किस कदर आज हमारे समाज पर हावी है इसका वर्णन केस-3 में विशाल की पत्नी के वक्तव्य के माध्यम से कर सकते हैं। जब अनुसंधानकर्ता ने जानना चाहा कि आप अपनी बच्ची को अपने परिवार की मातृभाषा बोलने हेतु क्यों नहीं प्रेरित करते? वे महिला खुद एक शिक्षिका हैं, उसके बाद भी उनका जबाब था कि वह नहीं चाहती कि उसकी बेटी हिन्दी अथवा उसके पति के गाँव की बोली बोले। आज तो एम.एन.सी. का जमाना

है, हिन्दी अथवा देहाती बोलियों को बोलने वालों को एम.एन.सी. में रोजगार हासिल ही नहीं हो सकता। जब हमने उनसे कहा कि व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता तो मातृभाषा में ही विकसित हो सकती है। तब उसने अपनी समझदारी को अधिक तर्क पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा, “हमने अपने बेटी की मातृभाषा ही अंग्रेजी बना दी है। उसे हम अंग्रेजी के शब्द ही सिखाते हैं, जैसे सेब को सेब ना कह कर एप्पल कहते हैं। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को उसके अंग्रेजी नाम से ही पुकारते हैं। हम तो इतना नहीं बोल पाते इसलिए घर पर ही अंग्रेजी ट्यूटर की व्यवस्था की है। वह उनसे अंग्रेजी में ही बातचीत करती है ताकि वह अंग्रेजी भाषा ही सीखे। बाहर उसे किसी ऐसे-वैसे के सम्पर्क में आने ही नहीं देते। यहाँ तक कि मैं उसे अपने सुसराल के लोगों के पास भी ज्यादा नहीं छोड़ती, कहीं वह वहाँ जाकर उनकी देहाती गँवारु बोली न सीख जाए।”

आप कह सकते हैं कि यह तो महज नवधनाढ्य मध्यम-वर्गीय महिला के विचार भर हैं। पर इस विचार का फ्युज़न इतनी तेजी-से हो रहा है कि इसने बड़ी तेजी से सम्पूर्ण सामाजिक ताने-बाने को ही छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। हर एक अपनी भाषा को बहिष्कृत करके अंग्रेजी के नकाब को ओढ़ने में लगा हुआ है। इस क्रम में वह अपने आप को दूसरों से अलग करके खड़ा करता है। जो उसके वाली मानक भाषा नहीं बोलता। देश का एक बड़ा हिस्सा सत्ता के केन्द्र में बैठे लोगों के लिए सिर्फ इसलिए गँवारु और घटिया हो जाता है क्योंकि वह सत्ता के केन्द्र में बैठे लोगों की भाषा नहीं बोलता या नहीं बोल पाता। इस सन्दर्भ में चाय बेचने

वाले भाई साहब का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है - “अंग्रेजी क्या चीज है? जो दो क्लास पढ़ ले वो बोल ले।” यह वाक्य यह नहीं दिखा रहा है कि थोड़ा-सा पढ़ कर अंग्रेजी बोल सकते हैं, बल्कि यह वक्तव्य यह दर्शाता है कि उस व्यक्ति की इस भाषा को सीखने की कितनी प्रबल इच्छा है। क्योंकि बोलने की कला परिवेश से आती है और उसका परिवेश कभी उच्च-वर्गीय नहीं रहा, अतः उसकी भाषा भी कभी उच्च-वर्गीय नहीं हो नहीं हो सकती। यदि भाषा को ज्ञान का पैमाना बनाया जाए तो कभी-भी एक निम्न मध्यम वर्गीय, ग्रामीण पृष्ठभूमि के लोग उस स्तर तक नहीं पहुँच पाएँगे, जिस पर उनसे भी कम योग्यता के उच्च एवं उच्च मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि के लोग आसानी से पहुँच जाते हैं। परिणाम स्पष्ट है कि इस व्यवस्था में निम्न मध्यम-वर्गीय तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि के विद्यार्थी पिछड़ेंगे ही। जैसा कि फ्रिंज इलाके के निजी स्कूलों के शिक्षकों तथा प्रचार्यों ने भी माना कि भाषा की वजह से निम्न मध्यम-वर्गीय एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि का विद्यार्थी शहरी पृष्ठभूमि के उच्च मध्यम-वर्गीय विद्यार्थी से पिछड़ ही जाता है। अब चाहे उसकी समझ कितनी ही व्यावहारिक क्यों न हो।

अब हम मनोवैज्ञानिक बंडूरा द्वारा प्रतिपादित ‘सीखने के समाजिक सिद्धांत’ पर गौर करें तो पाएँगे कि व्यक्ति अपने सामाजिक आदर्शों के अनुरूप आचरण करने का प्रयास करता है। अक्सर व्यक्ति के प्रतिद्वंद्वी भी उसके आदर्श होते हैं क्योंकि व्यक्ति अपने आप को उनके स्तर तक पहुँचाना चाहता है। ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के लिए उन्हें गँवारू कहने वाले उच्च मध्यम-वर्गीय घरों

के शहरी बच्चे उसका आदर्श हैं क्योंकि वे भी अपनी अपनी अंग्रेजी भाषा को अपने साथियों के समान बनाना चाहते हैं। पर चूँकि उसका सामाजिक वातावरण उनके साथियों से भिन्न है अतः भाषा के उच्चारण के विषय में कभी-भी उनके समान नहीं हो सकते। भाषा का वर्चस्व, सामाजिक वर्चस्व को बनाये रखने का एक बहुत बड़ा हथियार है। यह साँस्कृतिक पूँजी को एक सीमित वर्ग तक समेटे भी रखता है। अंग्रेजी बोलना सीख कर अर्थात् भाषा के ज्ञान द्वारा उस असमानता की खाई को तोड़ सकते हो, यह उससे भी बड़ा भ्रम है। यही भ्रम निम्न वर्ग के लोगों तथा ग्रामीण जनता में तेजी से व्याप्त होता जा रहा है। भाषा एक बिकाऊ माल है और इस माल को बेचने की प्रक्रिया में गली-नुक्कड़ पर खुले कोचिंग सेंटर और स्कूल ही नहीं, अपितु विश्वविद्यालय तक शामिल हैं। लोग विटामिन-ई की कमी को दूर करने के लिए इंग्लिश बोलचाल सिखाने वाली कोचिंग की गिरफ्त में फँसते जाते हैं।

आज आम जन की नज़र में भाषा ही शिक्षा का पर्याय बन गयी है, जो अंग्रेजी या परिष्कृत हिंदी बोलता है वह ही शिक्षित है, देहाती बोलियों को बोलने वाले गँवारू इस प्रकार शिक्षा के बाकी सभी उद्देश्य पीछे छूट जाते हैं और मानकीकृत भाषा बोलने की क्षमता को अर्जित करने का काम ही शेष रह जाता है।

स्कूलों में अंग्रेज़ियत की मानसिकता किस प्रकार थोपी जा रही है, इस बात को स्पष्ट करने हेतु मैं एक और घटना का वर्णन करूँगा। मैं एक निजी स्कूल में प्राचार्य के साक्षात्कार हेतु गया था। चपरासी ने मुझे नया शिक्षक समझ लिया और शिक्षक-कक्ष में

बैठा दिया। कुछ देर बाद एक बच्ची वहाँ आई। उसने वहाँ बैठे एक शिक्षक से कुछ पूछा। शिक्षक ने उसे पुनः बोलने के लिए अंग्रेजी में 'रिपीट' करने को कहा। वह लड़की ग्रामीण परिवेश से सम्बन्ध रखती थी। उसने पुनः अपनी बात को उच्च स्वर में ग्रामीण लहजे वाली हिंदी में कहने का प्रयास किया, पर उस शिक्षक ने फिर से 'रिपीट' कहा और यह सिलसिला चार-पाँच बार तक चला। अंत में उस शिक्षक ने उसे बुरी तरह झिड़कते हुए कहा, "यु आर रीडिंग इन इंग्लिश मीडियम स्कूल एंड स्पीकिंग हिंदी।" मैं यहाँ इस वाक्य का हिंदी अनुवाद नहीं करूँगा, आप खुद तय करें इंग्लिश की वकालत करने वाले वे महानुभाव खुद इंग्लिश की कितनी समझ रखते थे। मैं यहाँ चर्चा करूँगा तो सिर्फ उस फटकार के फलस्वरूप बच्चे पर पड़े मानसिक प्रभाव की। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस मामूली-सी घटना ने उस लड़की के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव छोड़ा होगा? समस्या अंग्रेजी में नहीं है, समस्या इस अंग्रेजियत की मानसिकता में है। एक क्षण में उसे उसके अध्यापक ने उसे ना केवल उसकी भाषा-बोली से ही दूर किया, अपितु उसकी संस्कृति, समाज, परिवेश से भी काट दिया और इस क्रम में उसकी बोली, उसकी भाषा, उसकी संस्कृति, उसका परिवार, उसका गाँव सब एक-एक करके टूट कर अलग हो गया। यह सब कुछ पिछड़ेपन की निशानी है, आधुनिकता है तो वह है आदर्श समझें जाने वाली अंग्रेजी में बोलने की क्षमता। मैंने बाद में उस शिक्षक से बात की, मैंने उनसे कहा कि आप यह भी तो कह सकते थे कि आपने हिंदी में अच्छे तरह से अपनी बात कही, अब ज़रा आप मेरे लिए इसे अंग्रेजी में भी बोल दें। इस पर उसका पलट कर जबाब था, "यदि मैंने इसे इस प्रकार ना रोका तो वह अपनी देहाती बोली से स्कूल के वातावरण को यूँ ही गन्दा

करती रहगी।” मेरा अपने सहकर्मी को दिया गया सुझाव बड़ी तीव्र गति से प्रिंसिपल के कार्यालय तक पहुंच गया। पाठकगण खुद विचार करें कि मुझे अपने इस सुझाव की क्या कीमत चुकानी पड़ी होगी। उन्होंने अगले दिन ही फरमान जारी कर दिया कि जो भी विद्यार्थी हिंदी अथवा गँवारू बोलियों को बोलेगा, उस पर 'फाईन' लगाया जाएगा। शिक्षकों के लिए भी फरमान था, “ना ही पढाते वक्त, ना ही विद्यार्थियों से बात-चीत करते वक्त हिंदी का प्रयोग करें। देहाती बोलियों के प्रयोग करते पाए जाने पर तो सीधा टर्मिनेशन लैटर दिया जाएगा।” चाहे विद्यार्थियों को समझ आए अथवा नहीं फरमान जारी हो चुका था कि सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी का ही प्रयोग होगा। ऐसा क्यों? इसका भी जबाब मिला एक रोज। मैं प्रिंसिपल कार्यालय में प्रिंसिपल से विचार-विमर्श करने हेतु बैठा था। तभी एक विद्यार्थी के माता-पिता वहाँ आ गए। प्रिंसिपल ने विद्यार्थी को बुला कर अंग्रेजी में कुछ रटे-रटाए सवाल पूछे। विद्यार्थी ने उसे अंग्रेजी में रटे-रटाए जबाब दे दिए। ग्रामीण परिवेश से सम्बन्ध रखने वाले माता-पिता के लिए यह किसी-भी आश्चर्य से कम नहीं था। इस अंग्रेजी बोलने की क्षमता ने शिक्षा के बाकी सभी उद्देश्यों को काफी पीछे छोड़ 'इंग्लिश कॉम्युनिकेशन' को ही शिक्षा का उद्देश्य बना दिया। एक देहाती बच्चा भी अंग्रेजी के कुछ वाक्य बोल सकता है। इसका आसानी से अवलोकन किया जा सकता है, पर उसमें शिक्षा के फलस्वरूप सोचने-विचारने, प्रश्न करने, विश्लेषण करने की क्षमता कितनी विकसित हुई यह अवलोकन कर पाना काफी कठिन है। और इस बात की भी क्या गारंटी है कि वह स्कूली शिक्षा से ही हासिल हुई है क्योंकि व्यक्ति को शिक्षित करने में स्कूली औपचारिक व्यवस्था और स्कूल के बाहर का अनौपचारिक वातावरण, दोनों की सामंजस्यपूर्ण

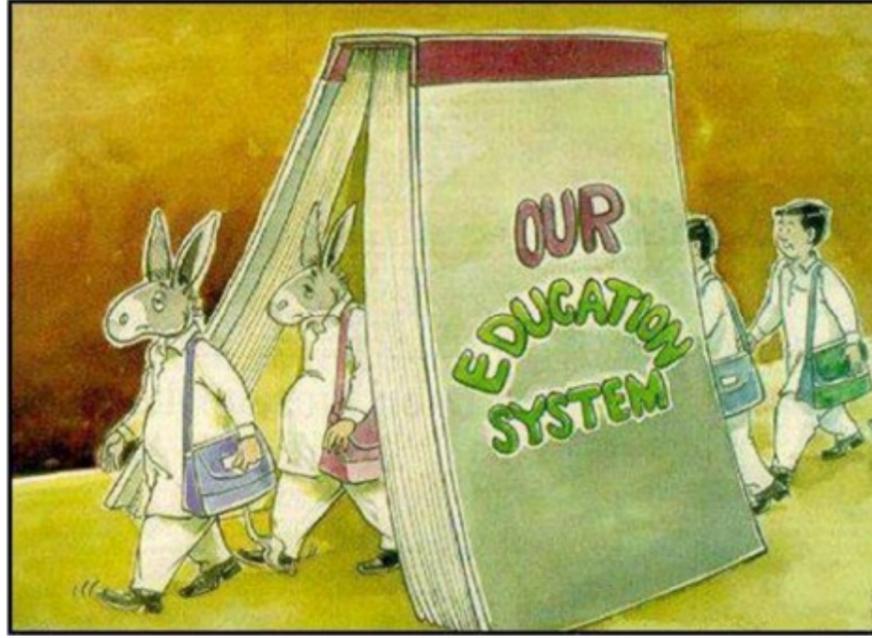
भूमिका होती है। शिक्षा व्यवस्था के निजीकरण की वजह से शिक्षा का पदार्थीकरण हुआ। निजी क्षेत्र के वर्चस्व के फलस्वरूप हुए 'शिक्षा के पदार्थीकरण' ने 'अंग्रेजीकरण' का रास्ता साफ किया है क्योंकि इस अंग्रेजीकरण की ढाल के सहारे ही अधकचरी शिक्षा रूपी पदार्थ को आसानी से बेचा जा सकता है। अतः अंग्रेजी बोलना ही शिक्षा के रूप में प्रचारित किया जाता है और जिस भाषा के साथ शक्ति/पावर जुड़ी हो, उसे बेचने से फ़ायदेमंद, शायद ही कोई दूसरा कार्य हो।

हमारे देश का शिक्षा-व्यवस्था का ढाँचा कुछ इस प्रकार का है कि अधिकतर गरीब परिवार के विद्यार्थी स्कूल खत्म करने से पूर्व ही औपचारिक शिक्षा छोड़ देते हैं और इस प्रकार उच्च शिक्षा तक महज़ उच्च वर्ग के विद्यार्थी ही पहुँच पाते हैं। निम्न वर्ग और ग्रामीण पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों द्वारा औपचारिक शिक्षा छोड़ने की मुख्य वजह अंग्रेजी भी है। जैसा कि रमेश के पिता ने अपने अनुभवों को बताते वक्त कहा। पर यह बात सिर्फ रमेश के पिता के मामले में ही देखने को नहीं मिली, अपितु तमाम दूसरे मामलों के अध्ययन के दौरान भी सामने आई। अंग्रेजी भाषा ने कहीं-न-कहीं लोगों को बाधित किया ही है। वे ही आगे ज्ञान की सत्ता के केन्द्रों तक पहुँच पाते हैं, जो अंग्रेजी भाषा में महारत रखते हैं। ज्ञान, पूँजी, नैकरशाही, राजनीति की सत्ता के केन्द्रों पर जमे लोगों कि भाषा चूँकि अंग्रेजी है, इसलिए समस्त समाज भी सत्ता के उन केन्द्रों तक पहुँचने की चाहत में 'अंग्रेजी मैया' की भक्ति करना अपना दायित्व समझता है। आज भी मेरे पास निम्न एवं निम्न मध्यम वर्ग के जितने लोग संपर्क में आते हैं, उनकी सिर्फ़ एक ही

चाहत होती है- "किसी तरह अंग्रेजी बोलना सीख जाएँ" यदि बीसीजी के इंजेक्शन की तरह विटामिन-इ अर्थात् अंग्रेजी का इंजेक्शन मिल जाए तो आज ही सभी अपने बच्चों को लगवा देंगे। कैंसर की बीमारी के बाद भी कोई व्यक्ति बच जाए, पर जिसे अंग्रेजी नहीं आती वह तो इस समाज के ऊपरी पायदान पर सर्वाइव ही नहीं कर सकता। अंग्रेजी बोल पाने की क्षमता ही उसकी हैसियत को निर्धारित करती है। लोगों को लगता है कि अंग्रेजी में बोलना सीखते ही उनकी सामाजिक हैसियत का अंतर खत्म हो जाएगा और वे भी समाज के उच्च वर्ग के समकक्ष आ जाएँगे। इस अंग्रेजी का प्रसार गोरे-अंग्रेजों के युग में कम, काले अंग्रेजों के युग में अधिक हुआ है। कारण स्पष्ट है- सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् उच्च श्रेणी सरकारी नौकरियों के दरवाजे भारतीयों के लिए भी खुले। पर सत्ता के इन केन्द्रों तक पहुँचने के लिए अंग्रेजी किसी-ना-किसी रूप में अनिवार्य ही रखी गयी। उच्च शिक्षा के दरवाजे भी सिर्फ अंग्रेजी के जानकारों के लिए ही खुले। यहाँ यह सवाल उठता है कि यह किस प्रकार एक किसान की उत्पादकता को बढ़ा सकती है या बढई की कारीगरी में सहायक हो सकती है या सड़क पर मजदूरी करने में सहायक हो सकती है? यह स्पष्ट नहीं है। हाँ! इन सबको दबाये रखने में सहायक है। इस प्रकार पर गाँव के किसान से लेकर शहर के मजदूर तक सभी की शिक्षा की संकल्पना अंग्रेजी तक आकार ही सिमट कर रह जाती है। इस स्थिति को देखते हुए अंग्रेजी रोजगार उपलब्ध करने में कितनी सहायक होगी, यह कहना तो बड़ा मुश्किल है, पर हाँ! यह मानसिकता सम्पूर्ण सामाजिक ताने-बाने को तोड़ कर मानसिक गुलामों की फौज तैयार करने के लिए पर्याप्त है। संयुक्त परिवारों का टूटना, पब और क्लब संस्कृति का जन्म, आदि इसी

अंग्रेजियत के वर्चस्व का ही परिणाम है। इस प्रकार अंग्रेजियत रोजगार का अवसर उपलब्ध कराए या ना कराए, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उपभोक्ता अवश्य तैयार कर देती है। अंग्रेजी का भूत इस तरह हावी है कि आज हमारे समाज का मध्यम वर्ग इसी श्रेष्ठता मनोग्रंथि का शिकार है। फलस्वरूप अंग्रेजीकरण की होड़ तथा भाषा की शुद्धता के सवाल ने समाज में अलगाव पैदा कर दिया है। सोचिये इस मानसिकता के साथ जिस बच्चे की परवरिश तथा शिक्षा-दीक्षा होगी, वह समाज को किस दिशा में ले जाएगा? यह बात सिर्फ उच्च मध्यम वर्ग तक ही सीमित रहती तो बात कुछ और थी। ये उच्च वर्ग के वर्चस्व प्राप्त लोग बाकी समाज के लिए एक मॉडल बन जाते हैं। फलस्वरूप समाज के बाकी वर्ग भी अपने आप को इसी साँचे में ढालने का प्रयास करते हैं। अंग्रेजी सीखने की होड़ में जो व्यक्ति अंग्रेजी तो सीख लेता है वह श्रेष्ठता-ग्रंथी तथा जो नहीं सीख पाता वह हीनता-ग्रंथी का शिकार बन कर रह जाता है। वह इस अंग्रेजियत के चक्कर में वास्तविक शिक्षा से काफी पीछे छूट जाता है। व्यवस्था के कर्णधारों द्वारा प्रसारित भ्रम के फलस्वरूप आज हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था ज्ञान, क्षमता एवं कौशल नहीं अहर्ता और अंग्रेजियत पैदा करने की फैक्टरी मात्र बन कर रह गयी है और शिक्षक इन अहर्ताओं को पैदा करने का एक एजेंट ! अब चूँकि अहर्ता प्राप्त करने हेतु परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना होता है अतः यहाँ शिक्षण की एक नई अवधारणा उभर कर आती है, वह यह कि *शिक्षण वह प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक रूपी व्यक्ति अपने विद्यार्थियों को परीक्षाओं को पास करने की कला सिखाता है। इस उद्देश्य के लिए ही उसे हर प्रकार से ड्रिल कराता है और वह भी अंग्रेजी माध्यम से।*

इस प्रकार, शिक्षक की भूमिका विद्यार्थियों में वैज्ञानिक चिंतन जागृत करने वाले की नहीं, अपितु परीक्षा पास करने वाले सहायक भर की रह जाती है। यदि अहर्ताएँ ही अंतिम सत्य हैं तो उन्हें प्राप्त करने हेतु अपनाए गए अलग-अलग तरह के हथकण्डों में बुराई कैसी? शिक्षक के रूप में काम करने वाला व्यक्ति कोई 'एलियन' नहीं है, वह भी इस समाज का ही है, और इस समाज के सभी पूर्वाग्रह और बुराइयाँ भी साथ लेकर आया है। शिक्षक बनने का उसका उद्देश्य महज रोजगार हासिल करना होता है। यह व्यक्ति विषय एवं शिक्षक-केन्द्रित शिक्षक न बन कर विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षक बने, यह उसकी रुढ़ियों से लड़ने की क्षमता पर निर्भर करता है और साथ ही हवा के विपरीत बहाव में कितनी अडिगता से वह खड़ा रह सकता है, इस बात पर भी निर्भर करता है। समाज की शिक्षा के प्रति अवधारणा, विषय एवं शिक्षक-केन्द्रित शिक्षण को ही मान्यता प्रदान करती है ना कि बाल-केन्द्रित शिक्षण को।



अध्याय – 25

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के प्रति झुकाव

विचारणीय मुद्दा –

इस अध्याय में हम उन सामाजिक, साँस्कृतिक कारकों की खोज करेंगे, जिनकी वजह से जन-सामान्य का झुकाव एकाएक अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के प्रति तेजी से बढ़ा है।

हमने अब तक के विश्लेषण में पाया कि अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में निम्न मध्यम-वर्गीय एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे रचनात्मक एवं विवेचनात्मक रूप से कुछ भी सीख नहीं पा रहे हैं। यह बात न केवल माता-पिता को पता है अपितु बच्चे भी जानते हैं। एक बच्चे

के शब्दों में, "हमें अपनी भाषा में समझाया जाता तो कोई भी विषय बेहतर तरीके से समझ आ जाता, पर इंग्लिश में पढ़ाने की वजह से हम सिर्फ रटते हैं। जो रटते हैं, वही एग्जाम में लिख कर आ जाते हैं।"

एक अभिभावक के शब्दों में कहें तो. "मेरे बच्चे हरियाणा बोर्ड (हिन्दी मीडियम) में अच्छे पढ़ रहे थे। पर जब से सीबीएसई (इंग्लिश मीडियम) स्कूल में डाला है तब से दिक्कत है। हमें ये सीबीएसई वाली पढ़ाई तो समझ में आती नहीं है। स्कूल वाला कहता है, ट्यूशन वाला नहीं पढ़ाता, ट्यूशन वाला कहता है स्कूल वाला नहीं पढ़ाता। माँ-बाप तो पैसे ही खर्च कर सकते हैं। बाकी बालकों की अपनी किस्मत है।" इन दो उक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि माता-पिता और बच्चों दोनों को मालूम है कि ये अंग्रेजी माध्यम वाली पढ़ाई उनकी समझ के बाहर की है। फिर भी दाँव लगाने को तैयार हैं। ये अंग्रेजी माध्यम शुद्ध जुआ है। इसमें हारने की संभावना अधिक और जीतने की संभावना नगण्य ही है। पर फिर भी लोग अंग्रेजी का दाँव खेल रहे हैं। इससे पहले के खण्ड में हमने शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण से समस्या का विश्लेषण किया था। इस खण्ड में हम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समस्या के कारकों का विवेचन करेंगे। अब हम उन सामाजिक, आर्थिक और साँस्कृतिक कारकों को तलाशने का प्रयास करेंगे, जो समस्या के लिये जिम्मेदार हैं।

शोध प्रक्रिया के दौरान, अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिले को प्रेरित करने वाले अग्रलिखित कारक उभर कर आए हैं। ये वो कारक हैं जिनकी वजह से अंग्रेजी माध्यम का जुआ खेला जाता है।

स्कूल व्यक्ति की आर्थिक हैसियत का सूचक है।
औपचारिक शिक्षा को लेकर माता-पिता, बड़े भाई-बहन, आस-पड़ोस वालों के अपने व्यक्तिगत अनुभव।
बच्चे के भविष्य की दिशा स्कूल ही तय करता है।
स्कूल, बच्चे की भाषा के शुद्धिकरण का साधन है।
स्कूल संस्कृतिकरण का साधन है।

स्कूल व्यक्ति की आर्थिक हैसियत का सूचक है।

नर्सरी कक्षाओं में ही निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिले के लिए मची मार-काट इस बात की गवाह है कि व्यक्ति चाहे अमीर हो या गरीब, अधिकांश का सपना अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूलों में दाखिला दिलवाना ही है। स्कूल के मामले में उसकी एक 'चॉइस' (पसंद) है, वह है अंग्रेजी माध्यम स्कूल। आज उच्चवर्ग तथा उच्च मध्यम-वर्ग का शायद ही कोई विरला व्यक्ति होगा, जो अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में दाखिला करवाता हो। तमिलनाडू राज्य के एक आईएएस अधिकारी ने जब

अपने बच्चे का दाखिला सरकारी स्कूल में करवाया तो यह खबर मीडिया में चर्चा का विषय बनी। शिक्षाविद् अनिल सद्गोपाल ने भी इस पर फ्रंट लाइन जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में आलेख भी लिखा। उन्होंने लेख के माध्यम से कॉमन स्कूल सिस्टम के मुद्दे को फिर से उछालने का प्रयास किया। पर 1960 के दशक में कोठारी आयोग की रिपोर्ट में दी गयी कॉमन स्कूल की संकल्पना खुद सरकार की ही कारगुजारी की वजह से किस प्रकार विलुप्त हुई, यह अलग-से विचारणीय विषय है। आज सरकारी क्षेत्र में भी स्कूलों की बहुस्तरीय व्यवस्था है। शोधकर्ता यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता है कि जब हम सरकारी स्कूल की बात कर रहे हैं तो इसमें विशिष्ट वर्ग के लिए खोले गए केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों, सैनिक स्कूलों आदि को शामिल नहीं कर रहे हैं। एक तो, ये स्कूल सब के लिए हैं ही नहीं, दूसरे, ये सरकारी स्कूलों की संख्या का नगण्य हिस्सा भर हैं। हम सरकारी स्कूलों में सामान्य सरकारी स्कूलों को शामिल करते हैं, न कि इन मुखौटा/विशिष्ट स्कूलों को। वैसे पिछले दिनों नव-उदारवाद के प्रभाव में सरकारी स्कूलों में भी शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों को नकारते हुए उनका अंग्रेजी माध्यमीकरण बढ़ा है।

अब यदि हम समाज की वर्गीय संरचना के आधार पर विश्लेषण करें, तो पाते हैं कि उच्च तथा उच्च मध्यम-वर्ग के लगभग सभी बच्चे, विशिष्ट माने जाने वाले अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में जा रहे हैं। वहीं निम्न मध्यम-वर्ग तथा निम्न-वर्ग के माता-पिता का भी सपना अपने बच्चों को सीबीएसई का पाठ्यक्रम चलाने वाले अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में ही दाखिला करवाने का है। सीबीएसई

शब्द, ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्र में अंग्रेजी के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। यदि लोग उच्च दर्जे के स्कूलों तक नहीं पहुँच सकते तो ऐसी अवस्था में वे निम्न दर्जे के गैर-मान्यताप्राप्त स्कूलों में अथवा राज्य बोर्ड से मान्यता प्राप्त प्राइवेट स्कूलों में भेजते हैं। अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में सिर्फ उसी अवस्था में भेजते हैं, जब वे आर्थिक रूप से पूर्णतः असक्षम हों। परन्तु जैसे ही आर्थिक स्थिति में सुधार आता है, वे अपने बच्चों को अपेक्षाकृत निम्न दर्जे के स्कूलों से निकाल कर ऊपरी के दर्जे के स्कूलों में डालते हैं। वैसे शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2010 के तहत मिले 25% आरक्षण से बहुतों को बड़ी उम्मीदें हैं। पर उच्च-वर्ग के 10% लोगों के लिए खुले ये स्कूल, 85% आबादी को अपने अंदर कितना समाहित कर पाएँगे, यह एक यथार्थ प्रश्न है। पर हम उससे भी बड़े प्रश्न पर विचार कर रहे हैं कि इन स्कूलों में पढ़ने की चाहत में पहुँची, देश की 85% जनसंख्या, अर्थात् निम्न वर्ग, निम्न मध्यम-वर्ग, ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे जब कुछ सीख ही नहीं पाते तो दाखिले के लिए भागते ही क्यों हैं?

ऐसी प्रवृत्तियाँ शोध के दौरान भी देखने को मिलीं। जैसाकि गाँव गडखेरा के निवासी नेत्रपाल ने बताया, “उनके गाँव के सरकारी स्कूल में सिर्फ आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े वर्ग के बच्चे ही शेष रह गए हैं। जिसमें से अधिकतर दलित जातियों के हैं। परिवार दलित जाति का हो या अगड़ी जाति का, यदि उसकी थोड़ी-भी आर्थिक हैसियत अच्छी है तो वे लोग अपने बच्चों को निम्न दर्जे के ही सही, परन्तु निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में ही भेजते की कोशिश करते हैं। जैसे ही आर्थिक स्थिति में और सुधार

दिखता है, वे अपने बच्चों को सीबीएसई से सम्बद्ध निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भेजने का प्रयास करने लगते हैं। हमारे इलाके में सीबीएसई शब्द का अर्थ ही- अंग्रेजी माध्यम स्कूल होता है। गाँव भिड़ुकी के लोगों ने बताया, “लोग कर्ज लेकर भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में डाल रहे हैं।”

यह बात शोधकर्ता द्वारा फरीदाबाद के आस-पास के गाँवों में किए अवलोकन के बाद और भी पुख्ता हो जाती है कि फरीदाबाद में नए टाउनशिप ग्रेटर फरीदाबाद तथा नोएडा के तर्ज पर औद्योगिक क्षेत्र के विकास के साथ जमीनों के मूल्य तेजी कई गुणा बढ़े, जिसका फायदा इस क्षेत्र की छोटी-से-छोटी ज़मीन पर खेती करने वाले किसान को हुआ। जमीन बिकी और पैसा आया। इस पैसे की वजह से आर्थिक स्थिति में जो सुधार हुआ, उसका नतीजा यह देखने में आया कि लोगों ने अपने बच्चों को तुलनात्मक रूप से पिछड़े माने जाने वाले स्कूलों से निकाल कर अपेक्षाकृत बेहतर माने जाने वाले स्कूलों में डालना प्रारम्भ कर दिया।

परन्तु पलवल जिले के भिड़ुकी गाँव में कुछ ऐसे केस भी पता चले, जब माता-पिता ने अपने बच्चों को निम्न स्तर के अंग्रेजी माध्यम विद्यालय से निकाल कर वापस हिन्दी मीडियम के सरकारी विद्यालय में डाला है। पूछने पर तर्क दिया, “पैसा भी बर्बाद करो, कुछ समझ में भी ना आये तो क्या फायदा।” शायद इसका एक कारण कर्ज का बोझ भी है। परन्तु ऐसे केस अपवाद स्वरूप ही देखने को मिले। एक बार अंग्रेजी माध्यम में डाल देने के बाद, उसमें पढ़ाते रहना समाजिक प्रतिष्ठा का विषय बन जाता है।

बेशक बच्चों को विषय समझ में आये या नहीं, पर पढ़ाना अंग्रेजी माध्यम स्कूल में ही है। यह माता-पिता ही नहीं अपितु बच्चों की प्रतिष्ठा से जुड़ा मुद्दा भी है।

मध्यम स्तर के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के प्राचार्यों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि उनके स्कूलों में तेजी से ग्रामीण इलाकों तथा निम्न एवं निम्न-मध्यम वर्ग के लोग अपने बच्चों का दाखिला करा रहे हैं। जहाँ प्रतिष्ठित अथवा 'हाई-फाई' कहलाने वाले निजी स्कूलों में वे ही माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ा पा रहे हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न हों। वहीं मध्यम स्तर के निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों ने निम्न-मध्यम वर्ग के बच्चों को समेट रखा है। इस प्रकार, जितने वर्ग उतने ही प्रकार के स्कूल, अर्थात् हर वर्ग की अपनी आर्थिक हैसियत के हिसाब से स्कूल। जब स्कूल वालों से पूछा गया कि आप क्षेत्रिय भाषाओं में स्कूल क्यों नहीं चलाते? तो उनका जबाब था, "स्कूल में ताला लगवाओगे, क्या?"

जहाँ तक माता-पिता का सवाल है, जैसा कि हमने पाया कि हर मामले में किसी-न-किसी रूप में स्कूल, परिवार की आर्थिक स्थिति को दर्शाने का साधन है। ग्रामीणों के साथ हुई समूह-वार्ता में भी लोगों का मानना है कि स्कूल लोगों के बीच ईर्ष्या का एक प्रमुख कारक है। विद्यार्थियों ने भी समूह-वार्ता में बताया कि उनके माता-पिता अपनी महत्वाकांक्षाओं का ठीकरा बच्चों के सर ही

फोड़ रहे है। साथ ही यह भी बताया कि यदि कोई माता-पिता अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में डालना भी चाहें तो उसके रिश्तेदार और परिचित-संबंधी उन्हें ताने देते रहते हैं।

रमेश की माता जी के शब्दों में, “सरकारी स्कूल में एक तो मास्टर आते ना, या आवें तो दूसरे कामों में लगे रहते हैं (सरकारी कागजों को पूरा करने के लिए)। ऐसे में, वहाँ भेजने पर तो बालक गाली-गलौच ही सीख सके हैं। सरकारी स्कूल में आजकल बच्चे जा किसके रहे हैं। इन स्कूल में सिर्फ गरीबों तथा मवालियों के बच्चे पढ़न जावे हैं। जो जाते हैं वे खिचड़ी और वजीफ़े भर के लिए जावे हैं।”

वहीं चाय बेचने वाले सज्जन का कहना है, “मेरे बच्चे अच्छे-खासे हरियाणा बोर्ड के स्कूल में पढ़ रहे थे पर मुझे पब्लिक (रिश्तेदारों और जानकारों) ने जीने ना दिया। डेली (प्रतिदिन) ताने देते। कोई कुछ तो कोई कुछ कहता। बोलते यदि बच्चों का भविष्य बणाणा है तो सीबीएसई में डालो। अरे क्या करोगे पैसे जोड़ के?”

अर्थात् यदि कोई अपने बच्चों को सरकारी अथवा हिन्दी माध्यम के स्कूल में पढाता है, तो आर्थिक उलाहनों का शिकार होता है। उसे या तो लोग कंजूस या आर्थिक रूप से कंगला घोषित करते हैं। इसी तरह की स्थिति आरुणी की माँ के केस में भी देखने को

मिली, जब उसने अपनी बहन के बच्चों की भाँति अपने बच्चों को भी क्रिश्चियन स्कूल में डलवाने की जिद की। विपिनचंद्र ने तो साफ कह दिया कि वह हर कीमत में अपने बच्चे को प्रतिष्ठित ब्राँड के स्कूल में ही डालेगा।

उच्च-मध्यम वर्ग के बच्चे किस प्रकार सरकारी स्कूल के अनुभव से अछूते हैं, इस बात का पता इससे लगता है कि जब अति-विशिष्ट कहलाने वाले स्कूल के बच्चों से शोधकर्ता ने सरकारी स्कूल के बच्चों के बारे में पूछा तो उन्होंने कुछ इस प्रकार का से जबाब दिया मानों वे उनके परिवेश के बाहर की व्यवस्था हो। उनका जबाब कुछ इस प्रकार था, “सुना है सरकारी स्कूल के बच्चे ‘रूढ़ भाषा’ का इस्तेमाल करते हैं।”

यह जवाब किसी-भी तरह से उनकी अनुभव-सम्पन्नता को नहीं दर्शाता। यह वाक्य स्पष्ट करता है कि एक ही क्षेत्र में दो अलग-अलग स्कूलों के बच्चे एक-दूसरे की व्यवस्थाओं से अछुते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उच्च वर्ग को सरकारी और हिन्दी माध्यम के द्वंद्व से गुजरना ही नहीं पड़ता। उनके लिए उच्च स्तर के माने जाने वाले प्राइवेट स्कूलों में स्थायी रूप से आरक्षण उपलब्ध है।

अतः उक्त विश्लेषण स्पष्ट करता है कि भारतीय समाज में व्यक्ति अपने बच्चों के स्कूल का चुनाव अपनी आर्थिक एवं सामाजिक हैसियत के अनुरूप करते हैं। अब वो चाहे सरकारी स्कूल हों या विशिष्ट माने जाने वाले निजी स्कूल, स्कूल के चुनाव के सन्दर्भ में भी गाँव के लोग कहते हैं, "जितना गुड डालोगे उतना मीठा होगा।" अतः स्पष्ट होता है कि स्कूल का चुनाव आर्थिक हैसियत को दर्शाता है अतः किसी व्यक्ति का बच्चा किस स्कूल में पढ़ता है, यह उसकी आर्थिक प्रतिष्ठता का सूचक है और इस कारण ही स्कूल में दाखिले के लिए सब कुछ दाँव पर लगाया जाता है। नर्सरी कक्षाओं में प्रवेश के सम्बन्ध में होने वाले आन्दोलनों और उनमें प्रवेश के लिए मचने वाली मार-काट के पीछे भी यही कारण है।

औपचारिक शिक्षा के सम्बन्ध में लोगों के अपने अनुभव-

औपचारिक शिक्षा को लेकर जन-सामान्य के अपने व्यक्तिगत अनुभव भी स्कूल के चुनाव को प्रभावित करते हैं। बच्चों के लिए स्कूल का चुनाव करने में इस बिंदु ने एक सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका सबसे क्रूर रूप अभिभावक विपिनचंद्र के केस में दिखा, जिसने अपने बच्चे का 'तथाकथित भाषा-शुद्धिकरण' करने के लिए उसे डेढ़ वर्ष की अवस्था में इंग्लिश मीडियम पालनाघर (क्रच) में दाखिला दिलवा दिया। अंग्रेजी माध्यम का क्रच अर्थात् एक ऐसा पालनाघर (क्रच), जिसकी संचालिका बच्चों के साथ वार्तालाप हेतु अंग्रेजी भाषा

के साथ-साथ अंग्रेजियत के तौर-तरीकों का प्रयोग करती है। इस बात को विस्तार से 'तथाकथित भाषा-शुद्धिकरण' के बिंदु के साथ विचार करेंगे। यहाँ तो हम उन पहलुओं पर विचार करेंगे, जो माता-पिता को इस दिशा में कदम बढ़ाने को मजबूर करते हैं।

सर्वप्रथम, हम रमेश के पिता अशोक कुमार के व्यक्तिगत अनुभवों पर विचार करते हैं। अशोक कुमार ने अपनी कमजोर अंग्रेजी को देखते हुए ही उच्च शिक्षा में जाने के स्थान पर आई.टी.आई. कोर्स करने का निर्णय किया। उनके अपने शब्दों में, "हम (वह और उसके गाँव के साथी) जब पहली दफ़े कॉलेज गए तो क्लास में लेक्चरर आकर अंग्रेजी में क्या बोल गया, हमें कुछ समझ में ही नहीं आया। मैंने निर्णय किया कि मैं कॉलेज ना जाकर आई.टी.आई. जाऊँगा। मेरे साथ कुछ और साथी भी आ गए। मेरे जो साथी कॉलेज में टिके रहे, उनमें से शायद ही कोई कामयाब हुआ हो। कोई फ़स्ट इयर में फ़ेल होकर बाहर आया तो कोई सेकंड इयर में।"

अजय कुमार के ये अनुभव दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर राम जी दुबे के व्यक्तिगत अनुभव से मिलते-जुलते हैं। इसका वर्णन उन्होंने अपनी आत्म-कथा 'अध्यापक का सफ़रनामा' में किया है। "मैंने अंग्रेजी की बाधा को पार किया" नामक अध्याय में बताया गया है कि किस प्रकार कक्षा में बैठने के बाद 40 मिनट काटने ही भारी पड़ते थे। सिर्फ़ पार्लियामेंट, प्रेसिडेंट, सोवरेनिटी, जैसे शब्दों को सुन कर सिर्फ़ अंदाजा भर लगा पाते थे कि यह राजनीति विज्ञान की कक्षा है। इसी प्रकार जब कानों में अकबर-बाबर सुनाई पड़ता था तो पता लगता था कि यह इतिहास है। वे बताते हैं कि कक्षा में दूसरे विद्यार्थी से विषय के बारे में पूछ रहे थे, तभी शिक्षक ने उन्हें खड़ा कर दिया,

तो वे सकपका गए और बोले “आई नहीं हई” अंग्रेजी भौजपुरी का मिला जुला शब्द उन्होंने आगे बताया कि किस प्रकार वे और उनके साथी भाषा की वजह से कॉलेज में मजाक के पात्र बनते थे। एक रोज उन्होंने कॉलेज छोड़ने का निर्णय किया। वे कॉलेज से तंग आकर अपने बड़े भाई साहब के पास गए और रोते हुए किसी हिन्दी माध्यम के कॉलेज में दाखिला दिलाने का आग्रह किया। बदले में भाई साहब ने मुँह से कम और लात-घुँसों से ज्यादा बातचीत की। जो हाथ में आया उसी से पिटाई की और आदेश जारी किया कि खबरदार जो अंग्रेजी से डर कर भागे। बड़े भाई साहब ने कहा, “बेशक फेल हो जाओ, पर डटे रहो अंग्रेजी के मैदान में।” अंग्रेजी पढ़ना मजबूरी हो गयी। यदि उस दिन प्रो. रामजी दुबे अंग्रेजी से डर कर कॉलेज छोड़ देते तो क्या आज दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हो सकते थे? यदि योगेश के पिता अंग्रेजी की बाधा पार कर लेते तो क्या वे मामूली टेकनिशियन ही रहते? एक अंग्रेजी प्रोफेसर को टेकनिशियन और टेकनिशियन को प्रोफेसर बना सकती है। इतना ताकतवर बना दिया है हमारे समाज ने इस विदेशी भाषा को!

रमेश के पिता ने आगे बताया, “मेरे अनुभव की इमारत तब मजबूत हुई, जब मेरा बड़ा लड़का बी-फार्मा का कोर्स बीच में छोड़ कर आ गया। मैंने अपने बच्चों से यह बात कह दी है कि यदि आगे पढ़ना है तो इंग्लिश पर ध्यान देना ही पड़ेगा। यह बात लड़की के समझ में तो आ गई, पर लड़कों के गले ना उतरी। हम (माता-पिता) तो पैसे ही खर्च कर सकते हैं।”

रमेश की माता ने अपने अनुभवों को बताया, “अंग्रेजी कठिन है तो हिन्दी कौन-सी आसान है। हिन्दी में भी तो कठिन कठिन शब्द होते हैं।” रमेश की माता का यह कथन शिक्षाविद् श्री कृष्णकुमार की पुस्तक *विद्यालय की हिन्दी* में उठाई गई समस्या की पुष्टि करता है। न केवल अंग्रेजी, अपितु अतिसंस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी आम लोगों की समझ के बाहर है। रमेश के माता-पिता के अनुभव से स्पष्ट होता है कि यदि उच्च-शिक्षा की तरफ कदम बढ़ाना है तो “भाषा, वो भी इंग्लिश को तो मजबूत करना ही पड़ेगा नहीं तो छोटे-मोटे कोर्स करके ही रह जाओगे।” अभिभावक मनोज जो हिन्दी के पत्रकार हैं तथा इतिहास विषय के अच्छे जानकार हैं। जामिया विश्वविद्यालय से एम.ए. (इतिहास) में स्वर्ण पदक हासिल करने वाले मनोज का कहना है, “आज इंग्लिश में गिटपिट करना फैशन हो गया है, इंग्लिश नहीं तो हिंग्लिश बोलिए। हाय-बाय कीजिये, तभी आप आधुनिक कहलाओगे। पर क्या करें यही वक्त की ज़रूरत बन गयी है। यदि आप इसके अनुरूप नहीं हैं तो बैकवर्ड कहलाएँगे। हम तो किसी तरह झेल रहे हैं पर क्या हम अपने बच्चों को बैकवर्ड कहलाने के लिए छोड़ दें?” विपिनचंद्र, जो कॉलेज और विश्वविद्यालय में किसी तरह खींच-तान कर इंग्लिश में पास हो गया। पर जैसे ही जॉब मार्केट में आया उसको अंग्रेजी विषय की अहमियत का ज्ञान हुआ। उसने बताया, “अनुसूचित जाति आरक्षण का फायदा होने के बावजूद, कभी-भी ज्यूसिसरी की परीक्षा पास नहीं कर सका, क्योंकि हरियाणा में ज्यूसिसरी की परीक्षा होती ही इंग्लिश में है। यदि दूसरे राज्यों में कहीं हिन्दी में परीक्षा होती भी है, तो पूछे गए प्रश्नों के हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी शब्दावली को लेकर इतनी समस्याएँ होती हैं।” वक्त के साथ विपिनचंद्र ने यह भी सीख लिया कि किस प्रकार इंग्लिश उसके लिए फायदेमंद है। कोर्ट में आने वाले मामलों में लोग वकीलों के चक्कर में इसलिए पड़ते

हैं क्योंकि उन्हें अनजान भाषा में चलने वाली प्रक्रिया समझ में ही नहीं आती। इसलिए विपिनचंद्र अंग्रेजी की व्यवस्था से उत्पीड़ित होने के बावजूद अंग्रेजी का हिमायती है।

यही किस्सा केन्द्रीय शिक्षा संस्थान के बी.एड. परीक्षा की गोल्ड-मैडलिस्ट बबीता के साथ भी घटा। उनके अनुसार “प्राइवेट स्कूल में साक्षात्कार के दौरान पहला प्रश्न ही यही होता था कि आपका मीडियम क्या है? आपने किस बोर्ड से स्कूलिंग की है? सरकारी स्कूल वाले तो घोषित तौर पर हिन्दी मीडियम के कहलाएँगे। चाहे उन्होंने अंग्रेजी पर कितनी ही महारत हासिल कर रखी हो। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक देते ही बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता था। आपका गोल्ड मैडल धरा-का-धरा रह जाता है।” वाही रविन्द्र, जो पेशे से वकील है, के अनुसार, “अंग्रेजी माध्यम कल्चर की वजह से हमारे बच्चे अपने संस्कारों से विमुख हो रहे हैं। पर क्या करें? हमें भी भेजना ही पड़ता है, आखिर जमाने की दौड़ में भी तो रहना ही है। हिन्दी के साथ हमारा गुजारा डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट में तो हो जाता है पर कल को हाईकोर्ट या सुप्रीमकोर्ट में प्रैक्टिस करना चाहें तो हम नहीं कर सकते। भाषा हमारी सीमा तय कर देती है।” इस प्रकार हम देखते हैं कि हरेक माता-पिता के पास व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव हैं जो उसे प्रेरित करते हैं कि वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में ही पढाएँ।

अंग्रेजी मीडियम स्कूल के माध्यम से हर कोई अपना जुड़ाव ऊपर के एलिट वर्ग के साथ जोड़ कर देखता है। जितने उच्च स्तर के स्कूल में आप अपने बच्चों का दाखिला करवाओगे उतने ही एलिट वर्ग के निकट पहुँचे हुए माने जाओगे। नर्सरी स्कूल में दाखिले की लड़ाई वास्तव में तथाकथित एलिट वर्ग में अपने आप को स्थापित करने का संघर्ष है।



Sometimes the chains that prevent us from being free are more mental than physical

अध्याय 26

भाषा के शुद्धिकरण एवं संस्कृतिकरण के साधन के रूप में विद्यालय

'संस्कृतिकरण' की अवधारणा का प्रतिपादन समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने किया है। श्रीनिवास के अनुसार 'संस्कृतिकरण' वह प्रक्रिया है जिसमें निम्न समझी जाने वाली जातियाँ उच्च समझी जाने वाली जातियों के तौर-तरीकों को अपनाती हैं। परंतु शोधकर्ता ने अपने इस शोध में पाया कि जातियों का 'संस्कृतिकरण' नहीं अपितु निम्न वर्ग का 'साँस्कृतिक चलन' उच्च एवं सम्भ्रांत वर्ग की तरह हो रहा है। वे समाज का उत्कृष्ट भाग माने जाने वाले सम्भ्रांत वर्ग के रहन-सहन, बोल-चाल को अपनाना चाहते हैं। 'हाई सोसाइटी' में जाकर उसके अनुरूप

आचरण करने और उनके कदम-से-कदम मिला कर चलने के लिए इंग्लिश जरूरी है, ऐसा माहौल आजकल बना दिया गया है।

शोध के दौरान प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी समझ में आने वाली भाषा हो या ना हो, पर स्टेटस की भाषा तो अवश्य ही बना दी गई है। यही अंग्रेजी के माध्यम से संस्कृतिकरण का आधार भी है।

आइए तनिक विचार करें -

आरुणी के अनुसार, "यदि हाई सोसाइटी में स्टैंड करना है तो अंग्रेजी आना जरूरी है।" भिड़की गाँव में चल रहे प्राइवेट स्कूल में अवलोकन तथा प्रचार्य के साक्षात्कार के दौरान पाया कि वे अपने स्कूल का पूरा स्टाफ फरीदाबाद से लाते हैं। शोधकर्ता ने जब प्राचार्य से इसका स्पष्टीकरण मांगा तो उनका जबाब था, "ऐसा नहीं कि गाँव में क्वालिफाइड लोग नहीं हैं। पर वे जिस तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं वह भाषा हमारे 'स्कूल के कल्चर' के अनुरूप नहीं है। गाँव के लोग 'अड़े-तडे' (बोलने का ग्रामीण लहजा) करके बात करते हैं। इसलिए हमारी कोशिश रहती है कि हम या तो अपना टीचिंग स्टाफ़ फरीदाबाद से ही बुलवाएँ अथवा पास के शहर के सीबीएसई पासआउट को ही नियुक्त करें।" फरीदाबाद से आया हमारा स्टाफ़ अंग्रेजी या

शहरी हिन्दी का प्रयोग करता है। यहाँ (गाँव) के लोगों से इंग्लिश की तो उम्मीद ही मत करो, हिन्दी जो हमारी मातृभाषा है उसे भी ढंग से नहीं बोल पाते। यह सब देखते हुए हमने दो निर्णय लिए, एक तो हमारा पूरा-का-पूरा स्टाफ़ ही फरीदाबाद से आएगा। दूसरा, हम छोटी कक्षा से बच्चों को लेंगे और उन्हें ही आगे बढ़ाएँगे। हम बीच की कक्षाओं में, जैसे- छठी, सातवीं में बच्चों को नहीं लेंगे। ”

शोधकर्ता पुस्तक के पाठकों से पूछना चाहता है कि तथाकथित-सरकारी-शहरी-हिन्दी यदि हमारी राजभाषा उर्फ़ राष्ट्रभाषा है तो भिड़की की ब्रज प्रभावित हिन्दी, बुन्देलखंडी-हिन्दी आदि क्या है? इसी प्रकार तमिल तेलगु मलयालम असमीया क्या ये सब गैर-राष्ट्र भाषाएँ हैं? गाँव में खुले सीबीएससी संस्था के स्कूल के प्रचार्य द्वारा यह कहा जाना कि इस गाँव के लोगों को तो राष्ट्रभाषा (राजभाषा) हिन्दी भी बोलनी नहीं आती। यह किस बात को प्रमाणित करता है ? छठी-सातवीं क्लास के दाखिले में बच्चों की भाषा किस तरह बाधा बन कर उभरती है। इस स्कूल में चतुर्थ श्रेणी और हैल्पर से आगे उसी गाँव का कोई व्यक्ति क्यों नहीं नियुक्त हो सकता ? जब कि गाँव में बी. ए. बी एड तो दूर प्रतिष्ठित संस्थाओ से इंजिनियरिंग पी एच डी करे लोग भी है। उससे भी बड़ा प्रश्न, जब शिक्षक के पद पर नहीं हो सकता तो चतुर्थ श्रेणी और हैल्पर के पद पर उस गाँव का कोई व्यक्ति कैसे नियुक्त

हो जाता है? चतुर्थ श्रेणी और हैल्पर के पद पर काम करने वालों को भी तो स्कूल वाले फरीदाबाद-दिल्ली से बुला सकते थे। पर उन्होंने गाँव वालों को इन पदों पर क्यों नियुक्त किया है?

जनाब जबाब यह है कि ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी, संथाली आदि हिन्दी, जाहिल और गँवारों की हिन्दी हैं। शहरी-मानक-सरकारी-हिन्दी ही राजभाषा उर्फ राष्ट्रभाषा है। गँवारों की हिन्दी में चतुर्थ श्रेणी स्तर का काम तो हो सकता है पर प्रथम श्रेणी का शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का काम, सरकारी काम इसमें नहीं हो सकता है। ज्ञान-विज्ञान तो सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों की भाषा में हो सकता है। जिसमें पहली श्रेणी में अंग्रेजी और दूसरी श्रेणी में मानक-सरकारी-अनुवाद-वाली-हिन्दी आती है। इस बात पर बहस करते हुए सुप्रीम कोर्ट के प्रसिद्ध वकील और वर्कर सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता राजेश त्यागी जी इस बात को स्वीकार करने के लिए ही तैयार नहीं हैं कि तथाकथित तौर पर बोली कहलाने वाली इस हिन्दी में फिजिक्स (भौतिकी) जैसे आधुनिक विषयों को पढ़ाया भी जा सकता है। मानो इन बोली कहलाने वाली हिन्दी में यदि भौतिक जैसे विषय को पढ़ाएँगे तो गेंद उछलने के बाद नीचे जाने के बजाए ऊपर की तरफ चली जाएगी। राजभाषा हिन्दी पर काम करने वाले लोचन मखिजा जी के अनुसार, “चूँकि हिन्दी हमारी मातृभाषा है तो क्या समृद्ध हिन्दी की कल्पना उसकी अपनी स्थानीय बोलियों, जैसे- ब्रज, बुंदेली, अवधी, राजस्थानी, मेवाती आदि की समृद्ध विरासत के बिना की जा सकती है? हम सभी यह जानते हैं कि अपनी इन स्थानीय बोलियों

के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि की विराट विरासत लेकर ही हमारी हिन्दी एक राष्ट्रीय स्वरूप हासिल कर सकी है। फिर हमारे विद्यालयों में हिन्दी माध्यम के अंतर्गत इन स्थानीय बोलियों को भी समाहित करना चाहिए। इसी प्रकार, केवल हिन्दी ही क्यों भारत की सभी भाषाओं, जैसे मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड आदि को माध्यम बनाते समय भी उन क्षेत्रों की स्थानीय बोलियों की शाब्दिक संपदा भी माध्यम के रूप में समाहित होनी चाहिए। यह कार्य हमें ठीक उसी प्रकार से करना होगा, जिस प्रकार से चीन, रूस, जापान, फ्रांस आदि देशों ने औपचारिक रूप से अपनी एक-एक भाषा तो विश्व के सामने रखी है, परंतु उसमें अपनी स्थानीय बोलियों को भी समुचित रूप से शामिल किया है। वही एक अन्य राजभाषा अधिकारी के अनुसार उनके ऊपर एक बेवजह दबाव होता है कि वे हिन्दी में ऐसे-ऐसे शब्द गढ़े जो परिष्कृत हो और आम लोगों की समझ से परे हो। लोग भूलवश इसी शहरी-मानक-हिन्दी को हिन्दी समझने की भूल करते हैं। इस प्रकार हिन्दी को मैथली, भोजपुरी, ब्रज आदि में विभक्त कर कमजोर बनाने की साजिस चल रही है।

भिड़की गाँव में गैर मान्यता के आधार पर चलने वाले 'सेमी-मीडियम' (अर्थात् हिन्दी-अंग्रेजी दोनों माध्यम) स्कूल के प्रबंधक ने भी कहा कि शहरी इलाकों के शिक्षक की हिन्दी शुद्ध होती है। जबकि भाषा अपनी संचित विरासतों से समृद्ध होती है। भारतीय उपखंड की सभी भाषाएं एक दूसरे की पूरक हैं न कि प्रतिद्वन्धि। अतः हिन्दी भारत की सभी बोलियों का मिला जुला रूप है।

गांधी जी ने उसके लिए हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया है। गांधी जी कि हिन्दुस्तानी हिन्दी और उर्दू में विभक्त नहीं है और उसमें तमिल तेलगू समेत सभी भाषाओं का ही मिला जुला स्वरूप है।

अतः भारत की वर्तमान औपचारिक शिक्षा व्यवस्था, यहाँ पर ज्ञान-विज्ञान और चेतना को जागृत करने का साधन नहीं अपितु भाषा के शुद्धिकरण का साधन है। मुद्दा भाषा सीखने का नहीं, भाषा के शुद्धिकरण का है और यह शुद्धिकरण, सिर्फ बच्चे का नहीं, अपितु बच्चे के माध्यम से उसके समस्त परिवार का और परिवार के माध्यम से सम्पूर्ण समुदाय का है। इस शुद्धिकरण की प्रक्रिया में ना केवल व्यक्ति अपनी मूल भाषा से विमुख होता है अपितु उसमे रचे-बसे ज्ञान से भी हाथ धो बैठता है।

आदिवासियों की जड़ी-बूटियों पर काम कर रहे डॉ. दीपक आचार्य के अनुसार आदिवासियों का खत्म होना यानि ज्ञान की एक परम्परा का खत्म होना है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आदिवासियों के जड़ी-बुटी ज्ञान' में स्पष्ट किया है कि आदिवासी को न केवल अपने क्षेत्र की वनस्पति का ज्ञान होता है अपितु वे प्रयोगधर्मी भी होते हैं। नित्य नए प्रयोगों के द्वारा वे अपने ज्ञान को परिवर्धित

करते हैं। पर चूँकि उनकी भाषा शहरी नहीं होती, स्कूल के मानक के अनुरूप नहीं होती अतः स्कूल सी/C के प्राचार्य ने साक्षात्कार में कहा कि आदिवासियों के पास दिमाग ही नहीं होता। सोचने की बात है कि यदि एक प्राचार्य स्कूल के बच्चों के बीच ऐसा कह रहा है तो बच्चों का अपनी साँस्कृतिक धरोहरों के प्रति क्या दृष्टिकोण उभरेगा। बोलियों को हिकारत की नज़र से देखना कैसा साँस्कृतिक प्रभाव छोड़ेगा? यह हिकारत किस वर्ग के साँस्कृतिक वर्चस्व को बनाये रखती है? विशिष्ट माने जाने वाले स्कूलों के प्राचार्यों की मातृभाषा को लेकर बेशक समझ अस्पष्ट हो, पर किस तरह भाषा को 'साँस्कृतिक वर्चस्व' के औज़ार के रूप में प्रयोग किया जाना है, यह उन्हें अच्छी तरह से आता है। स्कूल का ध्येय यदि रचनात्मक तरीके से सीखना होता तो गाँव के शिक्षकों तथा गाँव की भाषा को स्कूली परिसर में स्थान मिलता पर स्कूल का ध्येय 'साँस्कृतिकरण' है। अर्थात् एक विशेष लहजे की शहरी उच्च वर्ग के तरीके की इंग्लिश में बोल-चाल और आचरण को अपनाना है।

ऐसा नहीं है कि यह एक-तरफा क्रिया है, खुद गाँव के अभिभावक नहीं चाहते कि उनके बच्चे हिन्दी और उसकी बोलियों का इस्तेमाल करें। जैसा कि पलवल के इंटरनेशनल कहलाने वाले स्कूल के प्राचार्य से शोधकर्ता की वार्ता के दौरान अभिभावक ने आते ही प्राचार्य से यह माँग रखी कि प्राचार्य उसके बच्चों की भाषा को सुधारने पर विशेष ध्यान दें। निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने वाला ग्रामीण अभिभावक भी अंग्रेजी और शहरी उच्च वर्गीय संस्कृति के अनुरूप अपने बच्चे का

व्यक्तित्व-निर्माण करवाना चाहता है। फरीदाबाद स्थित सामान्य दर्जे के स्कूल प्राचार्य ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा, “जिस माता-पिता के पास पैसा आ गया है वो अपने बच्चों को हाई सोसाइटी में भेजने लगा है और पैसे के बल पर विशिष्ट कहलाने वाले प्राइवेट स्कूलों में भेजने लगा है।” यहाँ हाई सोसाइटी का अर्थ क्या है? यदि नहीं समझ आता तो बड़े-बड़े शहरों में पब्स-बार में चलने वाली पार्टी का एक नजारा ले ले। फ्रिंज इलाके के अवलोकन में यह बात निकल कर आई कि नव-धनाड्य हुए माता-पिता का अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने का प्रथम उद्देश्य ही ‘तथाकथित भाषा शुद्धिकरण एवं संस्कृतिकरण’ ही है। विशिष्ट समझे जाने वाले निजी स्कूल में अपने बच्चों को भेजने की प्रमुख वजह यही है। जब धनाड्य वर्ग इस दिशा में कदम बढ़ाएँगे तो उनसे विपन्न उनके पड़ोसी कैसे पीछे रहेंगे?

इसी क्रम में एक नया सवाल पैदा हुआ कि लोगों को इस संस्कृतिकरण की आवश्यकता ही क्यों पड़ी?

इसका जबाब है स्कूल ही बच्चे का भविष्य तय करता है। पर कैसे?

इस बात को समझने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे को देखना होगा।

किसी भी देश का स्कूली ढाँचा उसकी सामाजिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब होता है। स्कूल की दशा, अर्थव्यवस्था की दशा ही तय करती है। शोधार्थी अंजनी कुमार ने भी अपने शोध में पाया कि स्कूल में विद्यार्थियों का झुकाव कला-विषयों से तेजी से हट रहा है। विद्यार्थी कला जैसे विषयों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते। यह बात इस शोध के दौरान भी देखने को मिली। शिक्षकों का कहना है कि विद्यार्थी कला ही नहीं संस्कृत, हिन्दी जैसे विषयों को भी गंभीरता से नहीं लेते। आरुणी जब अपने दोस्तों के घर जाती है और वहाँ जब उनके परिवार के लोगों को पंजाबी में बोलते पाती है तो आरुणी उस ओर ध्यान भी नहीं देती। क्या बोलते हैं, क्या नहीं बोलते, इससे कोई मतलब नहीं रखती। उसके लिए तो अंग्रेजी ही महत्वपूर्ण है, वह अंग्रेजी भाषा को मजबूत करने के इंग्लिश फिल्मों भी देखती है। मॉल आदि में जाती है। वहाँ लोग कैसे बोलते हैं उसे बड़े ध्यान से देखती है। क्यों? अरुणी के अपने शब्दों में, “पंजाबी जानेगे तो क्या फायदा होगा। इंग्लिश जानेगे तो कल को जॉब में, यूनिवर्सिटी में फायदा होगा” स्पष्ट है अंग्रेजी फायदा पहुँचाने की भाषा तो बना ही दी गई है। जब बात फायदे और नुकसान की आ जाती है तो स्पष्टतः इस बात से जुड़ा कोई आर्थिक पेंच भी होगा। इस आर्थिक पेंच को समझने के लिए हम भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे का विश्लेषण करेंगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में हुआ परिवर्तन का भाषा शुद्धिकरण पर प्रभाव

अर्थव्यवस्था के आइने में साँस्कृतिक झलक की तलाश में संलग्न अतिरिक्त पृष्ठ देखें। उसके बाद ही हम समझ पाएँगे कि एम. एन. श्रीनिवास की निम्न से उच्च जातियों की तरफ होने वाली 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा को निम्न से उच्च वर्ग की तरफ साँस्कृतिक अवधारणा से बदलने की क्यों जरूरत है। शोधकर्ता यह नहीं कहता कि शेष भारत में भी यह बात लागू होगी पर शोधकर्ता इतना तो कहता है कि जिस क्षेत्र में उसने यह शोधकर्ता किया वहाँ तो यही बात उभर कर आई है। इस बात को स्पष्ट करने से पूर्व अर्थव्यवस्था की तस्वीर प्रस्तुत करने वाले इन आँकड़ों को देखना होगा।

वित्त वर्ष 2011-12 में, एक तरफ जहाँ अर्थव्यवस्था की संवृद्धि (ग्रोथ) के साथ सेवा क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र का अर्थव्यवस्था में योगदान बढ़ कर लगभग 83% का है। सेवा क्षेत्र का अपना योगदान 59% है। कृषि क्षेत्र का अपना योगदान महज 17% है। यह स्थिति वित्त वर्ष 1950-51 से पूर्णतः भिन्न है। वह वर्ष जब समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने अपने दक्षिण भारत के गाँवों में किये गए शोध-अनुसन्धान के आधार पर 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा का प्रतिपादन किया था। तब कृषि का योगदान 59% के लगभग था। आज स्थिति उसके ठीक विपरीत है। 59% का योगदान कृषि-क्षेत्र नहीं, अपितु सेवा-क्षेत्र कर रहा है। अर्थव्यवस्था में आए इस बदलाव का सम्बन्ध 'संस्कृतिकरण' से कैसे है? इस बात को समझने के लिए हमें

अर्थव्यवस्था की व्यावसायिक संरचना को भी देखना होगा। जहाँ जीडीपी अर्थात् उत्पादन की संरचना में आमूलचूल परिवर्तन आया है, वहीं रोजगार संरचना में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। अभी-भी देश की जनसंख्या का लगभग 55-60% हिस्सा कृषि क्षेत्र पर निर्भर है।

इस प्रकार 18% आय अर्जित (= जीडीपी) करने वाला कृषि क्षेत्र 60% जनसंख्या निर्भर है। कृषि क्षेत्र की जीडीपी में लगातार गिरती तुलनात्मक स्थिति तथा सेवा और औद्योगिक क्षेत्र की जीडीपी में बढ़ती तुलनात्मक स्थिति, जन-साधारण को कृषि-क्षेत्र को छोड़ सेवा-क्षेत्र में जाने को प्रेरित करती है। आप पिछले 10 वर्षों में कृषि की वृद्धि दर को देखें, जो कि लगभग स्थिरता (स्टेगनेशन) की हालत में है। दो दफे तो यह ऋणात्मक भी रही है। अतः जब कृषि ही बदहाल है तो उस पर आधारित समाज का आदर्श भी बदला। गाँवों से शहरों में पलायन के बाद सभी वर्गों के लोगों ने सेवा-क्षेत्र तथा औद्योगिक-क्षेत्र में हाथ आजमाया। पर इसमें भी उसे मिला निम्न दर्जे का कार्य, क्योंकि उपरी दर्जे (अफसर स्तर) पर कार्य के योग्य होने हेतु शिक्षित, कुशल होने की जरूरत है। उच्च स्तर की शिक्षा हासिल करने के लिए 'अंग्रेजी भाषा की सुरंग' में से होकर गुजरना पड़ता है। आजादपुर स्लम में रहने वाले एक व्यक्ति ने बताया, "अब जाति तो नहीं मायने रखती, हाँ क्वालिफिकेशन (अहर्ता) जरूर मायने रखती है। उच्च डिग्री वाली पढाई वही कर सकता है, जिसके पास अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो।" इस व्यक्ति के वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने की पहली शर्त ही अंग्रेजी है।" फरीदाबाद के स्लम इलाके की एक महिला, जो अपने बच्चे को एक निम्न दर्जे के गैर-मान्यता वाले स्कूल में छोड़ने जा रही थी, उसने पूछने पर जबाब दिया, "अंग्रेजी पढ़ेगा तब ही बड़ा बनेगा।"

जैसाकि सेन और गुप्ता कमेटी से भी स्पष्ट किया है कि औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में काम करने वाले लोग अधिकतर असंगठित क्षेत्र से हैं। आर्थिक सर्वेक्षण की इस रिपोर्ट को देख कर भी यह पता लगता है कि 85% लोग असंगठित क्षेत्र में हैं, जिनकी आमदनी काफी कम है। उदाहरण के तौर पर एक मामले में चाय बेचने वाले भैया भी सेवा क्षेत्र में हैं, पर उनकी आर्थिक स्थिति सेवा क्षेत्र में कार्यरत उच्च पदों पर काम करने वाले प्रोफेसर, उच्च अधिकारी, कोर्ट के जज, हाईकोर्ट तथा सुप्रीमकोर्ट के वकीलों तथा इसी प्रकार के अन्य रोजगारयुक्त लोगों से काफी कम है। आबादी का एक बड़ा हिस्सा अल्प-आय वाले असंगठित क्षेत्र पर निर्भर करता है। इस के पास आमदनी का नगण्य हिस्सा है। संगठित क्षेत्र में कार्यरत वर्ग, जिसके पास आय का बड़ा हिस्सा है वह अंग्रेजी बोलने वाला शिक्षित वर्ग है। किसी ज़माने में अलीगढ़ से रोजगार की तलाश में आए रामफल उर्फ चाय बेचने वाले सज्जन, पहले फरीदाबाद की फैक्ट्री में मजदूर थे। बीच में काम छूट जाने की वजह से उन्होंने चाय बेचने का काम शुरू किया। आज उनकी भी इच्छा अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ा कर अफसर बनाने की है। अतः इन सज्जन के लिए अपने बच्चों को इन पदों तक पहुँचाना ही लक्ष्य है। तभी वह अपने बच्चों से कहते हैं, “आज की डेट में अंग्रेजी है क्या चीज, जो दो-चार क्लास पढ़ ले, वही बोल सकता है।” यही कारण व्यक्तिगत रूप से मातृभाषा को शिक्षा हेतु श्रेष्ठ मानने वाले अर्पिता के पिता का है। जब वे अपने नए दफ्तर में चारों ओर इंग्लिश बोलने वालों को ही पाते हैं तो उन्हें लगता है यदि उनके बच्चों को यह बोली नहीं आई तो वे इस उच्च समाज में आने पर हीनता के शिकार होंगे। रमेश के पिता अंत में रमेश का दाखिला हिन्दी माध्यम में करवाने को तैयार हैं पर वे साथ में यह हिदायत भी देते हैं, “वह फिर आगे अपनी बहन की भाँति किसी अच्छे कोर्स में नहीं जा पाएगा, बस भाई की भाँति छोटा-मोटा कोर्स ही कर पायेगा।”

सेवा-क्षेत्र के प्रतिष्ठित समझे जाने वाले पदों पर अंग्रेजी भाषा को बोलने वाले तथाकथित शिक्षित लोग विरजमान हैं। हर व्यक्ति का सपना इन पदों तक पहुँचना है और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही वे अंग्रेजी भाषा को अपनाने हेतु मजबूर हो गए हैं।

इसलिए उच्च शिक्षा-रूपी दूसरा कारण, पहले से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ही उच्च पदों तक का रास्ता प्रशस्त करता है। देश के सर्वोच्च विश्वविद्यालय और आई.आई.टी. जैसे संस्थानों में शिक्षण-कार्य पूर्णतः अंग्रेजी भाषा में होता है और इन संस्थानों में लगातार सीबीएसई अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की कामयाबी समाज में ये भ्रम पैदा करती है कि कामयाबी का रास्ता सीबीएसई का पाठ्यक्रम चलवाने वाले अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से होकर ही गुजरता है। दूसरा, लोगों के अपने अनुभव भी उन्हें प्रेरित करते हैं कि वे शुरू से अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में ही पढायें। जैसा कि रमेश के पिता अजय ने अपने अनुभव में बताया कि हमें कॉलेज में क्या पढाया गया कुछ समझ में नहीं आता था। इसी प्रकार उनके ज्येष्ठ पुत्र ने भी अंग्रेजी की वजह से पढाई समझ ना आने के कारण पहले साल में ही बी.फार्मा का कोर्स छोड़ दिया। एम्स (AIIMS) के विद्यार्थी का मामला देखें तो उसमें भी अनिल को अंग्रेजी में दिए जाने वाले लेक्चर समझ नहीं आते थे। फलस्वरूप, प्रथम वर्ष में ही सभी विषयों में फेल होने के बाद उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का निर्णय किया। कुछ ऐसा ही तमिल माध्यम स्कूल में पढ़ने वाली छात्रा एस. धारिया लक्ष्मी के मामले में हुआ। अंग्रेजी माध्यम में दी जाने वाली शिक्षा उसके समझ के बाहर लगी और धैर्य खो कर उसने आत्महत्या कर ली। यह कोई पहला मामला नहीं है। रमेश के पिता अजय को भी जब पता चला तो वे सब काम छोड़ अपने पुत्र के होस्टल पहुँचे। उन्होंने डबडबाई आखों से शोधकर्ता को बताया “जब कुछ दिनों तक इसका फोन नहीं आया, फोन पर बात करो तो सही से नहीं बोलता था, तब हमें कुछ डाउट-सा हुआ और मैंने उसके कॉलेज में फोन

कर उसका रिज़ल्ट पता किया। जब पता चला फेल है तो मैं सब काम छोड़ इसके कॉलेज भागा और उसी दिन उसका बोरिया-बिस्तर वापस ले आया।” नुइपा (NUIPA) के वर्तमान वी. सी. ने बेशक कन्नड़ माध्यम से पढ़ कर, उच्च शिक्षा के दौरान अंग्रेजी में महारथ हासिल की हो, पर ये सभी मामले बताते हैं कि विरले ही विद्यार्थी क्षेत्रीय भाषा माध्यम में पढ़ने के बाद उच्च शिक्षा में कामयाब हो पाते हैं। ये सभी अनुभव लोगों में यह विश्वास पैदा करते हैं कि उच्च शिक्षा में कामयाबी का सफर बिना अंग्रेजी के संभव नहीं है।

इस बात को लेकर जितने अस्वस्थ माता-पिता हैं, बच्चे उनसे कम परेशान नहीं हैं। बच्चों को भी अपने भाई-बहनों, आस-पड़ोस, कॉलेज, यूनिवर्सिटी जाने वाले उनके उम्र में बड़े (भाई-बहन समतुल्य) उनके आदर्शों के अनुभवों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि अच्छे विश्वविद्यालयों में शिक्षा पूर्णतः अंग्रेजी में होती है। उनमें भी यह विश्वास घर गया है कि उस नए वातावरण में एडजस्ट (समायोजित) करने हेतु भी अंग्रेजी की जरूरत है। इन मानदंडों की जानकारी उनके बड़े भाई-बहन और उनके आस-पड़ोस के आदर्श देते रहते हैं। यह भी एक तरह का व्यवस्थाजनित समाजीकरण ही है, जिसमें बच्चे नई व्यवस्था के साथ तालमेल बैठाने हेतु अपने तौर-तरीके में बदलाव लाते हैं। अर्पिता तथा रमेश की बहन भावना के केस में यही देखने को मिला। कुछ जागरुक माता-पिता, जैसे- विशाल, कच्ची उम्र से ही बच्चे का प्राथमिक समाजीकरण इस नई व्यवस्था के अनुरूप करता है।

तो एक बात निश्चित है कि माता-पिता और बच्चे (यदि निर्णय लेने की स्थिति में हैं तो) दोनों ही, अंग्रेजी माध्यम स्कूल का ही चुनाव करना चाहते हैं। पर इसके पीछे का कारण स्वयं अंग्रेजी माध्यम स्कूल नहीं है बल्कि राज-व्यवस्था, नौकरी की परिक्षाओं, विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी छाई हुई है। लोगों को लगता है कि जीवन का लक्ष्य माने जाने वाले पदों तक पहुँचने के लिए विश्वविद्यालय से वीजा लगता है। अंग्रेजी माध्यम स्कूल उस वीजे के लिए 'अंग्रेजी' रूपी पासपोर्ट प्रदान करने का काम करते हैं।

अंग्रेजी माध्यम स्कूल चुम्बक तो हैं पर ये प्राकृतिक चुम्बक नहीं हैं। ये बिजली से बने कृत्रिम चुम्बक के समान हैं जो तब तक ही आकर्षण रखता है जब तक इसमें बिजली प्रवाहित होती है। पर ये चुम्बक प्राकृतिक चुम्बकों से कहीं अधिक शक्तिशाली है। इन चुम्बकों के प्रभाव से ना केवल बच्चों, अपितु माता-पिता का भी समाजीकरण होता है। यह चुम्बक बच्चों के सम्पूर्ण साँस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन लाता है। यही चुम्बक तय करता है कि बच्चे किस तरह के लोगों से दोस्ती करेंगे, यही चुम्बक तय करता है कि किन जगहों पर लोग घूमने जाएँगे, यही चुम्बक तय करता है कि बच्चे घर के काम, खेती-बाड़ी आदि में हाथ बटाएँगे या नहीं। पर यह चुम्बक विद्यार्थी को उसके सम्पूर्ण साँस्कृतिक परिवेश से काट कर नए श्रेष्ठ समझे जाने वाले परिवेश के लिए तैयार करता है। इस प्रकार दुर्खाइम की यह बात स्पष्ट होती है कि स्कूल का काम सामाजिक भूमिकाओं के लिए तैयार करना है। औपचारिक उच्च शिक्षा की एजेंसी ने ना केवल विद्यार्थियों का अपितु सम्पूर्ण जन-समुदाय का समाजिकरण इस तरह से किया है कि यह एक आम धारणा बना दी गई है कि बिना अंग्रेजी के कामयाबी नहीं हासिल की जा सकती। श्रेष्ठ कहलाने वाली उच्च शिक्षा तक पहुँचने की पहली शर्त या

मानदंड अंग्रेजी है। इसलिए जब कोई अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति भी अपने बच्चों को दो लाइन अंग्रेजी के बोलते हुए देखता है तो अपनी मूँछों को ताव देता है तथा उसे आभास होता है कि वह स्वयं उच्च कहलाने वाले अंग्रेजी-भाषी तबके के साथ खड़ा हो गया है।

ग्रामीण क्षेत्र के कुछ जागरूक लोगों का मानना है कि लार्ड मैकाले वो शख्स है, जिसने इस देश में मानसिक गुलामी की नींव रखी। “अंग्रेज चले गए पर अपनी पूँछ यहाँ छोड़ गए।” यह ग्रामीण क्षेत्रों का आम जुमला है। पर वे लोग स्वतंत्रता के बाद की सरकारों को भी नहीं बख्शते।

इसका मूल कारण उच्च शिक्षा तथा प्रशासन में अंग्रेजी के बने रहने का है। प्रोमेश आचार्य ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि स्वतंत्रता के बाद लोगों का झुकाव तेजी से अंग्रेजी की तरफ बढ़ा है। कारण यह स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता के बाद नौकरी और उच्च शिक्षा के जो दरवाजे भारतीय लोगों के लिए खुले, उन नौकरियों के लिए अंग्रेजी अनिवार्य थी। यही स्थिति हम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देखते हैं। आज अच्छी माने जाने वाली हर शिक्षा सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध है। इस बारे में, न्यूपा के उपकुलपति ने कहा कि क्षेत्रीय भाषा माध्यम से डिग्री प्राप्त करके भी उच्च शिक्षा में अंग्रेजी का ज्ञान हासिल किया जा सकता है। लोगों ने अपने अनुभव से यह जाना कि भारत में जो माहौल है उसके अनुसार उच्च शिक्षण संस्थानों में सफल होने के लिए अंग्रेजी पर पकड़ मजबूत होनी चाहिए।

फरीदाबाद के मजदूर वर्ग के बीच कार्य करने वाले नरेश के अनुसार, “स्वतंत्रता के बाद उच्च शिक्षा की भाषा और प्रशासन की भाषा अंग्रेजी ही बनाये रखी गई। संविधान के माध्यम से पहले दस वर्ष के लिए अंग्रेजी को लागू रखा, फिर हिन्दी को जबरदस्ती गैर-हिन्दीभाषियों पर थोपने का

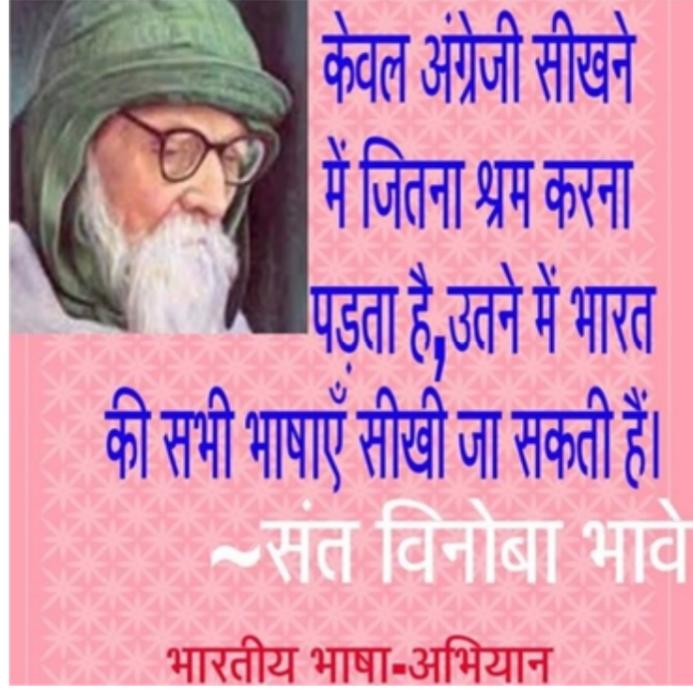
स्वांग रचा गया और भाषाई राजनीति करके उत्तर और दक्षिण की भारतीय भाषाओं को बिल्लियों की तरह आपस में लड़वाया गया और इसकी आड़ में उच्च-वर्ग तथा सत्ता-भोगी वर्ग की भाषा अर्थात् अंग्रेजी को समस्त भारत पर वास्तविक रूप में थोपने का कार्य किया गया, जैसे-जैसे शिक्षा का निजीकरण बढ़ा, वैसे-वैसे अंग्रेजी का दबदबा भी बढ़ता गया, क्योंकि बाजार में वही बिकता है जो दिखता है। अपनी भाषा में पढ़ा कर लोगों को शिक्षित करना मुश्किल है। पर अंग्रेजी के दो शब्द रटा कर का तोते की भाँति बुलवाना आसान है। इस प्रकार वे शिक्षा नहीं, अपितु शिक्षा का भ्रम पैदा करते रहे हैं। 90% निजी स्कूल यही कर रहे हैं। बाकी बचे 10% सिर्फ उच्च तथा उच्च-मध्यम वर्ग तक ही अपनी पहुँच बना सके हैं।”

नरेश के वक्तव्य को हम बोरजियो की संस्कृति पूँजी की संकल्पना से मूल्यांकित कर सकते हैं। औपचारिक उच्च (श्रेष्ठ कहलाने वाली) शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ मानव पूँजी का निर्माण ही नहीं, अपितु साँस्कृतिक पूँजी का संरक्षण भी है। श्रेष्ठ समझी जाने वाली औपचारिक उच्च शिक्षा की भूमिका तो 'साँस्कृतिक पुनरुत्पादन' के माध्यम से 'साँस्कृतिक पूँजी' का निर्माण करना है। 'साँस्कृतिक पुनरुत्पादन' से तात्पर्य, समाज के वर्चस्वशाली वर्ग के वर्चस्व को बनाये रखने के लिए है। वर्चस्ववादी वर्ग यह तय करता है कि समाज के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए किस प्रकार के ज्ञान, कौशल, क्षमता की आवश्यकता है और ज्ञान, कौशल, क्षमता तक पहुँचने के रास्ते को तय करने का अधिकार वर्चस्व में बैठे वर्ग के हाथों में है। जैसाकि कृष्ण कुमार की पुस्तक *शिक्षा और राष्ट्रवाद* को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी शिक्षा से सिर्फ क्लर्क वर्ग ही तैयार नहीं हुआ बल्कि तथा कथित शिक्षित कहलाने वाला एक छोटा-सा वर्ग भी तैयार हुआ, जो शासन, प्रशासन और शिक्षा-व्यवस्था के शीर्ष पर था। स्वतंत्रता के बाद इस वर्ग का वर्चस्व बना रहा। फलस्वरूप उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी ही बनी रही। इस बात को महात्मा गाँधीजी के शब्द और पुख्ता करते

हैं, जो वे हिन्द स्वराज में वर्ष 1909 में लिखते हैं, “एक साधारण एम. ए. पास व्यक्ति भी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता। हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करने का जरिया अंग्रेजी है। हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है।” सत्ता के शीर्ष पर यही वर्ग छाया रहा। इस संस्कृति पूँजी ने सामाजिक पूँजी का निर्माण किया। इस सामाजिक पूँजी ने अंग्रेजी भाषा बोलने वालों का एक समूह तैयार किया। यह समूह बेशक छोटा है पर शक्तिशाली है। समाज के शेष जन, अर्थात् अंग्रेजी ना बोल पाने वाला जन-समुदाय, उनके मूल्यों को अपने अन्दर समाहित करना चाहता है। यह जन-सामान्य के नए उपजे साँस्कृतिक मूल्य हैं। बिना अंग्रेजी के सफलता हासिल नहीं हो सकती यह उसकी धारणा है। “जो अंग्रेजी बोलेगा वह ही दहाड़ेगा” (अजित का पिता)। “जो बालक (व्यक्ति) अंग्रेजी पर मजबूत पकड़ रखता है, वह ही कामयाब होगा।” यह उसका विश्वास है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा समाज के स्तरीकरण का आधार बना दी गई है। समाज में अलग-अलग वैचारिक स्तर के अलग-अलग समूह होते हैं। जिनका पद-क्रम साँस्कृतिक पूँजी के केंद्र से दूरी के आधार पर तय किया जाता है। इस साँस्कृतिक पूँजी का संरक्षण आर्थिक पूँजी तथा राज-सत्ता करती है। इसलिए कोई वर्ग-विशेष आर्थिक रूप से संपन्न होता है तो वह अपनी एकजुटता साँस्कृतिक रूप से संपन्न वर्ग के साथ करता है।

जैसा कि मामले में एक व्यक्ति का कहना है कि विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षण की श्रेष्ठ समझी जाने वाले संस्थाओं में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का ही दबदबा रहता है। इसके आधार पर मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि ये स्कूल ही शेष 90% स्कूलों में पढ़ने वालों के लिए आदर्श तय करते हैं।

महात्मा गाँधीजी की मानें और आज के सन्दर्भ में उनके विचारों का विश्लेषण करें तो हम पाएँगे कि इन 90% स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे अपनी 90% ऊर्जा अंग्रेजी पढ़ने में ही खर्च करते हैं। जैसे-जैसे उच्च वर्ग से निम्न वर्ग की तरफ जाते हैं, इस 'उच्च-वर्गीय-अंग्रेजी' को पढ़ने का बोझ बढ़ता जाता है। अंततः इस शिक्षण व्यवस्था में वे ही लोग कामयाब होते हैं जो अंग्रेजी में महारत हासिल कर पाते हैं, जो कि यह पहले से ही तयशुदा उच्च वर्गीय लोग हैं। समाज में लोगों की छँटनी करने का काम अंग्रेजी के माध्यम से किया जा रहा है। शिक्षा में वास्तविक बोझ शिक्षण का नहीं, विषयों या पाठ्यक्रमों का भी नहीं, अपितु 'माध्यम' का बना कर रखा हुआ है।



अध्याय - 27

अर्थव्यवस्था के गर्भ में 'अंग्रेजी माध्यम संस्कृति' (इंग्लिश मीडियम कल्चर) को पैदा करने वाले साँस्कृतिक कारकों की खोज

इस पाठ में हम भारत सरकार द्वारा जारी किए भारतीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर ही 'अंग्रेजी माध्यम संस्कृति' (इंग्लिश मीडियम कल्चर) को बढ़ावा देने वाले साँस्कृतिक कारकों को तलाशने का प्रयास करेंगे। प्रस्तुत पाठ में उद्धरित सभी आँकड़े भारत सरकार द्वारा जारी किए गए हैं। इस अध्याय में, हम 'आँकड़े सरकार के और विश्लेषण हमारा' के सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए, अंग्रेजी माध्यम संस्कृति' (इंग्लिश मीडियम कल्चर) की तरफ बढ़ते झुकाव के कारणों को अर्थव्यवस्था की तह से कुरेद-कुरेद कर निकालने का प्रयास करेंगे।

गौरतलब है कि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि के साथ अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन आता ही है। कृषि और संबद्ध क्षेत्रों की तुलनात्मक स्थिति कम होती जा रही है और उद्योग और सेवा क्षेत्र की स्थिति बढ़ती जा रही है। इसके पीछे कारण यह है कि जहाँ

उत्पादन का एक सोपान ही, कृषि की प्रधानता वाले, प्राथमिक क्षेत्र में होता है, वहीं आगे के सोपान उद्योग और सेवा क्षेत्र में पूरे होते हैं। उदाहरण के तौर पर कमीज बनाने की प्रक्रिया को ही लेते हैं। सिर्फ कपास की फसल को तैयार करने भर की प्रक्रिया ही कृषि क्षेत्र में सम्पन्न होती है। उसके बाद, सारी-की-सारी प्रक्रियाएँ जैसे कपास के फूलों से बिनौलों को अलग करना, धागा बनाना, कपड़े को तैयार करना आदि उद्योगों में ही होती है। हर नए सोपान के साथ परिवहन, बैंकिंग जैसी सेवाओं की जरूरत भी पड़ती ही है। अतः अर्थव्यवस्था के विकास के साथ कृषि क्षेत्र की तुलनात्मक स्थिति, अर्थात् प्रतिशत योगदान कम होता जाता है और उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का योगदान बढ़ता जाता है। तुलनात्मक योगदान का कम होना, विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। तुलनात्मक योगदान के कम होने की प्रक्रिया न केवल अर्थव्यवस्था के उत्पादन क्षेत्र में, अपितु व्यावसायिक संरचना अर्थात् रोजगार के ढाँचे में भी देखने को मिलती है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि कृषि क्षेत्र बदहाल हो जाता है। दुनिया भर को गेहूँ का निर्यात करने वाले अमेरिका (यूएसए) की अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र का योगदान महज 2% का है। वहाँ की कार्यशील जनसंख्या का भी महज 2% ही कृषि कार्यों में संलग्न है। यह स्थिति सिर्फ अमेरिका की ही नहीं, अपितु तमाम विकसित देशों की है। तमाम विकसित देशों में 3-5% उत्पादन ही कृषि क्षेत्र में होता है और 3-5% कार्यशील जनसंख्या ही कृषि क्षेत्र में संलग्न होती है। शेष उत्पादन और रोजगार उद्योग और सेवाओं का उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में ही होता है। अभी हम विकसित अर्थव्यवस्थाओं के किन्तु/परंतु 'इफ और बट' को चर्चा के केन्द्र में न लाकर सिर्फ इतना भर कहना चाहेंगे कि इन अर्थव्यवस्थाओं में भी संवृद्धि के साथ कृषि का तुलनात्मक या

प्रतिशत योगदान, उत्पादन एवं रोजगार दोनों क्षेत्रों में बेशक कम होता जाता है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कृषि बदहाल होती जाती है। कृषि क्षेत्र का उत्पादन लगातार बढ़ता ही रहा है और कृषि का विकास उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता रहा है और उद्योग पुनः कृषि क्षेत्र की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक बनते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर कृषि क्षेत्र में पैदा होने वाले कपास, गन्ना आदि, उद्योग क्षेत्र के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं, वहीं उद्योग क्षेत्र में बनने वाले कृषि औजार भी कृषि के विकास में सहायक हैं। इसी प्रकार बैंकिंग सेवा और नहरी पानी व्यवस्था के बिना कृषि क्षेत्र में सतत् विकास संभव ही नहीं है। कृषि के विकास के बिना उद्योगों और सेवा क्षेत्र के विकास के लिए जरूरी, न तो कच्चा माल ही मिल सकता है और न ही खाद्य अधिशेष। अतः कृषि की खुशहाली अर्थव्यवस्था के विकास की अनिवार्य शर्त है।

अब यदि वर्ष 1950-51 तथा वर्ष 2011-12 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना की तुलना करें तो पाएँगे कि जो परिवर्तन विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की उत्पादन की संरचना में देखने को मिलाता है, कुछ वैसा ही परिवर्तन भारतीय अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना में भी आ रहा है। अर्थव्यवस्था में वर्ष 1950-51 के दौरान 59% का योगदान करने वाला कृषि क्षेत्र का तुलनात्मक योगदान, अब महज 13-14% के आस-पास रह गया है और 28% का योगदान करने वाला सेवा क्षेत्र, अर्थव्यवस्था के उत्पादन में 59% का योगदान करने लगा है। उद्योग क्षेत्र इका उत्पादन संरचना इमें प्रतिशत योगदान 13% से बढ़

कर 27% के लगभग हो गया है। कुछ अर्थशास्त्री इसे एक विकासात्मक परिवर्तन मानते हैं और दलील देते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था परम्परागत से आधुनिक की ओर बढ़ रही है। हकीकत में यह दलील अधूरी है। पर कैसे?

ये आँकड़े भारतीय अर्थव्यवस्था की अधूरी तस्वीर ही दिखाते हैं। इन आँकड़ों की पोल तो उस वक्त खुल कर सामने आ जाती है, जब हम रोजगार की संरचना पर एक निगाह डालते हैं। यदि हम चित्र संख्या-4 के आँकड़ों को देखें तो भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की दर्दनाक तस्वीर उभर कर सामने आ जाती है। अभी-भी 13% का आय सृजन करने वाले क्षेत्र पर 52% जनसंख्या निर्भर है। वर्ष 1950-51 में जहाँ जनसंख्या का 72% हिस्सा कृषि पर निर्भर था, वहाँ अभी-भी कार्यशील जनसंख्या का 52% के लगभग हिस्सा कृषि कार्यों में संलग्न है। अब यदि कृषि के साथ अन्य पारम्परिक गतिविधियों को भी शामिल कर लें, तो यह 60% से 65% के लगभग पहुँच जाएगा। इस प्रकार, अभी-भी आबादी का एक बड़ा हिस्सा पारम्परिक एवं कृषि क्षेत्र पर ही निर्भर है। अब ज़रा अन्य क्षेत्रों की आय से कृषि की तुलना करें तो कृषि क्षेत्र की दयनीय स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। कृषि क्षेत्र में लगी 52% कार्यशील आबादी की औसत आय 29 रुपये है। इसमें से आप बड़े किसानों के हिस्से को निकाल दें तो खेतीहर मज़दूरों और सीमान्त किसानों के हिस्से में शायद ही कुछ बचता हो। इसी प्रकार अपंजीकृत रूप से काम करने वाले स्व-मज़दूरों एवं निर्माण-कार्यों में लगे मज़दूरों को भी शामिल कर लें, तो कुल आबादी का 70% से अधिक हिस्सा 30 रुपए से कम आय अर्जित करने वालों में आ

जाता है। परंतु देश की आय का नगण्य हिस्सा ही इस जनसंख्या को मिल पाता है। अब सवाल उठता है कि आखिर आय भला जाती कहाँ है? आय जाती है- उस वर्ग के पास, जो उत्पादन के नाम पर सिर्फ मैनीपुलेशन अर्थात् जोड़-तोड़ का काम भर करते हैं। इसमें मलाई खाने वाला रिअल एस्टेट और जमा खोरी करने वाला वेयरहाउसिंग क्षेत्र भी आ जाता है, अर्थात् उत्पादन के नाम पर सिर्फ मूल्यवृद्धि करने वाले क्षेत्र इसमें समाहित हैं। इसके अतिरिक्त, स्थिर एवं सुरक्षित, छठवें के बाद सातवें वेतन आयोग के अनुसार, वेतन लेने की तैयारी करने वाला सरकारी क्षेत्र भी इसी में आ जाता है। यह खाता-पीता मध्यम और उच्चवर्ग, कुल आबादी का महज 12-14% हिस्सा भर है। इसी वर्ग के पास एक सुरक्षित खर्च करने योग्य आय भी है। इस बिन्दु के साँकृतिक प्रभाव पर आगे चर्चा करेंगे। पर फिलहाल, आइए आँकड़ों से कुछ और भी रहस्य कुरेद लें।

नवउदारवाद के दौर में, कृषि की उपेक्षा की सभी हदें पार हो गयी हैं। इस नई आर्थिक नीति को अपनाने के बाद कृषि पूर्णतः हाशिये पर खड़ी है। वर्ष 2000 के बाद तो कृषि क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक ऊपरी आधारभूत संरचना/इन्फ्रास्ट्रक्चर, जैसे- सिंचाई आदि के साधनों में निवेश भी नगण्य रहा है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र पूर्णतः भगवान भरोसे ही चल रहा है। इस तथ्य को हम चित्र संख्या-3 से स्पष्ट कर सकते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि वर्ष 2003-04 से वर्ष 2012-13 की अवधि में तीन वर्ष तो ऐसे हैं जब

अर्थव्यवस्था की वृद्धि को बनाये रखने में कृषि का योगदान ही नहीं है। वर्ष 2003-04 को छोड़ दें तो शेष वर्षों में अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में कृषि का योगदान शून्य के करीब ही रहा है। अर्थात् इस पूरी अवधि में कृषि पूर्णतः उपेक्षित ही रही है।

आर्थिक सर्वेक्षण के इन आँकड़ों को देखने भर से स्पष्ट हो जाता है कि पारम्परिक ज्ञान पर आधारित कृषि, अब पूर्ण रूप से घाटे का सौदा बन चुका है। यदि हम हर दूसरे-तीसरे दिन किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं के आँकड़ों को भी इन आँकड़ों में जोड़ दें, तो पाएँगे कि मध्यम, सीमान्त और खेतीहर किसान, किसी भी तरह से कृषि क्षेत्र से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता है। उदाहरण के तौर पर हम पंजाब को लेते हैं जो कि हरित प्रदेश के नाम से जाना जाता है, वहाँ किसान कर्ज में गर्दन तक डूबे हुए हैं और आत्महत्याएँ कर रहे हैं। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा किए गये एक सर्वे के अनुसार पिछले 15 सालों के दौरान करीब 20 हजार किसानों एवं कृषि से जुड़े ग्रामीण मजदूरों ने आत्महत्याएँ की हैं। ये सभी पंजीकृत आत्महत्याएँ हैं, जबकि सैकड़ों अन्य ऐसे मामलों को पुलिस ने पंजीकृत ही नहीं किया है। (सुनिल कुमार) अतः स्पष्ट होता है कि एक सधारण दर्जे के किसान के लिए कृषि में गुजारा कर पाना ही नामुमकिन हो गया है। खैर, इस मुद्दे पर आगे चर्चा करेंगे। परंतु इससे पहले हम ज़रा कुछ और बिन्दुओं पर भी निगाह डाल लें।

जीडीपी में हेरा-फेरी (मैनीपुलेशन)

सर्वप्रथम, यही प्रश्न खड़ा होता है कि ये जीडीपी क्या बला है? जीडीपी, जो ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट या सकल घरेलू उत्पाद का संक्षिप्त रूप है। एक वर्ष की अवधि में जितना भी उत्पादन प्रक्रिया के दौरान वस्तुओं के विनिमय मूल्य में वृद्धि होती है, उसे **जीडीपी कहा जाता है**। यह तो हुई तकनीकी परिभाषा, अब देखते हैं कि इसका मैनीपुलेशन अर्थात् हेरा-फेरी। उदाहरण के तौर पर प्याज को लेते हैं। मान लो, एक किसान प्याज की फसल को उगाने के लिए कच्चे माल के रूप में खाद, बीज आदि खरीदने पर 8,000 रुपए खर्च करता है और फिर अपनी मेहनत (हल-बैल, ट्रैक्टर आदि साधनों) का प्रयोग करके फसल तैयार करता है। फसल तैयार होने की प्रक्रिया में वह तीन-चार महीने तक फसल को खेत में अगोरने का रिस्क भी लेता है और फिर 10 रुपए प्रति किलो के हिसाब से 1000 किलो प्याज बेच देता है। इस प्रकार उसे 10,000 रुपए प्राप्त होते हैं। इस 10,000 रुपए में से यदि लागत 8,000 रुपए की है, उसको घटा दें तो शेष बचते हैं- 2000 रुपए। ये दो हजार रुपए ही एक किसान का तीन-चार महीने तक धूप-गर्मी सहने का प्रतिफल है। यही किसान का जीडीपी में योगदान है। अब मान लीजिए प्याज का स्टॉक अर्थात् जमाखोरी करने वाली कोई *कखग* नाम की कम्पनी है। यह *कखग कम्पनी*, किसानों से 10 रुपए प्रति किलो के हिसाब से प्याज खरीदती है और अगले तीन महीने तक उसकी जमाखोरी करती है। फिर जैसे-जैसे बाजार से प्याज खत्म होता जाता है, वैसे-वैसे प्याज की कीमतें बढ़ती जाती हैं और तीन

महीने बाद प्याज़ की कीमत 10 रुपए से बढ़ कर 100 रुपए हो जाती है। तब *कखग कम्पनी* उस 10 रुपए पर खरीदे गए प्याज़ को 100 रुपए में बेच देती है और इस प्रकार वह जमाखोर कंपनी 90 रुपए प्रति किलो की मूल्यवृद्धि करके मुनाफ़ा कमाती है। जहाँ चार-पाँच महीने तक खेत में फसल को खड़ा करके धूप, गर्मी, बरसात सहने वाला किसान जीडीपी में महज 2 रुपए प्रतिकिलो का योगदान कर पाता है। उसके हिस्से में 2 रुपए प्रति किलो के हिसाब से ही आय होती है। वहीं जमाखोरी करने वाली कंपनी 90 रुपए प्रति किलो की मूल्यवृद्धि करती है। उसकी आय 90 रुपए प्रति किलो के हिसाब से बनती है। *कखग कम्पनी*, कारोबार/बिजनेस करती है और बिना कुछ किए लाखों के वारे-न्यारे करती है। वहीं दूसरी ओर, किसान रात-दिन खट कर भी इतना नहीं कमा पाता कि वह दो-जून की रोटी भी कमा सके। यही जीडीपी की हेराफेरी या मैनिपुलेशन कहलाता है।

अब ज़रा *चित्र संख्या-7* पर एक निगाह डालें, जो असंगठित क्षेत्र तथा संगठित क्षेत्र में कामगारों के विभाजन से सम्बन्धित है। पर इससे पहले, संगठित तथा असंगठित क्षेत्र में जो अंतर है, उस पर भी चर्चा कर लें। जहाँ संगठित क्षेत्र में आय और रोज़गार की सुरक्षा होती है। न केवल हर माह समय पर पगार मिलती है अपितु पगार में यथोचित वृद्धि के साथ महगाई भत्ते का भी लाभ हासिल होता है। इसके अतिरिक्त, अस्पताल और रिटायरमेंट के बाद पेंशन आदि जैसी सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का लाभ भी संगठित क्षेत्र के कामगारों को ही प्राप्त होता है। असंगठित क्षेत्र में वे सभी आ जाते हैं जिनको इन में से किसी-भी लाभ की गारंटी नहीं है।

अब रोजगार संरचना को दर्शाने वाले चित्र संख्या-7 पर गौर करें, तो पाते हैं कि महज 4% जनसंख्या ही संगठित क्षेत्र में स्थाई तौर पर काम कर रही है। शेष सभी या तो असंगठित क्षेत्र के कामगार हैं अथवा संगठित क्षेत्र में ही ठेके प्रणाली पर काम करने वाले अस्थाई कामगार। कुल संगठित क्षेत्र में काम पर लगे लोगों की संख्या को देखें तो यह कुल जनसंख्या का महज 15% के आस-पास है। ऊपर के 4% लोग ही स्थाई रोजगार और बीमारी भत्ता, पेंशन आदि जैसे समाजिक लाभ को प्राप्त कर पाते हैं। संगठित क्षेत्र के ही शेष 11% अस्थाई एवं ठेका-कामगार कुछ हद तक उन सभी लाभों की मांग करने की स्थिति में हैं, जो उनके संगठित क्षेत्र के अन्य सहकर्मी प्राप्त करते हैं। जैसे सरकारी स्कूली व्यवस्था में ही दो तरह के शिक्षक हैं। एक जो नियमित हैं और दूसरे जो अनियमित हैं। एक तरफ नियमित शिक्षक पूरा वेतन और तमाम दूसरी सुविधाएँ एवं भत्ते पाते हैं, वहीं अनुबंध शिक्षक अस्थाई तौर पर तयशुदा वेतन पर ही गुजारा करते हैं। निजी क्षेत्र के स्कूल, जो कहने के लिए तो संगठित क्षेत्र में ही आते हैं, पर इस क्षेत्र के अधिकतर शिक्षकों की हालत इतनी खस्ता है कि उसके बारे में लिखने में भी संकोच ही होता है। इन स्कूलों में अधिकतर शिक्षक तो ऐसे हैं जो तनखाह तो दो कौड़ी की लेते हैं, पर बेचारे हस्ताक्षर पूरे पर करते हैं। उसके बाद बची देश के 85% कामगार आबादी तो बस भगवान भरोसे ही गुजर-बसर कर रही है। उनके नाम पर रोजगार गारंटी योजना से लेकर वृद्धा अवस्था पेंशन जैसी अनेकों योजनाएँ चलती हैं, पर शायद ही किसी का लाभ, वास्तव में उन तक पहुँचता होगा।

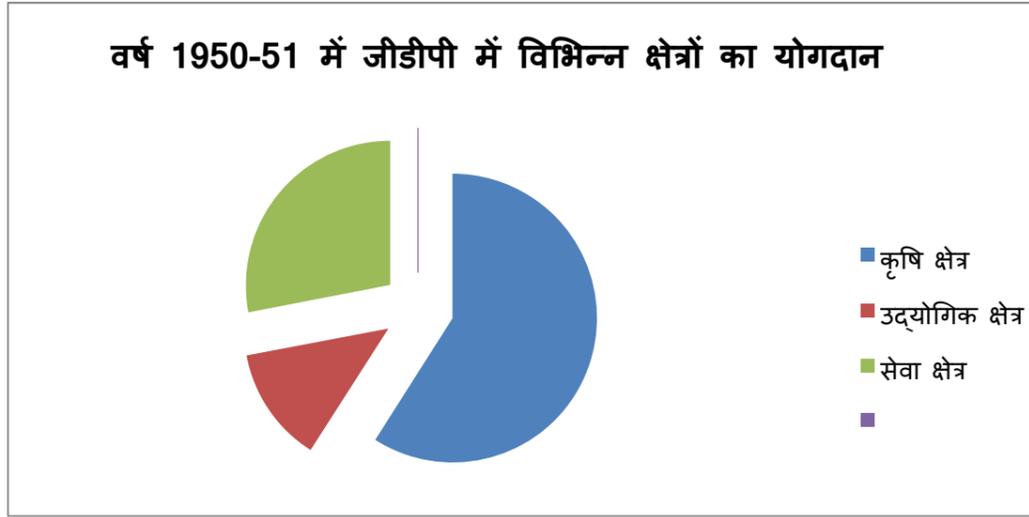
बहरहाल, संगठित क्षेत्र एक अनार, सौ बीमार की कहावत को ही सत्यार्थ कर रहा है। हर व्यक्ति का सपना संगठित क्षेत्र का रोजगार है, पर श्रेष्ठ समझे जाने वाले इस संगठित क्षेत्र में एक तो नौकरी अर्थात् जॉब कम हैं। दूसरे, उन नौकरियों में वृद्धि दर कम ही नहीं, कई बार ऋणात्मक प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। इस तथ्य को हम चित्र संख्या-8 में देख सकते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि आकर्षित करने वाले इस रोजगार क्षेत्र का दायरा ग्लेशियर पर जमी बर्फ की तरह कम होता जा रहा है। समाज के हर वर्ग की लड़ाई इस 4% के रोजगार क्षेत्र को लेकर ही है। सरकार के द्वारा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिए जाने वाले नौकरियों के आरक्षण के लाभ भी इस घटते 4% के किसी कोने में ही सिमट कर रह जाते हैं। निजी क्षेत्र में जिस आरक्षण की मांग की जा रही है, उसका दायरा भी इस 4% से बाहर नहीं निकल पाता। मण्डल से लेकर कमण्डल तक की राजनीति भी इस 4% के दिवास्वप्न को लेकर ही हो रही है।

शायद यह महज इत्तफ़ाक से बना संयोग मात्र हो, पर यह संयोग न होकर सत्य हुआ तो? इस देश में 4% लोग संगठित क्षेत्र में स्थाई पदों पर हैं और इत्तफ़ाकन 3-4% ही अंग्रेजी का ठीक-ठाक प्रयोग करने की क्षमता भी रखते हैं। इस देश में लगभग 10-12% का उच्च मध्यम वर्ग है। 10-12 % के आस-पास लोगों की द्वितीयक भाषा अंग्रेजी है। यही फलता-फूलता मध्यम वर्ग ही महँगे अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में नर्सरी कक्षाओं के फार्म खरीदने की लाईन में खड़ा रहता है और यही वर्ग अपने बच्चों को महँगे 'हाई-फाई' स्कूलों

में पढ़ाने की क्षमता रखता है। अर्थात् इन स्कूलों की फीस और फीस के अतिरिक्त जो भी एजुकेशन के नाम पर चलता रहता है, उन सभी को वहन करने की क्षमता रखता है। इसी मध्यम वर्ग की ही तीव्र इच्छा अंग्रेजी-भाषी बनने की है और यही मध्यम वर्ग ग्लोबलाइजेशन, लिबरलाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन (भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण) की नीतियों से लाभान्वित भी हुआ है। इस वर्ग का ही *आइडियल कल्चर*, अमेरिकी समाज का *लाइफ स्टाइल* है। इस वर्ग का वास्तविक आदर्श *अमेरिकी लाइफ स्टाइल* के साथ-साथ इस देश का *एलिट क्लास* भी है। *इंडिया दैट इज भारत* के 0.23% लोग ही अंग्रेजी को प्राथमिक रूप से प्रयोग करते हैं और *एलिट वर्ग* अर्थात् ज्ञान, न्याय, राजनीति, पूँजी, नैकरशाही, पत्रकारिता, अर्थात् सत्ता के तमाम शीर्ष ओहदों और उसके आस-पास विराजमान व्यक्तियों, उनके परिवारों की अलग-से गणना करें, तो यह संख्या शायद ही 10-20 लाख को भी पार कर पाएगी। ये आँकड़े उन्नीस-बीस हो सकते हैं, पर यह इत्तफ़ाक, एक कटु सच्चाई को व्यक्त करता है कि इस देश के *एलिट क्लास* की प्राथमिक भाषा ही अंग्रेजी है। एलिट सोसाइटी में ही अंग्रेजी का प्रयोग भी होता है। इस सोसाइटी के लोग बेशक नौकरों से बात-चीत के लिए भारतीय भाषाओं का प्रयोग करते हों, पर इनका खुद का औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में होने वाला प्राथमिक संवाद अंग्रेजी में ही होता है। अंग्रेजी इस संब्रान्त (एलीट) वर्ग की ही भाषा है। इसी वर्ग की संस्कृति, *इंग्लिश मीडियम कल्चर* है। ये लोग मिल कर एक तंत्र / सिस्टम बनाते हैं। उसे हम *अंग्रेजी माध्यम तंत्र / इंग्लिश मीडियम सिस्टम* कह सकते हैं।

अंग्रेजी माध्यम तंत्र (इंग्लिश मीडियम सिस्टम) की संस्कृति (कल्चर) हमें किस प्रकार प्रभावित करती है, इसका आकलन हम अगले अध्याय में करेंगे।

वर्ष 1950-51 में जीडीपी में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान



चित्र संख्या 1

2011-12 में जीडीपी में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान



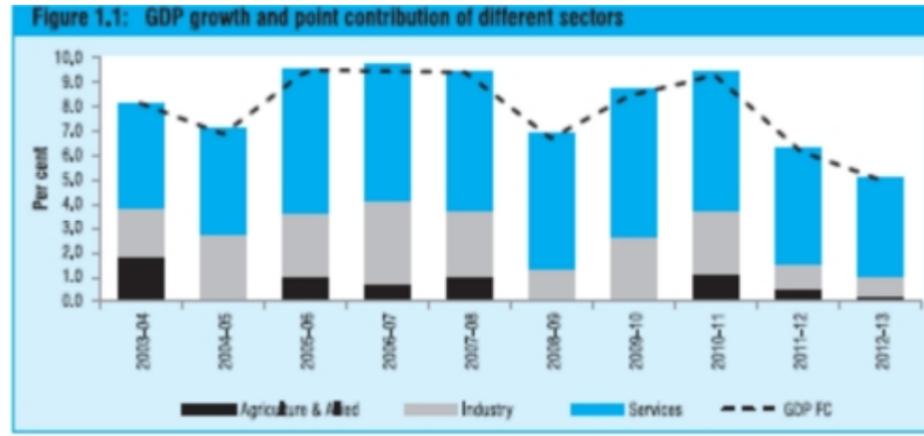
अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक
कहानी-

चित्र संख्या 2

448

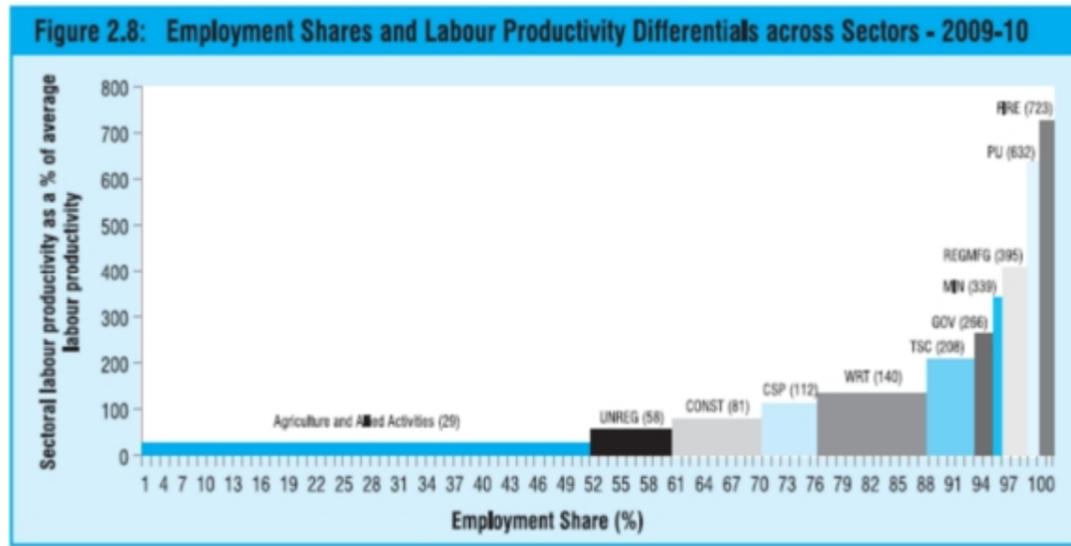
'इंग्लिश मीडियम सिस्टम', दैट इज 'अंग्रेजी राज' : 'भ्रष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' की व्यवस्था पर 'सांस्कृतिक ठप्पा' (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN – 978-93-5156-895-7)
लेखक – अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



चित्र संख्या 3 : अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान, सन्दर्भ : आर्थिक सर्वेक्षण 2012 -13

अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-



चित्र संख्या 4 - श्रम उत्पादकता के आधार पर रोजगार का वितरण, सन्दर्भ आर्थिक सर्वेक्षण 2012

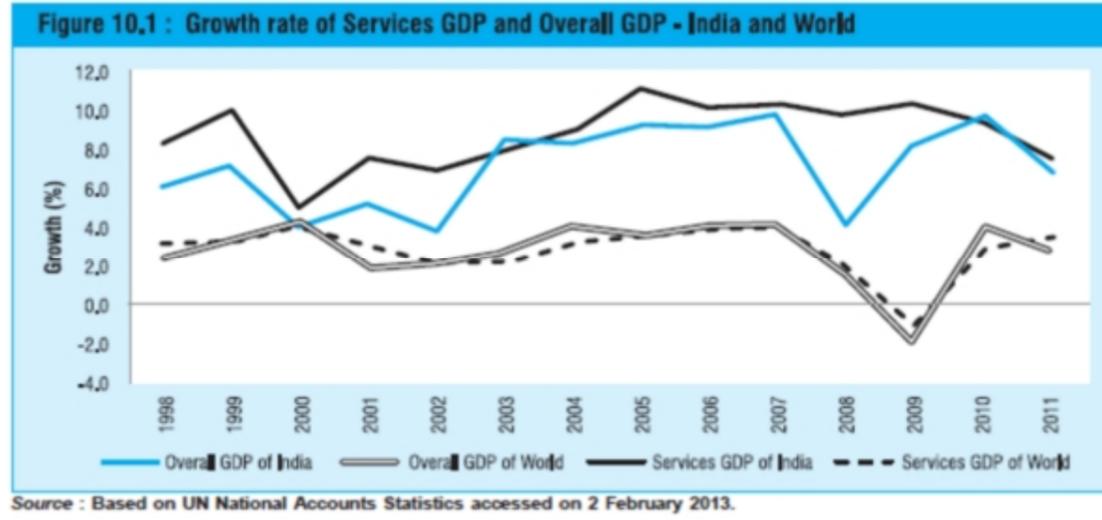
अंग्रेजी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषा-भाषी की एक कहानी-

Table 1.3 : Quarterly Estimate of GDP Growth (year-on-year in per cent)

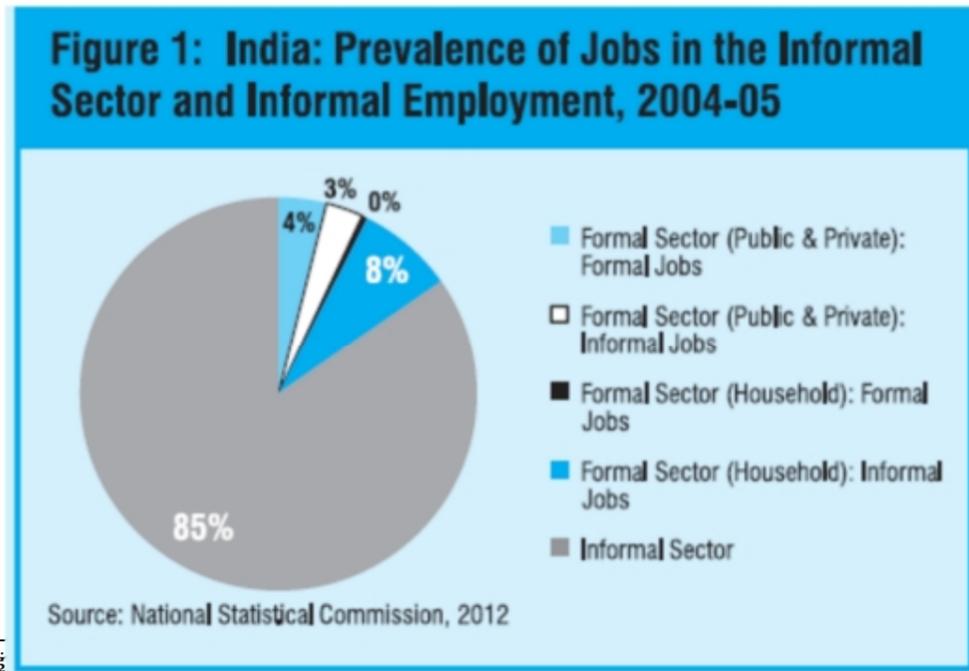
Sector	2010-11				2011-12				2012-13	
	Q1	Q2	Q3	Q4	Q1	Q2	Q3	Q4	Q1	Q2
1. Agriculture, forestry & fishing	3.1	4.9	11.0	7.5	3.7	3.1	2.8	1.7	2.9	1.2
Industry	8.3	5.7	7.6	7.0	5.6	3.7	2.5	1.9	3.6	2.8
2. Mining & quarrying	6.9	7.3	6.1	0.6	-0.2	-5.4	-2.8	4.3	0.1	1.9
3. Manufacturing	9.1	6.1	7.8	7.3	7.3	2.9	0.6	-0.3	0.2	0.8
4. Electricity, gas & water supply	2.9	0.3	3.8	5.1	8.0	9.8	9.0	4.9	6.3	3.4
5. Construction	8.4	6.0	8.7	8.9	3.5	6.3	6.6	4.8	10.9	6.7
Services	10.0	9.1	7.7	10.6	10.2	8.8	8.9	7.9	6.9	7.2
6. Trade, hotels, transport & communication	12.6	10.6	9.7	11.6	13.8	9.5	10.0	7.0	4.0	5.5
7. Financing, insurance, real estate, business services	10.0	10.4	11.2	10.0	9.4	9.9	9.1	10.0	10.8	9.4
8. Community, social, & personal services	4.4	4.5	-0.8	9.5	3.2	6.1	6.4	7.1	7.9	7.5
9. GDP at factor cost (total 1 to 8)	8.5	7.6	8.2	9.2	8.0	6.7	6.1	5.3	5.5	5.3

Source : CSO.

चित्र 5 : जीडीपी सवृद्धि में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान

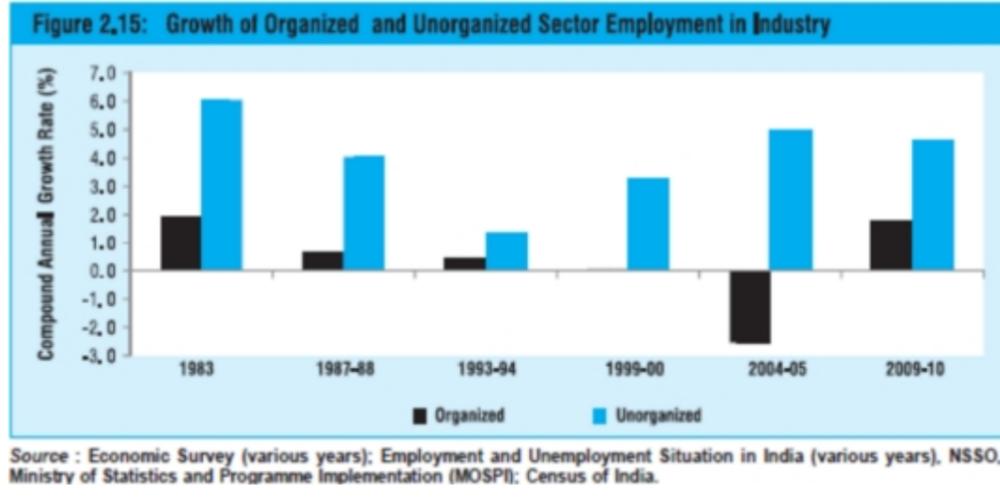


चित्र संख्या 6 -
देख कर पता
कि किस क्षेत्र में
भविष्य सुरक्षित



खुद
लगाएँ
हैं

चित्र संख्या - 7



चित्र संख्या - 8

454

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’, दैट इज ‘अंग्रेजी राज’ : ‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’ (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN - 978-93-5156-895-7)
लेखक - अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

अध्याय-28

‘अंग्रेजी माध्यम संस्कृति’ (इंग्लिश मीडियम कल्चर) को बढ़ावा देने वाले साँस्कृतिक कारकों की खोज

अर्थव्यवस्था के आईने से ‘अंग्रेजी माध्यम संस्कृति’ (इंग्लिश मीडियम कल्चर) को बढ़ावा देने वाले साँस्कृतिक कारकों की खोज में अब तक हमने देखा कि किस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना में बदलाव आया और उत्पादन संरचना परम्परागत कृषि आधारित से आधुनिक उद्योग और सेवा पर आधारित हो गयी है। रोजगार संरचना में कोई विशेष बदलाव ना आने की वजह से आय की असमानता तेजी से बढ़ी है। ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन के लिए औपचारिक शिक्षा की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। इस नयी अर्थव्यवस्था के

सम्पूर्ण पदानुक्रम को निर्धारित करने में औपचारिक शिक्षा की अहम भूमिका है। जनसंख्या का एक बहुत ही छोटा-सा नगण्य तबका आर्थिक रूप से सुरक्षित संगठित क्षेत्र में कार्यरत है, शेष गैर-संगठित क्षेत्र में मात्र गुजारा ही कर पा रहा है। शिक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण का अर्थ है- अर्थव्यवस्था, राजव्यवस्था ही नहीं, सम्पूर्ण समाज व्यवस्था पर साँस्कृतिक नियंत्रण हासिल करना। आय की असमानता को बनाने में आय वितरण की शर्तों का भी अहम योगदान होता है। चूँकि आय वितरण की शर्तें तय करने का अधिकार चंद हाथों तक ही सीमिटा हुआ है अतः ये चंद हाथ ही न केवल देश की अर्थव्यवस्था, अपितु सम्पूर्ण समाज व्यवस्था, संस्कृति की धुरी भी बन गए हैं। इन्हीं के हाथ में औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की बागडोर भी है। इनकी संस्कृति ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनके के तौर-तरीके अपनाने को बाकी वर्ग बाध्य हो जाता है। तो शिक्षा के केन्द्र में इनकी भाषा क्यों न हो? कौन हैं ये लोग? ये सब कुछ कैसे सम्भव हो पाता है? आइए, इस पर विचार करें।

1950 के दशक में प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने भारत के संदर्भ में 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा का प्रतिपादन किया था। अपने अध्ययन में श्रीनिवास ने पाया कि तथाकथित निम्न कहलाने वाली जातियों के लोगों में, आर्थिक स्थिति में आये सुधार के साथ, उच्च कहलाने वाली जातियों के मूल्यों एवं तौर-तरीकों को अपनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। श्रीनिवास का यह अध्ययन दक्षिण भारत के गाँवों में किया गया था। तब से अब तक देश की नदियों में बहुत पानी बह चुका है, समाज बदल चुका है। आज कृषक समाज का आलम यह है कि उसके हिस्से में देश की अर्थव्यवस्था की आय का सबसे कम हिस्सा और देश की जनसंख्या का सबसे अधिक बोझ है। गाँवों का देश कहलाने वाले इस देश के गाँवों के लोग बदहाली की स्थिति में हैं और किसी-भी कीमत पर गाँवों से मुक्त होना चाहते हैं। लोग लगातार गाँवों से शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। कृषि की प्रधानता का यह आलम है कि छोटे-मोटे किसान तो किसी-भी कीमत पर कृषि को छोड़ने को तैयार ही बैठे हैं। खेतीहर मजदूरों की बात तो छोड़िए अब सीमान्त किसानों की स्थिति यह हो गयी है कि वे खेती से अपना गुजारा नहीं कर सकते। क्या सामन्ती मूल्य अब भी आदर्श हो सकते हैं? समाज में आदर्श वह होता है जिसके पास समाज को प्रभावित करने की शक्ति होती है, जो समाज की धुरी पर विराजमान होता है। उसी के तौर-तरीकों को अपनाया जाता है। किसी जमाने में धनुर्धर योद्धा भी समाज के आदर्श होते थे। पर क्या अब भी वे प्रासंगिक हो सकते हैं?

समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास साहब कहते हैं कि निम्न कहलाने वाली जातियों में उच्च कहलाने वाली जातियों के तौर-तरीकों को अपनाने की प्रवृत्ति देखी गयी है। इसका अर्थ यह है कि निम्न कहलाने वाली जातियाँ कहीं-न-कहीं उच्च कहलाने वाली जातियों के तौर-तरीकों को ही श्रेष्ठ मानती हैं और आर्थिक और समाजिक हैसियत में बदलाव के साथ उन संस्कारों को अपनाने का प्रयास करती हैं। अब इस 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा को पुनः परिभाषित करने की जरूरत है। आज समाज का आदर्श ऊँची जातियाँ नहीं, अपितु शहरी उच्च एवं उच्च-मध्यम वर्ग की जीवन शैली है। अनुपात कम ज्यादा हो सकता है पर इसमें सभी जातियों एवं धर्मों के लोग शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, एक और वर्ग है, जो भारत जैसे देश के लोगों के लिए, वास्तविक कम और काल्पनिक अधिक है। वह है, अमेरिकी और यूरोपीय समाज का काल्पनिक-आभासी स्वरूप। जिसके तौर-तरीकों को अपनाने की अभिलाषा से शायद ही कोई मध्यम-वर्गीय युवा अछुता रहा हो। अमेरिकन एवं ब्रिटिश स्टाइल की अंग्रेजी सिखाने वाली कोचिंग के बाहर खड़े लोगों की भीड़ और अमेरिकी एम्बेसी एवं ब्रिटिश हाई कमीशन के बाहर खड़े, वीजा चाहने वालों की लाईन देख लीजिए। आप आसानी से इस बात का अंदाजा लगा सकते हैं कि अमेरिका का ग्रीनकार्ड-होल्डर बनना, आज के मध्यम वर्ग का सर्वोत्तम ख्वाब है। इस ख्वाब के पहले पायदान पर यदि अमेरिका (यूएसए) आता है, तो दूसरे पर ब्रिटेन और तीसरे पर कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे अंग्रेजी भाषी मुल्क ही आते हैं। शेष पश्चिमी देशों को बिना जाने-समझे अंग्रेजी के तराजू में तौल दिया जाता है। एक आम धारणा है, "बिना अंग्रेजी जाने, बाहर के समाजों में

‘सर्वाइव’(जिन्दा) ही नहीं कर सकते हैं” मैं एक दफे कक्षा में पढ़ा रहा था। मैंने अपने विद्यार्थियों को कहा कि सीखने का सबसे अच्छा माध्यम अपनी भाषा ही होती है। इसलिए हमें अपनी भाषा में ही सीखना चाहिए, न कि अंग्रेजी में रट्टा लगाना चाहिए। एक विद्यार्थी ने तपाक से कहा, “अपनी भाषा में सीख कर हम ‘नासा’ नहीं जा सकते हैं। ‘नासा’ में काम करने वाले एक तिहाई कर्मचारी भारतीय ही हैं। वे सभी अंग्रेजी सीखे थे, तब ही वे वहाँ काम करते हैं। नासा छोड़िए, अपनी भाषा में तो हम किसी एमएनसी में भी काम नहीं कर सकते। बिना इंग्लिश के तो कोई गवर्नमेंट (सरकारी) नौकरी भी प्राप्त नहीं कर सकता।” कुछ ऐसी ही बात गाँव भिड़की के बस स्टैंड पर खड़े विद्यार्थी ने कही। उसके अनुसार, “इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ने से इंग्लिश बोलनी आ जाती है। बिना अंग्रेजी सीखे हम कुछ नहीं कर सकते।” “मानो अंग्रेजी कोई भाषा न हुई, राम बाण दवा हो गयी हो। देश की सभी समस्याओं का एक ही इलाज आजकल समझाया जाता है, वह है अंग्रेजी। अंग्रेजी के बिना न तो नौकरी ही सम्भव है और न ही हाई-सोसायटी में अडजेस्ट कर पाना।” रेस्ट ऑफ़ वर्ल्ड अर्थात् भारत के बाहर तो अंग्रेजी के बिना साँस भी नहीं ले सकते। ये कुछ ऐसे मिथ या भ्रामक धारणाएँ बना दी गई हैं, जिन्होंने आज भारतीय समाज को जकड़ रखा है। तथाकथित निम्न जातियों से तथाकथित उच्च कहलाने वाली जातियों के सामंती, साँस्कृतिक मूल्यों, अर्थात् तौर-तरीकों को अपनाने की बात बीते जमाने की बात होगी। अब तो जमाना ‘हाई-फाई सोसायटी’ का है। अतः इस जमाने के आदर्श सामंती मूल्य नहीं, अपितु उच्च एवं उच्च मध्यम वर्गीय सामाजिक मूल्य ही हैं। आज हमारे

समाज के खुद के मूल्य पश्चिमी समाजों से प्रभावित हैं और यह पश्चिमी समाज वास्तविक कम एवं काल्पनिक-आभासी अधिक है।

समाजशास्त्री श्रीनिवास ने जिस तरह 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा को लिया है वह एक अधूरे सत्य को ही व्यक्त करता है। सत्य तो यह है कि जो ताकतवर है, रूतबे वाला है वह ही श्रेष्ठ है और उसी के मूल्य, तौर-तरीके अपनाने योग्य हैं। 'संस्कृतिकरण' वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज का कमजोर कहलाने वाला वर्ग ताकतवर समझे जाने वाले वर्ग के साँस्कृतिक मूल्यों को अत्मसात करता है। उस जैसा बनना, उसका सपना होता है। इसमें से कुछ भी सोच समझ कर नहीं होता। सब कुछ स्वतः ही होता जाता है। कमजोर वर्ग खुद ही ताकतवर पक्ष के साँस्कृतिक मूल्यों के पक्ष में दलीलें देने लगता है। इस प्रकार वह अपनी स्थिति को और भी अधिक हीन और ताकतवर वर्ग की स्थिति को अधिक मजबूत करता जाता है।

अब इन सब बातों को भारतीय अर्थव्यवस्था के आँकड़ों के माध्यम से देखते हैं। वर्ष 1950-51 से वर्ष 2011-12 के बीच हुई आर्थिक संवृद्धि (ग्रोथ) के साथ हुए संरचनात्मक परिवर्तन के फलस्वरूप प्रक्रिया-आधारित सेवा-क्षेत्र तथा औद्योगिक-क्षेत्र का कुल आय में लगभग 86% हिस्सा हो गया है। देश की घरेलू आय में कृषि क्षेत्र का अपना हिस्सा महज 14% पर ही

सिमट गया है। यह स्थिति वर्ष 1950 के दशक से पूर्णतः भिन्न है, जब समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने दक्षिण भारत के गाँव में अध्ययन किए थे और उस अध्ययन के आधार पर 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा का प्रतिपादन किया था। तब कृषि का अर्थव्यवस्था की जीडीपी में 59% हिस्सा था। आज स्थिति उसके ठीक विपरीत है। आज 59% हिस्सा कृषि-क्षेत्र नहीं, अपितु सेवा-क्षेत्र का है। अब सवाल उठता है कि अर्थव्यवस्था में आए इस बदलाव का सम्बन्ध 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा से कैसे है? जैसा की हम अर्थव्यवस्था की व्यावसायिक संरचना के विश्लेषण के दौरान देख चुके हैं, जहाँ जीडीपी अर्थात् आय की संरचना में आमूलचूल परिवर्तन आया है, वहीं रोजगार संरचना में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। कार्यशील आबादी का 52% हिस्सा और कुल जनसंख्या का लगभग 60-65% हिस्सा, अब भी कृषि और संबन्ध कार्यों पर निर्भर है। इस प्रकार 14% आय अर्जित करने वाले कृषि क्षेत्र देश की आबादी का लगभग 60% जनसंख्या का बोझ झेल रहा है। कृषि क्षेत्र की जीडीपी में लगातार गिरती तुलनात्मक स्थिति तथा सेवा और औद्योगिक क्षेत्र की जीडीपी में बढ़ती तुलनात्मक स्थिति जन-साधारण को कृषि को छोड़ कर उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में जाने को प्रेरित करती है। अब पिछले 10-15 वर्षों में कृषि की वृद्धि दर को देखें तो यह लगभग स्थिरता (स्टेगनेशन) की हालत में ही है। दो दफ़े तो यह ऋणात्मक भी रह चुकी है। अतः जब कृषि ही बदहाल है तो उस पर आधारित समाज का आदर्श भी बदल रहा है। गाँव से शहरों की तरफ पलायन के बाद हर वर्ग के लोग सेवा क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र में हाथ आजमाना चाहते हैं। जैसाकि पिछले अध्याय में हमने

देखा कि इस क्षेत्र में भी गैर-संगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले मजदूरों के हिस्से में कुछ-भी नहीं आ रहा है। मोटी कमायी तो बस संगठित क्षेत्र के उँचे-उँचे पदों पर कार्यरत लोगों तक ही सिमट कर रह जाती है। इन लोगों के पास ही पैसा है, पावर है और रूतबा है। अतः संगठित क्षेत्र में रोज़गार के लिए दो तरह की समस्याएँ आती हैं। एक तो यह कि संगठित क्षेत्र सबको खपा पाने की स्थिति में ही नहीं है। ये तो अर्थव्यवस्था का मैनीपुलेशन अर्थात् जोड़-तोड़ या हेरफेरी है, जिसकी वजह से आय का वितरण छोटे-से नव धनाड्य वर्ग की तरफ हुआ है। जो आकर्षित तो बहुत करता है पर सबको समाहित नहीं कर सकता। अतः रोकने के लिए एक बैरिकेटर लगाना भी जरूरी है। और अंग्रेजी! जी हाँ! अंग्रेजी ही वह बैरिकेटर है जिससे सबको आसानी से रोका जा सकता है। अतः अंग्रेजी इस पंगु पूँजीवादी समाज के लिए स्तरीकरण का हथियार है। एक किसान, एक मजदूर साल भर खट कर जितना कमाता है, उससे कई गुना ज्यादा एक शेयर ब्रोकर कम्प्यूटर के एक क्लिक से कमा लेता है। कामगारों की उत्पादकता को दर्शाने वाले भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण के आँकड़े (चित्र संख्या 4) तो कम-से-कम यही दर्शा रहे हैं। सरकार द्वारा टैक्स के रूप में इकट्ठा किए फण्ड से छठवें के बाद सातवें वेतन आयोग के अनुसार वेतन प्राप्त करने को तैयार बैठे सरकारी क्षेत्र में कार्यरत एक प्रोफेसर, एक आईएस अधिकारी की आय देश के कामगारों की औसत वार्षिक सालाना आय से 20-30 गुना से भी कहीं ज्यादा है। अतः यह शुद्ध जोड़तोड़/हेरफेरी अर्थात् मैनीपुलेशन की आय नहीं तो और क्या है? समाज में इसके भी ऊपर एक क्रीम है, जिसके हाथ में सारा मैनीपुलेशन है। वह

है, सट्टेबाजों, ब्रोकरों, राजनेताओं, मीडिया, नेताओं और बड़े पूँजीपतियों का छोटा-सा तबका। इनकी आय का कितना हिस्सा काला और कितना सफेद है और कितना देश में और कितना विदेशों में जमा है, इसका तो हम अंदाज़ भी नहीं लगा सकते हैं। इतनी बेतहाशा आय इन लोगों को इसलिए प्राप्त हो रही है क्योंकि देश के आय-वितरण को तय करने का अधिकार भी इसी वर्ग के चंद लोगों के हाथों में है। ये चन्द लोग ही सत्ता के उन केन्द्रों पर विराजमान हैं, जहाँ से आय-वितरण की शर्तें तय होती हैं। इस वर्ग ने ही जोड़तोड़/हेराफेरी/मैनीपुलेशन के द्वारा इस देश में खाते-पीते प्रोफेसरों, नौकरशाहों, निजी कम्पनियों के उच्च अधिकारियों, छोटे-मोटे व्यापारियों आदि का एक छोटा-सा उच्च-मध्यम वर्ग तैयार कर रखा है। यह उच्च-मध्यम वर्ग ही देश की आर्थिक संवृद्धि / ग्रोथ का फायदा भी ले रहा है। यह वर्ग ही उनकी सत्ता को साँस्कृतिक संरक्षण प्रदान करने का भी काम करता है। नवउदारवाद के बाद की अर्थव्यवस्था का तो सारा लाभ ही इस 'हाई-फ़ाई वर्ग' तक सिमट कर रह गया है। पर सवाल उठता है कि इस आय को आप किस आधार पर सही ठहरा जा सकते हैं? इतना तो निश्चित है कि जोड़तोड़/हेराफेरी/मैनीपुलेशन के इस चक्र-व्यूह को तोड़े बिना आय-वितरण की असमानता को तोड़ा ही नहीं जा सकता।

पर सवाल यह उठता है कि इस जोड़तोड़/हेराफेरी/मैनीपुलेशन के सिस्टम को बनाये रखने में ऊपर के 'अंग्रेजी मीडियम कल्चर' की क्या भूमिका हो सकती है? इस कल्चर की वजह से देश की बहुसंख्यक आबादी के पास एक झूठी उम्मीद के सिवाय कुछ-भी शेष नहीं बचता है। झूठी उम्मीद यह है कि, "यदि हम-भी इनकी तरह अंग्रेजी मीडियम से पढ़-लिख कर अंग्रेजी भाषी हो जाएँ तो हम भी कामयाब हो जाएँगे।" और कामयाब न होने पर यह स्पष्टीकरण भी मिल जाता है कि आप इसलिए कामयाब नहीं हो सके क्योंकि आपको अंग्रेजी नहीं आती। 'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी' के सिद्धान्त पर ही देश की अधिकांश जनसंख्या को अंततः संतोष भर करना पड़ता है कि हम इसलिए कामयाब नहीं हो पाए क्योंकि हम इनकी तरह अंग्रेजी भाषी नहीं बन पाए। गुलाम मानसिकता के समाज में अंग्रेजी 90% आबादी को दबाने का और 10% तक सारी सुविधाओं को समेटे रखने का काम बड़ी कुटिलता से निभा रही है। बहुसंख्यक आबादी को दबाने का काम अंग्रेजी कैसे करती है इस बिन्दु पर आगे चर्चा करेंगे, पर उससे पहले हम कुछ दूसरे बिन्दुओं पर भी विचार भी कर लें।

परम्परागत अर्थव्यवस्था में पदार्थ अर्थात् वस्तु के आधार पर काम का विभाजन होता था। वहीं आधुनिक अर्थव्यवस्था में प्रक्रिया के आधार पर काम का विभाजन होता है। आगे बढ़ने से पहले इन दोनों के फ़र्क को समझना आवश्यक है। पदार्थ के आधार पर काम के विभाजन का अर्थ यह है कि एक व्यक्ति या उसका परिवार पदार्थ बनाने की सारी प्रक्रिया को खुद ही

अंजाम देता है। जैसे कुम्हार का परिवार मटके बनाने की सारी प्रक्रिया को खुद ही अंजाम देता है। एक छोटे स्तर का दर्जी कपड़े को काटने से लेकर पोशाक सीने तक की प्रक्रिया को पूरा करता है। इसी प्रकार, परम्परागत अर्थव्यवस्था के तमाम परम्परागत पेशों में व्यक्ति और उसका परिवार, वस्तु अथवा सेवा बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को अंजाम देता था। यह बात आज भी लगभग सभी परम्परागत पेशों के संदर्भ में देखी जा सकती है। यह बात जितनी भारतीय समाज पर लागू होती है, उतनी ही यूरोपीय और अफ्रीकी समाज पर भी। इस प्रकार, कृषि ही नहीं अपितु तमाम परम्परागत व्यवसायों में व्यक्ति अपने परिवार और समुदाय के साथ खेलते-कूदते, क्रिया-प्रतिक्रिया करते हुए ही कार्य करने में पारंगत हो जाता था। आधुनिक प्रक्रिया आधारित अर्थव्यवस्था में भी बहुत-से पेशे ऐसे हैं, जिन्हें करने वाले अपने वरिष्ठ साथियों का अनुसरण करते हुए सीख जाते हैं। मैकेनिक का काम सबसे अच्छा उदाहरण हो सकता है। दो-तीन साल किसी वरिष्ठ 'उस्ताद' के साथ काम करके नए कारीगर अपने काम में पारंगत हो जाते हैं। फिर भी आधुनिक तकनीक एवं प्रक्रिया आधारित उद्योगों को सुचारु रूप से चलाने के लिए औपचारिक शिक्षा रूपी व्यवस्था की जरूरत पड़ती ही है। आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी औद्योगीकरण के साथ ही एक बड़े पैमाने पर शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था के रूप में स्कूलों, कॉलेजों, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों और विश्वविद्यालयों का प्रादुर्भाव हुआ।

यूरोप में मध्य युग में भी स्कूल होते थे। पर उनका काम लोगों को चर्च में बाइबल पढ़ने के लिए लैटिन भाषा सिखाना भर था। इसलिए इन स्कूलों को ग्रामर स्कूल भी कहा जाता था। उन दिनों बाइबल लैटिन भाषा में ही होती थी। ग्रामर स्कूल इस लैटिन को ही सिखाने का कार्य करते थे। इंग्लैंड में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण यूरोप में रोमन सम्राज्य के दिनों में सम्पर्क भाषा के रूप में लैटिन भाषा ही प्रयोग होता था। उन दिनों इंग्लैंड का तो अभिजात्य वर्ग भी अंग्रेजी भाषी नहीं, अपितु फ्रेंच भाषी ही था। ओल्ड अंग्रेजी के नाम पर जाने जाने वाली उस काल की अंग्रेजी वहाँ के जर्मनी से विस्थापित हो कर बसे आदिवासी ही प्रयोग करते थे। ये तो प्रोटेस्टेंट मूवमेंट था, जिसके बाद बाइबल जैसे ग्रंथ का भी इंग्लैंड की जन-सामान्य की भाषा में अनुवाद हुआ। जी हाँ! पंद्रहवीं सोलहवीं शताब्दी तक अंग्रेजी वहाँ के अभिजात्य वर्ग की नहीं, जन-सामान्य की भाषा ही मानी जाती थी। ये तो जन आंदोलन थे, जिन्होंने कुलियों और गँवारों की भाषा के रूप में पहचानी जाने वाली अंग्रेजी को शासन-प्रशासन की धुरी में लाकर खड़ा कर दिया। इंग्लैंड में लोकतंत्र के प्रादुर्भाव के साथ ही वहाँ की लोक भाषा इंग्लिश का शासन-प्रशासन में उपयोग सुनिश्चित हो सका और समय के साथ वहाँ के एलीट वर्ग ने भी अंग्रेजी को अपनाया। इंग्लैंड के जाहिल और गँवारों की भाषा अंग्रेजी का औपचारिक शिक्षा में प्रयोग शुरू होने के बाद ही जन-जन तक शिक्षा पहुँच पाई। आज भी अंग्रेजी भाषा पर लैटिन और ग्रीक के प्रभाव को अंग्रेजी के शब्दकोश के माध्यम से महसूस कर सकते हैं। यहाँ तक कि अंग्रेजी को लिखने के लिए भी

रोमन/लेटिन अल्फाबेट अर्थात् वर्णमाला का ही प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी के अधिकतर तकनीकी शब्द लैटिन अथवा ग्रीक भाषा के हैं। परिष्कृत शब्दों के रूप में फ्रेंच का प्रभाव भी अंग्रेजी पर साफ-साफ दिखता है।

जन-भाषाओं को औपचारिक शिक्षा के केन्द्र में लाने की एक वजह औद्योगिक क्रांति भी थी। औद्योगिक क्रांति के साथ छोटे पैमाने पर चलने वाले परम्परागत उद्योगों का पतन हुआ और प्रक्रिया आधारित आधुनिक उद्योगों का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिक क्रांति के बाद पैदा हुई आधुनिक व्यवस्था को जिस पैमाने पर कुशल तकनीशियनों, कारीगरों, इंजिनियरों, शासन-प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने वाले अधिकारियों की जरूरत थी, उसे समाज में स्वतः चलने वाली अनौपचारिक शिक्षा से पूरा नहीं किया जा सकता था। उसे पूरा करने के लिए ही औपचारिक शिक्षण संस्थानों की जरूरत पड़ी। इस प्रकार स्कूल, कॉलेज, तकनीकी संस्थान खुलने लगे। बड़े पैमाने पर पैदा हुई औपचारिक शिक्षा की जरूरत को संभ्रान्त तबके की नाफ़ीस भाषा में चलने वाले स्कूलों से पूरा नहीं किया जा सकता था। अतः शिक्षण केन्द्रों की नाफ़ीस भाषा को इंग्लैंड की जन-भाषा ने प्रतिस्थापित कर दिया। इस प्रकार इंग्लैंड की जन-भाषा अंग्रेजी का प्रयोग जन-शिक्षण में सुनिश्चित हो सका।

हम ऊपरी तौर पर देखें तो भारतीय समाज भी परम्परागत से आधुनिक समाज में परिवर्तित हो रहा है। आधुनिक ज्ञान आधारित समाज को संचालित करने के लिए कुशल जागरूक नागरिकों की जरूरत को, औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक स्कूली-विश्वविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था का भारत में उदय एक प्रगतिशील कदम ही माना जा सकता है। पर समस्या यह है कि इस पवित्र साधन का अपवित्र उद्देश्य के लिए प्रयोग किया गया। भारत में इस आधुनिक स्कूली-विश्वविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था का प्रादुर्भाव भी औपनिवेशिक काल में ही हुआ। अंग्रेजों के काल में स्थापित इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य सचेत, जागृत और कुशल नागरिकों को पैदा करना कदापि नहीं था। क्लर्क पैदा करने वाली व्यवस्था के नाम से जानी जाने वाली इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य अंग्रेजों के शासन को बनाये रखने में सहायकों-सहयोगियों एवं आज्ञाकारी नागरिकों का एक वर्ग तैयार करना था। इसका किसी भी प्रकार से कल्याणकारी उद्देश्य नहीं था। इस शिक्षा व्यवस्था के संस्थापक मैकाले ने तो स्पष्ट कहा था कि इस शिक्षा के माध्यम से ऐसे लोगों को तैयार करेंगे जो रंग रूप से तो भारतीय हों पर सोच-समझ और विचार से अंग्रेजी व्यवस्था के भक्त हों। फिर *ट्रिकल डाउन फार्मूला* अर्थात् *रिस-रिस कर नीचे तक पहुँचाने के सिद्धान्त* से यह वर्ग शिक्षा के मूल्यों को नीचे तक पहुँचाएगा। इस फार्मूले से जो बिचौलिया सहयोगी वर्ग पैदा हुआ, वह ही अंग्रेज शासकों और शासितों के बीच की कड़ी के रूप में काम कर रहा था। इन सहयोगियों में अंग्रेज अफसरों के कार्यालयों में काम करने वाले क्लर्क और अधिकारी ही नहीं, अपितु अंग्रेजी शासन का

विरोध करने वाले तमाम आंदोलनकारी और समाज सुधारक की छवि वाले लोग भी शामिल थे। अंग्रेजी शासन का सबसे बड़ा सहयोग था, उनका विरोध करने के लिए भी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग। अंग्रेजों के समय में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के बाद क्रांतिकारी आंदोलनों को छोड़ दें तो स्वतंत्रता की लड़ाई जीतने के बाद भी सुधार और सत्ता हस्तांतरण के लिए जो आंदोलन हुए, उन सब का नेतृत्व इस अंग्रेजी भाषी बिचौलिये सहयोगी वर्ग ने ही किया। उन आंदोलनों के दौरान भारतीय नेताओं और अंग्रेजों के बीच संवाद का माध्यम अंग्रेजी ही रहा। अघोषित तौर पर यह नियम स्थापित हो गया कि नेतृत्व उसके हाथ में रहेगा जो अंग्रेजी में अपनी बात कहेगा। यह अंग्रेजों के काल में अंग्रेज सरकार से सत्ता हस्तांतरण की लड़ाई लड़ने वाले वर्ग के द्वारा अंग्रेज शासकों के साथ किया गया सबसे बड़ा सहयोग था। यदि किसी व्यवस्था का विरोध करने वाला वर्ग, उस व्यवस्था के तौर-तरीकों को ही अपना लेता है, तो यह उस व्यवस्था की सबसे बड़ी जीत है। वर्ष 1951 की जनगणना के अनुसार मुश्किल से 18% आबादी ही साक्षर थी। उसमें से चंद नगण्य ही 'मैट्रिकुलेशन' की दहलीज को पार कर कॉलेज तक पहुँचे थे। पर स्वतंत्रता से पूर्व सत्ता हस्तांतरण के प्रयास में जुटे काँग्रेस, मुस्लिम लीग और तमाम बड़ी पार्टियों का लगभग सारा-का-सारा शीर्ष नेतृत्व इंग्लैण्ड-अमेरिका से शिक्षा ग्रहण करके आया हुआ अंग्रेजी भाषी ही था। इनका अंग्रेजों के साथ व्यक्तिगत घनिष्ठ संबंध भी था। उस वक्त उच्च शिक्षा का माध्यम सिर्फ अंग्रेजी ही था। इस प्रकार भारतीय कॉलेजों से पढ़ कर निकलने वाला युवा वर्ग भी अपने वरिष्ठ साथियों के प्रभाव से अछूता नहीं था। अंग्रेजी बोलने

वाले लोगों के रूतबे की वजह से धीरे-धीरे समाज का युवा वर्ग अंग्रेजी रंग में रंगता गया। एक तरफ अंग्रेजों का विरोध और दूसरी तरफ अंग्रेजी और अंग्रेजियत का आत्मसातीकरण, दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चल रही थीं। अंग्रेजी प्रतीकों, वस्तुओं का त्याग और अंग्रेजी का प्रयोग दोनों साथ-साथ चले। स्वयं महात्मा गांधी ने हिन्द स्वराज में इसका उल्लेख करते हुए कहा है कि हमारी काँग्रेस के काम-काज की भाषा अंग्रेजी है। हमारा युवा वर्ग सही अंग्रेजी जानता न हो पर प्रयोग अंग्रेजी का ही करता है। जनता ने भी अघोषित तौर पर अंग्रेजी भाषी नेतृत्व को ही मान्यता दे रखी थी। शायद इसलिए कि ये लोग ही अंग्रेजों से बात कर आज़ादी दिला सकते हैं। अतः सत्ता हस्तांतरण के बाद सत्ता के सभी केन्द्र इसी मुट्ठी भर अंग्रेजी भाषियों के हाथ में ही आ गए और फिर धीरे-धीरे उन तक ही सिमट कर रह गए। आज आप विश्वविद्यालयों की बात करें या न्यायालयों की, कोर्ट का बार रूम हो या संसद और संविधान सभा का गलियारा, जिम्मेदार नौकरशाह हो या वफादार फौज के आला अफसर, स्वतंत्रता के समय सत्ता के तमाम केन्द्रों पर यह छोटा-सा अंग्रेजी भाषी वर्ग ही छाया हुआ था। उस वक्त उस छोटे-से वर्ग का ही अंग्रेजी भाषी कल्चर था। इस छोटे-से वर्ग के कल्चर ने एक सिस्टम पैदा किया, जिसे हम अंग्रेजी भाषी व्यवस्था अर्थात् इंग्लिश मीडियम सिस्टम कह सकते हैं। इसके बाद कुछ भी घोषित तौर पर करने की जरूरत ही नहीं पड़ी। बस इस वर्ग की सुविधा ने ही सब कुछ स्वतः करवा दिया। शासक वर्ग की सुविधा के फलस्वरूप ही यह इंग्लिश मीडियम सिस्टम चल पड़ा। आम जनता का झुकाव तब तक इस दिशा में नहीं गया था जब तक अंग्रेजी को रोजगार से

जोड़ा नहीं गया था। परोमेश आचार्य के अनुसार आम जन का झुकाव तब अंग्रेजी की तरफ बढ़ा जब सार्वजनिक नौकरियों के दरवाजे उनके लिए खुले पर साथ में अंग्रेजी की अनिवार्यता की शर्त भी लगा दी गई। विश्वविद्यालयों के दरवाजे खुले तो पर अंदर बैठने की हिम्मत वही कर सकता है, जो अंग्रेजी समझ सकता है। बाकी तो दो लाईन सुन कर ही बाहर भाग आयेगा। इसका अर्थ साफ है कि सत्ता के केन्द्र सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी भाषियों के लिए आरक्षित कर दी गयी। भारतीय भाषाएँ सर न उठा सकें, इसके लिए भाषा के नाम पर उत्तर भारतीयों को दक्षिण भारत भाषी लोगों से लड़ाया भी गया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं में भेद पैदा कर अंग्रेजी को स्थापित किया गया। सिर्फ भारतीय भाषाओं का ज्ञान रखने वाले चपरासी तो बन सकते हैं पर अफसर नहीं। प्राथमिक स्कूल के शिक्षक तो हो सकते हैं पर विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर नहीं। सेना के जवान तो हो सकते हैं पर कर्नल-जनरल नहीं। अर्थात् उस मुट्ठी भर सत्ता में आए अंग्रेजी भाषी लोगों की बदौलत ही यह मूल्य स्थापित हो सका। इन मुट्ठी भर लोगों की सुविधा ने ही अंग्रेजी मीडियम कल्चर को पैदा किया। इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व का बिचौलिया सहयोगी वर्ग स्वतंत्रता के बाद 'पावरफुल एलिट वर्ग / शक्तिशाली संभ्रांत वर्ग' में तब्दील हो गया। इस 'पावरफुल एलिट वर्ग / शक्तिशाली संभ्रांत वर्ग' के हाथों में ही हमेशा सत्ता की धुरी रही है। इसमें सभी आते हैं - खानदानी नेता, खिलाड़ी, अभिनेता, सत्ताधारी-विपक्षी, काँग्रेसी-भाजपाई-कम्युनिस्ट, मीडिया के बॉस, कम्पनियों के जनरल, फौज के कर्नल, ऊँचे ओहदे वाले नौकरशाह, भ्रष्ट ईमानदार, टॉप विश्वविद्यालयों के इंटेलेक्चुअल माने जाने वाले

प्रोफेसर, स्कूली पाठ्यचर्चा लिखने वाली पूरी टीम, अर्थात् हर क्षेत्र का टॉप/सर्वोच्च व्यक्ति इसमें समाहित है। कहने को इस वर्ग के लोगों का एक-दूसरे से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो, एक दूसरे के घोर विरोधी भी हों, परंतु एक बात पर ये सभी लोग एक जुट हैं, वह है - अंग्रेजी भाषा का प्रयोग। यह वर्ग यह मानता है दूसरों को मनवाता है कि बिना अंग्रेजी उद्धार संभव नहीं। ये बात तथाकथित दलितों का संभ्रांत/एलीट वर्ग भी कहता है और तथाकथित कम्युनिस्टों का संभ्रांतवर्ग भी। अंग्रेजी दक्षिण पंथियों की सुविधा है, तो वांमपंथियों की भी। पूँजीपतियों को ग्लोबलाइजेशन का साधन लगती है तो नेताओं को इंटरनैशनलिज़्म का। मैं पुनः यहाँ पर एक व्यक्तिगत अनुभव को साझा करना चाहूँगा। एक रोज मैं शिक्षा अधिकार मंच के कार्यकर्ताओं की बैठक में गया था। उस बैठक में विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसर भी थे। बातचीत के दौरान एक और साथी आ गये जो केरल से थे। केरल के साथी पिछले लम्बे समय से दिल्ली में रह रहे हैं। जैसे ही केरल के साथी ने बताया कि वे केरल से संबंधित हैं, विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने अपनी तरफ से कहा, “चूँकि हमारा एक मित्र केरल से है, अतः कोई साथी यहाँ हो रहे विचार-विमर्श का अंग्रेजी अनुवाद भी करो।” जबकि केरल के साथी ने अपनी पूरा परिचय मलयालम लहजे के साथ हिन्दुस्तानी शैली में दिया और अपनी तरफ से अनुवाद की कोई माँग भी नहीं रखी। उनके चेहरे पर तो कहीं-भी हिन्दुस्तानी के प्रयोग को लेकर आपत्ति के भाव भी नहीं थे। पर विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों के चेहरों की सिलवटें उतर नहीं रही थीं। मैं वर्तमान में जिस स्कूल में काम कर रहा हूँ, वहाँ का आधे से ज्यादा स्टाफ दक्षिण के राज्यों से है और विद्यार्थी

निम्न मध्यमवर्गीय प्रवासी कॉलोणियों से हैं। स्कूल अंग्रेजी मीडियम होने के बाद भी विद्यार्थी, स्टाफ़ और स्कूल में आने वाला अभिभावक वर्ग समान्य हिंदी की मिली-जुली हिन्दुस्तानी का प्रयोग ही करता है। जैसा कि एक ट्रेन यात्रा के दौरान मिले दो यात्रियों की बातचीत का वर्णन करते हुए बताया था कि किस प्रकार भारत उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम के लोगों ने अपनी हिंदी की मिली-जुली हिन्दुस्तानी शैली का विकास किया है। उनके साथ विचारविमर्श करने हेतु उनके अधिकारी भी मिली जुली भाषा का ही प्रयोग करते हैं। उन तकनीशियनों के अनुसार अधिकारी वर्ग की अपनी मीटिंग अंग्रेजी मिश्रित हिंग्लिश भाषा में ही होती है। अतः अंग्रेजी कहीं-न-कहीं ऊपर के तबके की जरूरत मात्र है। भारत में उच्च वर्ग की सम्पर्क भाषा बेशक अंग्रेजी हो, पर जन-सामान्य तो हिंदी की हिन्दुस्तानी शैली की खोज कर ही लेता है। एलिट, शहरी उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च मध्यम वर्ग ही मिल कर एक सिस्टम को बनाता है। इसे ही हम इंग्लिश मीडियम सिस्टम कह सकते हैं। इस सिस्टम के इर्द-गिर्द जैसे-जैसे नव हिंग्लिश अर्थात् हिंग्रेजी भाषी वर्ग जमता जाता है। वैसे-वैसे समाज पर अंग्रेजी अर्थात् अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ता जाता है। सत्ता और अधिक अंग्रेजी भाषियों के नियंत्रण में आती जाती है। इस वर्ग ने ही व्यवस्था के हर केन्द्र के लिए मानदण्ड भी तय करने प्रारम्भ कर दिए हैं। परीक्षा चाहे नौकरियों की हो या विश्वविद्यालय में दाखिले की, हर जगह अंग्रेजी छाई रहती है। कौन-सा काम अंग्रेजी में होगा और कौन सा हिन्दुस्तानी भाषाओं में, यह सब इंग्लिश मीडियम सिस्टम का शक्तिशाली संप्रात (पावरफुल एलिट) वर्ग ही तय कर रहा है।

अब परम्परागत से आधुनिक अर्थव्यवस्था में हुए बदलाव में औपचारिक शिक्षा की भूमिका का फिर से विश्लेषण करते हैं। आधुनिक उद्योगों के साथ आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का भी प्रादुर्भाव हुआ। चूँकि उद्योग अब प्रक्रिया आधारित हो गए हैं अतः हर प्रक्रिया हेतु विशिष्टतापूर्ण शिक्षा के बिना आधुनिक व्यवस्था को चला पाना संभव ही नहीं है। औद्योगिक समाज का पूरा-का-पूरा पदानुक्रम शैक्षिक योग्यता पर आधारित है। डॉक्टर, इंजीनियर, तकनीशियन, कम्प्यूटर ऑपरेटर ड्राईवर आदि तमाम प्रकार की पदव्यवस्था हेतु अलग-अलग तरह की शिक्षा व्यवस्था और प्रशिक्षण केन्द्र बन गए हैं। यदि यह तय कर दिया जाए कि कौन-सी शिक्षा किस भाषा-माध्यम में होगी, तो यह भी तय हो जाएगा कि समाज का कौन-सा वर्ग कौन-सा काम करेगा। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था पर नियंत्रण का अर्थ है, प्रक्रिया आधारित समाज व्यवस्था पर नियंत्रण कायम करना। शिक्षा की धुरी में किसी भाषा विशेष को रखने का अर्थ अवसर को उस भाषा विशेष को बोलने वालों तक सीमित करना। चूँकि भाषा को ज्ञान, योग्यता, पुस्तकों की उपलब्धता आदि से जोड़ा जा सकता है तो उसके पीछे की राजनीति को तोड़ना आसान नहीं है। औपचारिक शिक्षा को भाषा विशेष में संचालित करने के चार फायदे हैं। उस भाषा विशेष को न जानने वाले लोग उस बुर्ज में आ ही नहीं सकते। दूसरा जो आ जाते हैं वे वहीं के होकर रह जाते हैं, अर्थात् वे जा नहीं सकते। तीसरा सबसे जबर्दस्त फायदा यह कि जो बाहर रह जाते हैं वे हमेशा इस प्रयास में लगे रहते हैं कि किस तरह वे उस बुर्ज में पहुँचेंगे और जब वे वहाँ पहुँच नहीं पाते, तो आसानी से अपनी असफलता का कारण अपने आप को ही मान लेते हैं। जो

किसी तरह से बुर्ज में दाखिल हो पाते हैं, सत्तधीशों द्वारा उन्हें शेष समाज के लिए तथाकथित रूप से आदर्श के रूप में स्थापित कर दिया जाता है।

वर्तमान औपचारिक व्यवस्था के अनुसार अपेक्षाकृत निम्न दर्जे के समझे जाने वाले कार्यों का शिक्षण-प्रशिक्षण तो हिन्दुस्तानी भाषाओं में सम्भव किया गया है, जैसे आईटीआई तकनीशियन आदि। पर अपेक्षाकृत उच्च दर्जे की समझे जाने वाली शिक्षा आज तक अंग्रेजी में ही सम्भव बना कर रखी गई है, जैसे इंजीनियरी, मेडिकल आदि। स्वाभाविक है उच्च दर्जे के समझे जाने वाले कामों में वे ही रह पाएँगे, जो अपनी शिक्षा के दौरान ही उस विशिष्ट भाषा में पारंगत हो जाएँगे, जिस भाषा विशेष में वह शिक्षा उपलब्ध कराई गई हो।

प्रक्रिया आधारित समाज की पदानुक्रम व्यवस्था पूर्णतः शिक्षा, कुशलता और योग्यता द्वारा निर्धारित होती है। शिक्षा, कुशलता, योग्यता को परिभाषित करने का अधिकार समाज के वर्चस्व-प्राप्त वर्ग के पास है। वर्चस्व-प्राप्त वर्ग की सामूहिक संस्कृति पर इंग्लिश मीडियम सिस्टम हावी है। अतः जैसे-जैसे हम समाज व्यवस्था के उच्च से उच्च शिखर पर जाते हैं, वैसे-वैसे इंग्लिश सिस्टम में समाहित होते जाते हैं। अतः औपचारिक शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था भी वैसी ही है। जैसे-जैसे हम उच्च शिक्षा के ऊपरी पायदानों पर जाते हैं, वैसे-वैसे अंग्रेजी की अनिवार्यता की बाधा कठोर होती जाती है।

उच्च स्तर की शिक्षा हासिल करने के लिए 'अंग्रेजी भाषा की सुरंग' से होकर गुजरना ही पड़ता है। फरीदाबाद स्थित औद्योगिक मजदूरों की बस्ती आजादपुर-स्लम में रहने वाले एक व्यक्ति ने बताया, "अब जातियाँ तो इतना मायने नहीं रखतीं, हाँ शिक्षा (अहर्ता के संदर्भ में) जरूर मायने रखती है। बड़े पदों तक पहुँचने के लिए शिक्षा जरूरी है। वह उच्च डिग्री वाली पढ़ाई वही कर सकता है, जिसके पास अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो।" इस व्यक्ति के वक्तव्य को स्पष्ट करते हुए एक दूसरे व्यक्ति ने कहा "अच्छे कॉलेज या यूनिवर्सिटी से उच्च शिक्षा प्राप्त करने की पहली शर्त ही अंग्रेजी है।" फरीदाबाद के स्लम इलाके की एक महिला जो अपने बच्चे को एक निम्न दर्जे के गैर-मान्यता प्राप्त इंग्लिश मीडियम स्कूल में छोड़ने जा रही थी, उसने पूछने पर उसने जबाब दिया, "अंग्रेजी पढ़ेगा तब ही तो बड़ा बनेगा।"

सरकार द्वारा गठित सेनगुप्ता कमेटी रिपोर्ट के अनुसार भी औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में काम करने वाले 92% कामगार असंगठित क्षेत्र से ही हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2013 के अनुसार यह संख्या 96% कामगार असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। अर्थात् पिछले दो-तीन वर्षों में असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले कामगारों की संख्या बढ़ी है। सेनगुप्ता कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार इस देश की 77% आबादी 20 रुपए प्रतिदिन से कम पर गुजारा करती है। अब जो पहले ही 20 रुपए प्रतिदिन पर गुजारा कर रहा है, क्या वह हजारों रुपयों की फीस वसूलने वाले निजी स्कूलों की 'चॉइस' कर पाएगा? उस से भी बड़ा सवाल,

सरकार के शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2010 के कानूनी फार्मूले से यदि किसी भी तरह 20 रुपए प्रतिदिन से कम पर गुजारा करने वाली 77% आबादी को 25% आरक्षण के आधार पर कुछ को एडमिशन मिल भी जाता है, तो क्या उस वर्ग का विद्यार्थी और उसका परिवार इस नए माहौल में स्वयं को समायोजित/एडजस्ट कर भी पाएगा? इन सब प्रश्नों को इस के पहले के खण्ड में खूब खंगाला गया है। पर एक बार सामाजिक दृष्टिकोण से खंगालते हुए देखते हैं जब 77% या इससे भी ज्यादा, लगभग 85% आबादी में से कुछ लोग, अंग्रेजी माध्यम की इस शिक्षा व्यवस्था तक यदि किसी तरह अपनी पहुँच बना भी लेते हैं, तो आखिर उन पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

हम पहला उदाहरण एक चाय बेचने वाले व्यक्ति के परिवार का लेते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति की तुलना सेवा क्षेत्र में कार्यरत उच्च पदों पर आसीन प्रोफेसर्स, उच्च अधिकारियों, कोर्ट के जजों, हाईकोर्ट तथा सुप्रीमकोर्ट के वकीलों तथा इसी प्रकार के अन्य रोजगार युक्त तथाकथित अंग्रेजी भाषा में पारंगत लोगों से नहीं की जा सकती। आबादी का एक बड़ा हिस्सा तो अल्प आय वाले असंगठित क्षेत्र पर ही निर्भर है। वह अंग्रेजी भाषा से अछूता भी है। उसकी आमदनी इन बड़े पदों पर काम करने वालों के मुकाबले नगण्य ही है। संगठित क्षेत्र में कार्यरत वर्ग, जिसकी आय असंगठित क्षेत्र के कामगारों के मुकाबले बहुत ज्यादा है, वह संगठित क्षेत्र वाला वर्ग ही इस देश में अंग्रेजी भाषी भी है। किसी ज़माने में अलीगढ़ से रोजगार

की तलाश में आए रामफल उर्फ चाय बेचने वाले सज्जन पहले फरीदाबाद की फैक्टरी में मजदूर थे। बीच में काम छूट जाने की वजह से उन्होंने चाय बेचने का काम शुरू किया। आज उनकी भी इच्छा अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ा कर बड़ा आदमी बनाने की है। अतः इन सज्जन का लक्ष्य अपने बच्चों को इन उच्च ओहदों तक पहुँचाना ही है। इसीलिए वे अपने बच्चों से कहते हैं, “आज की डेट में अंग्रेजी है क्या चीज, जो दो-चार क्लास पढ़ ले, वही बोल सकता है। जो अंग्रेजी लिख पढ़ सकता है। वह ही आगे बढ़ सकता है।” कुछ ऐसा ही दसवीं कक्षा की छात्रा आरुणी के पिता ने भी कहा। वे व्यक्तिगत रूप से मातृभाषा को शिक्षा हेतु श्रेष्ठ मानते हैं, पर वे कहते हैं कि जब वे दफ्तरों, विश्वविद्यालयों में चारों ओर इंग्लिश बोलने वालों को ही पाते हैं तो उन्हें लगता है कि यदि उनके बच्चों को यह बोली नहीं आई तो वे इस उच्च समाज में आने पर हीनभावना के ही शिकार होंगे। रमेश के पिता अंत में रमेश का दाखिला हिंदी माध्यम में करवाने को तैयार हैं पर वे साथ ही यह भी कहते हैं, “वह फिर आगे अपनी बहन की भाँति किसी अच्छे कोर्स में नहीं जा पायेगा, बस भाई की भाँति छोटा-मोटा कोर्स ही कर पायेगा।” अर्थात् इस परिवार में भी वही छात्र आदर्श है, जो अंग्रेजी की बाधा को पार कर गया। चाहे वह कितना ही रट्टू-तोता क्यों न हो। वह नालायक है, जो अंग्रेजी की दहलीज़ पर रुक गया हो, अब वह चाहे कितना भी विचारशील क्यों न हो, उसकी विचारशीलता का कोई मोल नहीं रह गया है।

प्रतिष्ठित माने जाने वाले पदों पर अंग्रेजी भाषी तथाकथित शिक्षित लोग ही विराजमान हैं। समाज के इस वर्ग के पास पद है, पैसा है और इज्जत भी है। ये वर्ग ही मिल कर अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था (इंग्लिश मीडियम सिस्टम) बनाता है और इस वर्ग का सामूहिक चेतन-अवचेतन ही अंग्रेजी माध्यम संस्कृति (इंग्लिश मीडियम कल्चर) को विकसित करता है। अंग्रेजों के औपनिवेशिक काल के बाद विकसित हुई वर्तमान की इस नव-औपनिवेशवादी-व्यवस्था में अंग्रेजी काल में पैदा हुए अंग्रेजी भाषी लोगों की पीढ़ी ही सत्ता के केन्द्रों पर विराजमान है। यह वर्ग ही शेष समाज को शोषित भी कर रहा है, संचालित भी एवं नियंत्रित भी। यही वर्ग शेष समाज को नेतृत्व भी प्रदान करता है। कोई बिरला भूला-भटका व्यक्ति यदि इस व्यवस्था का भाग बन जाता है, तो धीरे-धीरे उसके लिए भी यह अनिवार्य हो जाता है कि वह इस अंग्रेजी माध्यम संस्कृति में रम जाए। उदाहरण के लिए, राम मनोहर लोहिया के अनुयायी मुलायम सिंह यादव किसी जमाने में हिन्दी के कट्टर समर्थक रहे हैं। वे खुद अंग्रेजी भाषी भी नहीं हैं। परंतु राजनीति में आने के बाद जो पद और रुतबा प्राप्त हुआ, उसका फायदा उठा कर उन्होंने अपनी अगली पीढ़ी को एलीट राजनेताओं के समकक्ष लाने के लिए अपने पुत्र की सम्पूर्ण औपचारिक शिक्षा एलिट वर्ग के मानदण्डों के अनुरूप ही करवायी। मिलिट्री स्कूल की एलिट पढ़ाई और फिर ऑस्ट्रेलिया की उच्च शिक्षा अर्थात् पूरी तरह से एलिट राजनेताओं के अनुरूप संस्कार दिये गए, और अब उनकी नयी पीढ़ी के पुत्र तो अंग्रेजी के हिमायती हैं ही, श्री मुलायम सिंह भी अंग्रेजी को लेकर मुलायम पड़ गए हैं। यह कोई छोटे-मोटे नहीं, अपितु रुतबे वाले एक राजनेता की कहानी

है। भारत के संभ्रांत वर्ग की संस्कृति के आगे वह भी नहीं टिक पाया। तो आम लोगो की औकात क्या है? हर व्यक्ति का सपना है- पद हो, पैसा हो, रुतबा हो, और भारत में अंग्रेजी इन सब तक पहुँचाने का साधन भी है। यदि कोई एलिट वर्ग तक पहुँच कर भी अंग्रेजी से अछूता है तो वह एलिट वर्ग का भाग कभी नहीं बन पाएगा। अतः इसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु लोग अंग्रेजी भाषी बनने हेतु प्रेरित हो रहे हैं।

घोषित और अघोषित तौर पर उच्च शिक्षा का अंग्रेजी माध्यम होना भी अपने आप में महत्वपूर्ण कारण है, क्योंकि यह ही उच्च माने जाने वाले पदों तक जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस देश के श्रेष्ठ माने जाने वाले तमाम विश्वविद्यालय और एम्स-आईआईटी जैसे संस्थानों का शिक्षण पूर्णतः अंग्रेजी भाषा में होता है। इन संस्थानों में दाखिले में सीबीएसई इंग्लिश मीडियम स्कूलों के विद्यार्थियों की अधिकता यह भ्रम पैदा करती है कि कामयाबी का रास्ता सीबीएसई का पाठ्यक्रम चलवाने वाले इंग्लिश मीडियम स्कूलों के बीच से ही गुजरता है। लोगों के अनुभव भी उन्हें प्रेरित करते हैं कि वे शुरुआत से ही अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढाएँ। जैसा कि रमेश के पिता अजय ने अपने अनुभव में बताया, “हमें कॉलेज में क्या पढाया गया, वह कुछ समझ नहीं आता था।” इसी प्रकार उनके ज्येष्ठ पुत्र ने भी अंग्रेजी माध्यम में पढाई समझ ना आने की वजह से पहले साल ही बी-फार्मा का कोर्स छोड़ दिया। इस अनुभव को एम्स के विद्यार्थी अनिल मीणा के मामले से जोड़ कर

देखें तो पाते हैं कि अनिल को भी अंग्रेजी में दिए जाने वाले लेक्चर समझ नहीं आते थे। क्षेत्रीय भाषा माध्यम से पढ़े हुए इस धुरंधर विद्यार्थी को एम्स में अंग्रेजी में चलने वाली कक्षाएँ ही समझ नहीं आती थी। फलस्वरूप प्रथम वर्ष में ही सभी विषयों में अनुत्तीर्ण होने के बाद उसने अपनी जीवन लीला समाप्त करने का निर्णय किया। कुछ ऐसा ही तमिल माध्यम से स्कूल से शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्रा एस. धारिया लक्ष्मी के मामले में हुआ। बी. टेक की इंजिनियरिंग की इंग्लिश मीडियम कक्षा उसके समझ के बाहर थी, जिसके कारण एक रोज धैर्य खो कर उसने भी आत्महत्या कर ली। ऐसे अनेकों मामले हैं और इन मामलों में हरेक जाति, धर्म, क्षेत्र के विद्यार्थी शामिल हैं। एक उच्च स्तर के अंग्रेजी माध्यम स्कूल से पढ़ कर आए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थी को उच्च शिक्षा के अंग्रेजी माध्यम से कोई परेशानी नहीं होती तो अनुसूचित जाति से संबंधित अनिल मीणा ने ही आत्म हत्या क्यों की? ठीक उसी तरह दक्षिण भारत के नेताओं ने तो हिन्दी के विरोध में आन्दोलन कर अंग्रेजी के राज को चिर स्थायी बना दिया, इसीलिए तो तमिल माध्यम के स्कूल से शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्रा एस. धारिया लक्ष्मी ने भी अंग्रेजी माध्यम की वजह से आत्महत्या की !!! इससे स्पष्ट है किसी भी व्यक्ति के लिए उसके परिवेश से बाहर की भाषा बाधा ही पैदा करेगी। चाहे दुनिया की कोई भी भाषा हो। रमेश के पिता अजय को भी जब पता चला तो वे सब काम छोड़ कर अपने पुत्र के होस्टल पहुँच गए। उन्होंने अपनी डबडबाई आँखों से मुझे बताया “जब कुछ दिनों तक इसका फोन नहीं आया, और फोन पर बात करो तो सही से ना बोलता था, तब हमें कुछ डाउट-सा हुआ और

मैंने उसके कॉलेज में फोन करके उसका रिजल्ट पता किया। जब पता चला फेल है तो मैं सब काम छोड़ कर उसके कॉलेज भागा और उसी दिन उसका बोरिया-बिस्तर वापस ले आया।”

नुइपा (NUIPA) के वर्तमान वाइस चांसलर, बेशक कन्नड़ माध्यम से पढ़ कर, उच्च शिक्षा के दौरान अंग्रेजी पर महारथ हासिल कर चुके हों, पर समान्यतः क्षेत्रीय भाषा माध्यम में पढ़ने के बाद विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम में चलने वाली उच्च शिक्षा में कामयाब नहीं हो पाते। इस तरह के अनुभव लोगो में ये विश्वास पैदा करते हैं कि उच्च शिक्षा में कामयाबी का सफ़र बिना इंग्लिश मीडियम स्कूल की ट्रेन में बैठे संभव ही नहीं है। निम्न वर्ग का ये भ्रम उच्च वर्ग के इंग्लिश मीडियम सिस्टम को और भी पुख्ता करता जाता है।

इस बात को लेकर जितने अस्वस्थ माता-पिता हैं, बच्चे उनसे कम परेशान नहीं हैं। बच्चों को भी अपने भाई-बहनों, आस-पड़ोस, कॉलेज-यूनिवर्सिटी जाने वाले उनके भाई-बहनों-मित्रों के अनुभव से यह जानकारी हासिल हो जाती है कि अच्छे माने जाने वाले विश्वविद्यालयों में शिक्षा पूर्णतः अंग्रेजी में ही होती है। उनमें भी यह विश्वास घर गया है कि उस नए वातावरण में समायोजित होने के लिए अंग्रेजी अनिवार्य है। इन मानदंडों की जानकारी बच्चे, बड़े भाई-बहनों और उनके आस-पड़ोस के लोग भी देते रहते हैं। यह उच्च वर्ग के अंग्रेजी मीडियम कल्चर के अनुरूप किया गया समाजीकरण ही तो है। जिसमे

बच्चों को अंग्रेजी मीडियम व्यवस्था के अनुरूप बनाने हेतु अंग्रेजी साँचे में ढाला जाता है। इस कार्य में अंग्रेजी मीडियम स्कूल इस साँचे में ढालने का काम कर रहे हैं। कुछ माता-पिता ऐसे भी होते हैं जो अपने तुतलाते बच्चों की भाषा का तथाकथित शुद्धिकरण करने के लिए, उन्हें अंग्रेजी मीडियम पालनाघर (क्रच) में भी डालने से भी संकोच नहीं करते हैं।

इतना तो अब स्पष्ट हो ही जाता है कि अंग्रेजी मीडियम स्कूलों के प्रति झुकाव का कारण अंग्रेजी मीडियम सिस्टम का दबदबा है। इस अंग्रेजी मीडियम सिस्टम दबदबे की वजह से ही राज-व्यवस्था, नौकरी की परीक्षाओं, विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी छाई हुई है। **जीवन लक्ष्य माने जाने वाले श्रेष्ठ पदों तक पहुँचने के लिए यदि श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों, आईआईटी-एम्स, यूपीएससी से 'परमानेंट वीजा' चाहिए। इंग्लिश मीडियम स्कूल उस वीजे के लिए 'अंग्रेजी' रूपी परमानेंट पासपोर्ट प्रदान करने का काम करते हैं।**

इस प्रकार अंग्रेजी माध्यम स्कूल चुम्बक तो बना ही दिया गया है पर यह प्राकृतिक चुम्बक नहीं है। यह बिजली से बने उस कृत्रिम चुम्बक के सामान है, जो तब तक ही आकर्षण रखता है जब तक इसमें बिजली प्रवाहित होती है। पर यह कृत्रिम चुम्बक, प्राकृतिक चुम्बकों से कहीं अधिक शक्तिशाली बना हुआ है। इन कृत्रिम चुम्बकों के प्रभाव से ना केवल बच्चों, अपितु माता-पिता का भी व्यवहार परिवर्तित होता है। यह कृत्रिम चुम्बक बच्चों के सम्पूर्ण साँस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन लाता है।

यही कृत्रिम चुम्बक तय करता है कि बच्चे किस तरह के लोगों से दोस्ती करेंगे, यही कृत्रिम चुम्बक तय करता है कि किन जगहों पर लोग घूमने जाएँगे, यही कृत्रिम चुम्बक तय करता है कि बच्चे घर के काम, खेती-बाड़ी, आदि में हाथ बटाएँगे या नहीं। यह कृत्रिम चुम्बक, विद्यार्थी को उसके सम्पूर्ण साँस्कृतिक परिवेश से काट कर नष्ट कर देता है और तथाकथित रूप से श्रेष्ठ माने जाने वाले अंग्रेजी सिस्टम के परिवेश के लिए तैयार करता है। इस प्रकार प्रसिद्ध समाज-विज्ञानी दुर्खाइम की यह बात स्पष्ट होती है कि स्कूल का काम विद्यार्थी को न केवल सामाजिक भूमिकाओं के लिए तैयार करना है, अपितु समाज के मानकों को अपनाने के लिए भी। यह भूमिका और मानक तय करने का काम समाज का वर्चस्व प्राप्त वर्ग करता है। औपचारिक उच्च शिक्षा की एजेंसी ने, ना केवल विद्यार्थियों का, अपितु सम्पूर्ण जन-समुदाय का समाजीकरण इस तरह से किया है कि यह एक आम धारणा बन गयी है कि बिना अंग्रेजी के कामयाबी हासिल हो ही नहीं सकती है। श्रेष्ठ कहलाने वाले ओहदों तक पहुँचने का पहली शर्त/मानदंड अंग्रेजी ज्ञान ही है। इसलिए जब कोई अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति भी अपने बच्चों को दो लाइन अंग्रेजी के बोलता देखता है तो अपने मुँहों को ताव देता है और एक बार अपने आप को उच्च कहलाने वाले अंग्रेजी भाषी तबके के साथ खड़ा हुआ पाता है।

ग्रामीण क्षेत्र के कुछ जागरूक लोगों का मानना है कि लार्ड मैकाले ही वो शक्स है जिसने इस देश की मानसिक गुलामी वाली अंग्रेजी माध्यम शिक्षा की नींव रखी। ग्रामीण क्षेत्र में आज भी यह आम जुमला है - “अंग्रेज चले गए अपनी पूँछ यहाँ छोड़ गए।” पर वे लोग स्वतंत्रता के बाद के एलिट वर्ग द्वारा अपने निहित स्वार्थों के लिए बनाए गए इंग्लिश मीडियम सिस्टम की भूमिका को नहीं समझ पाते।

इंग्लिश मीडियम सिस्टम का मूल कारण उच्च शिक्षा तथा प्रशासन में अंग्रेजी का बने रहना भी है। प्रोमेश आचार्य ने अपनी पुस्तक में लिखा कि स्वतंत्रता के बाद लोगों का झुकाव तेजी से अंग्रेजी की तरफ बढ़ा है। इसका उन्होंने यह कारण स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता के बाद, नौकरी और उच्च शिक्षा के जो दरवाजे भारतीय लोगों के लिए खुले, उन नौकरियों के लिए अंग्रेजी अनिवार्य थी। यही स्थिति हम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देखते हैं। आज अच्छी माने जाने वाली हर शिक्षा सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध है। पर जैसा कि न्युपा के उपकुलपति ने कहा कि क्षेत्रीय भाषा माध्यम से डिग्री कर के भी उच्च शिक्षा में अंग्रेजी का ज्ञान हासिल किया जा सकता है। लोगों ने अपने अनुभव से यह मान लिया है कि उच्च शिक्षण संस्थान में सफल होने के लिए अंग्रेजी पर पकड़ मजबूत होना जरूरी है।

स्वतंत्रता के बाद उच्च शिक्षा की भाषा और प्रशासन की भाषा को अंग्रेजी को ही बनाये रखा। संविधान के माध्यम से पहले दस वर्ष के लिए अंग्रेजी को लागू रखा। फिर उत्तर और दक्षिण की भारतीय भाषाओं को बिल्लियों की तरह आपस में लड़वाया और इस आड़ में उच्च वर्ग तथा सत्ताभोगी की भाषा, अर्थात् अंग्रेजी को समस्त भारत पर थोपने का कार्य किया जाता रहा और जैसे-जैसे शिक्षा का निजीकरण बढ़ा, वैसे-वैसे अंग्रेजी का दबदबा भी। क्योंकि बाजार में वही बिकता है, जो दिखता है। अपनी भाषा में पढ़ा कर लोगों को शिक्षित करना मुश्किल है। पर अंग्रेजी के दो शब्द रटा कर तोते की भांति बुलवाना आसान। इस प्रकार वे शिक्षा नहीं शिक्षा का भ्रम पैदा करते रहे हैं। 90% प्रतिशत निजी स्कूल यही कर रहे हैं। बाकी बचे 10% वो सिर्फ उच्च तथा उच्च-मध्यम वर्ग की संस्कृति को बनाने का काम कर रहे हैं।

ऊपर के कथन को हम बोरजियो की संस्कृति पूंजी की संकल्पना के आधार पर भी मूल्यांकित कर सकते हैं। यदि औपचारिक उच्च शिक्षा (श्रेष्ठ कहलाने वाली) का उद्देश्य सिर्फ मानव पूंजी का निर्माण ही नहीं, अपितु साँस्कृतिक पूंजी का संरक्षण प्रदान करना भी है। इस प्रकार, उसकी भूमिका आर्थिक पूंजी को सीमित हथों में रखना भी है। श्रेष्ठ समझी जाने वाली औपचारिक उच्च शिक्षा की भूमिका तो 'साँस्कृतिक पुनरुत्पादन' के माध्यम से 'साँस्कृतिक पूंजी' की इमारत को पुख्ता करना भी है। 'साँस्कृतिक पुनरुत्पादन' से तात्पर्य है- समाज के वर्चस्वशाली वर्ग के वर्चस्व को बनाए रखना, जिसके

लिए वर्चस्ववादी वर्ग यह तय करता है कि समाज के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए किस प्रकार के ज्ञान, कौशल और क्षमता की आवश्यकता है, साथ ही, इस पूर्व-निर्धारित ज्ञान, कौशल व क्षमता तक पहुँचने के रास्ते को तय करने का अधिकार वर्चस्व में बैठे वर्ग के हाथों में ही होता है।

जैसा कि कृष्ण कुमार जी की पुस्तक 'गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि अंग्रेजी शिक्षा से सिर्फ क्लर्क वर्ग ही तैयार नहीं हुआ, बल्कि तथाकथित शिक्षित कहलाने वाला एक छोटा-सा वर्ग भी तैयार हुआ, जो शासन-प्रशासन और शिक्षा-व्यवस्था के शीर्ष पर रहा। स्वतंत्रता के बाद इस वर्ग का वर्चस्व बना रहा। फलस्वरूप उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी ही रही। यह बात महात्मा गाँधी के शब्दों से और पुख्ता होती है, जब वे वर्ष 1909 हिन्द स्वराज में लिखते हैं- "एक साधारण एम.ए. पास व्यक्ति भी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता। हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करने का जरिया अंग्रेजी है। हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है।" सत्ता के शीर्ष पर यही वर्ग छाया रहा। इसने ही साँस्कृतिक पूँजी और सामाजिक पूँजी का निर्माण किया। सामाजिक पूँजी के रूप में एक प्रकार की अंग्रेजी भाषा बोलने वालों का समूह तैयार हुआ। यह समूह बेशक छोटा है, पर बहुत शक्तिशाली है। समाज के शेष जन अर्थात् अंग्रेजी ना बोल पाने वाला जन समुदाय, उन मूल्यों को अपने अन्दर समाहित करना चाहता है। ये जन-सामान्य के नए उपजे साँस्कृतिक मूल्य हैं। बिना

अंग्रेजी सफलता हासिल नहीं हो सकती, यह उसकी धारणा है। “जो अंग्रेजी बोलेगा वह ही दहाड़ेगा” इस प्रकार का विश्वास लोगों में बड़ी चतुराई से भर दिया गया है। इस प्रकार, अंग्रेजी भाषा को समाज के स्तरीकरण का आधार बना दिया गया है। समाज में अलग-अलग वैचारिक स्तर के अलग-अलग समूह होते हैं। जिनका पदानुक्रम साँस्कृतिक पूँजी के केंद्र से दूरी के आधार पर तय किया जाता है। इस साँस्कृतिक पूँजी का संरक्षण, आर्थिक पूँजी तथा राज-सत्ता करती है। इसलिए कोई वर्ग विशेष आर्थिक रूप से सम्पन्न होता है, तो वह अपनी एकजुटता, साँस्कृतिक रूप से सम्पन्न वर्ग के साथ करता है।

जैसा कि इस मामले पर लिए गये साक्षत्कार और केस स्टडी के पात्रों का कहना है विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षण के श्रेष्ठ समझे जाने वाले संस्थानों में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का ही दबदबा रहता है। इसके आधार पर मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि ये उच्च संस्थान(युपीएससी, एम्स, आईआईटी, आदि) ही स्कूलों में पढ़ने वालों के लिए आदर्श तय करते हैं। यदि हम महात्मा गाँधी की मानें और उनके विचारों के आधार पर आज की स्थितियों का विश्लेषण करें, तो पाएँगे कि इन देश के 95% स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे अपनी 90% ऊर्जा अंग्रेजी में रटने में ही खर्च कर देते हैं। जैसे-जैसे उच्च वर्ग से निम्न वर्ग की तरफ जाते हैं,

‘उच्च-वर्गीय-अंग्रेजी’ को पढ़ने का बोझ बढ़ता जाता है। अंततः इस शिक्षण व्यवस्था में, वे ही लोग कामयाब होते हैं जो अंग्रेजी में महारत हासिल कर पाते हैं और यह पहले से ही तयशुदा उच्च वर्गीय लोग हैं। समाज में लोगों की छँटनी करने का काम अंग्रेजी कर रही है। शिक्षा में वास्तविक बोझ शिक्षण का नहीं, पाठ्यक्रम का भी नहीं, विदेशी भाषा के माध्यम का बना हुआ है।

हिंदी में पांच गुना बढ़ जाती है काबिलियत

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’,
‘दैंट इज

हिन्दुस्तान
एक्सप्रेस

मातृभाषा में ही शोध

हमने कई बार देखा है कि अरब शोध यजुषभ में किए जाते हैं तो उनकी गुणवत्ता बेतर होवे है, जबकि अंग्रेजी में यह अध्ययन रहती है। वही कारण है कि रूस, जापान और अरब में शोध की कीमतों में ही होते हैं।

— गवैरा रोडी, भारतीय रक्षा विज्ञान संस्थान, लखनऊ के प्रमुख और भारतीय

हिंदी का बढ़ रहा क्रेज

● अमेरिका के 80, कनाडा के 95 और ऑस्ट्रेलिया के 95 शिक्षण संस्थानों में हिंदी सिखाई जाती है
● यूनाइटेड किंगडम के 24 विश्वविद्यालयों व 56 संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई है

सिन्हापुर में रिसर्च : सिन्हापुर नेशनल यूनिवर्सिटी की कार्यकारी निदेशक कर्जिन पिंग ने एक शोध काहवागत देते हुए बताया कि स्कूल स्तर पर हिंदी और तमिल विषय लेने वालों का उच्च शिक्षण में प्रदर्शन अत्यधिक बेहतर देखा गया। ऐसे में हमने उच्च शिक्षा में हिंदी को बढ़ाने का प्रस्ताव भी दिया है।

● हिंदी पर संतक में हंभमा: पेज-2

बड़ दिल्ली | अनुराग मिश्र

हिंदी और मद्राष में पढ़ने से किती बे छात्र की काबिलियत पांच गुना तक बढ़ जाती है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई के एक शोध पत्र में यह बात सामने आई है। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिन्हापुर के एक शोध में भी कनेक्टिविटी इवेंट्स के तहत सामने आर है।

यूनिवर्सिटी ऑफ सिन्हापुर के अध्यक्ष अमर और योगेश पाल ने कीकड़े अभ्यास एक परीक्षा ली। इसके तहत हिन्दी माध्यम के छात्रों को कुछ दिनों तक वेबाना हिंदी और अंग्रेजी में एक-एक पेट के लेखन दिखाए गए।

इसमें पता गया कि जब हिंदी के छात्रों ने हिंदी में प्रोग्रामिंग की तो उन्हें लगातार स्पष्टता आरहे थे और उनकी क्षमता पांच गुना तक बढ़ गई। अगर जब उन्होंने अंग्रेजी में प्रोग्रामिंग की तो उन्हें कोई नया विचार नहीं आया, वे सिर्फ दिखाए गए तथ्यों पर ही काम कर रहे थे।

‘अंग्रेजी राज’

:

‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’,
‘गैरबराबरी’ की
व्यवस्था पर
‘सांस्कृतिक ठप्पा’

16 जुलाई 2014 को हिन्दुस्तान में छपी भाषा के विषय पर किए गये अनुसंधान की यह खबर गवाह है कि व्यक्ति के विचार और विश्लेषण करने की क्षमता परिवेश की भाषा में अधिक होती है। तो हमारे यहाँ तमाम उच्च संस्थाओं और नैकरियों की नियुक्ति करने वाली संस्थाओं में गैर परिवेश की भाषा हावी क्यों है ?? पाठक तनिक विचार करे !!!!

अध्याय-29

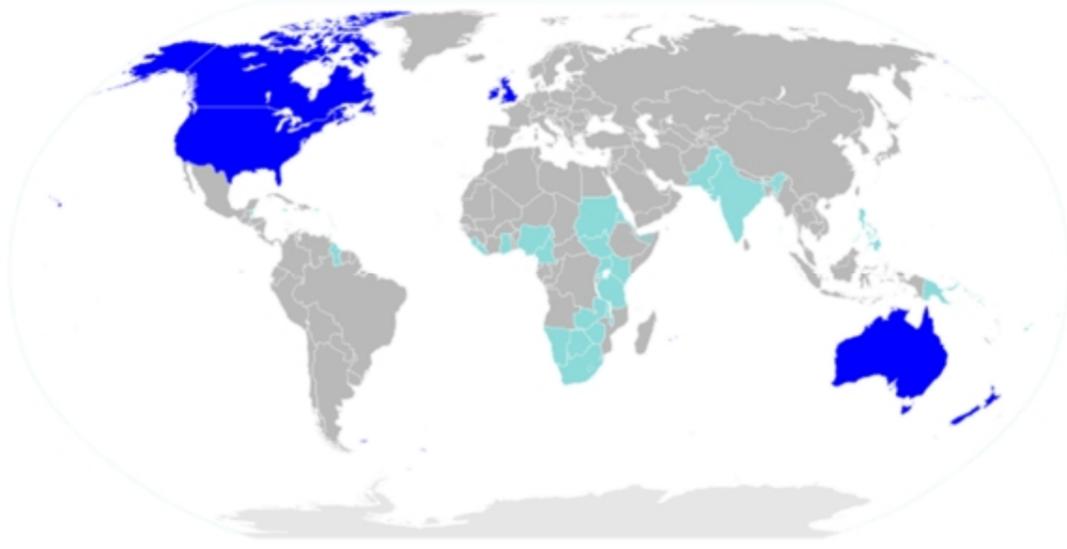
अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व से उत्पन्न विश्व ज्ञान अनुक्रम(आर्डर)

अवसर की समानता परिस्थितियों की समानता पर निर्भर करती है । पर विविध संस्कृतियों वाले देश में यदि हम एक ही भाषा- संस्कृति(चाहे वह अंग्रेजी हो या मानक-हिंदी हो या कोई भी अन्य) को पूरे देश में थोप देगे तो यह कुछ ही लोगो को अवसर प्रदान करेगी शेष हीनता के ही शिकार ही होंगे । यह बात जितनी एक देश पर लागू होती है उतनी ही सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था पर भी ।

अंग्रेजी भाषा की विश्व में तुलनात्मक स्थिति क्या है? यह किस तरह के विश्व ज्ञान अनुक्रम आर्डर को पैदा करती है? आईये जरा इन प्रश्नों से रू बरू होए ।

विकिपीडिया से मिली जानकारी के अनुसार, यदि हम अंग्रेजी भाषा की तुलनात्मक स्थिति पर गौर करे तो अंग्रेजी का उपयोग विश्व के 88 देशों में अधिकारिक भाषा के रूप में होता है । जिसमे से 60 देश प्रभुसत्ता संपन्न है तथा शेष 28 प्रभुसत्ता हीन हैं ।

विकीपीडिया से प्राप्त विश्व के नीचे दिए गये नक्से पर गौर करे तो पाते हैं कि अंग्रेजी का प्रयोग विश्व के हर कोने में होता है ।
“अंग्रेजो के राज में सूरज कभी अस्त नहीं होता” वाली कहावत कम से कम अंग्रेजी के सन्दर्भ में तो आज भी लागू होती ही है ।
सतही स्तर पर देखे तो अंग्रेजी विश्व के हर कोने में प्रचलित भाषा प्रतीत होती है ।



चित्र: 29.1 पर विकीपीडिया का यह मानचित्र, यह भी दर्शाता है कि अंग्रेजी का प्रसार अंग्रेजों की कॉलोनियों तक ही सिमित है। उसके बाहर कहीं नहीं है।

चित्र व्याख्या:-अंग्रेज जहां स्थाई तौर पर बसे, वहां उन्होंने पहले से बसे मूल निवासियों का पूरी तरह से सफाया कर युरोपिए बस्तियां बसाईं। इन क्षेत्रों को गहरे नीले रंग से दर्शाया गया है। जहां मूल निवासियों का सफाया संभव नहीं था और संख्या बल में कहीं न कहीं वे कमजोर साबित हो रहे थे, वहां उन्होंने बीचौलियां-दलाल वर्ग पैदा किया। इस बीचौलियां दलाल वर्ग की बदौलत ही शेष समाज को नियंत्रित किया। अंग्रेजों के साथ अंतरंग संबंध की बदौलत ही यह बीचौलिया दलाल वर्ग उनकी भाषा और संस्कृति को अपना सका। अंग्रेजों के जमाने में सत्ता में भगीदारी के लिए तैयार यह वर्ग उनके जाने के बाद भी सत्ता के शीर्ष पर बना रहा और अंग्रेज के सत्ता छोड़ने के बाद इस वर्ग के हाथों ही सत्ता रही। यहां का अंग्रेजों के द्वारा पैदा किया बीचौलियां दलाल वर्ग ही संभ्रांत वर्ग का रूप लेकर अंग्रेजी को कायम रखे है और इन देशों में अधिकारिक भाषा के रूप में अंग्रेजी को कायम रखे हुए है। इसे हलके नीले रंग से दर्शाया गया है। किसी जमाने में अंग्रेजों के गुलाम रहे देशों को छोड़ दे तो शेष विश्व में अंग्रेजी का प्रयोग नगण्य ही होता है। चीन, जपान, रूस, जर्मनी आदि देशों में अंग्रेजी का प्रचलन नगण्य ही है।

अंग्रेजों के पूर्व उपनिवेशों में ही अंग्रेजी शिक्षा और प्रशासन की अधिकारिक भाषा के रूप में प्रयोग जरूर होती है। पर इन देशों में पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या नगण्य ही है। पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों का 87% भाग यु. एस. ए., यु. के., आस्ट्रेलिया, कनेडा, न्यूजीलैण्ड, आयरलैण्ड, साउथ अफ्रीका में बसा है। अर्थात् सिर्फ सात देश में ही कुल पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों की जनसँख्या का घनत्व है। इन देशों में पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों में एक बड़ी संख्या इंग्लैंड से आकर बसे लोगों की ही है या उन लोगों की जिनकी मूल भाषा को अंग्रेजों ने पूरी तरह नष्ट कर दिया है। साउथ अफ्रीका में अंग्रेजी मूलतः अंग्रेज बस्तियों की ही मूल भाषा है। तो यु.एस.ए. में भी अंग्रेजी के बाद दूसरा स्थान स्पेनिश का भी है। शेष विश्व में मूल रूप से पैदाइशी अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या 13% ही है। इसमें से भी एक बड़ा तबका अमेरिका और इंग्लैंड के कब्जे वाले गैर प्रभुसत्ता संपन्न द्विपों में बसा है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में मूल रूप से अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या महज 2,26,499 अर्थात् ढाई लाख लोग की भी मूल भाषा अंग्रेजी नहीं है। महज .023% लोग ही अंग्रेजी को मूल रूप से अंग्रेजी को प्राथमिक भाषा मानते हैं।

अंग्रेजी भाषा की थोड़ी बहुत जानकारी के आधार पर अंग्रेजी को सैंकेंड एण्ड थर्ड लेंग्वेज घोषित करने वालों की संख्या 10 % के आस पास है। इस सन्दर्भ में चाय बेचने वाले सज्जन का यह वक्तव्य गौर करने वाला है , “ आज की डेट में इंग्लिश है क्या चीज

जो दो चार क्लास पढ़ जाता है उसे अंग्रेजी आ जाती है ।” इस प्रकार देखे तो औपचारिक शिक्षा की कृत्रिम व्यवस्था ही अंग्रेजी भाषियों की द्वितीयक जमात को पैदा कर रही है । भारत जैसे देश में सत्ता की भाषा होने की वजह से हर एक अंग्रेजी के प्रति ललाईत है । किसी भी तरह दो चार लाईन सीख कर अपनी द्वितीयक भाषा अंग्रेजी घोषित करने को आतुर रहता है । भाषा के जानकारों के अनुसार महज़ 3 से 4 % जनसँख्या ही अंग्रेजी भाषा का धारा प्रवाह ठीक-ठाक प्रयोग करने की क्षमता रखती है । पर अंग्रेजी माध्यम में अपने बच्चों को पढ़ाने की इच्छा हर व्यक्ति की है । माता पिता की इच्छा कहे या सामाजिक दबाव बच्चे जानवरों की भांति अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के खूटे से बाँध दिए जाते हैं । घर का, गांव का , परिवेश की संस्कृति की भाषा में अंग्रेजी का पुट हो न हो, पर डालना अंग्रेजी में ही है । विशिष्ट कहलाने वाले महंगे स्कूलों में ना सही गली नुक्कड़ पर खुले स्कूलों में ही पढ़ायेगे पर अंग्रेजी माध्यम में ही पढ़ाएंगे । इसी प्रकार हमने देखा कि देखा कि इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स सीखाने वाली संस्थाओं की भी बाढ़ आई हुई है । कुछ बैनर के साथ तो कुछ बिना बैनर के ही चल रहे हैं । इस प्रकार गली गली कुकर मुत्तों की तरह खुले इंग्लिश मीडियम स्कूल और इंग्लिश स्पीकिंग कोचिंग सेंटर्स का सहारा लेकर भी द्वितीयक एवं तृतीयक भाषा के रूप में अंग्रेजी बोल सकने वालों की संख्या 12 करोड 53 लाख ही है । जो इस देश की कुल जनसंख्या का महज 10 % हिस्सा ही है । ..और यह संख्या भी अंग्रेजी भाषा के सत्ता के साथ संबंधों की वजह से अंग्रेजी के प्रति बढ़ते क्रेज का ही परिणाम है । यह ठीक उसी प्रकार है जैसे नाम लिखना भर कोई सीख जाए तो साक्षर हो जाते हैं । उसी प्रकार दो चार लाईन जानने वाला व्यक्ति अपने आप

को इंग्लिश स्पीकर घोषित कर देता है। अतः साडे बारह करोड लोगों में ठीक ठाक अंग्रेजी बोलने वालो से कही ज्यादा दो-चार लाईन अंग्रेजी सीख कर अपने आप को अंग्रेजी भाषी घोषित करने वाले लोग ही शामिल है। 2005 के 'इंडिया ह्यूमन डेवलपमेंट सर्वे' के अनुसार 72 % अंग्रेजी भाषा से पूर्णतः अपरिचित है। सिर्फ 5 % ही अंग्रेजी को ठीक ठाक बोल पाते है।

हम अंग्रेजी भाषा को सांस्कृतिक परिवेश की भाषा के रूप में प्रयोग करने वाले देशों की स्थिति को चित्र 5.3 के माध्यम से दर्शायेगे ।



चित्र 29.2 संख्या विश्व में अंग्रेजीको मातृभाषाके रूप में बोलने वालों देशवार विवरण; सन्दर्भ विकिपीडिया

अब यदि हम एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक “समझ का माध्यम” में लिखी बात, “हमारी समझ अपनी भाषा में ही बनती है।” को सैद्धांतिक रूप से सत्य माने तो अंग्रेजी के वर्चस्व वाली व्यवस्था में मौलिक समझ पर अधिकार यु एस ए, यु के, आस्ट्रेलिया, कनेडा, न्यू जीलैण्ड का बना रहेगा। भारत जैसे देशों के विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र महज इन देशों में छपी पुस्तकों का सन्दर्भ लेते रहेंगे। मुझ जैसे लेखक भी इन देश के अनुसंधानकर्ताओं का ही उल्लेख करते रहेंगे। भारत जैसे विकासशील देशों के तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग अपने ज्ञान को सत्यापित करने के लिए उन देशों की तरफ ही मुंह बाये खड़े रहेंगे। भारत जैसे देशों का मौलिक ज्ञान धीरे धीरे नष्ट होता जाएगा और मौलिक ज्ञान के लिए वे हमेशा फश्मि की तरफ ही मुंह ताकते रहेंगे। देश का 72 % दबा कुचला वर्ग ज्ञान प्रम्परा का कभी भी भाग नहीं बन पायेगा और न ही इसके ज्ञान को कभी भी अधिकारिक दर्जा ही प्राप्त हो पाएगा। ज्ञान पर पेटेंट एवं कॉपी राईट की व्यवस्था अमीर मुल्कों एवं भरत जैसे मुल्क के भी अमीर वर्ग के पक्ष में ही बनी रहेगी। भारत देशों का संभ्रांत वर्ग अपने आप को ब्रिटेन और अमेरिका के साथ जोड़ने के प्रयास में लगा रहेगा। इंग्लिश मीडियम सिस्टम जहाँ विश्व स्तर पर व्यवस्था को अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों के पक्ष में बनाए रखता है। अंग्रेजी का वर्चस्व इन देशों की तुलनात्मक स्थिति को बेहतर

बनाता है। वही भारत जैसे पूर्व उपनिवेश देशों में सत्ता का केन्द्रण ऊपर के 3-4 % के अंग्रेजी भाषी संभ्रांत वर्ग तक ही सीमित रखता है। मौलिक ज्ञान चूकें मौलिक भाषा में ही प्रतिष्फुटित होता अतः यह ज्ञान अंग्रेजी भाषी मूलकों में ही पैदा होगा। द्वितीयक भाषा के रूप में शिक्षा में अंग्रेजी का प्रयोग करने वाले देश मूल रूप से अंग्रेजी का प्रयोग करने वाले देशों के पिछलगू ही बने रहेंगे। यही इंग्लिश मीडियम सिस्टम आधारित व्यवस्था की विशेषता है।

विशेष नोट - पूरे विश्व में अंग्रेजी के प्रसार के लिए स्थापित ब्रिटिश काउन्सिल 1 पौंड का निवेश कर 3-4 पौंड का आय अर्जित करता है। 2006-07 में अंग्रेजी भाषा और कल्चर का प्रसार कर इस संस्था ने 972 मिलियन पौंड का आय अर्जित किया।

अध्याय-30

खतरा है इंग्लिश मीडियम शिक्षा व्यवस्था

शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर इंग्लिस के वर्चस्व वाली शिक्षा व्यवस्था की विवेचना

औपचारिक शिक्षा को लेकर समाज के अंदर अनेक प्रकार के मिथ प्रचलित हैं। पहला तो यही है कि यह एक समाजिक कल्याण के लिए है तथा आदर्श समाज की स्थापना के लिए है। दूसरा यह समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन को लाने का साधन है। पर हकीकत इससे कहीं परे है। थोड़ी गहराई पर विवेचना करने पर हम पाते हैं कि यह राज्य नियंत्रित औपचारिक शिक्षा व्यवस्था राजव्यवस्था और पूँजीव्यवस्था के एजेंट से ज्यादा कुछ नहीं है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था राजव्यवस्था और पूँजीव्यवस्था की उपव्यवस्था के रूप में इन दोनों पर वर्चस्व प्राप्त वर्ग की ही इच्छा पूर्ति का ही साधन मात्र है। यह उपव्यवस्था राजव्यवस्था और पूँजीव्यवस्था पर वर्चस्व प्राप्त वर्ग के मूल्यों को ही समाज में आरोपित करने का काम करती है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की इस भूमिका की समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर विवेचना का प्रतिपादक

दुर्खाईम, टालकोट और बोरजियो जैसे समाजशास्त्रियों ने भी की है। इस पाठ में हम उन्हीं के प्रतिपादित सिद्धान्तों को आधार बनाकर औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की विवेचना करेंगे।

- 1st. प्रक्रिया आधारित समाज की राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने में औपचारिक शिक्षण संस्थाओं की अहम भूमिका है। राजव्यवस्था की उपव्यवस्था के रूप में औपचारिक शिक्षा व्यवस्था तीन प्रमुख संरचनात्मक कार्य करती है। पहला व्यवस्था के शीर्ष संचालकों (बुर्जुआ वर्ग) की विशिष्ट परिष्कृत संस्कृति के अनुरूप शेष समाज का सांस्कृतिककरण करना, दूसरा व्यवस्था की जरूरत के अनुरूप कौशल का निर्माण करना और तीसरा जो पहले दोनों से अधिक महत्वपूर्ण है वह है शीर्ष व्यवस्था के तयशुदा मानदंडों के अनुरूप भूमिकाओं के आबंटन।
- 2nd. औपचारिक शिक्षा की तमाम संस्थाएं जैसे प्लेस्कूल, नर्सरी, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्कूल, पोलिटेकनिक-कॉलेज-विश्वविद्यालय, आईआईटी-आईआईएम, युपीएससी-कैट-मैट जैसी परीक्षाओं को आयोजित करने वाली ऐजेंसियाँ, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कराने वाले कोचिंग सेंटर इसके अतिरिक्त कंप्यूटर कोर्स एवं इंग्लिश स्पीकिंग सीखाने वाली संस्थाएं (शायद अब भी कुछ नाम छुट गए होंगे), पर ये सभी की सभी ऐजेंसिया समाजीकरण की

द्वितीयक एजेंसी के रूप में सिर्फ और सिर्फ वर्चस्व प्राप्त वर्ग के मूल्य- मान्यताओं, एवं कौशल की धारणाओं को ही न केवल युवा वर्ग में अपितु शेष समाज में समाहित करने का कार्य करती है।

- 3rd. औपचारिक शिक्षण संस्थाएं सांस्कृतिक मूल्यों के लिए युवा लोगों के समाजीकरण के द्वारा व्यवस्था को और अधिक समर्थन एवं मजबूत बनाने में मदद करता है। यह समाज के शीर्ष वर्ग की जरूरत के अनुरूप शेष समाज की सोच में निरंतर परिवर्तन करने का प्रयास करता रहता है। और यह प्रयास कार्य कुछ हद तक ही घोषित तरिके से चलता है, परन्तु शेष व्यवहारों और परिणामों के उदाहरणों के माध्यम से अघोषित रूप में शेष जन में स्थापित किया जाता है। अघोषित तरिके से पड़ने वाली छाप का ज्यादा गहरा सांस्कृतिक असर होता है। इसमें से कुछ ही स्पष्ट हो पाता है और लोगों को भी समझ में आता है। पर क्रियाएं इतनी स्वभाविक हो जाती हैं कि अधिकतर सांस्कृतिकरण के टूल जन समान्य के समझ से बाहर की ही बाता हो जाती है। औपचारिक शिक्षा के माध्यम से खुले रूप में बच्चों और युवाओं का सांस्कृतिकरण करने की प्रक्रिया और छुपे रूप में समस्त समाज का सांस्कृतिकरण करती है। नीचे की आबादी बेशक अपने आप को उन स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप अपने आप को परिवर्तित न कर पाये पर सके वर्चस्व को स्वीकार कर लेती है।

- 4th. ऊपर से देखने पर लगता है कि औपचारिक शिक्षा संपूर्ण व्यवस्था श्रेष्ठता, योग्यता, क्षमता को निखारने का काम कर रही हैं। कहने को श्रेष्ठता, योग्य, क्षमता के आधार पर समाज के सभी लोगों को आगे बढ़ने के समान अवसर उपलब्ध कराती है। पर इस श्रेष्ठता, योग्यता, क्षमता की परिभाषा को तय करने का काम दृश्य एवं अदृश्य रूप में समाज का शीर्ष वर्ग ही तय कर रहा होता है। इस प्रकार वह ही तय करता है कि समाज के किस काम के लिए किस प्रकार की योग्यता की जरूरत है। समाज में वर्चस्व प्राप्त कामों के लिए अंग्रेजी अनिवार्य कर के उन कामों को पूर्णतः अंग्रेजी भाषी लोगों के लिए आरक्षित कर दिया जाता है। कहने को भारत में सरकार संविधान के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, आर्थिक एवं समाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए उच्च शिक्षण संस्थाओं एवं नैकरियों में आरक्षण की व्यवस्था है। पर ज्ञान, योग्यता, कौशल, क्षमता को तय करने की प्रक्रिया कुछ ऐसी है कि यह समाज के शीर्ष ऐलिट वर्ग के ही अनुरूप रहता है। आदिवासियों का ज्ञान कभी स्थापित ज्ञान की बराबरी नहीं कर पाता है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों/अभ्यर्थियों को शीर्ष द्वारा स्थापित ज्ञान को अपनाना ही पड़ता है। इसी प्रकार आर्थिक एवं समाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की भाषा औपचारिक व्यवस्था का भाग नहीं होती है। आरक्षण की व्यवस्था इसलिए है कि इस वर्ग के भी लोग ऐलिट वर्ग में समाहित हो। जाति आधारित इस व्यवस्था में भी उन्हीं लोगों के पास अवसर अधिक होते हैं। जो तय मापदंडों के करीब होते हैं। अनिल मीणा(ST) और विजय(SC) जैसे विद्यार्थी तो आरक्षण जैसी

व्यवस्था के बावजूद भी अपवाद स्वरूप ही इन शीर्ष केन्द्रों तक पहुँच पाते हैं और फिर बहुत जल्दी धकिया दिए जाते हैं। अतः इंग्लिश मीडियम की अनिवार्यता एक ऐसा माहौल पैदा करती है कि इन आरक्षित वर्गों के भी ऊपर के पायदानों के कुछ हद तक अंग्रेजी जानने वाले लोग ही लोग उच्च शिक्षा के श्रेष्ठ संस्थानों तक पहुँच पाते हैं और फिर सत्ता के उसी रंग में रंग जाते हैं।

- 5th. औपचारिक शिक्षा की भूमिका लोगों को वर्गीकृत करने की है तथा औपचारिक शिक्षा अहर्ता एवं परीक्षाओं के माध्यम से समाज की स्थापित व्यवस्था के अनुरूप लोगों के विभाजन करने का कार्य करती है। व्यवस्था किस प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करना चाहती है यह काफी हद तक औपचारिक व्यवस्था की मूल्यांकन पद्धति तय करती है। पाठ्यक्रम देख कर तय किया जा सकता है कि व्यवस्था का फोकस क्या है? शिक्षण की प्रविधि तय करती है कि विषय से विद्यार्थी को व्यवस्था किस रूप में जोड़ना चाहती है। व्यवस्था क्या चाहती है? सतही जानकार या विवेचनशील। ये वार्षिक की जगह सेमिस्टर सिस्टम के पीछे की राजनीति क्या है? औपचारिक शिक्षा पर किस वर्ग का संस्कृतिक वर्चस्व बना रहे यह भाषाई माध्यम तय करता है।
- 6th. औपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के आधार पर समाज में सफल होने का अवसर देता है। यहाँ तक कि राजव्यवस्था की नजर में जो समाज के कमजोर वर्ग हैं, उन्हें व्यवस्था में जगह प्रदान करने के लिए

आरक्षण भी प्रदान किया जाता है। पर क्षमता, कौशल, योग्यता की परिभाषा क्या होगी? यह तय करने का अधिकार राज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था के 'शीर्ष-आदर्श-नेतृत्व' के हक में ही रहती है। अर्थात् समाज का एलिट वर्ग ही इन परिभाषों को तय कर रहा होता है और परिभाषाएं उसके पक्ष को ही मजबूत करती हैं। आरक्षित श्रेणी को तो बस इतनी छुट होती है कि वे अपने आप को व्यवस्था के तौर तरिकों के अनुरूप ढाल कर व्यवस्था पालकों के रंग में रंग जाए। क्षमता, कौशल, योग्यता की शर्तों पर तो शत-प्रतिशत इसी वर्ग का आरक्षण होता है।

मानव पूँजी शिक्षा और स्तरीकरण

कौशल, योग्यता और कार्य सम्बन्धी ज्ञान को मानव पूँजी की अवधारणा के रूप में समेट सकते हैं। मानव पूँजी से तात्पर्य समाज के उत्पादक कार्यों के अनुरूप लोगों में ज्ञान, कौशल एवं तकनीकी समझ विकसित करना। चूँकि अलग अलग कार्यों के लिए अलग अलग तरह के कौशल की आवश्यकता होती है। अतः औपचारिक शिक्षा की विभिन्न संस्थाएं व्यवस्था के द्वारा तय मापदंड के अनुरूप अलग अलग प्रकार की मानवीय पूँजी तैयार करने का कार्य करती हैं। जैसे आईआईटी इंजिनियर तैयार करने का काम करती हैं तो आईटीआई तकनिसियन। इसीप्रकार अन्य संस्थाएं भी मजदूर-चपड़ासी से लेकर जज, डॉक्टर जैसी

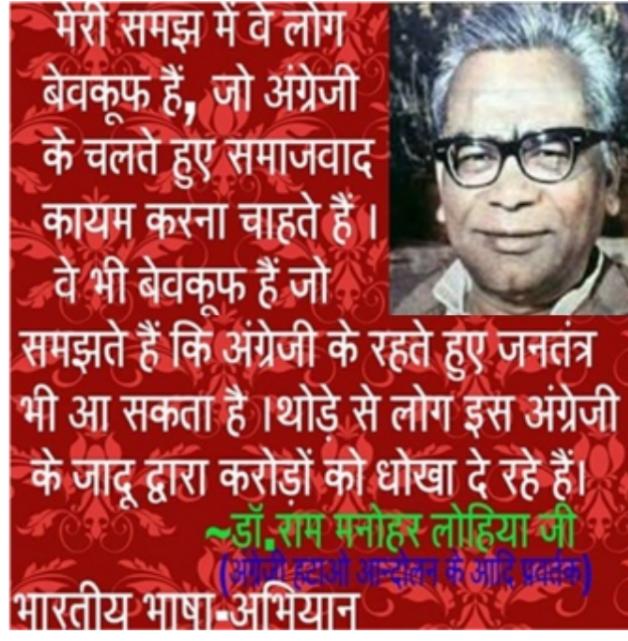
मानवपूँजी तैयार करने का काम करती है। औपचारिक शिक्षा की वास्तविक भूमिका वर्चस्व प्राप्त वर्ग की संस्कृति के अनुरूप संस्कृतिकरण की ही है। मानविय पूँजी के निर्माण की प्रक्रिया में वर्चस्व प्राप्त वर्ग के मूल्य को शेष समाज के मूल्यों में समाहित किया जाता है। आईटीआई का परीक्षण क्षेत्रिये माध्यमों में संभव है। पर क्या आईआईटी की इंजिनयरिंग की शिक्षा, आईआईएम की मनेजमेंट की शिक्षा, तमाम मेडिकल कॉलेजों की शिक्षा, वर्चस्व प्राप्त विश्वविद्यालयों की शिक्षा भी क्या क्षेत्रिय भाषा माध्यमों में होती है। किसी भी प्रकार के मानवपूँजी की वर्चस्व प्राप्त वर्ग की सांस्कृतिक पूँजी से ओहदेवार तुलनात्मक दूरी जितनी कम होगी उतना ही उस मानव पूँजी के निर्माण पर वर्चस्व प्राप्त वर्ग की संस्कृति का प्रभाव अधिक दिखेगा। औपचारिक शिक्षा की सर्वोच्च संस्थाएं 'सांस्कृतिक पुनरुत्पादन' के माध्यम से सांस्कृतिक पूँजी को और अधिक पुख्ता करती जाती है। 'सांस्कृतिक पुनरुत्पादन' से तात्पर्य समाज के वर्चस्वशाली वर्ग की संस्कृति को पैदा करना और उसके सांस्कृतिक वर्चस्व को कायम रखना है। संस्कृतिक पूँजी एक जैसा सोच-विचार रखने वाले लोगों का एक छोटा सा समूह तैयार करती है। यह छोटा सा समूह ही समाज की सामाजिक पूँजी है। इसप्रकार यह सामाजिक पूँजी एक प्रकार का समूह संबंधों पर आधारित है। इसके ही हाथ में समाज की अर्थव्यवस्था और राजव्यवस्था का नियंत्रण होता है। यह समूह ही अर्थव्यवस्था की शर्तों को भी तय कर रहा होता है। एक तरह का वैचारिक स्तर रखने वाले वर्ग का एक समूह बन जाता है। वर्चस्ववादी वर्ग ही तय करता है कि समाज के अलग अलग स्तर की मानव पूँजी के लिए किस प्रकार 'सांस्कृतिक-गमन' की आवश्यकता है। 'सांस्कृतिक-गमन' के लक्ष्य के अनुरूप

ही मानवीय पूँजी के ज्ञान , कौशल , क्षमता की परिभाषाएं गढ़ी जाती है। समाज में आलग अलग वैचारिक स्तर के अलग अलग समूह होते हैं। जिनका पद क्रम सांस्कृतिक पूँजी के केंद्र से दूरी के आधार पर तय किया जाता है। इस सांस्कृतिक पूँजी के संरक्षण का लक्ष्य आर्थिक पूँजी को वर्चस्व प्राप्त वर्ग तक समेटे रखना है।

ऊपर के विश्लेषण को समझने के लिए मार्क्सवादी चिंतक ग्रामिस के "सांस्कृतिक आधिपत्य" के सिद्धांत के दृष्टिकोण से भी देखना होगा। ये सांस्कृतिक आधिपत्य समाज के सांस्कृतिक रूप से वर्चस्ववादी वर्ग का पैदा किया हुआ है। निसंदेह ऐसी व्यवस्था में वे लोग ही सफल हो पायेंगे जो व्यवस्था के हिसाब से सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ होंगे हैं। सांस्कृतिक रूप से हीन मानने वाला वर्ग न केवल तय मापदंडों के आधार पर असफल होकर नीचले पायेदानों पर अटकेगा अपितु वर्चस्वशाली वर्ग के सांस्कृतिक मूल्यों की श्रेष्ठता को भी अपनाता जाएगा।

उदहारण के तौर पर युपीएससी की परीक्षा में बैठने वाला अभ्यर्थी यह तय नहीं करता कि परीक्षा का पाठ्यक्रम क्या होगा ? ना ही समाज का आम आदमी ही यह तय करने का अधिकार रखता है। यह तो ऊपर के स्तर का नैकरशाह है जो अपने राजनैतिक आकाओं के निर्देश पर और विश्वविद्यालयों के शीर्ष प्रोफेसर वर्ग के सहयोग से पाठ्यक्रम को तैयार करता है। ये तीनों ही वर्ग ऊपर के 3% के अंदर आ जाते हैं। नीचे के शेष 97% तो अपने आप को उस तय मापदण्ड के अनुरूप

ढालने का प्रयास करते हैं। अब 97% में जो तय मूल्यों के जीतने करीब होगा। वह उतनी आसानी से योग्यता की तय परिभाषा पर खरा उतरेगा। अतः पाठ्यक्रम में परिवर्तन करके परीक्षा में सफल होने वाले वर्ग को तय किया जा सकता है। शिक्षक कैसी पुस्तकों को पढ़ने हेतु कहेंगे यह सब कुछ ऊपर के स्तर पर ही तय हो जाता है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, भाषा सब कुछ ऊपर का 3% का तबका तय कर रहा होता है। स्कूल-कॉलेज, शिक्षकों, कोचिंग संस्थाओं की भूमिका तो महज उस वर्ग के ऐजेंट के रूप में ज्ञान मूल्य और कौशल को युवा वर्ग में समाहित करने की होती है। यु.पी.एस.सी., डी.एस.एस.एस.बी. जैसी संस्थाएं और इस तीन प्रतिशत के एलिट क्लास के मूल्यों के अनुरूप अधिकारियों और सत्ता संचालकों चयन करने भर का काम करती है।



अध्याय-31

इंग्लिश मीडियम सिस्टम : भ्रष्टाचार, शोषण और गैरबराबरी की संस्कृति को पोषित करने की संस्कृति

इंग्लिश मीडियम सिस्टम सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रखता है। सत्ता का चंद हाथों में सिमटा रहना ही पूंजीवादी शोषण और उसके फलस्वरूप पैदा हुई आर्थिक एवं सामाजिक गैरबराबरी और भ्रष्टाचार का आधार है। इंग्लिश मीडियम शिक्षा संस्कृतिकरण के माध्यम से जनसामान्य के मानस पर सांस्कृतिक ठप्पा लगाने का काम करती है। यह कल्चर एक तरह से शोषण, गैरबराबरी और भ्रष्टाचार को बनाए रखने वाले इंग्लिश मीडियम को सामाजिक-सांस्कृतिक आधार बनाने का काम करता है। मानसिक गुलाम बनाने की यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो 90% आबादी को अंग्रेजीकरण के भ्रम में बनाए रखती है और ऊपर के 3-5% लोगों को सर्वाधिकार देती है। बीच के 5-7% लोग इंग्लिश मीडियम के भ्रम का प्रसार करने में ऊपर के 1-2% सत्ताधारियों का सहयोग करने का काम करते हैं। इस “इंग्लिश मीडियम सिस्टम” का मुख्य कार्य शासक और शासितों में एक अंतर को कायम

रखना है और सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रखता है। अतः यह अंतर ही शोषण, गैर बराबरी और भ्रष्टाचार के मैकेनिज्म को चलाए रखने का औजार है।

देश का मिडल क्लास चूंकि इंग्लिश मीडियम स्कूलों के रास्ते शासक वर्ग के इंग्लिश मीडियम सिस्टम का हिस्सा बनने की उम्मीद रखता है और ऊपर की मलाई में कुछ हिस्सेदारी प्राप्त कर लेता है। अपवादस्वरूप ही सही, पर यह सिस्टम कुछ लोग को आरक्षण, चैरेटी आदि के रास्ते भी ऊपर तक पहुँचने का मार्गप्रशस्त करती है। .. और फिर उनको शेष समाज के समक्ष आदर्श के रूप में स्थापित करती है। निचले क्रम के लोग, जो सिस्टम का भाग बन जाते हैं वे ही शेष समाज के बीच इंग्लिश मीडियम की जरूरत की वकालत करते हैं, वे ही शेष समाज के समक्ष ऊपर के 'टॉप- हाई-फाई इंग्लिश मीडियम क्लास' को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि हमने पाया कि ये पाँच-सात प्रतिशत 'इंग्लिश भक्त' ही हर दल, हर विचारधारा, हर जाति-धर्म का शीर्ष नेतृत्व करते हैं। अतः ये ही शेष समाज को "शेरनी का दूध" का स्रोत समझे जाने वाले "इंग्लिश मईया" की आराधना का मर्म समझाते हैं। पर ऐतिहासिक कारणों से इस छोटे से वर्ग में भी ब्राह्मण एवं अगड़ी जातियों के छोटे से समूह का जो वर्चस्व अंग्रेजों के जमाने में तैयार हुआ, अंग्रेजी के वर्चस्व की वजह से, वह अंग्रेजों के बाद भी बना रहा है। अंग्रेजी का वर्चस्व

ही "ब्राह्मणवादी" अगड़ी जातियों का वर्चस्व है। जब तक अंग्रेजी का या उसके पिछल्लगू के रूप में परिष्कृत-मानक-अनुवाद वाली हिन्दी का वर्चस्व कायम रहेगा तब तक अंग्रेजों के जमाने में वर्चस्व प्राप्त किए संभ्रांत वर्गी ब्राह्मणों, अगड़ी-पिछड़ी जातियों और संभ्रांत वर्गी ही दलित एवं मुसलमान का भी वर्चस्व बना रहेगा। कुल मिला कर सभी जाति एवं मजहब के संभ्रांत तबके का। यह सिस्टम गोरे अंग्रेजों के जमाने में तैयार हुआ, पर इसे पुख्ता करने का काम काले अंग्रेजों ने ही किया है। अर्थात् गोरे अंग्रेजों से सत्ता हस्तांतरण के बाद ही 'अंग्रेजी राज' अर्थात् 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' की सत्ता पुख्ता हो पाई। तथाकथित दलित और द्रविड़ नेताओं के हिन्दी विरोध के चलते ही अंग्रेजी की सत्ता अब भी बनी हुई है। अंग्रेजीवादी नेतृत्व की वजह से "ब्राह्मणवाद" का स्थान 'नव-ब्राह्मणवाद' ने ले लिया है। पर कैसे? आइये, इसे समझने के लिए इतिहास के पन्नों को टटोलते हैं।

अंग्रेजों के जमाने में भी कभी भी तीन-चार लाख से अधिक अंग्रेज एकसमय में भारत की सरजमीन पर नहीं रहते थे। पर उस जमाने में भी ये तीन लाख अंग्रेज तीस करोड़ हिन्दुस्तानियों को नियंत्रित करते थे। कदापि यह यहीं के लोगों के सहयोग के बिना संभव ही नहीं हो पाता। इस सब को संभव बनाने के लिए जरूरी था कि कुछ नियम, कायदे, कानून बनाये जाए और उन नियम, कायदे, कानून के आधार पर कुछ लोगों को व्यवस्था का भागीदार बनाया जाए। राजसत्ता का नियंत्रण ब्रिटिश हुकुमत के पास रहे, पर उसके आधार पर पैदा हुई व्यवस्था के संचालन में हिन्दुस्तानी लोग भी भागीदारी निभाए। सत्ता में हिन्दुस्तानी लोगों की

भागीदारी ब्रिटिश हकूमत को जमाने के लिए जरूरी थी। पर जो लोग सत्ता के भागीगार बने, वे लोग ब्रिटिश हकूमत के प्रति वफादार भी रहे, उन्होंने ही ब्रिटिश हकूमत की जड़ों को जमाने का काम किया। ब्रिटिश हकूमत की जड़ें पुख्ता हो, इसके लिए जरूरी था कि हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेजों के सांस्कृतिक वर्चस्व को भी स्वीकार करें। भारत की सरजमीं पर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अंग्रेजों के सांस्कृतिक वर्चस्व को बनाए रखने के हथियार के रूप में था।

प्रारंभिक दौर में ही अंग्रेजों के अत्याचार का कोप किसान, कारीगर और कामगारों पर ही टूटा। कामगार और शासक वर्ग से संबंधों की वजह से सभी मुसलमान अंग्रेजों के शक के घेरे में थे। कामगार, किसान और कारीगर वर्ग ही भारत को सोने की चिड़िया बनाने वाले कुटीर उद्योगों की रीढ़ की हड्डी था। चूंकि अंग्रेजों से पूर्व न तो व्यापार और न ही उत्पादन पर किसी कम्पनी विशेष का नियंत्रण था। अतः अर्थशास्त्र की भाषा में कहे तो कम से कम व्यापार और कुटीर उद्योगों में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति थी। ऐसी स्थिति में कारीगरों को उनके काम के बेहतर दाम मिलने स्वाभाविक थे। (अर्थशास्त्र के पूर्ण प्रतियोगिता सिद्धान्त के आधार पर) अंग्रेजों के आते ही भारत की उपजाऊ जमीन रेगिस्तान में बदलने लगी। शुरूआती दौर से ही अंग्रेजों और भारत के कामगार वर्ग के आर्थिक हित परस्पर विरोधी रहे हैं। अतः अंग्रेजों और कामगार जाति/वर्ग के बीच समन्वय संभव ही नहीं था। अंग्रेजों के प्रारंभिक सहयोगियों में वे भला कैसे शामिल हो सकते थे, जिनके व्यवसाय अंग्रेजी कम्पनी राज ने ही उजाड़ डाले थे?

अंग्रेज ही नहीं तमाम यूरोपिये जातियों ने जिन भी इलाकों पर अपना कब्जा जमाया, वहां अपने व्यापारिक हितों के चलते उन इलाकों के कामगारों और किसानों का जम कर अत्याचार किया।

अतः जाति आधारित समाज में अंग्रेजों के कोपभाजन का शिकार सबसे पहले निम्न एवं किसानों से संबंधित जातियाँ ही बनी। जहाँ मुगलों एवं हिन्दू राजाओं के काल में कारीगरों, कामगारों को पूरा संरक्षण मिला था। किसानों की सुविधा के लिए भी नहरें तक खोदी जाती थी। कुशल कामगार एवं किसान वर्ग की बंदौलत ही भारत विश्व में “सोने की चिड़ियाँ” बन पाया था। अंग्रेजी राज के प्रारंभिक दौर में भला उनके प्रारंभिक सहयोगियों में कारीगरी एवं किसानों से संबंधित कामगार जातियों से संबंधित लोग कैसे शामिल हो सकते थे, वे लोग, जिनका व्यवसाय अंग्रेजों ने उजाड़ डाले थे? वे लोग, जो अंग्रेजों के अत्याचार की वजह से दो जून की रोटी के लिए मोहताज हो गए थे। क्या वे भला अंग्रेजों के सहयोगी बन सकते थे? ईस्ट इंडिया कंपनी राज के अंतिम दौर (1850 के दशक) में भारत की कृषि पर रिपोर्ट देने वाली एक ब्रिटिश समिति का मानना था कि भारत का किसान ब्रिटेन के किसान से तकनीकी रूप से कहीं अधिक कुशल था। ये तो ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की कारगुजारी का ही परिणाम था कि कृषि को गर्त में मिलाया गया था। निस्संदेह कामगार वर्ग अंग्रेजों का सहयोगी नहीं हो सकता। अंग्रेजों का सहयोगी कोई परजीवी वर्ग ही बना होगा। आईये! सामाजिक व्यवस्था की जड़ों में उस वर्ग को तलाशते हैं।

हिन्दू समाज में अध्यात्मिक सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में होने के कारण ब्राह्मण सामाजिक व्यवस्था के केन्द्र में थे। सर्राफ़ अर्थात् साहूकार, महाजन धन से संबंधित लेन-देन के कार्य से संबंधित थे। वस्तु विनिमय प्रणाली के बावजूद भी इनकी समाज में अपनी ही अहमियत थी। त्यागी जातियों को छोड़ शेष ब्राह्मण एवं वैश्य-साहूकारों का पेशा 'कामगार' समझे जाने वाले पेशों से संबंधित नहीं था। ये दोनों ही समाज के परजीवी वर्ग थे। अतः ये दोनों अंग्रेजों के आर्थिक हितों को भी प्रभावित नहीं करते थे। न ही अंग्रेजों की कारगुजारी का नकारात्मक प्रभाव ही ब्राह्मणों की अध्यात्मिक सत्ता पर सीधे पड़ रहा था। उल्टे अंग्रेजों के कम्पनी राज में जब किसानों पर लगान को मुद्रा के रूप में अदा करने की अनिवार्यता थोपी गयी तो साहूकारों की स्थिति और मजबूत हुई। हिन्दू-मुस्लिम कामगार जातियों की स्थिति के बदहाल होने के साथ समाज में परजीवी ब्राह्मणों और साहूकारों का दबदबा बढ़ा। ब्राह्मणों की तुलनात्मक सामाजिक स्थिति मुगल-मुसलमान नबाब/बादशाहों के राज में, हिन्दू राजाओं की राज की तुलना में हीन ही हुई थी। हिन्दू मनुवादी परम्परा के अनुसार ब्राह्मणों को कामगार समझे जाने वाली जातियों से श्रेष्ठ समझा जाता था। हालांकि मुस्लिम बादशाहों ने मनुवादी व्यवस्था को तोड़ने के लिए कोई क्रांतिकारी पहल नहीं की थी। पर उन्होंने जाति आधारित वर्ण व्यवस्था को कम से कम बढ़ावा भी नहीं दिया था। मुस्लिम संप्रदाय में जाति के आधार पर किसी तरह का भेदभाव भी नहीं था। वक्त के साथ मनुवादी परम्परा के आधार पर निम्न समझे जाने वाली जातियों ने ही नहीं अपितु जाट, राजपूत, त्यागी-ब्राह्मण आदि जातियों के भी एक बड़े हिस्से ने भी मुस्लिम संप्रदाय को कबूल लिया था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि मुसलमान

बादशाहों से हुए समझौतों के आधार पर जाट, राजपूत, त्यागी-ब्राह्मण आदि जातियों ने मुस्लिम संप्रदाय को कबूल किया था। कुछ मुस्लिम शासकों ने तलवार के बल पर भी मुस्लिम संप्रदाय के प्रसार का रास्ता अपनाया था। परन्तु तलवार जितना खून नहीं बहाती है उससे अधिक खौफ फैलाती है। अतः शेष मुस्लिम शासकों के द्वारा सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने के लाख प्रयासों के बावजूद भी ब्राह्मण समुदाय में मजहब को लेकर हमेशा डर बना रहा था। मुस्लिम-मुगल काल में जिस तरह से तेजी से मुस्लिम संप्रदाय का प्रसार हुआ, उसको लेकर ब्राह्मणों में आक्रोश होना लाजिम था। ये सब कुछ दर्शाता है कि मुस्लिम बादशाहों के काल में समाज में ब्राह्मणवादी वर्चस्व को भी ठेस पहुँचना था। मुगल काल में ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति हीन ही हुई थी। अतः ब्राह्मणों का रवैया मुगल-मुसलमान शासकों के प्रति नकारात्मक होना स्वभाविक भी था। अंग्रेजों ने भारत की जाति व्यवस्था का पूरा-पूरा फायदा उठाया। अंग्रेजों का प्रारंभिक सामाजिक गठजोड़ कुलीन वर्ग के ब्राह्मणों के साथ ही हुआ था। उन्होंने फूट डालो और राज करो के टेस्ट ट्यूब में सबसे पहले ब्राह्मण जाति को ही टैस्ट किया। अंग्रेज इस वर्ग के ब्राह्मणों में उनके खोये वर्चस्व को फिर से स्थापित करने की उम्मीद जगा रहे थे। मुगल बादशाहों के विपरीत अंग्रेजों ने भारत की सरजमीं को कभी नहीं अपनाया। अंग्रेजों ने वर्ण-जाति संप्रदाय और छोटे-बड़े रजवाड़ों में बटे समाज में फूट डाल कर राज करने का नायाब तरीका ईजाद किया.. और ब्राह्मणों की खोज समाज के सबसे कमजोर कड़ी के रूप में हुई, पर यह कमजोर कड़ी सबसे महत्वपूर्ण थी। साहूकार-महाजनों, कायस्थों ने ही अंग्रेजों के जौक की भूमिका निभाई। अंग्रेजों का उद्देश्य ब्राह्मणों और साहूकारों-कायस्थों में से ही छोटा

सा बिचौलियाँ वर्ग तैयार करना था। जो उनके शोषणत्र में सहयोगी बन सके। हालांकि अंग्रेज गाय का मांस खाते थे और ब्राह्मणों के लिए गाय एक पवित्र जीव रही है। ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में गाय की हत्या पाप है। इसलिए ब्राह्मणों को एक बड़ा तबका धर्म भ्रष्ट होने की आशंका से प्रत्यक्ष तौर पर अंग्रेजों से दूर भी रहा और उसने अंग्रेजों का विरोध भी किया। पर सभी हितों और मूल्यों से सर्वोपरि आर्थिक एवं राजनीतिक हितों और फायदे के चलते जो लोग अंग्रेजों के साथ जुड़े, इस छोटे से तबके ने ही अंग्रेजी राज की नींव को पुख्ता करने का काम किया। उच्चवर्ण के ब्राह्मणों को अंग्रेज शुरू में मुस्लिम शासकों से मुक्ति दिलाने वाले फरिश्ते ही प्रतीत हुए होंगे। अंग्रेजों के सहयोग से प्रारंभिक समाज सुधार आन्दोलन भी उच्चवर्गीय ब्राह्मणों ने ही शुरू किया। अतः उच्चवर्गीय ब्राह्मण ही अंग्रेजों के प्रारंभिक सहयोगी थे। ब्राह्मणों में से ही अंग्रेजों को सत्ता में भागीदारी निभाने वाले प्रथम सहयोगी मिले। एक और महत्वपूर्ण कारण था जिसकी वजह से अंग्रेज और ब्राह्मणों वर्ग करीब आया। ब्राह्मणों का पेशा पूजा-पाठ से जुड़ा हुआ था। हिन्दुओं के धर्म ग्रंथ संस्कृत भाषा में थे। इस धर्म ग्रंथों के अध्ययन हेतु संस्कृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य था। गांव-गांव में पाठशाला होने के बावजूद भी संस्कृत सीखने की अनिवार्यता ब्राह्मणों को ही थी। इस वर्ण के लोग ही संस्कृत जैसी परिष्कृत भाषा को सीख सकते थे। अतः वे ही संस्कृत में लिखे ग्रंथों के गूढ़ रहस्य को अंग्रेजों को समझाने में सहायक बन सकते थे। अंग्रेजों ने जितना देशी आर्थिक संसाधनों को लूटा उससे कम ज्ञान क्षेत्रों का नहीं किया। बिना उन ग्रंथों को समझे भारतीय समाज के इतिहास को समझना भी कठिन था। यह सब कुछ ब्राह्मणों के सहयोग के बिना संभव ही नहीं था। अतः ये ही लोग न

केवल राजनीतिक व्यवस्था के भागीदार बने बल्कि औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था और अंग्रेजी भाषा के प्रचारक भी बने। ब्राह्मण वर्ण के वे लोग जो अंग्रेजों के संपर्क में आये उनके लिए एक परिष्कृत भाषा से दूसरे परिवेश की परिष्कृत भाषा को सीखना भी तुलनात्मक रूप से आसान था।

अंग्रेजों के दूसरे सहयोगी वर्ग व्यापारियों का था.. और जातियों में बटे समाज में उस वर्ग की शिनाख्त कोई कठिन काम न थी। मनुवादी व्यवस्था के अनुसार व्यापार करने पर अधिकार महाजन एवं मारवाडी वैश्यों का था। अंग्रेजों को न केवल भारत में अपने व्यापार की जड़ों को फैलाने के लिए इस वर्ग के सहयोग की जरूरत थी, अपितु भारत के बाहर चीन आदि देशों से व्यापार के लिए भी इनका सहयोग चाहिए था। अंग्रेजों का चीन के साथ होने वाला अफीम का व्यापार बिना इन जातियों के सहयोग के बिना संभव ही न था.. और बिना अफीम के चीन और तिब्बत को घुटनों के बल बैठाना भी असंभव था। एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार के प्रसार में उन्होंने वैश्यों का सहयोग हासिल किया। इंग्लैंड के औद्योगिकरण में सहायक उद्योगों और व्यापार पर कायस्थ, महाजनों एवं मारवाड़ियों का आधिपत्य भी अंग्रेजी राज में उनकी अंग्रेजों के सहायकों की भूमिका के कारण ही संभव हुआ।

1773 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी पर ब्रिटिश गवर्नमेंट का प्रत्यक्ष नियंत्रण कायम हुआ। उसके बाद से ही बंगाल में प्रशासन को सुचारु रूप से चलाए रखने के लिए बंगाल के लोगों का सहयोग हासिल करने की कवायत शुरू हो गयी थी। कार्नवालिस की अध्यक्षता में कंपनी प्रशासन द्वारा जमींदार वर्ग का समर्थन हासिल करने के लिए 1793 में भूमि का स्थायी बन्दोबस्त संपन्न किया था। यह कम्पनी प्रशासन और भारतीय जमींदारों के बीच हुए लम्बे समझौते के बाद ही संभव हो सका। इस बन्दोबस्त के तहत, जो मुगलकाल के कर अधिकारियों को ही भूमि का स्थायी मालिक बना दिए गए, इस प्रकार जमींदारों के रूप में ब्रिटिश हुकुमत के प्रति वफादार परजीवी वर्ग मिला। कायस्थ-ब्राह्मण जमींदारों एवं मारवाड़ी व्यापारियों और साहूकारों के सहयोग के बिना अंग्रेजी राज को लंबे समय तक बनाए रखना संभव ही नहीं था। बड़े जमींदारों ने अपने नीचे अपनी बिरादरी के छोटे जमींदारों की फौज खड़ी की, वह ही लठैतों के माध्यम से लगान वसूलने का काम करता था। बड़े जमींदार और रईस लोग खुद अंग्रेजों की संगत में शहरों में रहते थे। अतः अंग्रेजों के फायदे का हिस्सेदार वर्ग समाज का संभ्रांत एलीट तबके के रूप में स्थापित हुआ। इनसे ही बंगाल का भद्रलोक कायम था। यही वर्ग अंग्रेजों के शासन को स्थायी बनाने वाला सहयोगी-सहभागी वर्ग था।

श्रम से जुड़ा पेशा न करने वाले ब्राह्मण, कायस्थ-मारवाड़ी (वैश्य) में से ही छोटा सा तबका ही अंग्रेजों का प्रारंभिक सहयोगी और अंग्रेजी सत्ता का भागीदार भी बना। इन जातियों से संबंधित छोटा सा तबका न केवल अंग्रेजों के शोषण और अत्याचार से बचा

रहा, अपितु वही अंग्रेजों के शह पर आम जनता से लगान और ब्याज वसूलता था। अंग्रेजों द्वारा नियुक्त ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारी और बंगाल के जमींदारों और साहूकारों का रिकॉर्ड उठा कर देख लो लगभग सभी तथाकथित उच्च वर्ण के कायस्थ, ब्राह्मण-राजपूत ही थे। एक भी जमींदार या उप जमींदार श्रम आधारित जातियों से संबंधित नहीं था। अतः उन्होंने भारत में पाँव जमाने के लिए की भारत की जाति व्यवस्था का पूरा-पूरा फायदा उठाया। उन्होंने एक तरह से ब्राह्मणों और कायस्थों को सत्ता का भागीदार बना कर ब्राह्मण और कायस्थों के माध्यम से सत्ता का संचालन किया। अप्रत्यक्ष तौर उन्होंने परजीवी वर्ग को समाज का दमन करने की पूरी-पूरी छूट दी। उन्होंने सीधे आम भारतीयों से कोई पंगा नहीं लिया। न ही उनके पास इतनी ताकत ही थी। न ही वे इतनी तादाद में आये थे। उन्होंने भारतीयों के माध्यम से ही भारतीयों का शोषण किया। जी हाँ! उन्होंने नियम, कायदे कानूनों की ऐसी व्यवस्था डिजाईन की कि वे भारतीयों के माध्यम से भारतीयों पर शासन कर सके। जाति और मजहब उनके लिए महत्वपूर्ण हथियार था। जाति और मजहब को उन्होंने समाज को बाटे रखने के लिए प्रयोग किया। जातिवादी और मजहबवादी वैमनस्य अंग्रेजों के जमाने की देन है। यहाँ तक कि उन्होंने सेनाओं के रेजीमेंट भी जाति और धर्म के नाम पर ही गठित किये।

अंग्रेजों से पूर्व ग्रामीण व्यवस्था आत्मनिर्भर और अंतर्संबंधित थी। समाज में जाति का संबंध पुश्तैनी-व्यवसायिक पेशों से था। अर्थशास्त्र की भाषा में, यह श्रम का उत्पाद आधारित विभाजन था। औद्योगिकरण के पूर्व लगभग हर समाज में इस प्रकार की कोई न कोई व्यवस्था थी। इसका आधार इतना भर था कि परिवार के संरक्षण में व्यक्ति आसानी से पारिवारिक पेशे को अपना लेता था। भारत में शादी-ब्याह के नियमों ने जाति व्यवस्था को ज्यादा कठोर बनाया था। जाति विशेष के सभी लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एक जैसी होती थी और काफी हद तक जाति विशेष के पेशे पर निर्भर करती है। व्यक्ति का सामाजिक ओहदा काफी हद तक जाति विशेष द्वारा ही होता है। मुगल-मुस्लिम काल में ब्राह्मणों की स्थिति निम्न ही हुई थी और साथ ही विकृत भी। अंग्रेजों ने पहले भारतीय समाज के इस जाति एवं मजहब आधारित विभाजन के अंतर को और अधिक बढ़ाया। जाति के माध्यम से सामाजिक अंतर (अन्तर) को बढ़ाया। मजहबों को एक दूसरे के प्रतिद्वंदी के रूप में खड़ा किया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक वैमनस्य को बढ़ावा देना ब्रिटिश हकूमत का कोर सिद्धान्त रहा। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम खेती, कुटीर उद्योगों और कारीगरी से जुड़े लोगों को उजाड़ा। खेती, कुटीर उद्योगों और कारीगरों के उजड़ने का अर्थ है, श्रम से जुड़ी (हिन्दू-मुस्लिम दोनों की) जातियों की स्थिति को बद से बदतर करना। इस काम में ब्राह्मणों और महाजनों का सहयोग हासिल किया। वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव में अज्ञानता होती है। अज्ञानता के अंधेरे में अंधविश्वास का तांडव होना लाजिम है। अंधविश्वास के वातावरण में धर्म के ठेकेदारों का वर्चस्व स्वभाविक है। .. और अंग्रेज इस स्वभाविक वर्चस्व का फायदा उठाने से कैसे चूक सकते थे। भारतीय समाज

का शोषण और अत्याचार गैर श्रमिक पेशे वाली जातियों जैसे ब्राह्मण, महाजन, कायस्थ आदि के वर्चस्व प्राप्त तबके के सहयोग के बिना संभव ही नहीं था। कुछ मुस्लिम जमींदारों को छोड़ शेष जमींदार भी इस वर्ग से ही सम्बंधित थे। जमींदार ही नहीं ब्रिटिश कम्पनी के भारतीय बाबू और अधिकारी भी उच्च वर्ण के हिन्दू अथवा उच्च वर्ग के मुस्लिमों से ही संबंधित थे। इसका कदापि अर्थ यह नहीं है कि इन जातियों के सभी लोगों को अंग्रेजों से फायदा मिल रहा था। उन्होंने समाज के विभिन्न जाति और मजहब के बीच के अंतर को बढ़ाया। फिर हर जाति और मजहब एक दूसरे के विरुद्ध वर्टीकल (लंबरूप) रूप से एकजुटता होने के लिए प्रेरित किया। उनकी आर्थिक एवं राजनीतिक नीति का परिणाम था कि हर मजहब और जाति में अमीर और गरीब वर्ग तैयार हुआ। चंद लोग सामाजिक एवं आर्थिक रूप से संपन्न हुए। प्रत्येक वर्टीकल ग्रुप के आर्थिक एवं सामाजिक रूप से संपन्न लोगों को अपना सहयोगी बनाया। यह संपन्न तबका ही परस्पर विरोधी नेतृत्व के रूप में उभरा। पहले उच्च जाति के हिन्दुओं के ऊपरी तबके का सहयोग लिया और इसमें से एक नेतृत्वकारी वर्ग तैयार किया। फिर मुसलमानों के उच्च तबके के नेताओं को हिन्दुओं के प्रतिद्वंदी के रूप में खड़ा किया। समाज, जहाँ 'हॉरिजेन्टल' ('क्षैतिज') रूप में अमीर और गरीब, साधन और साधनहीन के रूप में विभाजित था। पर अंग्रेजों ने बड़े सफाई के साथ समाज का विभाजन 'वर्टीकल' ('लंबरूप') रूप में करने में सफलता हासिल की। यह वर्टीकल (लंबरूप) विभाजन का ही परिणाम था कि नेतृत्व शीर्ष लोगों के हाथ में केन्द्रित रहा और नीचे का समाज जाति

और धर्म के आधार पर बटा हुआ था। अंग्रेजों के राज में जो मजहबी और जातीय भेदभाव बढ़ा, उसी का परिणाम भारत के विभाजन विभाजन के रूप में सामने आया।

अंग्रेजों को भारत की जाति और धर्म की व्यवस्था से न तो लगाव था न ही द्वेष था। न ही वे स्थाई रूप से बसने के लिए ही यहाँ आये थे। उनका उद्देश्य तो अपना उल्लू सीधा करना भर था। उनका उद्देश्य था, अपना व्यापारिक फायदा और इंग्लैंड का औद्योगिक विकास। इंग्लैंड की समृद्धि की अनिवार्य शर्त भारत की तबाही थी। उनका उद्देश्य भारत को कच्चे माल की मंडी में तब्दील कर देना था। इसके लिए राजनीतिक स्थिरता अनिवार्य थी। राजा-नबाबों की आपसी रंजिश ने अंग्रेजी घास को उगने लायक भूमि उपलब्ध करवायी। तो जाति और धर्म में बटे समाज ने फूट डालो और राज करो की नीति के प्रसार के अनुकूल वातावरण प्रदान किया। जहाँ शुरू के दौर में उन्होंने ब्राह्मणों और कायस्थों को अपना सहयोगी बनाया था। वही बाद के दौर में हर जाति और धर्म के संभ्रांत, परन्तु परस्पर विरोधियों में से नेतृत्वकारी में से सहयोगियों को तलाशा।

अब तक के विश्लेषण में पाया गया कि अंग्रेजों से पूर्व के काल में भारत को सोने की चिड़ियाँ बनाने वाले कामगार वर्ग ही अंग्रेजों के कोपभाजन का प्रथम शिकार था। इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था की संवृद्धि के लिए भारत के कुटीर उद्योगों और पारम्परिक खेती की तबाही अनिवार्य शर्त थी। हिन्दुस्तान के कच्चे माल को लूटने के लिए रेलवे का प्रसार किया गया और शुद्ध मुनाफा कमाने के

लिए चाय के बागान लगाए गए। अंग्रेजों ने इसी प्रकार के ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को पोषित करने वाले बहुत से उद्योगों और खनन कम्पनियों को भी स्थापित किया। पर इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था को पोषित करने वाले ये सब उद्योग स्थानीय परजीवी वर्ग के सहयोग के बिना संभव नहीं थे। उन्होंने स्थानीय संसाधनों को शोषित करने वाली 'जॉक-कम्पनियों' को यही के लोगों के सहयोग से स्थापित किया। अंग्रेजी भाषी उच्च जातियों के भी उच्च वर्ग से संबंधित जमींदार-साहूकार-महाजन ही उनके इन नव उदित उद्योगों की स्थापना में सहभागी थे। इन दोनों ही कामों में लगे बंधुआ किस्म के मजदूर कोई और नहीं अपितु बदहाल हुई कृषि और कुटीर उद्योगों के उजड़ने से बेरोजगार हुए लोग थे।

दरिद्रता का प्रकोप बहुआयामी होता है। अर्थिक बदहाली सामाजिक विवशता के रूप में सामने आती है। आर्थिक रूप से दरिद्र होते ही व्यक्ति सामाजिक रूप से बहिष्कृत और निष्कासित होने लगता है। हालांकि कामगार और कृषक वर्ग में सभी जातियों के लोग थे। पर बहुलता निचले क्रम की जातियों की ही थी, वहीं अंग्रेजों का सहभागी परजीवी ठेकेदार तथाकथित संभ्रांत जातियों से संबंधित था। अंग्रेजी राज के प्रारंभिक दौर में कृषक और कुटीर उद्योगों के कामगारों का शोषण अपने चरम पर था। जो पिछड़ी जातियों के शोषण के रूप में परिलक्षित हुआ। क्योंकि अंग्रेज तो पीछे से निर्देशित करने वाले थे, आगे तो साहूकार, महाजन और उच्च वर्णिय ब्राह्मण ही थे। जाति व्यवस्था का मूल आधार जहाँ मनुवादी वर्ण व्यवस्था थी। अशिक्षा और अज्ञानता ने इसे और भी

अधिक क्लिष्ट बना दिया था। समाज में प्रचलित अंधविश्वास और उस अंधविश्वास पर आधारित परम्पराओं का ही प्रतिफल जातीय शोषण था। अंग्रेजों ने इस अंधविश्वास पर आधारित परम्परा का पूरा-पूरा फायदा उठाया। अंग्रेजों ने अपने तलवार की ताकत उन पर ही दिखायी, जो उनके आर्थिक हितों के आड़े आ रहे थे और तब तक ही दिखायी, जब तक उन्होंने उनके आर्थिक हितों को नुकसान पहुँचाया। अंग्रेजों ने उन्हें साथ लिया जो उनके आर्थिक हितों को स्थापित करने में सहयोगी हो सकते थे। जातियों में बटे समाज में ऐसे लोगों को चिंहित करना आसान ही था। अतः अंग्रेजी राज के प्रारंभिक दौर में कायस्थ और ब्राह्मण जाति के संभ्रांत लोग उनके करीबी बने। अंग्रेजों के द्वारा भारतीय किसानों का शोषण करने के लिए जमींदारों-नम्बरदारों और साहूकारों की जो फौज खड़ी की गयी उस फौज के सिपाहसलार इन्हीं दो जातियों से संबंधित पुराने राजा और महाराजा ही थे। मुसलमानों में भी उच्च जाति से संबंधित शेख-पठान आदि जो पुराने नबाब थे समझौते के तहत जमींदार बने। परिणामस्वरूप भारत की सरजमीं हिन्दू-मुस्लिम दोनों के उच्च वर्ण का छोटा सा तबका अंग्रेजों का वफादार बना और फिर अंग्रेजों के संपर्क में आने की वजह से यही तबका स्थानीय रईस वर्ग के रूप में भी स्थापित हुआ। 1958 के पैरामाउंसी के समझौते के साथ देशी रजवाड़ों की राजभक्ति भी ब्रिटिश राजगद्दी के प्रति सुनिश्चित हो गयी। राजसत्ता को बचाए रखने के इस समझौते के साथ ही वे न केवल अंग्रेजों के शोषण तंत्र के सहभागी बने, बल्कि अंग्रेजी कल्चर के वाहक भी बन गए। समय के साथ इन रजवाड़ों के द्रोणाचार्य भी अंग्रेज बन गए। ब्रिटिश समाज के साथ संपर्क की वजह से ही यह तबका अंग्रेजीवादी बना।

अतः नबाब, राजाओं, जमींदारों, बड़े साहूकार-व्यापारियों, ब्राह्मणों का छोटा सा संभ्रांत वर्ग ही अंग्रेजी राज का चाटुकार और परिणामस्वरूप अंग्रेजी भाषी भी बना। आर्थिक रूप से संपन्न तबका ही औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने हेतु विलायत (इंग्लैंड) भी जा सकता था। यही वर्ग वहाँ से आते वक्त अपने साथ अंग्रेजी भाषा और कल्चर लाद कर लाता था। जब अंग्रेजी भाषा को शिक्षा, राज-काज और रोजगार से जोड़ दिया गया तो सत्ता के केन्द्रों पर एक खाता-पीता अंग्रेजों का वफादार वर्ग धीरे-धीरे छाने लग गया।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू के अंग्रेजों के साथ घनिष्ठ संबंध थे। “उन्होंने कैम्ब्रिज से "बार एट लॉ" की उपाधि ली और अंग्रेजी न्यायालयों में वकील के रूप में कार्य प्रारम्भ किया।” राजनीति में आने से पूर्व ही वकालत से बेशुमार दौलत पैदा कर ली थी और अपने जमाने के सबसे महंगे वकीलों में थे। अंग्रेजी कल्चर से वे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू की प्रारंभिक शिक्षा और परवरिश घर पर ही अंग्रेज शिक्षक एवं परिचायकों के माध्यम से दिलवायी। जी हाँ! उनके पुत्र जवाहर की देखभाल करने वाली दायी अर्थात् परिचारिका तक अंग्रेज थी। जिन दिनों देश बदहाली में था, अकाल आना आम बात थी, उस जमाने में वे इतने रईस थे कि अंग्रेजों को अपने घर पर शिक्षक और परिचायकों आदि के रूप में नियुक्त कर सकते थे। इतनी दौलत आयी कहाँ से। यदि हम मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू के पारिवारिक

परिवेश को देखें तो पायेंगे कि उनके परिवेश में अंग्रेजीयत हावी थी। अंग्रेजों के साथ घनिष्ठता पूर्ण संबंध के बिना न तो वकालत को चमकाना संभव था और न ही देशी-विदेशी संभ्रांत तबके में रूतबा हासिल कर पाना ही। 1909 में वे ग्रेट ब्रिटेन की प्रिवी कौंसिल में मुकदमों की पैरवी करने का अनुमोदन प्राप्त करके अपने कानूनी कैरियर के शिखर पर पहुंच गये। उन्होंने बड़े-बड़े जमींदारों के मुकदमों की पैरवी प्रिवी कौंसिल में की। यह तो मात्र एक उदाहरण है। उस दौर के जितने भी प्रतिष्ठित लोग थे वे अंग्रेजी कल्चर में रमे हुए थे। अंग्रेजी राज ने समाज को दो तरह के वर्गों में विभक्त कर दिया, एक था छोटा सा साधन संपन्न तबका और दूसरा पूर्ण कंगाल। जी हाँ! अंग्रेजों ने महज भारत को लूटा ही नहीं अपितु लूटने के लिए एक बिचौलिया रईस वर्ग भी तैयार कर दिया। भारत साधन संपन्न वर्ग के सहयोग से ही शेष समाज को कंगाल किया गया। साधन संपन्न वर्ग के अंग्रेजों के साथ गठजोर के साथ सांस्कृतिक मिलाप हुआ। और इस मिलाप ने ही भारतीय उपमहाद्वीप में इंग्लिश मीडियम कल्चर को पैदा करने लायक जमीन तैयार की। कोई इस मुखालफत में हो कि अंग्रेजों ने क्लर्क पैदा करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा थोपी थी। तो वह उस भ्रम को त्याग दे। अंग्रेजों ने अंग्रेजी के माध्यम से एक सत्ता में सहभागिता निभाने वाला 'संभ्रांत-उच्च-वर्ण' की बहुलता वाला 'संभ्रांत अंग्रेजी भाषी वर्ग' तैयार किया। ..और जाते-जाते उनको ही राजसत्ता सौंप कर गये। (नोट- मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू से सम्बंधित तथ्य विकिपीडिया से प्राप्त किया गया है।)

प्रारंभिक दौर के विपरीत बाद के दौर में अंग्रेजों ने औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से हर जाति और मजहब के क्रीमीलेयर को अंग्रेजी भाषी बनाने का प्रयास किया था। अंग्रेजों ने इस उद्देश्य के लिए स्वायत्त पाठशाला व्यवस्था को भंग कर राज्य नियंत्रित स्कूल व्यवस्था की स्थापना की। औपचारिक शिक्षा के प्रसार में कुछ रजवाड़े भी आगे आये। पर चूंकि इनके खुद के संस्कार पर अंग्रेजीयत हावी हो चुकी थी। अतः इन सबके द्वारा संचालित स्कूलों से भी अंग्रेजी ही “ट्रिकल डाउन” हुई। इस प्रकार भारत में अंग्रेजों के शोषणतंत्र का सहभागी ही अंग्रेजी भाषा का प्रचारक बना। उस वर्ग ने ही अंग्रेजी ज्ञान को आधुनिकता के पर्याय के रूप में स्थापित किया। जबकि यूरोप में आधुनिकता के साथ जन भाषाओं को शिक्षा और राजकाज में स्थान मिला।

विकिपीडिया के अनुसार, “1912 में एक ब्रिटिश सर्वेक्षण के अनुसार ब्राह्मणों तमिलनाडु की पुरुष जनसंख्या का केवल 3.2 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व किया है, परंतु ब्रिटिश अधिकारियों के नीचे कार्यरत 83.3 प्रतिशत उप जज, 55 प्रतिशत डिप्टी कलेक्टर के और 76.2 प्रतिशत प्रशासनिक पदों पर ब्राह्मण विराजमान है। मद्रास विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त करने वाले सड़सठ (67) प्रतिशत ब्राह्मण थे।” अब एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि बिना अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण नीति के क्या यह संभव था? सच्चाई तो यह है कि अंग्रेजों ने अपने प्रारंभिक दिनों में जिन्हें सहभागी बनाया उन्हें ही अंतिम दिनों में शेष समाज का प्रतिद्वंदी के रूप में दर्शाया। यह शेष समाज को जाति और मजहब पर बाटे रखने की ही चाल का हिस्सा थी।

अब कुछ उदाहरण हम समाज सुधारकों का भी ले सकते हैं। 1803-1814 तक ईस्ट इंडिया कम्पनी में काम कर चुके राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत और आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है। भारतीय सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान है। वे ब्रह्म समाज के संस्थापक, भारतीय भाषायी प्रेस के प्रवर्तक, जनजागरण और सामाजिक सुधार आंदोलन के प्रणेता तथा बंगाल में नव-जागरण युग के पितामह माने जाते हैं। पर उनके आलोचकों का मानना है कि उन्होंने अपनी जमींदारी को चमकाने के लिए अंग्रेजों को खुश करने का काम किया और वे अंग्रेजों के अदृश्य सिपाही थे। अंग्रेज अधिकारियों के साथ उनके संबंध इतने प्रगाढ़ थे कि अंग्रेजों ने उन्हें बंगाल में जमींदारी प्रदान की थी या यूँ समझ लें कि 11 वर्ष काम कर जमींदारी खरीदने लायक दौलत कमा ली थी। यह ब्राह्मण नेता ही शिक्षा के माध्यम से अंग्रेजी एवं अंग्रेजीयत के प्रारंभिक प्रसारकों में से एक था। (नोट- तथ्य विकिपीडिया से प्राप्त किए)

ईस्ट इंडिया कम्पनी में काम कर चुके और 1857 के विद्रोह के वक्त अंग्रेजों को संरक्षण देने वाले, सर सैय्यद अहमद खान 1858 के बाद के ब्रिटिश राज में मुसलमानों (वर्तिकल ग्रुप) के नेता थे। सैय्यद अहमद खान ईस्ट इंडिया कम्पनी में काम करते हुए काफ़ी प्रसिद्ध हुए। उन्होंने 1857 के विद्रोह के विषय पर असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द नामक किताब तक लिखी। जिसमें उन्होंने उन कारणों को उजागर किया जिसके कारण विद्रोह प्रारंभ हुआ था। उन्हें भारत के मुसलमानों की आधुनिक उर्फ अंग्रेजी शिक्षा

की शुरुआत का जनक माना जाता है। उनके द्वारा स्थापित मुहम्मदन एंग्लो-ओरिएण्टल कालेज की स्थापना की थी। यही बाद में विकसित होकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना गया। उनके प्रयासों से अलीगढ़ क्रांति की शुरुआत हुई, जिसमें शामिल मुस्लिम बुद्धिजीवियों और नेताओं ने भारतीय मुसलमानों का राजनैतिक भविष्य सुदृढ़ किया। ये अपने समय के सबसे प्रभावशाली मुस्लिम नेता थे। 1857 में अंग्रेजों के प्रति वफादारी दिखा चुके, ने भारत के मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार रहने की नसीहत दी। पर सबसे बड़ी बात एंग्लो अर्थात् अंग्रेजी के वर्चस्व को स्थापित करने वाले अंग्रेजों के द्वारा पैदा किये, इस कदावर नेता ने उर्दू को भारतीय मुसलमानों की सामूहिक भाषा बनाने पर जोर दिया। (नोट- तथ्य विकिपीडिया से प्राप्त किए)

आर्य समाज द्वारा संचालित डी ए वी संस्था इसका बेहतर उदाहरण है। “उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज का लक्ष्य भारतीय समाज को बौद्धिक, वैचारिक एवं आध्यात्मिक रूप से पुनर्जीवित करना था। उन्होंने “वेदों की ओर वापस” जाने का आह्वान किया। वेदों की सही समझ शिक्षा के बिना संभव नहीं थी। स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि शिक्षा के प्रसार के द्वारा ही देश के कोने-कोने में जागृति आयेगी।” विकिपीडिया पर स्वामी दयानन्द के विचार धारा पर उनकी मृत्यु के तीन साल बाद उनके अनुयायी हंसराज ने उनके नाम पर स्कूल की स्थापना की।

हंसराज खुद मिशनरी स्कूल में पढ़े थे और खराब आर्थिक स्थिति के बावजूद भी बीए तक शिक्षा हासिल की थी। हंसराज ने जिस स्कूल की स्थापना की उसका नाम ही दयानंद एंग्लो वैदिक विद्यालय (डी ए वी) था। जिसका वास्तविक लक्ष्य "वैदिक शिक्षा का प्रसार" करना था। पर अंग्रेजों के कट्टर विरोधी अपने जीवन में ईसाई मिशनरियों के धर्मांतरण के प्रयास को विफल कर देने वाले महात्मा हंसराज भी राजकाज की भाषा बन जाने के बाद एंग्लो अर्थात् अंग्रेजी को नकार नहीं सके। (नोट- तथ्य विकिपीडिया से प्राप्त किए)

ये चारों ही मामले दर्शाते हैं कि अंग्रेजी का प्रसार करने वाले लोगों का अंग्रेजों से किसी न किसी प्रकार का संबंध स्थापित हुआ था। हंसराज को छोड़ दें तो शेष किसी न किसी रूप में अंग्रेजों से आर्थिक फायदे के लिए जुड़े थे। सर सैय्यद अहमद खान और राजा राम मोहन राय ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी रह चुके थे। तो मोती लाल नेहरू अंग्रेजी कोर्ट के ही नहीं, ब्रिटिश पार्लियामेंट की प्रिवी कौंसिल में भी वकील थे। मोती लाल तो अंग्रेजों से इतने प्रभावित थे और उनके संबंध इतने घनिष्ठ थे कि उन्होंने अपने पुत्र की परवरिश तक अंग्रेज परिचायिकाओं के संरक्षण में ही करवायी।

विकिपीडिया के अनुसार "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 72 प्रतिनिधियों की उपस्थिति के साथ 28 दिसम्बर 1885 को बॉम्बे के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी। इसके संस्थापक महासचिव (जनरल सेक्रेटरी) ए. ओ. ह्यूम थे

जिन्होंने कलकत्ते के व्योमेश चन्द्र बनर्जी को अध्यक्ष नियुक्त किया था। अपने शुरुआती दिनों में कांग्रेस का दृष्टिकोण एक कुलीन वर्ग की संस्था का था। कुलीन यानी वे लोग जो बड़े जमींदार थे और अंग्रेजीदां थे। एनसीईआरटी आगे स्पष्ट करता है, “शुरू-शुरू में कांग्रेस में अंग्रेजीदां, अगड़ी जाति, ऊँचले मध्यम वर्ग और शहरी एलीट(अभिजन) का बोलबाला था।” ये दोनों तथ्य प्रमाणित करते हैं कि अंग्रेजों की रूचि भारत की समाज व्यवस्था को बदलने में नहीं अपितु अपने हिमायती अंग्रेजीदां शीर्ष वर्ग को समाज के नेतृत्व के रूप में स्थापित करने में थी। वह वर्ग जिसे उन्होंने खुद तैयार किया था। स्वदेशी असहयोग आन्दोलनों के दौर में ही कांग्रेस और जनता के बीच गठजोड़ संभव हुआ। आक्रोश तो जनता में था पर उस आक्रोश को आंदोलन की दिशा में परिवर्तित करने का काम कांग्रेस ने किया। “यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी राष्ट्रवादी आंदोलनों की तरह से भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन अनिवार्य तौर पर बुर्जवा आंदोलन ही था। यह विकास की स्वाभाविक ऐतिहासिक अवस्था को निरूपित करता है और इसे श्रमजीवी वर्ग का आन्दोलन समझना अथवा ऐसा सोच कर उसकी आलोचना करना गलत है।” यूजीसी नेट (2010)... अतः जनता में आक्रोश होने के बावजूद भी उसे दिशा कांग्रेस का बुर्जवा नेतृत्व दे रहा था। पर नेतृत्व भी गांधी के सक्रिय रूप से जुड़ने से पूर्व तक केवल शहरों तक ही केन्द्रित था। मध्यम वर्ग ही बुर्जवा एलीट क्लास की विचारधारा को अपना पाया था। भारत के धारातल, अर्थात् भारत के गांव से कांग्रेस को जोड़ने का काम गांधी ही कर पाये थे। धीरे-धीरे विविध विचारधारा और विविध आर्थिक वर्गों के लोग कांग्रेस से जुड़े। “गांधी जी ने राष्ट्रवादी कार्यवाही के जरिये करोड़ों लोगों को बदल

डालने की चेष्टा की और उन्हें बदलने में सामान्य तौर पर सफल भी हुआ.. गांधी जी ने लोगों को राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर सोचने के लिए प्रेरित भी किया और प्रत्येक गाँव और प्रत्येक शहर नये विचारों तथा नई आशाओं, जो लोगों में मर गयी थी, पर तर्क और बहस के साथ गूँजने लगा। यह सब अदभुत मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था। अतः गांधी जी के प्रयास से लोग कांग्रेस के साथ जुड़े पर शीर्ष नेतृत्व का चरित्र वही था जो शुरूआत में बना हुआ था। जनता आन्दोलनों में भाग लेती थी पर वर्गीय चेतना के अभाव में, इस प्रकार इस आन्दोलन का नेतृत्व अंग्रेजी भाषी एलीट तबके तक ही सीमित था। गांधी जी ने भी इस बारे में कभी विचार नहीं किया। “गांधी जी राष्ट्रवादी स्तर पर काम करते थे, उन्होंने वर्गों के आपसी संघर्षों के बारे में नहीं सोचा।” इसी का परिणाम था कि एक तरफ उन्होंने लोगों को संगठित किया दूसरी तरफ बिडला जैसे उद्योगपति से भी सहायता ली। कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व के ढांचे में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। शीर्ष नेतृत्व का वर्गीय चरित्र वही था जो 1885 में कांग्रेस की स्थापना के वक्त बना हुआ था। चूंकि कांग्रेस में अंग्रेजी मिजाज के लोग ही हावी थे, अतः कांग्रेस के काम-काज पर भी यही भाषा हावी थी। वर्गीय चेतना के अभाव में लोग कांग्रेस, अंग्रेज और नव उदित पूंजीपति वर्ग के बीच के संबंध को समझ नहीं पा रहे थे। गांधी जी ने 1905 में हिन्द स्वराज में कांग्रेस की आलोचना करते हुए लिखा है कि कांग्रेस के काम-काज की भाषा अंग्रेजी थी। तीस वर्ष बाद हिन्द स्वराज पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि हिन्द स्वराज में कही गयी किसी भी बात में फेर बदल करने

की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं। सिर्फ कांग्रेस ही नहीं, कांग्रेस की प्रतिक्रिया में अंग्रेजों के प्रोत्साहन से खड़ी की गयी मुस्लिम लीग का वर्गीय चरित्र भी वही था जो कांग्रेस का था।

अंग्रेजों के जमाने में पैदा हुए उच्च एवं एलीट वर्ग का तौर तरीका और रहन सहन उनके अंग्रेज सहभागियों के समान ही था। उनके रहन सहन के तौर तरीके अपने ही समुदाय के अन्य लोगों से कटे हुए थे। लेकिन यह भी एक चमत्कार ही था कि वे अपनी-अपनी जातियों और मजहब के स्थापित नेता थे। अतः राजा राम मोहन राय हो, या सर सैय्यद अहमद खान हो, या मोतीलाल-जवाहरलाल हो। जिनके अंग्रेजों के साथ करीबी रिश्ते कायम हुए, वे ही रईस बने और वे ही उनकी भाषा और संस्कृति को आत्मसात कर पाये। ...और सबसे बड़ी बात, वे ही अंग्रेजी राज के खिलाफ होने वाले आन्दोलनों के नेता थे। अपने अपने जातीय और मजहबी समूह के स्थापित नेता भी वे लोग ही बने। वे ही अपने अपने वर्ग के स्थापित नेता थे।

अंग्रेजी कम्पनी राज के जमाने में, राजकाज और प्रशासन में भी ब्राह्मण और कायस्थों का छोटा सा क्रीमी-वर्ग अंग्रेजों का वफादार सेवक बना था। अतः अंग्रेजी कानून के दरबार में इस पहले अल्पसंख्यक अंग्रेजी भाषी क्रीमी-वर्ग का दबदबा अन्त तक बना रहा। उस वर्ण से संबंधित छोटे से गुप का सामाजिक वर्चस्व राजकाज में अंग्रेजी राज में ही स्थापित हुआ। ..और जब तक अंग्रेजी रहेगी तब तक इस ऊपरी वर्ग का वर्चस्व भी बना रहेगा। बाद के दौर में, गैर ब्राह्मण लोग भी अपने जातियों और मजहबों के नेताओं के

मार्गदर्शन में अंग्रेजी भाषी बनने के लिए प्रेरित हुए। पर अंग्रेजी भाषी वर्ग में ब्राह्मणों और कायस्थों के मुकाबले अन्य जाति वर्गों के लोगों की संख्या नगण्य ही रही है। बाद के दौर में भारतीय अंग्रेजी भाषी वर्ग में अंग्रेजों के विरोधी और हिमायती दोनों तरह के लोग शामिल थे। पर ये दोनों अंग्रेजी भाषी समाज के ऊपरी तबके से ही संबंधित रहे। अंग्रेजों के दौर में भी इंग्लैंड से पढ़ कर आये हुए रईस लोग, कुछ हद तक सरकारी दफ्तरों के अधिकारी-कर्मचारी और कॉलेज में पढ़ाने वाले शिक्षक ही अंग्रेजी भाषी थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देश के क्षितिज पर छायी रही कांग्रेस, मुस्लिम लीग आदि का शीर्ष नेतृत्व ही विलायत से पढ़ कर आया अंग्रेजी भाषी वर्ग था।

अंग्रेजी राज को कल्याणकारी चेहरा दिखाने के लिए 1850 से ही "डिप्रेस्ड क्लास"(वंचित तबका) की बात की पर हकीकत में गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए विशेष व्यवस्था की गयी। वह इस वर्टीकल वर्ग के नये उभरे अंग्रेजी भाषी शिक्षित वर्ग का सहयोग प्राप्त करने की कवायत भर थी। 200 साल के अंग्रेजी राज के अंतिम दौर में भी समाज का एक बहुत छोटा सा तबका ही अंग्रेजी भाषी बन पाया था। चूंकि वह ही अंग्रेजों से संवाद कर सकता था। अतः वह ही तथाकथित बुद्धिजीवी एवं नेतृत्वकारी वर्ग के रूप में भी स्थापित हुआ था। स्वतंत्रता से पूर्व के दौर में अंग्रेजों के साथ लम्बे संबंधों की वजह से, अनुसूचित जाति और जनजाति के मुकाबले ब्राह्मण और कायस्थ जातियों से सम्बंधित लोगों का जो वर्चस्व अंग्रेजी

गलियारे में बना हुआ था, वह भारतीय संविधान में अंग्रेजी भाषा की व्यवस्था की बदौलत कायम रहा। मुसलमानों एवं पिछड़ी जाति में भी उच्च दर्जे के लोग ही अंग्रेजी भाषी हो सके हैं। इन लोगों ने अपने अपने समुदाय में अंग्रेजी के प्रसार का पूरा प्रयास किया है। पर जैसा कि शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण में पाया कि भाषा का संबंध परिवेश से है, न की किताबों से। अर्थात् बिना परिवेश के भाषा को सीखना संभव ही नहीं है। अपने-अपने 'वर्तिकल-वर्ण-वर्ग' के नेताओं के लाख प्रयासों के बावजूद भी "शेरनी का दूध" माने जाने वाली अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हर समुदाय के नगण्य तबके तक ही "ट्रिकल डाउन" हो पाया था। पर जो इस दूध को पी जाता है, वह सामाजिक वर्चस्व को प्राप्त कर लेता है। आज भी अगड़ी जातियों के मुकाबले अनुसूचित जाति और जनजाति का नगण्य तबका ही अंग्रेजी भाषी है। पर जो है वह शीर्ष नेतृत्व का सहभागी है। उसने रहन-सहन भाषा का तौर-तरीका एलीट वर्ग वाला ही अपनाया है और एलीट-ब्राह्मणवादी-भारतीय-अंग्रेजी कल्चर के प्रसार में लग गये। जितना जोर उन्होंने अंग्रेजी के प्रसार पर लगाया उसका आधा जोर भी दलितों की भाषा को राजसत्ता की भाषा बनाने में लगाया होता तो राजसत्ता के चरित्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाता। उन्होंने शासक वर्ग की भाषा को दलित भाषाओं से अधिक महत्व इसलिए दिया, क्योंकि कहीं न कहीं वह उनके नेतृत्व को स्थिरता दे रही है और सत्ता का भागीदार बनाए रखने में सहायक है।

1950 में लागू हुए भारतीय संविधान की धारा 341 तथा 342 के अनुसार दलित जातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। पर उसी संविधान की धारा 343 और 348 राजकाज और न्याय व्यवस्था से दलित पिछड़े वर्ग की बोली के स्थान पर अंग्रेजी के वर्चस्व को बना कर शासन तंत्र में तथाकथित दलित, पिछड़े जातियों के निचले क्रम को ही नहीं अपितु सभी जातियों के निचले वर्ग के सभी लोगो की भूमिका को सीमित कर रख दिया है। संविधान द्वारा उपलब्ध आरक्षण की व्यवस्था के बावजूद भी, इन जातियों से संबंध एक छोटे से वर्ग को ही आरक्षण का फायदा मिल पाया। जो अंग्रेजी की बाधा को पार कर पाया वह व्यक्ति ही सत्ता के गलियारे की आवाज भी बन पाया। अंग्रेजी के वास्तविक राजभाषा बन जाने की वजह से अंग्रेजी भाषी छोटे से वर्ग का दबदबा ही स्वतंत्रता उपरांत भी राजव्यवस्था पर बना रहा। कमोबेश यह स्थिति सिर्फ दलित जातियों की ही नहीं है, अपितु तमाम दूसरी जातियों एवं मजहब के निचले क्रम के लोग सत्ता के गलियारे से बाहर ही है। अन्ततः अंग्रेजी के वर्चस्व का खामियाजा भारत के सभी जाति, मजहब क्षेत्रीय बोली बोलने वाले निचले क्रम के लोगों को भुगतना पड़ा है। अंग्रेजों के जमाने में जो अंग्रेजी भाषी वर्ग तैयार हुआ था। यह वर्ग ही उस वक्त शासन व्यवस्था का भागीदार बना था। वह ही अंग्रेजों की सत्ता का प्रतिद्वंदी भी बना था.. और 1947 में हुए सत्ता हस्तांतरण के बाद वह वर्ग ही राज सत्ता पर कायम हुआ। उदाहरण पंडित जवाहर लाल नेहरू के पिता पंडित मोती लाल नेहरू उस जमाने के प्रसिद्ध वकील थे। एक तरफ यह नेहरू परिवार कांग्रेस को नेतृत्व प्रदान कर रहा था। मोतीलाल नेहरू ने 1923 में स्वराज पार्टी भी बनायी। 1928 में कांग्रेस द्वारा स्थापित भारतीय संविधान

आयोग के भी वे अध्यक्ष बने। और दूसरी तरफ वे अंग्रेजों की प्रिवी काउंसिल में जमींदारों के हक में पैरवी किया करते थे। अर्थात् उनके केस लड़ते थे। अंग्रेजों के लिए राजस्व उगाहने वालों के सहयोगी थे। भारत में स्वतंत्रता के बाद सत्ता की मलाई इसी सहयोगी-प्रतिद्वंदी वर्ग को मिल पायी।

1951 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता दर 18% से कम थी। जब साक्षरता का यह हाल है तो स्कूली और विश्वविद्यालयी शिक्षा की क्या स्थिति रही होगी। पाठक खुद ही कल्पना करें। चूंकि अंग्रेजी भारत की सांस्कृतिक परिवेश की भाषा तो है नहीं कि बिना स्कूल कॉलेज जैसी औपचारिक व्यवस्था के सीखी जा सकती हो। अतः जन सामान्य (आम आदमी) चाहे वह रहने वाला उत्तर का हो या दक्षिण का, पूर्व का हो या पश्चिम का, अंग्रेजी किसी की भी सुविधा की भाषा नहीं थी और न है। उस दौर में भी यह उन शीर्ष लोगों की तो सुविधा की भाषा थी, वे जो शिक्षा ग्रहण करने विलायत(इंग्लैंड और यूएसए) जा सकते थे। इंग्लैंड प्रवास की वजह से अंग्रेजी उनके लिए सहज हो गयी थी। बाद के दौर में भी उसी वर्ग से संबंधित लोगों तक ही सिमटी रही। चूंकि उच्च शिक्षण संस्थानों पर भी यही वर्ग छाया रहा है। अतः उच्च शिक्षा की भाषा भी अंग्रेजी बनी रही है। अंग्रेजी की विवशता को लेकर रवीन्द्र नाथ टैगोर गांधी जी को 1918 में एक पत्र में लिखते हैं कि अंग्रेजी में ग्रहण किए विचारों को हमने अपने दिमाग में प्राकृतिक रूप से आत्मसात कर लिया है। अर्थात् अब हम अपने विचारों को प्राकृतिक रूप में अंग्रेजी में ही व्यक्त कर

सकते हैं। अतः हिन्दी (तमाम भारतीय भाषाएं) हमारे लिए एक विकल्प के रूप में ही रहेगी। प्रॉब्लम ऑफ हिंदी नामक पुस्तक में छपा यह पत्र स्पष्ट करता है कि यह उच्च वर्ग की विवशता ही थी जिसकी वजह से सत्ता हस्तांतरण के बाद भी उच्च शिक्षा और राजकाज की भाषा अंग्रेजी बनी रही। अंततः राजसत्ता को सीमित वर्ग तक समेटे रखने का काम किया। हालांकि टैगोर ने नयी पीढ़ी से उम्मीद की थी कि वे वक्त के साथ हिन्दुस्तानी को आत्मसात कर लेंगे। पर स्वतंत्र भारत के नये दौर में भी उच्च वर्ग की नयी पीढ़ी ने भी अंग्रेजी का दामन थामे रखा। अतः उच्च वर्ग की नयी अंग्रेजी भाषी पीढ़ी की सुविधा के लिए अंग्रेजी राजकाज और उच्च शिक्षा की भाषा बनी रही है। उच्च शिक्षा के मंदिर में वह ही टिक पाया जो अंग्रेजी और अंग्रेजीयत को आत्मसात कर पाया। पर देश में ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाला तबका भी उच्च शिक्षा में अंग्रेजी की अनिवार्यता की वजह से कुछ हद तक काम काज की अंग्रेजी सीख पाता था। सांस्कृतिक परिवेश की भाषा न होने की वजह से अंग्रेजी उच्च वर्ण के भी उच्च वर्ण तक ही सीमित रही। अंग्रेजी का वर्चस्व ही उच्च वर्ण के उच्च वर्ण के वर्चस्व का आधार बनाए रखा। अंग्रेजी ही ब्राह्मणवादी वर्चस्व का आधार है। अनुसूचित जाति की पृष्ठभूमि के बाबासाहेब डॉ. बी आर अम्बेडकर सरीखे लोग तो अंग्रेजी भाषियों में उस दौर में भी बस अपवादस्वरूप ही थे। दलित एवं निम्न वर्ण के लोगों की सबसे बड़ी बाधा अंग्रेजी ही रही है। अंग्रेजी की अनिवार्यता की वजह से कॉलेज भी उच्च वर्ण के भी उच्च वर्ण के विद्यार्थी ही पहुँच पाते थे। भारत में अंग्रेजी इसी उच्च वर्ण के वर्चस्व वाली भाषा बनी रही। अंग्रेजी के अधिकारिक भाषा बनने का सीधा फायदा इसी वर्ग को हासिल हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी नौकरशाही अंग्रेजों के

सहयोगी अंग्रेजी भाषियों के हाथ में ही रही। इनकी सुविधा के लिए शासन प्रशासन में अंग्रेजी को संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक के लिए कायम रखा गया। आज भी इस देश में शीर्ष वर्ग की ही सुविधा की भाषा अंग्रेजी है। बस अंतर यह आया है कि इस अंग्रेजी भाषी वर्ग में धीरे-धीरे गैर सवर्ण जातियों की भी हिस्सेदारी दर्ज हुई है। यही वर्ग धीरे धीरे अंग्रेजी भाषी एलीट वर्ग के रूप में स्थापित हुआ। हर जाति-वर्ण के एलीट! वे सभी अपने-अपने वर्ण के आइडियल (आदर्श) बन गये हैं। अपने वर्ण के लोगों को अंग्रेजी भाषी बनने हेतु प्रेरित भी करते हैं। इस एलीट वर्ग की ही आपसी संपर्क की भाषा अंग्रेजी है। इस प्रकार सत्ता पर 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' वाले वर्ग का, जो नियंत्रण अंग्रेजों के समय में था, वह आज भी बना हुआ है। चूंकि अंग्रेजी ज्ञान और सत्ता को सीमित वर्ग तक समेटे रखती है। जब ज्ञान सीमित वर्ग के पास होता है तो शेष समाज के पास उस पंडित वर्ग का अनुसरण करने के अलावा कुछ भी शेष नहीं बचता। समाज का एक सीमित वर्ग ही 'ज्ञान' को जानता है। यह वर्ग अपने आप में वर्ण का रूप लेता है और अपने-अपने समुदाय में पंडित के रूप में भी स्थापित होता है। क्योंकि अब इसमें हर जातियों अर्थात् वर्टीकल वर्ग (SC,ST,OBC, सामान्य श्रेणी) के ब्राह्मण शामिल है। ब्राह्मणों का कार्य ज्ञान और सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रखना था। 'नव ब्राह्मण वर्ग' भी ज्ञान और सत्ता को अंग्रेजी भाषी उच्च वर्ग के लोगों तक ही समेटे रखता है। शेष जनों के पास आँख बन्द कर अपने-अपने वर्ण के वर्चस्व प्राप्त लोगों को का अनुसरण करने के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं बच जाता है। अंग्रेजी भाषी वर्ग ही ज्ञाता है और शेष समाज उनका अनुसरणकर्ता है। अतः "शेरनी का दूध" समझे जाने वाली इस भाषा का वर्चस्व ही

‘नवब्राह्मण वादी वर्चस्व’ है। यह ‘इंग्लिश मीडियम कल्चर’ ही वास्तव में ब्राह्मणवादी कल्चर है। चूंकि कुछ लोग ही श्रेष्ठता को हासिल करते हैं और शेष समाज से ऊपर रहते हैं। अतः यह ही “वीआईपी कल्चर” के रूप में भी स्थापित होता है। यह इंग्लिश मीडियम वीआईपी वर्ग ही सम्पूर्ण राजव्यवस्था को ‘इंग्लिश मीडियम’ की धुरी पर नचा रहा है। इस प्रकार राजव्यवस्था, उच्च शिक्षा व्यवस्था और पूंजीव्यवस्था का नियंत्रण 1-2% अंग्रेजी भाषी लोगों के हाथ में बना रहता है। पर हकीकत यह भी है कि आम आदमी चाहे वह उत्तर का हो या दक्षिण का, पूर्व का हो या पश्चिम का, अंग्रेजी उसके समझ के बाहर की ही बात है। और इस कारण राजसत्ता उसके समझ के बाहर है। जी हाँ! अंग्रेजी इस देश के 90% लोगों के समझ के बाहर ही है। इस कारण राजकाज, न्यायव्यवस्था के तौर-तरीके भी उन लोगों की समझ के बाहर ही हैं। शहरी उच्च मध्यम वर्ग के लिए स्थापित कॉलोनियों में रहने वाले मुस्लिम, SC , ST , OBC और सामान्य श्रेणी के इंडियन को छोड़ दें तो शहरी स्लम, अनाधिकृत और निम्न मध्यम वर्गीय कॉलोनियों एवं ग्रामीण परिवेश में रहने वाले मुस्लिम, SC , ST , OBC और सामान्य श्रेणी के भारतवासियों के लिए यह “शेरनी का दूध” किसी श्राप से कम नहीं है। देश की 90% आबादी “शेरनी का दूध” हजम नहीं कर सकती है। हाँ, सत्ताधारी वर्ग में कुछ हद तक औपचारिक शिक्षा की बदौलत अंग्रेजी सीख कर इक्का-दुक्का निम्न मध्यम वर्ग का व्यक्ति भी शामिल हो जाता है। पर अंग्रेजी के जाल में फंस कर उलझना ही है। यह ठीक उसी तरह है कि मछुआरे के जाल से कुछ मछलियाँ बच निकले। पर जो जाल में फंस गयी वह तो पकती ही है। यदि कुछ एक लोग आरक्षण या औपचारिक शिक्षा की वजह से अंग्रेजी भाषी तबके का

हिस्सा बन भी जाते हैं। पर यह संपूर्ण समाज की सच्चाई व्यक्त नहीं करता है। यदि नीचे के क्रम के कुछ लोगों को ऊपर के क्रम में शामिल होने के लिए रास्ता दे तो ऊपर की सत्ता सुरक्षित भी नहीं रह सकती है। अतः समाज को वर्टिकल रूप से बांट कर अनुसूचित जाति एवं जनजाति और आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग(जाति) को दिया आरक्षण कोई कृपा या सामाजिक उद्धार का साधन नहीं अपितु सत्ता को अंग्रेजी भाषी वर्ग तक सुरक्षित रखने का साधन है। मुस्लिम, SC , ST , OBC में से भी छोटे से वर्ग को अंग्रेजी भाषी बनाना, अंग्रेजों के जमाने से सत्ता में बैठे अंग्रेजी भाषी एलीट ब्राह्मणों, कायस्थों के लिए एक अनिवार्य शर्त है। अतः सत्ताधारी वर्ग अंग्रेजी भाषी समुदाय में हर सामाजिक तबके को शामिल करने की कवायत में जुटा है। इक्का-दुक्का लोग आरक्षण जैसी सीढ़ियों के सहारे चढ़ कर अंग्रेजी भाषी वर्ग में शामिल हो भी जाएं तो अधिकतर अनिल मीणा, विजय, नीतीश की तरह रास्ते में ही ढेर हो जाएंगे। पर जो इस वर्ग में शामिल हो जाएंगे, वे शेष समाज के लिए आदर्श बन जाएंगे। आरक्षण की सीढ़ियों के सहारे चढ़ कर आये लोग भी, अंततः अंग्रेजी भाषी वर्ग के ही अंश बन कर रह जाएंगे। इन नए लोगों का सांस्कृतिकरण भी तेजी से 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' के अनुरूप होता है। बेशक वे इस सिस्टम में पहले से बैठे लोगों से हीन स्थिति में हो, पर जिस समाज से आए हैं उसके वे आइडियल होंगे। सिस्टम के वर्चस्व को और अधिक उठाने में ही योगदान करेंगे। यह नव अंग्रेजी भाषी वर्ग आम जनता और सिस्टम के बीच की खाई को और अधिक बढ़ाने का काम करता है।

राजनीतिशास्त्र का स्थापित सिद्धान्त है कि सत्ता व्यक्ति और संस्थाओं को भ्रष्ट बनाती है। 15 अगस्त 1947 को हुए सत्ता हस्तांतरण के बाद से सत्ता के तमाम केन्द्रों अर्थात् विश्वविद्यालय, न्याय, नौकरशाही, मीडिया, राजनीति पर 4-5% अंग्रेजी भाषियों का वर्चस्व बना रहता है। ऐसे में सत्ता का दुरुपयोग होने से कौन रोक सकता है। सत्ता, उस सत्ता को नियंत्रित करने वाली तमाम एजेंसी सब तो इस इंग्लिश मीडियम सिस्टम का ही भाग है। चूंकि न केवल ऑफिसियल इंग्लिश ही लोगों के समझ के बाहर है अपितु उस ऑफिसियल इंग्लिश के अनुवाद के अनुरूप एसी (वातानुकूलित) कमरों में बैठ कर गढ़ी गयी, अनुवाद की ऑफिसियल हिन्दी भी आम आदमी के ऊपर से ही जाती है। आम आदमी के लिए यह ऑफिसियल हिन्दी, ऑफिसियल इंग्लिश से भी अधिक कठिन और बेगानी प्रतीत होती है। ..और इस प्रकार विश्वविद्यालय, न्यायव्यवस्था, पूंजीव्यवस्था और इन सब को साकार रूप देने वाली राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था जैसी एजेंसियाँ सत्ता के गलियारे में क्या गुल खिलाती है, यह आम जनता के समझ के बाहर की बात है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम के रहते आम जनता की भागीदारी असंभव ही नहीं नामुमकिन भी है। भ्रष्टाचार एक सांस्कृतिक क्रिया है, जो सत्ता के दुरुपयोग की ताकत के साथ हासिल होती है। यूरोप में मध्ययुग में जब अध्यात्म की सत्ता पर चर्च का एकाधिकार था, बाईबल आम जनता की भाषा से अलग सिर्फ लैटिन में छपी होती थी और वह भी चर्च में चैन से बांध कर रखी जाती थी। पादरी ही बाईबल की गूढ़ बातों को प्रकट करने का अधिकारी था। आम जनता की भाषा से परे की भाषा में छपी बाईबल गूढ़ रहस्य से कम नहीं होती थी। ये अंधकार का वह दौर था, जब पादरी खुले आम लोगों को

स्वर्ग के टिकट तक बेचते थे। पादरियों द्वारा चर्च में रखलें रखना आम बात थी। राजसत्ता न केवल चर्च को संरक्षण देती थी अपितु राजा द्वारा एकत्र टैक्स का एक भाग चर्च को बिना रोक टोक के जाता था। चर्च इसके बदले में राजा को भगवान का प्रतिनिधि घोषित करता था। ..और यह सब इस कारण संभव था क्योंकि अध्यात्म की सत्ता चर्च के पादरियों तक ही सीमित थी। वे मनचाहे तरीके से बाईबल का वर्णन कर सकते थे। अंधविश्वास के व्यापकता की वजह से जन समान्य परलोक के डर से चर्च के पादरी की बात को आँख बंद कर स्वीकार करता था। यही कारण भारत में ब्राह्मण वादी वर्चस्व का भी रहा है। वेदों का ज्ञान संस्कृत भाषा में अंकित है और उस भाषा का अध्ययन करने का अधिकार सिर्फ ब्राह्मणों को ही था। चूंकि उस ज्ञान को हासिल करने और उसका वर्णन करने का अधिकार एक सीमित जाति-वर्ण तक सीमित था। अतः वह उसे मनचाहे तरीके से वर्णन कर सकता था। उसने भी वही किया जो यूरोप के पादरी वर्ग ने किया। ब्राह्मणों ने राजा को भगवान का प्रतिनिधि के रूप में स्थापित किया और बदले में राजा ने इनको संरक्षण प्रदान करने का काम किया। मध्ययुग में यूरोप में पादरियों ने और भारतीय समाज में ब्राह्मणों ने अज्ञानता के अंधेरे में अध्यात्म की सत्ता का प्रयोग शेष समाज को दबाए रखने के लिए ही किया। दोनों ने अध्यात्मिकता को हथियार के रूप में प्रयोग किया। और दोनों की सत्ता को शक्तिशाली बनाने का काम भाषा ने किया। चूंकि यूरोप की आम जनता के लिए लैटिन समझ के बाहर थी। तो भारत में संस्कृत पंडित जी की भाषा और फारसी मौलवी जी की भाषा से ज्यादा कुछ नहीं रही। पुनर्जागरण काल के बाद बाईबल का अनुवाद तो यूरोप की जन भाषाओं में हुआ। पर भारत में संस्कृत में

छपे वेदों उपनिषदों को शायद ही जनभाषाओं में अनुवाद हुआ हो। एक प्रतिष्ठित स्कूल के प्राचार्य के अनुसार, “आपके पास अपने वेदों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद नहीं है। जर्मनी के पास संस्कृत की पुस्तकों का जर्मन अनुवाद है और यूएसए के पास अंग्रेजी अनुवाद है।” संस्कृत में छपे ज्ञान का जनसामान्य की भाषा में वर्णन न होने की वजह से आम जन ने संस्कृत भाषा के ज्ञान स्रोत को “बाय पास” करने का ही कार्य किया है। आज आम आदमी की नजर में संस्कृत भाषा का अर्थ पूजा-पाठ के समय पंडितों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा के रूप में है। आप-हम जैसे लोग पंडित के मंत्र खतम होने पर “स्वाहा” का उच्चारण भर करते हैं। कुछ विशेष विचारधारा के चिंतक संस्कृत के ग्रंथों अच्छा घोषित करते हैं, तो कुछ दूसरे विचारधारा के लोग उन्हीं ग्रंथों को फिजूल और जन विरोधी घोषित करते हैं। पर आम आदमी न तो उसके अच्छे के बारे में जानता है, न बेकार के बारे में, वह तो सिर्फ अपने वर्तकाल वर्ग विशेष के नेता की विचारधारा के अनुरूप उसे स्वीकार करता है अथवा अस्वीकार। हकीकत में वह सिर्फ उसको बाय पास करने का ही काम कर रहा होता है। कुछ लोगों के अनुसार संस्कृत ग्रंथों में हमारा प्राचीन ज्ञान है। पर वह क्या है? कितना सही है, कितना गलत। किसी को पता नहीं है? यदि ज्ञान आम आदमी की भाषा में होता तो आम आदमी उस पर चर्चा करता। और इस चर्चा में या तो ज्ञान स्थापित होता या ज्ञान सही नहीं है तो उसे अमान्य घोषित कर, उस ज्ञान से पृथक नए ज्ञान की स्थापना होती। इस प्रकार आधुनिक ज्ञान का सृजन होता। पर संस्कृत के ग्रंथों का संस्कृत में रह जाने की वजह से वह हो न सका। यूरोप में पुनर्जागरण काल का प्रारंभ बाईबल के जन भाषाओं में अनुवाद के साथ हुआ। धर्म ग्रंथों के

आलोचनात्मक मूल्यांकन के बाद ही विज्ञानवाद का उदय हुआ। सामाजिक विज्ञानवाद को जन भाषाओं में व्यक्त करने के फलस्वरूप हुआ।

अंग्रेजी राज के फलस्वरूप समाज से कटी भाषा संस्कृत और फारसी का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। यूरोप की तरह हमने मौलिक सामाजिक चिंतन के द्वारा अपने आदिज्ञान को परिवर्तित एवं परिवर्धित नहीं किया। वर्तमान भारतीय समाज व्यवस्था किसी क्रांति का परिणाम नहीं है। हमारे आधुनिक यूरोपिये ज्ञान को वॉया इंग्लैंड इम्पोर्ट (आयात) किया है। ...और इंग्लिश मीडियम के रैपर में लिपट कर आया ज्ञान इतना अधिक उच्च दर्जे का है कि आम आदमी की समझ से बाहर है। ज्ञान जन भाषाओं में न होने के कारण ऊपरी जन तक ही सीमित है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम की वजह से भारतीय समाज ने सिर्फ और सिर्फ ब्राह्मणवादी व्यवस्था को 'बायपास' करके 'नव-ब्राह्मणवाद' की व्यवस्था को अपनाया है। मतलब साफ है कि शराब तो वही रही, बस बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप बोतल बदल दी गयी है। अर्थात् मूल्य वही रहे बस रूप रंग परिवर्तित हो गया। ..और संस्कृत एवं फारसी के स्थान पर नव-ब्राह्मणवादी व्यवस्था में इंग्लिश को ज्ञान की परिष्कृत भाषा के रूप में स्थापित किया है। मनु की ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने जहाँ ज्ञान को संस्कृतभाषी ब्राह्मणों तक समेटे रखा था। वही मैकाले के नव-ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने भी ज्ञान की सत्ता को छोटे से "इंग्लिश मीडियम वर्ण" अर्थात् इंग्लिश-हिंग्लिश जाति के लोगों तक समेटे रखने का काम किया है।

“ब्राह्मणवादी संस्कृति” का स्थान “इंग्लिश मीडियम कल्चर” ने ले लिया। नवब्राह्मणों के रूप में इंग्लिश भाषी जज-वकील, प्रोफेसर, डॉक्टर और सरकारी अधिकारी जैसे आधुनिक ब्राह्मण पैदा हुए। ये मैकाले के मानस पुत्र ही “इंग्लिश मीडियम सिस्टम” के अंग्रेजीमय ज्ञान की सत्ता के दलाल हैं। कानून की पुस्तकों में क्या छपा है, ये सिर्फ वकीलों के समझ की बात है। बिना वकील के सहारे आम आदमी अदालत में खड़ा तक नहीं हो सकता है। सुप्रीम कोर्ट में तो ‘फ्लूएंट इंग्लिश’ बोलने वाला वकील ही दलील कर सकता है। वकील जो लिख देता है, आम आदमी की भूमिका उसके नीचे अंगूठा या हस्ताक्षर भर करने की होती है। जैसे वकील रटा देता है, वैसा ही बयान लोग अदालत में दे देते हैं। ठीक वैसे ही जैसे पंडित जी जैसे-जैसे कहने को बोलते हैं, वैसे-वैसे यजमान बिना विचार के बोलता जाता है। लेखक ने व्यक्तिगत तौर पर कोर्ट में वकीलों के सामने लोगों को सादे पेपर पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है। सरकार के रहस्यमय दस्तावेजों में क्या छपा होता है यह आम जनता के समझ से बाहर की बात होती है। सेठ जी जहाँ कह देते हैं, किसान वही अंगूठा लगा देता है। लेखक अब पाठकों से जानना चाहता है कि ऊपर की घटनाओं में क्या फर्क है। एक “पंडित जी” के मंत्र पढ़ने के बाद “यजमान” ने स्वाहः का उच्चारण किया है, और दूसरा सामान्य साक्षर व्यक्ति भी वकील द्वारा अंग्रेजी में तैयार किए गये पेपर पर आँख बंद कर हस्ताक्षर कर देता है। यह ‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’ ही ‘नव ब्राह्मणवाद’ है। जो ज्ञान को एक सीमित वर्ग तक समेटे रखता है। और ज्ञान का सीमित वर्ग तक सिमटा रहना ही भ्रष्टाचार का स्रोत है। जब अध्यात्म का ज्ञान चर्च तक सीमित था तो चर्च भ्रष्ट हो गयी। जब यह ज्ञान पंडितों तक सीमित रहा तो पंडित भ्रष्ट हो

गये। आज के बाबाओं के किस्से भी अध्यात्म के अंधकार का ही परिणाम है। आधुनिक ज्ञान भी सीमित वर्ग तक है। अतः यह 'इंग्लिश मीडियम ज्ञान' ही ज्ञान से समाज से काटे रखता है। ज्ञान सामाजिक चर्चा का भाग नहीं बनता इसलिए यह ही अज्ञानता का अंधेरा कायम रखने वाली दीवार है।

यहाँ तक की कोर्ट, दफ्तरों आदि की बात तो छोड़ो, स्कूल में क्या चल रहा है, यह माँ-बाप तक नहीं जानते हैं। होना यह चाहिए था कि स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ाये जाने वाला ज्ञान-विज्ञान पर सामाजिक चिंतन होना चाहिए, उस पर संवाद होना चाहिए। पर इंग्लिश मीडियम सिस्टम एक अभेद दीवार के रूप में औपचारिक ज्ञान को सीमित वर्ग तक समेटे रखने का काम करती है। चूंकि यह ज्ञान स्कूल-विश्वविद्यालय रूपी औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की औपचारिक भाषा में ही प्रतिस्फुटित होता है। अतः ज्ञान-विज्ञान पर जो सामाजिक बहस और चिंतन होना चाहिए था और ज्ञान-विज्ञान के निर्माण में जो सामाजिक भूमिका होनी चाहिए थी, वह अवरूध रहती है। इंग्लिश मीडियम इस सामाजिक चिंतन की संभावना को ही खत्म कर देता है। ऐसी अवस्था में, जब महज रोजगार हासिल करने के उद्देश्य से व्यक्ति विश्वविद्यालय के स्थापित ज्ञान को ग्रहण करता है। तो व्यक्ति ज्ञान के वास्तविक मर्म को बाय-पास करता जाता है। मतलब स्पष्ट है, अर्हता हासिल करने के लिए प्राप्त ज्ञान की उपयोगिता अर्हता हासिल करने के साथ लगभग खत्म हो जाती है। फलस्वरूप विज्ञान विषय का एम.एस.सी. शनि महाराज को शनिवार को तेल चढ़ाने का काम

करता है। या फिर ज्योतिषों के सामने हाथ पसारे बैठा रहता है। इंग्लिश मीडियम रूपी इस नव ब्राह्मणवादी व्यवस्था में ज्ञान को सीमित वर्ग तक समेटे रखने के अतिरिक्त भी एक विशेषता है। वह यह है, इसकी समग्रता, पुराने ब्राह्मणवादी व्यवस्था में जहाँ एक ही जाति अर्थात् ब्राह्मणों के पास ही ज्ञान की धरोहर थी। वहीं वर्तमान नयी व्यवस्था में आरक्षण के माध्यम से सभी वर्टीकल वर्गों, जैसे अनुसूचित जाति (SCSC), जनजाति(STST), अन्य पिछडा वर्ग(OBCOBC) के सभी सामाजिक वर्गों अर्थात् ज्ञान के पुरोहितों का नवब्राह्मण तबका तैयार किया गया है। जो इंग्लिश की अनिवार्यता की शर्त को पूरा कर सकता है, वह नवब्राह्मण बन सकता है। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह किस जाति-धर्म से संबंधित है। ऐतिहासिक कारणों से अंग्रेजों के साथ संबंध की वजह से ब्राह्मण और कायस्थ जाति के लोगों का इंग्लिश मीडियम सिस्टम में वर्चस्व बना हुआ है। (नोट- इन जातियों में भी सभी लोगों की बात नहीं की जा रही है। इन जातियों में भी वही सीमित लोग, जो अंग्रेजों के सहयोगी बने, वे ही इंग्लिश मीडियम सिस्टम में हैं।) पर नवब्राह्मण वर्ग तैयार करने के लिए भारतीय राजव्यवस्था ने संविधानिक मशीनरी का प्रयोग कर आरक्षण का प्रावधान तक किया है। सभी जाति-धर्मों को इसमें सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार इस नयी व्यवस्था को समग्रता का स्वरूप देने का प्रयास किया गया है। देखने में लगता है कि यह सिस्टम सबके लिए है, पर हकीकत यह है कि यह ज्ञान को एक सीमित अंग्रेजी भाषी वर्ग तक ही समेटे रखने का कार्य करता है। हर जाति और धर्म के संयोजन के बाद भी इसका वर्गीय स्वरूप अंग्रेजों के जमाने में पैदा हुए एलीट वर्ग तक ही केन्द्रित है। जब ये सिस्टम ही पाँच-सात प्रतिशत लोगों का है तो

उस पर आधारित व्यवस्था भ्रष्ट क्यों न हो? इस प्रकार इंग्लिश मीडियम सिस्टम ही भ्रष्टाचार का मूल कारण है। क्योंकि यह सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रखने की ताकत रखता है। जब तक सत्ता चंद हाथों में है, उसका दुरुपयोग होता ही रहेगा। कोई अरविंद केजरीवाल या आम आदमी पार्टी उसके दुरुपयोग को रोक नहीं सकती है। जनता को बरगलाये रखने का काम मीडिया करेगा। अर्थात् भ्रष्टाचार के खिलाफ चलाए हर मुहिम के बावजूद भी भ्रष्टाचार कायम रहेगा। इंग्लिश मीडियम सिस्टम की वजह से 90% आबादी अर्थात् आम आदमी को तो पता ही नहीं चलता कि सत्ता के गलियारे में क्या पक रहा है और सत्ता छोटे से एलीट वर्ग तक सीमित रहती है। एक रोज उड़ती-उड़ती खबर आएगी, घोटाला हो गया, दूसरे दिन की खबर होगी कि जहाँ दस्तावेज रखे थे, उस सरकारी भवन में आग लग गयी। फिर खबर आएगी जाँच में कुछ भी हासिल नहीं हुआ। आम आदमी तक समग्र नहीं मीडिया से छनछन कर ही खबर पहुँचेगी। ..और जब मीडिया इतनी ताकतवर हो तो वह भी खबरों की दुकानदारी क्यों न करे। संसद और विधानसभा कानून बनाती है। पर वे क्या खबर बनाती है यह आम आदमी की समझ के बाहर है। कहने को हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद होता है। पर वह इतना अधिक क्लिष्ट होता है कि आम भारतीय की समझ से वह बाहर की ही बात होती है। ये सब कैसे होता है इसे समझने के लिए आइये भारतीय संविधान पर गौर करें।

संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा है। पर उसी अनुच्छेद 343 के खंड (2) के अनुसार इस संविधान के लागू होने से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग ठीक उसी रूप में किया जाता रहेगा जैसा उसके प्रारंभ से ठीक पहले किया जाता रहा है। अर्थात् अंग्रेजी राज में जैसे अंग्रेजी का प्रयोग होता था, वैसे ही सत्ता हस्तांतरण के बाद, संविधान लागू होने के बाद भी चलता रहेगा। इस पंद्रह वर्ष की अवधि में एक तो सम्पूर्ण शीर्ष व्यवस्था अंग्रेजी में ही चलती रही। दूसरा हिन्दी को गैर हिन्दीभाषी इलाकों में थोपने की राजनीति कुछ इस प्रकार की गयी कि 15 वर्ष से पूर्व ही, स्थाई तौर पर काम-काज की अधिकारिक भाषा अंग्रेजी ही बन गयी। संविधान की धारा 344 के आधार पर गठित भाषा आयोग की सिफारिश के आधार पर जब 13 अप्रैल, 1963 को इंग्लिश को स्थाई तौर पर संघ की अधिकारिक भाषा बनाने का बिल संसद में रखा जा रहा था। उस वक्त बड़ा जन समूह इस बिल का विरोध करने के लिए संसद के बाहर जमा था। 16 अप्रैल, 1963 को कांग्रेस संसद सदस्यों की बैठक में जवाहर लाल नेहरू ने बिल के पक्ष में वोट डालने के नाम पर व्हिप जारी करते हुए, कांग्रेस जनों को अंग्रेजी के महत्व का पाठ भी पढ़ाया। इसका एक कारण, दक्षिण के तमिल-तेलगु आदि गैर हिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी को थोपने का विरोध भी जोरो पर चलाया गया था। उन्हीं दिनों टाइम्स ऑफ़ इंडिया में छपा आगे दिया कार्टून हिन्दी विरोध की पोल खोलता है। नेताओं की रुचि इंग्लिश को स्थाई बनाने में थी, न कि दक्षिण भाषी राज्यों की भाषा को अधिकारिक बनाने में थी। सवाल यह उठता है कि जब संयुक्त राष्ट्र जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था का कामकाज छः

अधिकारिक भाषाओं में एक साथ हो सकता है, तो क्या भारत में तथाकथित हिन्दी के साथ तमिल-तेलगु, पंजाबी-कश्मीरी, गुजराती-आसामी में नहीं हो सकता। तीस हजार वर्ग किलोमीटर में फैला, सवा करोड़ की आबादी वाला एक छोटा सा देश है बेल्जियम। इस छोटे से मुल्क में एक नहीं, दो नहीं, तीन अधिकारिक भाषाओं में कामकाज होता है, डच, फ्रेंच और जर्मन। तो भारत में यह असंभव कैसे हो गया है? संयुक्त राष्ट्र की अधिकारिक भाषाओं में तो किसी भी तरह का संबंध नहीं है। पर विश्वविद्यालय अर्थात् ज्ञान व्यवस्था द्वारा तथाकथित द्रविड, गैर द्रविड भाषाओं में विभक्त इस समाज का सांस्कृतिक संदर्भ तो कम से कम एक ही है। भारत की उत्तर और दक्षिण की भाषाओं की वाक्य संरचना भी एक ही है। आम आदमी चाहे उत्तर का हो या दक्षिण का, उसे आपसी संपर्क की भाषा को विकसित करने में कोई दिक्कत नहीं होती है। यदि कोई अल्प साक्षर व्यक्ति दक्षिण से उत्तर आता है या उत्तर से दक्षिण, तो कुछ समय में आपसी संपर्क से नयी संपर्क भाषा विकसित कर लेता है। तो सत्ता में बैठे वर्ग के प्रोफेसर या जज या अधिकारी को दिक्कत क्यों होती है? नीचे दिया कार्टून स्पष्ट करता है कि हिन्दी विरोधी आंदोलन का केन्द्र इंग्लिश अर्थात् अंग्रेजी राज का अंधेरा कायम रखने के लिए था न कि उत्तर और दक्षिण भारतीयों में समानता की स्थिति को बनाने के लिए था। जिसका फायदा सिर्फ उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम में बसे मैकाले पुत्र को ही हुआ, न कि इन्हीं क्षेत्रों में बसे 90% तमिल, तेलगु आदि भाषाओं को बोलने वाले आम हिन्दुस्तानियों को।



कार्टून (साभार)- आर के लक्ष्मण, टाइम्स आफ इंडिया, एनसीईआरटी

संविधान लागू होने बाद सिर्फ संविधान के कागजी प्रावधान के अलावा किसी भी दूसरे स्तर पर सरकार की तरफ किसी भी प्रकार का ठोस प्रयास भारतीय भाषाओं के लिए नहीं किया गया था। सरकारी नौकरियों और उच्च शिक्षा पर अंग्रेजी का दबदबा कायम रहा। भारतीय भाषाओं के आंदोलन में लोग ऊपर की राजनीति के प्रभाव में आपस में ही लड़ते-भिड़ते रहे। सब कुछ दो बिल्ली और बंदर की कहानी जैसा ही था। बिल्लियां रोटी के बटवारे को लेकर आपस में लड़ती रहती है। ..और बंदर रोटी खाता रहता है। अंततः बिल्लियों के पास बंदर का मुंह ताकने के सिवा कुछ भी हासिल न हुआ। भाषा की राजनीति का भी यही परिणाम निकला। आज आम आदमी उत्तर का हो या दक्षिण का, उसके पास मैकाले पुत्रों का मुंह ताकने के सिवा कुछ भी शेष नहीं बचता है। मैकाले पुत्र ही सत्ता के हर शीर्ष पर बैठे हैं। प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय का प्रतिष्ठित प्रोफेसर अपने ज्ञान को अंग्रेजी में टंकित करेगा। फिर उसका कोई लघुआ-भगुआ उसका अनुवाद हिन्दी में करेगा। हिन्दी ही नहीं तमाम दूसरी भारतीय भाषाओं के हिस्से में अनुवाद के सिवा कुछ भी हासिल न हो सका। मूल काम अंग्रेजी में होगा अनुवाद भारतीय भाषाओं में होगा। भारतीय भाषाएं अनुवाद की ही भाषा बन कर रह गयी है। पर यह अनुवाद की भाषा कुछ इस प्रकार की होती है कि थोड़े बहुत अंग्रेजी साक्षर

व्यक्ति को भी अनुवाद की हिन्दुस्तानी से आसान अंग्रेजी लगने लगती है। इस प्रकार शासन व्यवस्था का कामकाज आम आदमी के समझ के बाहर की बात हो जाती है। रही सही कसर संविधान की धारा 348 ने निकाल दी। अनुच्छेद 348 के अनुसार,

“उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा--(1) इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा उपबंध न करे तब तक--

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,

(ख) (i) संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

(ii) संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(iii) इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के, प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।”

(2) खंड(1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा:

परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी।

(3) खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने, उस विधान-मंडल में पुरःस्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा (iv) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।” भारत के संविधान से साभार

अब जरा रेखांकित हिस्से को गौर से पढ़ें तो पाएंगे कि देश के **संविधान के अनुच्छेद 348 के अनुसार इस देश की वास्तविक आधिकारिक भाषा अंग्रेजी ही है।** संसद की भाषा का वर्णन करने वाला अनुच्छेद 120 में साफ और स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि “अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।” इसी प्रकार विधानसभाओं की भाषा का वर्णन करने वाला अनुच्छेद 210 के अनुसार भी “अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधानमंडल में कार्य राज्य की राज-भाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।” जबकि अनुच्छेद 348 के अनुसार उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी होगी। अतः अनुच्छेद 348 ही संसद विधानसभाओं एवं राज्य और केन्द्र की कार्यपालिका(पीएमओ एवं सीएमओ) की भाषा का निर्धारण करती है। कोई संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार राज्य कामकाज की भाषा अपनी क्षेत्रीय भाषा बना भी ले, तो उसे धारा 210 के अनुरूप अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करना ही पड़ेगा। इसी प्रकार केन्द्र सरकार हिन्दी में कामकाज करने के कितने भी बवंडर कर ले। हिन्दी में किए कामकाज को अंग्रेजी में अनुवादित करना ही पड़ेगा। धारा 348 के अनुसार अंग्रेजी अनुवाद को ही प्राधिकारिक दस्तावेज का दर्जा हासिल है। किसी भी वाद की स्थिति में प्राधिकारिक भाषा(अंग्रेजी) में छपी प्रति ही प्रयोग होगी। अतः संसद और देश की तमाम विधानसभाएं और केन्द्र एवं राज्य सरकारें अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में कामकाज करें भी तो उन्हें सुप्रीम कोर्ट के मांगने पर अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करना ही पड़ेगा। वही अनुवाद ही आधिकारिक रूप से मान्य होगा। **व्यवहार में अनुच्छेद 348 का परिणाम यह निकला कि मूल कामकाज**

अंग्रेजी में होता है और जनता को बरगलाये रखने के लिए भारतीय भाषाओं में तो महज अनुवाद का ड्रामा होगा। अनुवाद के अनुरूप भारतीय भाषाओं का परिष्कृतिकरण किया जाता है। इसलिए ही गांधी जी द्वारा प्रतिपादित हिन्दुस्तानी के स्थान पर परिष्कृत हिन्दी को राजभाषा बनाया गया। यह राजभाषा हिन्दी भी आमजन की भाषा से काफी परे है। और हाथी के दिखाने वाले दांत के रूप में काम करती है। देखने में यह भ्रम पैदा होता है कि यह हिन्दी बेल्ट की भाषा है। पर हकीकत यह है कि राजभाषा हिन्दी महज अनुवाद हेतु विकसित परिष्कृत मानक हिन्दी है। महात्मा गांधी ने जिस बोलचाल की हिन्दुस्तानी की वकालत की वह आम बोलचाल की हिन्दी ही थी। उसमें भारत की तमाम भाषाओं के लिए स्थान हासिल था। संविधान सभा में मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे नेता हिन्दुस्तानी के पक्ष में खड़े थे। पर संविधान सभा में हुई लम्बी बहस के बाद उस हिन्दुस्तानी की संभावना को नकार दिया गया। ..और इस प्रकार यह संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राजभाषा के रूप में थोपने का स्वांग रचा गया। हकीकत में अंग्रेजी को स्थापित करने का काम ही समाज से कटी इस राजभाषा हिन्दी ने किया है। जिसे लोग भ्रमवश होकर राष्ट्रभाषा समझ बैठते हैं। जहाँ हिन्दुस्तानी में हर क्षेत्र के लिए संभावना थी। पर इस मानक हिन्दी को कृत्रिम व्याकरण के नियमों से जकड़ा जमीनी भाषा से पूरी तरह से काट दिया है। इस काम में राजव्यवस्था को विश्वविद्यालयी व्यवस्था का भी सहयोग हासिल होता है। सरकार और विश्वविद्यालय की 'परिष्कृत हिन्दी' समाज में प्रचलित हिन्दुस्तानी नहीं है।

संविधान का अनुच्छेद 120, 210, 343, 344, 345, 346 अप्रत्यक्ष तौर पर और अनुच्छेद 348 प्रत्यक्ष तौर पर अंग्रेजी के वर्चस्व को स्थापित करता है। संसद विधायिका और सरकारें जन दबाव में आ भी जाए, तो भी सुप्रीम कोर्ट अंग्रेजी में कामकाज के दबदबे को बनाए रखेगी। चूंकि देश की सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था एकीकृत है। सुप्रीम कोर्ट का संविधान द्वारा प्राप्त अंग्रेजी भाषा का भाषाई वर्चस्व सिर्फ न्यायव्यवस्था पर ही नहीं, अपितु संपूर्ण राजव्यवस्था, पूंजीव्यवस्था और समाजव्यवस्था पर लागू होता है। यह वर्चस्व सिर्फ भाषा का नहीं अपितु उस भाषा का प्रयोग कर सकने वाले 'सामाजिक समूह' का भी हो जाता है। राजसत्ता पर अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व के माध्यम से मैकाले वंशज अर्थात् एलीट और उच्च मध्यम वर्ग के वर्चस्व को शेष समाज पर स्थापित करता जाता है। ये विशेषाधिकार उन्हें दूसरों से अलग कर देता है और उन्हें विशिष्ट बनाता है। उनकी सत्ता को शेष समाज पर स्थापित करता है। जब सत्ता का संकेन्द्रण चंद हाथों में हो तो वे उसे वे इसे अपने फायदे के लिए इस्तमाल क्यों न करे? अतः अपवादों को छोड़ दें तो, सत्ता के गलियारे में बैठा हर व्यक्ति मलाई मारने के लिए ही वहां है। और क्यों न हो? इंग्लिश उसे विशेषाधिकार देती है। आम आदमी से हट कर एक अलग पहचान देती है। अंग्रेजी भाषा देश में पावर और रूतबे का प्रतीक है। 'इंग्लिश सिस्टम' सांस्कृतिक जगत का भाग "कोई ऐरा गैरा नत्थू खैरा नहीं हो सकता है"। इंग्लिश सिस्टम का भाग बनने के लिए व्यक्ति का मैकालीकरण होने की शर्त अनिवार्य है। जब तक संपूर्ण सांस्कृतिक परवरिश 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' में न हो तब तक उस व्यक्ति की भाषा परिष्कृत अंग्रेजी नहीं हो सकती है। कोर्ट में चलने वाली कार्यवाही आम आदमी की समझ के बाहर

ही होती है। अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में अनुवादित कानून की पुस्तकों की भाषा इतनी क्लिष्ट होती है कि लगता है ये या तो गीता की तरह भगवान के पावन वचन हो या ये भी कुरान की आयतों की तरह, किसी और ही दुनियां से छप कर आयी हो। शायद कार्यवाही उनकी अपनी भाषा में होती तो वे खुद भी पैरवी कर सकते थे। पर चूंकि कार्यवाही की भाषा ही उनके समझ के बाहर है, अतः वे मुकदमा लड़ने के नाम पर सिर्फ वकीलों को “भेट-अशर्फी” चढ़ाने के सिवा कुछ और नहीं कर सकते हैं। आम आदमी कोर्ट से बचना ही चाहता है। पर फंस जाए तो उसके पास वकीलों के सामने ब्लैंक पेपर (सादे कागज) पर हस्ताक्षर करने के सिवा कुछ भी शेष नहीं बचता है। क्योंकि शेष कार्यवाही उसके समझ के बाहर ही होती है। अब आप समझ ही सकते हैं कि सुप्रीम कोर्ट में प्रैक्टिस करने वाले वकीलों की एक एक घंटे की फीस लाखों में क्यों होती है। एक लोअर कोर्ट में प्रैक्टिस करने वाले वकील के अनुसार “साधारण हिंदी मीडियम से पढ़ा-लिखा वकील तो लोअर कोर्ट में ही प्रैक्टिस कर सकता है। सुप्रीम कोर्ट में प्रैक्टिस करने के लिए फ्लूएंट इंग्लिश आनी चाहिए। जब तक इंग्लिश मजबूत न हो आप सुप्रीम कोर्ट में कदम नहीं रख सकते हो।” भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद अंततः फ्लूएंट इंग्लिश बोलने और लिख सकने वालों को ही विशेष ज्ञानी के रूप में स्थापित करता है। जब ‘फ्लूएंट इंग्लिश’ बोलने वाला व्यक्ति ही ज्ञानी है, औहदे वाला है, सत्तावान है तो वह भ्रष्ट क्यों न हो? अंग्रेजी के डर से डरे दुबके लोगों का वह शोषण क्यों न करे? गैर बराबरी को पैदा करने का काम समानता की बात करने वाला भारतीय संविधान करता है। सत्ता का चंद हाथों में केन्द्रण सिर्फ व्यक्ति नहीं संस्थाओं को भी भ्रष्ट बनाता है। सत्ता छोटे से ‘फ्लूएंट इंग्लिश’

बोलने वाले वर्ग के पास है। जो मुश्किल से 50 लाख की आबादी भी पार नहीं कर पाता होगा। (शायद 50 लाख कुछ ज्यादा ही लिखा गया है।) इस वर्ग को 'फ्लूएंट इंग्लिश' की सत्ता भ्रष्ट आचरण और शोषण को बनाए रखने का पूरा-पूरा अधिकार देती है। अपवाद होते हैं। पर उन अपवादों के सहारे सिस्टम नहीं चलता है। अतः इंग्लिश मीडियम सिस्टम को तोड़े बिना भ्रष्टाचार, शोषण और गैरबराबरी के सिस्टम को तोड़ा नहीं जा सकता है। इंग्लिश की दीवार सत्ताधारी वर्ग की गतिविधियों पर पर्दा डालने का ही काम करती है। अतः भ्रष्टाचार और इंग्लिश मीडियम सिस्टम में चोली-दामन का संबंध है।

यह इंग्लिश मीडियम सिस्टम गैर बराबरी को भी पुख्ता करता जाता है। जैसा कि निम्नस्तर के माने जाने वाले अंग्रेजी माध्यम स्कूल के प्राचार्यों ने भी इस बात की पुष्टि की, कि उनके स्कूलों में तेजी से ग्रामीण इलाकों तथा निम्न एवं निम्न माध्यम वर्ग के लोग अपने बच्चों का दाखिला करा रहे हैं। वही दिल्ली के स्लम के बच्चों को एलीट क्लास जैसी शिक्षा देने की प्रतिबद्धता के साथ खुले गुड स्मार्टन इंग्लिश मीडियम स्कूल में नवीं कक्षा के बाद फेल होने वाले विद्यार्थियों में अधिकतर विद्यार्थी स्लम के ही हैं। जी हाँ! ग्रामीण, कस्बाई, निम्न मध्यमवर्गी विद्यार्थी में अधिकतर विद्यार्थियों को "सिर्फ स्कूल नहीं खतरा शिक्षा व्यवस्था" सिस्टम से आउट कर देती है। जहां प्रतिष्ठित अथवा "हाई-फाई" कहलाने वाले निजी स्कूल में वे ही माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ा सकते हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न हो। वही मध्य स्तर के निजी इंग्लिश मीडियम स्कूलों ने निम्न मध्यम वर्ग के बच्चों को

समेट रखा है। इस प्रकार जितने वर्ग उतने ही प्रकार के स्कूल अर्थात् हर वर्ग की अपनी आर्थिक हैसियत के हिसाब से स्कूल। जब स्कूल वालों से पूछा कि जब शिक्षा शास्त्र के सभी सिद्धान्त परिवेश की भाषा की वकालत करते हैं तो आप अपने स्कूलों में परिवेश की क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग क्यों नहीं करते हैं। इस पर उनका सीधा सा जबाब था, “स्कूल में ताला लगवा दें क्या?” जब शासन-प्रशासन, न्याय, उच्च शिक्षा व्यवस्था, पूंजीव्यवस्था सब तरफ अंग्रेजी भाषा स्थापित रहेगी तो ऐसी स्थिति में स्कूली व्यवस्था परिवेश की बोली-भाषा में कैसे चल सकती है। स्कूलों का अंग्रेजी माध्यमीकरण व्यवस्था न भी करे तो लोग कर देंगे। ऐसा ही एक वाद 1993 से सुप्रीम कोर्ट में चल रहा है, जिसमें कर्नाटक की सरकार चाहती है कि निजी स्कूलों में भी प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा अर्थात् परिवेश की भाषा में हो। सरकार संविधान की धारा 350A का हवाला भी देती है। जबकि निजी स्कूल एसोसिएशन चाहता है कि उन्हें इंग्लिश मीडियम में स्कूलों को चलाने की इजाजत दी जाए। उसके अनुसार यह लोगों का अधिकार हो, वे तय कर सके कि उनके बच्चे किस भाषा माध्यम में अध्ययन करें। वे मौलिक अधिकारों का हवाला देते हैं। निजी क्षेत्र बिना लाभ की संभावना के कोई कदम नहीं उठाता है। इस स्कूलिंग बिजनेस में मांग के विश्लेषण के पश्चात ही वह कूदता है। निजी स्कूलों की पूरी मांग इंग्लिश मीडियम की बैसाखी पर टिकी है। अर्थात् इस वाकिये से भी स्पष्ट हो जाता है कि इंग्लिश का क्रेज किस तरह लोगों पर हावी है। पर सच्चाई एक और भी है जो हमने शैक्षिक विश्लेषण के दौरान पाया कि भाषा सीखने के लिए परिवेश की आवश्यकता होती है। सिर्फ स्कूल की बदौलत भाषा नहीं सीखी जा सकती है। आर्थिक रूप से संपन्न माता-पिता

किसी तरह अपने धन के बल पर बेशक कृत्रिम परिवेश उपलब्ध करवा सकते हो। पर गरीब व्यक्ति झूठी उम्मीद ही ढोता रहता है। इस विशेष माध्यमी व्यवस्था में अधिकतर ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्र और निम्न एवं निम्न मध्यम वर्ग के विद्यार्थी ढेर ही होते हैं। यह इंग्लिश मीडियम शिक्षा व्यवस्था सिर्फ ऊपर के तबके को ही मौका देती है। उच्च शिक्षा तक सिर्फ उच्च वर्ग की ही पकड़ रहती है। और वही फिर उच्च माने जाने वाले औहदों तक पहुँच पाती है। एक ऐसा वर्ग सिस्टम के शीर्ष पर सवार होता है जिसकी परवरिश परिवेश से काट कर की गयी है। वह आम स्कूलों में नहीं पढ़ा वह खास स्कूलों में पढ़ा है। वह सरकारी स्कूल के बच्चों की तरह बस के पायदानों पर सफर कर स्कूल नहीं पहुँचा, वह तो ए.सी बसों में सफर कर के वहाँ तक पहुँचा है। ऐसी बसें, जिसमें बैठने के बाद न तो बाहर धूप गर्मी ही अंदर आ सकती है न ही दबे कुचले लोगों की चीख-पुकार। यदि हमारा एजुकेशन सिस्टम (शिक्षा व्यवस्था) सिर्फ ऐसे लोगों को मौका देता जो जमीनी हकीकतों से कटे रहे हैं। और जब ये जमीनी हकीकतों से कटे लोग सर्वोच्च सत्ता सिस्टम पर सवार होते हैं, तो उस सिस्टम की नीतियाँ दबे कुचले लोगों के उद्धार के लिए कैसे बन सकती है? उनके सारे कामकाज अपने इंग्लिश मीडियम सिस्टम को बचाए रखने के लिए होंगे। चलिए जरा हम फिर से संवैधानिक संदर्भों को लेते हैं।

संविधान के अनुच्छेद 126, 127, 223, 224, 233 में सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट के जजों की नियुक्ति का वर्णन है। अनुच्छेद 16 के अनुसार इन नियुक्तियाँ पर अवसर की समानता का सिद्धान्त भी लागू होता है। नियुक्तियाँ भी राजनैतिक आधार पर नहीं शैक्षिक और अनुभव के आधार पर की जाती हैं। हर भारतीय नागरिक को, जिसे कानून का ज्ञान है और पर्याप्त अनुभव रखता है, वह इन पदों तक पहुँच सकता है। अतः इन पदों तक पहुँचने का समान अवसर दिया जाता है। परन्तु अब संविधान की धारा 348 को नियुक्तियों से जोड़ते हैं। इस धारा के अनुसार सुप्रीम कोर्ट की अधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। तो बिना अंग्रेजी भाषा में पारंगत व्यक्ति, चाहे उसे कानून का कितना भी ज्ञान हो, क्या इन पदों तक पहुँच सकता है ?



हिंदी नहीं अब हिन्दुस्तानी - तमिल तेलगु हो या संथाली भाषी - हर जन भाषी की एक कहानी-

‘इंग्लिश मीडियम’, दैट इज ‘अंग्रेजी राज’

-‘भ्रष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’-

यह एक बड़ा प्रश्नचिन्ह है। अंग्रेजी की अनिवार्यता निम्न, निम्न मध्यमवर्गीय, गरीब-ग्रामीण परिवेश में पले बढ़े व्यक्ति को सिस्टम से आउट करती है। इस परिवेश का व्यक्ति कभी ख्वाब में भी ऐसे सर्वोच्च पदों की कल्पना नहीं कर सकता है। अंग्रेजी का

उपबंध गैर अंग्रेजी भाषी को सर्वोच्च न्यायालय से बाहर करता है और अपने सिस्टम को ऊपर के 5% अंग्रेजी भाषी लोगों के लिए खोलता है। जब सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की व्यवस्था अंग्रेजी केन्द्रित है तो कानून की शिक्षा देने वाले श्रेष्ठ संस्थान आम लोगों की भाषा में कानून की पढ़ाई कैसे करवा सकते हैं। “छुट भैया कॉलेज” बेशक क्षेत्रीय माध्यमों में चलते हो पर कानून की शिक्षा देने वाले श्रेष्ठ संस्थान इंग्लिश मीडियम ही है। यही हाल समस्त सिस्टम का है। मेडिकल की पढ़ाई इंग्लिश मीडियम में होने से डॉक्टरी की शिक्षा अंग्रेजी भाषी मध्यम वर्ग तक सिमटती है। यूपीएससी ने सिविल सर्विस की परीक्षा के तरीके को बदलकर हिन्दी माध्यम तथा क्षेत्रीय माध्यमों से आने वाले अभ्यर्थियों के लिए एक झटके में दरवाजा खोल दिया है। स्वतंत्रता के बाद भी ये परीक्षाएं अब तक अंग्रेजी में ही ली जाती थी। यूपीएससी की अधिकतर परीक्षाएं अंग्रेजी में ही होती हैं। पर लम्बे आन्दोलनों के बाद सिविल सर्विस की परीक्षा को हिन्दुस्तानी माध्यम से लेने की व्यवस्था की गयी। यूपीएससी सिविल सेवा के प्रश्न-पत्र को सभी हिन्दुस्तानी भाषाओं में तो नहीं, पर मानक अनुवाद की हिन्दी के लिए दरवाजा खोलने को विवश हुआ। नतीजा क्या निकला? सिविल सेवा में तेजी से हिन्दी बैल्ट के ग्रामीण परिवेश के अभ्यर्थियों का प्रवेश बढ़ा। सोचिए यदि तमाम भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों के लिए ये दरवाजे खुल जाते तो क्या होता ?!! हिन्दी माध्यम से बढ़ता परिवेश इंग्लिश मीडियम सिस्टम के लिए चिन्ता का कारण थी। इसको रोकने के लिए यूपीएससी को कुछ विशेष करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सिर्फ 15 अंक का अंग्रेजी के प्रश्न प्रश्नपत्र डाले। अभ्यर्थियों का इसके आगे कहना है कि प्रश्नों का अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद भी ढंग से

नहीं होता है। वह कुछ इस प्रकार का गूगल अनुवाद होता है कि उस अनुवाद से आसान अंग्रेजी में छपा भाग ही लगता है। भ्रम की स्थिति में अंग्रेजी में छपे प्रश्न को ही ठीक माना जाता है। अभ्यर्थियों का आगे कहना है कि सिविल सेवा अभिवृत्ति परीक्षा(CSAT) के नाम पर जो नयी व्यवस्था IIM-CAT की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर की गयी है। IIM-CAT में पहले ही इंग्लिश माध्यम वाले उच्च मध्यमवर्गी विद्यार्थियों का ही दबदबा रहा है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम आरक्षण की ऐसी व्यवस्था है जो साधन संपन्न लोगों को तो अधिक अवसर उपलब्ध कराती है और साधनहीन को सिस्टम से बाहर करती जाती है। इस प्रकार सत्ता को चंद हाथों अर्थात् एक छोटे से वर्ग तक ही समेटे रखती है। अतः इस वाक्ये से भी स्पष्ट होता कि इंग्लिश मीडियम सिस्टम गैर बराबरी ओर भ्रष्टाचार शोषण का वाहक है।

आईये, इंग्लिश मीडियम सिस्टम और शोषण की व्यवस्था की व्यवस्था के संबंध को देखे। चलिए विचार करते हैं। शोध के दौरान एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा, “जब काम के दौरान हमें अंग्रेजी की कोई खास जरूरत नहीं पड़ती, तो ये कम्पनी वाले इंटरव्यू में अंग्रेजी पर इतना जोर क्यों देते हैं। Introduce yourself. यहां तक की अपना परिचय भी अंग्रेजी में रटना पड़ता है।” यह तो महज एक वाक्या है। कम्पनी का मालिक खुद अंग्रेजी में पारंगत हो या न हो। काम के दौरान कहीं अंग्रेजी जरूरत पड़ती हो या न हो। पर उसकी कोशिश रहेगी कि कम्पनी में नौकरी की अभिलाषा से आने वाले नवागंतुकों को अंग्रेजी के तराजू पर ही तौला जाए

। समान काम के लिए एक व्यक्ति जो अंग्रेजी जानता है उसको अधिक और जो अंग्रेजी कम जानता अथवा नहीं जानता है उसको कम तनखाह मिलती है। निजी स्कूलों में तो यह आलम है कि अंग्रेजी के शिक्षक को संस्कृत, हिन्दी के शिक्षक से अधिक वेतन पाता है। स्कूल के सभी महत्वपूर्ण पदों पर उसको ही रखा जाता है। खैर ये तो हुई स्कूलों की बात, शायद व्यवस्था के अनुरूप स्कूलों का मार्केटिंग स्टैंड रहा हो। पर जैसा कि हम देखते हैं कि इंग्लिश मीडियम औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की वजह से समाज का एक बड़ा तबका शिक्षा व्यवस्था से बाहर होते जाता है। ये देश की कुल आबादी का 85-90% के बराबर है। चूंकि इस बड़े तबके को अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है अतः वह देश की मुख्य धारा से भी कटा हुआ है। अब आप सोचिए, इस देश की 90% के लगभग आबादी मार्जिनलाईज्ड है अर्थात् हाशिए पर है। जिसके लिए इस देश के कानून कोई अर्थ नहीं रखते, नीतियाँ कोई मायने नहीं रखती। हर कोई अपने-अपने हिसाब से चपत लगाता जाता है। पुलिस और कोर्ट-कचहरी के चक्कर में पड जाए, तो पुलिस और वकील मिलकर ही उसके कपड़े उतार देते हैं। क्योंकि अंग्रेजी भाषा में लिखा कानून उसकी समझ के बाहर का विषय है। और संस्कृतनिष्ठ और फारसीनिष्ठ जो अनुवाद है, वह उसके आम बोलचाल की भाषा से कहीं मैच नहीं खाता है। ले देकर उस व्यक्ति के पास पुलिस और वकील के सामने कोरे कागज पर हस्ताक्षर करने के सिवा कुछ शेष नहीं बचता। तथ्यरी कानून, तथ्यरी मजदूरों की समझ से बाहर है। न ही घरेलू मजदूरों को ही अपने अधिकारों का ज्ञान है। वह तो हमेशा डरा सहमा रहता है कि वह किसी लफड़े में न फंस जाए। और ऐसी स्थिति में उसे कण्ट्रोल अर्थात् नियंत्रित करना बड़ा ही आसान है। कम्पनियों के

मालिक वर्ग मनचाही शर्तें मजदूर वर्ग पर थोपता रहता है और मजदूर ज्ञान के अभाव में चुपचाप उसे मानता रहता है। फरीदाबाद में मजदूरों के बीच काम करने वाले एक मजदूर संगठन की मांग है कि श्रम कानूनों को तथ्यरियों में लागू करो। बड़ी अटपटी सी मांग लगती है। देश का श्रम कानून ही इस देश की फैक्ट्रियों में लागू नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र बड़े धडल्ले से कानून की परवाह किए बिना इस देश की जीडीपी को बढ़ाने में लगा हुआ है। इससे बड़ा मजाक इस देश की कानून व्यवस्था का क्या होगा। अब आप कहेंगे कि इसका इंग्लिश मीडियम व्यवस्था के साथ क्या संबंध है। चूंकि मजदूर वर्ग के विद्यार्थी अंग्रेजी के बैरिगेटर को पार कर नहीं पाते। वे अंग्रेजी की पहली दहलीज पर ही लुढ़क जाते हैं। जो इंग्लिश मीडियम कल्चर के उच्च एवं मध्यमवर्गीय लोग अंग्रेजी के बैरिगेटर को पार कर के ऐसी संस्थाओं में पहुंचते हैं जिनकी जिम्मेदारी कानूनों को बनवाने और लागू करवाने की होती है, वे मजदूरों के प्रति संवेदनशील नहीं होते हैं। कानून बनवाने वाले नेता बेशक वोट गरीब, मजदूर, किसानों से लेते हों पर उनकी खुद की उठ-बैठ पूंजीपति वर्ग के साथ ही है। ठीक उसी प्रकार जिस अफसर को श्रम कानून को लागू कराने की जिम्मेदारी होती है। उसका मजदूर वर्ग से कोई सरोकार नहीं होता। वह भी अपने कैरियर ग्राफ को उठाने के लिए मजदूरों से ज्यादा तथ्यरी मालिकों से सरोकार रखता है। मजदूर जिसकी समझ से कानून भी बाहर होता है और कानून को लागू करवाने वाले भी। अंग्रेजी के ज्ञान से अनभिज्ञ मजदूर आँख मुंदकर यूनियनों पर भरोसा करता है। और मजदूर यूनियन वाले भी मजदूरों की अज्ञानता से फायदा उठाने से नहीं चूकते हैं। वे हक की लड़ाई तो मजदूरों की लड़ते हैं, लेकिन बाद में वे तथ्यरी मालिकों से मिल जाते हैं। यूनियनों

की स्थिति तो ये हो गयी है कि अधिकतर यूनियन मालिकों के ऐजेंट के रूप में तब्दील हो चुकी हैं। सीधी सी बात है, ज्ञान के अभाव का हर एक फायदा उठाता है और जब तक ज्ञान परिष्कृत भाषा में उपलब्ध रहेगा, समाज का एक बड़ा वर्ग अज्ञानता के अंधेरे में रहेगा। इंग्लिश मीडियम सिस्टम ज्ञान को एक सीमित वर्ग तक ही रखने का काम करता है। ज्ञान का संस्कृतनिष्ठकरण एवं फारसीनिष्ठकरण बची-खुची संभावना को खत्म कर देती है। अज्ञानता के अंधेरे में डूबे समाज का शोषण आसान है। अतः इंटरव्यू के दौरान जब इंटरव्यू लेने वाला अभ्यर्थी को Introduce yourself कहता है और आपसे अपेक्षा रखता है कि आप अपना परिचय अंग्रेजी में ही दे तो वह शोषण के तंत्र को आरोपिक कर रहा होता है। उसे मालूम है कि अंग्रेजी उसके शोषण के तंत्र को चिरस्थायी बनाए रख सकती है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम का जमा पानी भ्रष्टाचार की सड़ांध पैदा करता है अपितु गैर बराबरी की दीवार को मजबूत करते जाता है। इंग्लिश मीडियम की बदौलत पैदा भ्रष्टाचार और गैरबराबरी शोषण तंत्र को स्थायित्व प्रदान करने का काम करती है। अतः इंग्लिश मीडियम सिस्टम भ्रष्टाचार, गैरबराबरी को पुख्ता करने की व्यवस्था है।

Part Time **TEACHER CUM
OFFICE COORDINATOR**
Required Female teacher
cum office coordinator for
half day at a newly
established day care cum
creche in **Mayur Vihar-1
East Delhi**. Fluency in
English is must. Prior
knowledge of art & craft will
be appreciated.
Salary negotiable.
Contact : 9810163316

'इंग्लिश
मीडियम
सिस्टम'
दैट
इज
'अंग्रेजी राज'

शिक्षाविद् मातृभाषा में प्रारंभिक
शिक्षा की वकालत करते हैं। पर
यहाँ तो क्रेच तक इंग्लिश
मीडियम खुलते हैं। प्रारंभिक
औपचारिक शिक्षा तो दूर की बात
है। कृपया क्रेच के शिक्षक की
क्वालिफिकेशन पर गौर करें.....

अध्याय-32

अंतिम पंक्ति

जब तक जन भाषाओं का प्रयोग शासन, प्रशासन तथा उच्च शिक्षा के श्रेष्ठ माने जाने वाले संस्थानों में नहीं होगा, तब तक स्कूली शिक्षा का माध्यम सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप भी नहीं होगा। अतः बेहतर यह होगा की स्कूली शिक्षण को सुधारने के बजाए उच्च शिक्षण के तथाकथित सर्वश्रेष्ठ संस्थानों, नौकरियों एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं की परीक्षाओं का आयोजन करने वाली एजेंसियों जैसे यूपीएससी, एसएससी, राज्य-पीसीएस, IIM-CAT आदि इसके अतिरिक्त सत्ता के तमाम दूसरे केन्द्र जैसे सम्पूर्ण विधायिका, कार्यपालिका, सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय के ढाँचे में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किए जाने की जरूरत है। जब तक इन संस्थाओं के ढाँचे को संस्कृति की भाषा (क्षेत्रीय भाषाओं) के अनुरूप नहीं बनाया जायेगा, तब तक लोग उच्च शिक्षा के माध्यम से बेहतर भविष्य की तलाश की आस में अंग्रेजी माध्यम

वाले स्कूलों की तरफ भागते ही रहेंगे। अतः प्राथमिक शिक्षा की भाषा को परिवेश के अनुकूल बनाने की जरूरत नहीं है। जरूरत इस बात की है कि 'इंग्लिश सिस्टम' अंग्रेजी छोड़े। सारी समस्या की जड़ इंग्लिश मीडियम सिस्टम में है।

सिस्टम की भाषा अंग्रेजी है, इसलिए लोग इंग्लिश के पीछे भाग रहे हैं। जिस दिन इंग्लिश सिस्टम खत्म हो जाएगा। उस दिन इंग्लिश मीडियम नर्सरी स्कूलों के दाखिला फार्म खरीदने की मारकाट भी खत्म हो जाएगी। पर जैसा कि अनुसन्धान के विश्लेषण में भी पाया कि भाषा सीखने के लिए चेतन ही नहीं अवचेतन संस्कृति सन्दर्भों की जरूरत होती है। भाषा मूलतः परिवेश में प्रयोग की बदौलत ही आती है। अतः किसी परिवेश विशेष में जाकर उस परिवेश की भाषा को सीखना सहज है। वही बिना परिवेश के सिर्फ स्कूली वातावरण में सीखना कठिन ही नहीं कष्टदायक भी है। कुछ शब्दों को रट सकते हैं, ग्रामर के नियमों को घोट सकते हैं पर बिना परिवेश के भाषा को आत्मसात करना असंभव ही है। स्कूल एवं कॉलेज जाने वाले वाले अधिकतर विद्यार्थियों की अधिकांश ऊर्जा सिर्फ अंग्रेजी रटने में ही लग जाती है। यह सीखने-सिखाने की संपूर्ण प्रक्रिया को ही अरुचिकर बना देती है। अंग्रेजी माध्यम वाली वर्चस्व पूर्ण व्यवस्था में जब बच्चे की समस्त ऊर्जा ही अंग्रेजी में लिखे पाठ्यक्रम को रटने में ही खत्म हो जाती है। तो उनके पास रचनात्मक करने को क्या रह जाता है। अंग्रेजी भाषा के अवचेतन सन्दर्भों के अभाव में अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले विद्यार्थी शिक्षा के नाम पर पुस्तक में छपे तथ्यों को तोतों की तरह रटने भर का काम करते हैं। वे रटने को ही समझना

समझते हैं। इस प्रकार NCF 2005 का शिक्षा को बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक बनाने का प्रयास सामाजिक पृष्ठभूमि के बाल केन्द्रित ना होने की वजह से धरा का धरा ही रह जाता है। जन सामान्य के सांस्कृतिक परिवेश में अंग्रेजी भाषा के अवचेतन सन्दर्भों का अभाव कभी परिवेश के बाहर की भाषा में उन्हें सहज होने ही नहीं देता। परिणाम ग्रामीण जन एवं निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के क्षेत्रीय बोली बोलने वाले लोग 'सांस्कृतिक हीनता' के शिकार होकर अंग्रेजी भाषा बोलने की योग्यता को ही शिक्षित होने का चिन्ह मान लेते हैं। अंग्रेजी की पुस्तकों के गूढ़ ज्ञान को समझ से परे पाते हुए जन सामान्य अर्हता को ही शिक्षा और अंक को उस शिक्षा की गुणवत्ता मापने का पैमाना मान लेता है। यह स्थिति "शिक्षा का भ्रम" पैदा करती है और लोग अंग्रेजी-भाषी बनने को ही शिक्षित होने का लक्ष्य समझ लेते हैं। आम आदमी की अभिजात्य वर्ग अर्थात् समाज की "सामाजिक पूंजी" में शामिल होने की अभिलाषा उन्हें इंग्लिश मीडियम कल्चर के अनुरूप ढलने को प्रेरित करती है। चूंकि एक आमआदमी अर्थात् जन सामान्य के लिए शिक्षा ही एक मात्र साधन है जिससे वह अपनी तकदीर बदल सकता है। और जब वह देखता है उच्च शिक्षा के श्रेष्ठ माने जाने वाले विश्वविद्यालयों, आईआईटी, आईआईएम जैसे संस्थानों और नौकरियों की परीक्षा का आयोजन करने वाली तमाम एजेंसियों जैसे यूपीएससी आदि में अंग्रेजी माध्यम का ही वर्चस्व है। उच्च और प्रतिष्ठित पदों पर बैठे प्रोफेसर, जज, सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट के वकीलों, नौकरशाहों तथा उच्च अधिकारियों के द्वारा अंग्रेजी का प्रयोग एक "भाषाई- वर्चस्व" को पैदा करता है। ये भाषाई वर्चस्व इस अल्प परन्तु शक्तिशाली वर्ग की "सांस्कृतिक पूंजी" को संरक्षण प्रदान

करने का काम करता है। इस प्रकार 'इंग्लिश मीडियम कल्चर' अर्थात् 'भाषाई(अंग्रेजी) सांस्कृतिक पूंजी' आर्थिक पूंजी को छोटे से वर्ग तक ही समेटे रखने का कारगर हथियार है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम और इंग्लिश मीडियम एजुकेशन का चेतन एवं अवचेतन दबाव इंग्लिश मीडियम कल्चर (अंग्रेजी माध्यमिय संस्कृति) के अनुरूप सांस्कृतिकरण करने का दृश्य और अदृश्य दबाव बनाता है। शीर्ष का अंग्रेजी भाषी यह छोटा सा वर्ग ही एक सिस्टम बनाता है जिसे हम इंग्लिश मीडियम सिस्टम कह सकते हैं। इस सिस्टम में हर विचारधारा का शीर्ष नेतृत्व है। यह सिस्टम ही अर्थव्यवस्था की शर्तों को तय करने का काम करता है। अतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से रूपांतरित होकर ज्ञान आधारित(सेवा एवं विनिर्माण) अर्थव्यवस्था में रूपांतरित होने के साथ मानव पूंजी की भूमिका तो बढ़ी है। पर मानव पूंजी को तैयार करने की प्रक्रिया पर इस इंग्लिश मीडियम सिस्टम का ही नियंत्रण रहता है। यह सिस्टम ही ज्ञान, कौशल, योग्यता की परिभाषाओं को गढ़ने का काम कर रहा होता है। सुरक्षित माने जाने वाले संगठित क्षेत्र के श्रेष्ठ पदों तक पहुंचने हेतु उच्च शिक्षा की जरूरत है और "बी ए-ती ए" को छोड़ दें तो मेडिकल, इंजीनियरिंग, एमबीए, सीए, जैसे प्रोफेशनल विषय ही नहीं विज्ञान, सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों की शिक्षा भी देश के सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले संस्थानों में सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी में ही उपलब्ध है। निजी ही नहीं सरकारी नौकरियों की परीक्षाओं तथा साक्षात्कार के लिए भी अंग्रेजी ही अनिवार्य है। जिस वकील को अंग्रेजी नहीं आती वह तो सुप्रीम कोर्ट में खड़े होने का सोच भी नहीं सकता है। अब चूंकि श्रेष्ठ माने जाने वाले पदों (निजी हो या सरकारी) के लिए उच्च शिक्षा जरूरी है और उच्च शिक्षा चूंकि सिर्फ और सिर्फ

अंग्रेजी में ही उपलब्ध है। जनसामान्य की एक पीढ़ी को उच्च शिक्षा और नौकरियों की परीक्षा में अंग्रेजी के वर्चस्व को लेकर कटु अनुभव भी हासिल हो चुके हैं। बच्चे भी अपने बड़े भाई बहनों, सहोदरों से यह ज्ञान हासिल कर ही लेते हैं कि 'उच्च शिक्षा के मंदिर' में बिना "अंग्रेजी देवी" के आशीर्वाद के बिना कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। अतः वे रटते हैं, पर इंग्लिश में ही पढ़ते हैं। उच्च ओहदों तक पहुंचने की अभिलाषा समाज के चलने के लिए 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' एक पगडंडी तैयार कर देता है। लोग उस पगडंडी पर निकल पड़ते हैं। परिणाम शायद कोई विरला ही इस रास्ते पर चल कर सफलता की मंजिल तक पहुँच पाता हो। शेष रास्ते में ही ढेर होते जाते हैं। जो विरला इस रास्ते से सफल होता है वह शेष जन के लिए आदर्श बन जाता है। फलस्वरूप बिना रास्ते की हकीकत जाने लोग परवानों की तरह मंजिल की तरफ बढ़ निकलते हैं। इस प्रकार यह क्रम जनून की तरह बढ़ता ही जाता है। इससे यह बात और स्पष्ट होती उच्च शिक्षा ही नहीं समाज के मुख्य केन्द्रों पर अंग्रेजी भाषी लोगों का वर्चस्व ही, इस जनून के पीछे की हकीकत है। इस जनूनी दौड़ में गैर अंग्रेजी परिवेश के ग्रामीण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय परिवेश के लोगों का पिछड़ना तो तय ही है। इस प्रकार समाज की "मानवीय पूंजी" अंग्रेजी भाषी वर्ग तक ही सीमित रह जाती है। जो पुनः 'सामाजिक-सांस्कृतिक पूंजी' को छोटे से अंग्रेजी भाषी वर्ग तक समेटे रखती है। अर्थव्यवस्था के ज्ञान आधारित होने की वजह से सेवा तथा उद्योग के श्रेष्ठ पदों पर इस छोटे से वर्ग का वर्चस्व बना रखता है। शेष जन के लिए इनका तौर तरीका भाषा ही आदर्श होती है। उस तौर तरीके और आदर्श में ढल कर वे भी उस पदों तक पहुँचने की अभिलाषा रखते हैं। यह वर्चस्व अंग्रेजी

नहीं अंग्रेजियत के अनुरूप संस्कृतिकरण को गति देता है। इस मोह से ग्रस्त लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों की कैद में डालने के लिए विवश है।

अतः शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाने से पूर्व व्यवस्था को जन अर्थात् आम आदमी केन्द्रित बनाना पड़ेगा। जब तक समाज और राजव्यवस्था के मुख्य केन्द्रों पर छोटे से अंग्रेजी भाषियों का वर्चस्व को तोड़ा नहीं जाता, तब तक व्यवस्था जन केन्द्रित नहीं होगी। और जब तक उच्च शिक्षा, प्रशासन, देश के हर प्रकार के न्यायालयों एवं नौकरियों के चयन में क्षेत्रीय बोलियों/जन भाषाओं का प्रयोग नहीं होता, तब तक स्कूल की शिक्षा परिवेश की संस्कृति बोलियों के अनुरूप नहीं हो सकती। समाज का अधिकतर लोग बीच में ही ढेर हो जाएंगे और शीर्ष बिन्दुओं पर अंग्रेजी भाषियों का नियंत्रण रहेगा। वे ही समाज संचालन की समस्त शर्तों को तय करते रहेंगे।

अतः अंग्रेजी भाषी व्यवस्था गैर बराबरी को बनाए रखने का हथियार है और सत्ता को छोटे से सीमित वर्ग तक समेटे रखने का काम करती है। चूंकि सत्ता सीमित वर्ग तक सिमटी रहती है। अतः उसका भ्रष्ट होना लाजिम है।... और इंग्लिश मीडियम कल्चर आर्थिक पूंजी को चंद हाथों तक समेटे रखने का भी काम करती है। और इस प्रकार इंग्लिश मीडियम खुद दमनकारी साधन है। अतः यह शोषण के तंत्र को पुरख्ता करने का काम करती है।

पर स्कूली विद्यार्थियों की शिक्षा पर 'इंग्लिश मीडियम राजसत्ता' के बोझ पर यशपाल कमेटी मौन है। चूंकि यशपाल कमेटी इन बिन्दुओं पर मौन है, अतः स्कूली बच्चे ही नहीं समस्त समाज इंग्लिश मीडियम कल्चर के बोझ तले दबा पड़ा है।

एनसीएफ 2005 के शिक्षाविदों को 'इंग्लिश मीडियम राजसत्ता' की सांस्कृतिक दीवार नहीं दिखती। इसलिए बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के लागू होने के बाद भी तोता रटत शिक्षा जारी है।

गैरबराबरी की बहुस्तरीय स्कूली शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ आन्दोलन करने वाले और सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप समान स्कूली शिक्षा के पैरवीकार अनिल सदगोपाल विश्वविद्यालयों और शासन व्यवस्था के गैर बराबरी बनाए रखने वाले इंग्लिश मीडियम सांस्कृतिक पर मौन है। अतः समान स्कूली शिक्षा का आन्दोलन बैक फुट पर है और बहुस्तरीय शिक्षा कायम है।

रमाकांत अग्निहोत्री, अनिल सदगोपाल जैसे शिक्षाविदों के अनुसार स्कूली शिक्षा के लिए मातृभाषा और विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए इंग्लिश मीडियम बेहतर है। पर जनाब स्कूल इंग्लिश मीडियम इसलिए है क्योंकि विश्वविद्यालय, न्यायालय, सचिवालय इंग्लिश मीडियम है।

अश्विनी कुमार
नई दिल्ली
28/05/20114

परम आदरणीय एवं सम्माननीय सर्वोच्च न्यायालय

विषय :- व्यवस्था का बोझ बच्चों के सर पर (System's burden on Children's Head)

पी आई एल(PIL) : Against "English Medium Students Parents.. vs State Of Karnataka on 8 Dec., 1993

Equivalent citations: 1994 AIR 1702, 1994 SCC (1) 550" Judgment

Bench: Mohan, S. (J)

580

'इंग्लिश मीडियम सिस्टम', दैट इज 'अंग्रेजी राज' : 'अष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' की व्यवस्था पर 'सांस्कृतिक ठप्पा' (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN - 978-93-5156-895-7)
लेखक - अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

सादर नमस्कार,

मैं अपनी पुस्तक जिसका शीर्षक है, - 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम', 'दैंट इज 'अंग्रेजी राज': 'भ्रष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' की व्यवस्था पर 'सांस्कृतिक ठप्पा'- की एक प्रति आपको भेज रहा हूँ। यह पुस्तक शोध पर आधारित है तथा गाँधी जी के हिन्दुस्तानी की संकल्पना को समर्पित है। साथ ही यह दलित वंचित सर्वहारा समुदाय को बराबरी पर लाने और देश की एकता और अखंडता को बढ़ाने हेतु भी है।

इस पुस्तक को लिखने से पूर्व किए गये अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि इस देश के सभी भागों अर्थात् उत्तर, दक्षिण पूर्व, पश्चिम, हर कोने के ग्रामीण, कस्बाई, स्लम, निम्न एवं निम्न मध्यम वर्गीय आबादी के समक्ष अंग्रेजी भाषा आधारित सिस्टम एक बाधा के रूप में खड़ा है। भाषा के रूप में अंग्रेजी में अपने आप में कोई बुराई नहीं है। पर व्यवस्था के रूप में अंग्रेजी देश के 95% लोगों को मुख्यधारा से काटे रखने का ही काम करती है। ये व्यवस्था के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व ही है, जिसने लोगों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की तरफ भागने को विवश किया है। लोगों का अंग्रेजी-प्रेम पतंगे और शमा का प्रेम है। शमा के प्रेम में अंधा पतंगा नहीं जानता कि शमा उसे जला देगी। प्रेम में अंधा पतंगा शमा पर लपकता है और जल जाता है। इसी प्रकार लोग भी अंग्रेजी के मोह में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की तरफ भागते हैं और भूल जाते हैं कि अंग्रेजी के वर्चस्व वाली शिक्षा कभी उन्हें आगे बढ़ने नहीं

देगी। परिणाम भी अपेक्षित ही निकलता है। देश के गरीब वर्ग (90%) के 99.9% लोग बीच रास्ते में ही दम तोड़ देते हैं। जो .1% गलती से कामयाब हो जाते हैं वे शेष 99.9% के आदर्श के रूप में स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार देश की 3% अमीर, एलिट आबादी की सत्ता सुरक्षित रहती है।

जी हाँ ! इंग्लिश मीडियम स्कूल ही नहीं होते इंग्लिश मीडियम अदालतें भी होती हैं। इंग्लिश मीडियम संसद के कानून भी होते हैं, पी.एम.ओ. समेत सम्पूर्ण नौकरशाही का ढाँचा इंग्लिश मीडियम है। स्कूल तो बेचारे इसलिए इंग्लिश मीडियम खुलते हैं क्योंकि ये सभी संस्थान इंग्लिश मीडियम हैं। ..और इन सबको पोसने का काम इंग्लिश मीडियम विश्वविद्यालय करते हैं। यही अल्प तंत्र 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' है। यह 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' ही शोषण और गैर-बराबरी के अल्पतांत्रिक-पंगु-पूँजीवादी किले को बनाए रखने वाली सांस्कृतिक दीवार को पुख्ता करने का काम करता है। सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रख कर, यह सिस्टम उस किले के चारों ओर भ्रष्टाचार की सड़ांध वाली दलदली जमीन निर्मित करता है। बिना इस 'इंग्लिश मीडियम तंत्र' को नेस्तनाबूद किए न तो भ्रष्टाचार की गंदगी दूर की जा सकती है और न ही सामाजिक और आर्थिक गैरबराबरी को बनाए रखने वाले किले की दीवार को ही ढहाया जा सकता है। आम जनता की समझ से परे की भाषा का अल्पतंत्र ही आम जनता को भ्रम और असमंजस की स्थिति में रखता है।

अंग्रेजी माध्यम वाली व्यवस्था की वजह से जितनी आत्महत्या उत्तर भारत में हुई उससे कम दक्षिण में नहीं हुई। अंग्रेजी के वर्चस्व वाली व्यवस्था में न तो मौलिक ज्ञान संभव है न ही रचनात्मक चिंतन। अतः अंग्रेजी-वाद के वर्चस्व के

खिलाफ़ भारतीय जन भाषाओं के अधिकार की लड़ाई अखिल भारतीय स्तर पर लड़े जाने की जरूरत है। इसमें तमिल, तेलगू, गुजराती, बंगला, संथाली सभी को एक 'प्लेटफार्म' पर लाने की जरूरत है। जब बैलजियम जैसा छोटे से देश की शासन और शिक्षा व्यवस्था दो भाषाओं में चल सकती है तो भारत का शासनतंत्र (पी.एम.ओ., नौकरशाही, न्यायतंत्र आदि) और शिक्षा व्यवस्था भारत की भाषाओं में क्यों नहीं ???

देखें लिंक <http://www.proz.com/translation-articles/articles/1250/1/The-Linguistic-Conflict-in-Belgium>, http://en.wikipedia.org/wiki/Languages_of_Belgium, [http://en.wikipedia.org/wiki/Belgian_Linguistic_Case_\(No._2\)](http://en.wikipedia.org/wiki/Belgian_Linguistic_Case_(No._2)), <http://en.wikipedia.org/wiki/Belgium>,

लोकतंत्र में शासन में जनता की सह भागिता तभी आ सकती है जब शासन व्यवस्था जन-भाषाओं में हो। यूरोप में लोकतंत्र के विकास के साथ वहाँ की जनभाषाएं शासन प्रशासन और शिक्षा का हिस्सा बनी। यूरोप में मध्य काल के अंध युग के बाद जब पुनर्जागरण काल प्रारंभ होने के साथ जन आन्दोलनों की बदौलत जन भाषाओं की हिस्सेदारी शिक्षा के साथ शासन प्रशासन में भी बढ़ी। जब आम जन ने प्रोटेस्टेंट मूवमेंट के द्वारा न केवल चर्च अपितु सत्ता के अन्य स्तंभों पर भी अपनी दावेदारी ठोकी, तब ही आम जन की भाषा शासन प्रशासन का हिस्सा बन पायी। इसी प्रकार जब जनसाधारण ने ज्ञान की सत्ता पर अपनी दावेदारी ठोकी तब ही आम जन की भाषा शिक्षा का माध्यम भी बन पायी। स्वयं इंग्लैंड में कुलियों की भाषा समझे जाने वाली 'अंग्रेजी' जन आन्दोलनों की बदौलत ही शिक्षा और शासन की भाषा बनी। इससे पूर्व वहाँ सम्भ्रांत तबके को शिक्षा-दीक्षा लेटिन एवं परिष्कृत

फ्रेंच भाषा में ही होती थी। इस प्रकार पुनर्जागरण काल से पूर्व सिर्फ इंग्लैंड में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण यूरोप में लैटिन भाषा का ही दबदबा था। राष्ट्रवादी एवं लोकतांत्रिक आन्दोलनों की बदौलत ही जन भाषाएं स्थापित हो पायी। भारत में कहने के लिए लोकतंत्र है। पर इंग्लिश मीडियम सिस्टम की वजह से शासन प्रशासन के स्तर पर क्या घोल-मेल होता है यह जनता के समझ के बाहर है। जनता न तो मूलतः अंग्रेजी में लिखे कानून को ही समझ पाती है। न ही उसके आधार पर चलने वाली प्रशासनिक प्रक्रिया को ही। शासन प्रशासन में जनता की भूमिका पाँच साल में एक दफे वोट देने के सिवाय कुछ भी नहीं है। जनता एक सरकार से तंग आ कर दूसरे को तो चुन सकती है पर राजव्यवस्था में भागीदारी नहीं कर सकती है। राजव्यवस्था और जनव्यवस्था में गैप बनाये रखने में 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' की अहम भूमिका है। यह सिस्टम ही सत्ता को चंद हाथों तक समेटे रख, भ्रष्टाचार की संस्कृति को पैदा करता है। 90% आबादी को सत्ता से दूर रख गैर बराबरी को कायम रखता है। शोषण को स्थायित्व प्रदान करता है।

अतः भारत को गैर बराबरी, शोषण और भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए भारत की भाषाओं को एक प्लेटफार्म पर लाने की जरूरत है। अंग्रेजीदा वर्ग ने संविधान के अनुच्छेद 343(1) की आड़ में भारत के जन भाषियों को आपस में लड़ा कर अंग्रेजी के माध्यम से राज काज को अंग्रेजीदा वर्ग तक समेटे रखने की चाल चली है। एक तरफ हिन्दी को राज भाषा बनाने के नाम पर हिन्दी का तत्समीकरण कर हिन्दी को कलिष्ट बना दिया। दूसरी तरफ उस तत्सम प्रधान हिन्दी की आड़ में हिन्दुस्तानी बोलने वालों को आपस में लड़ा दिया। कार्टूनिस्ट आर. के. लक्ष्मण का कार्टून गवाह है कि अंग्रेजीदा वर्ग ने ही हिन्दुस्तानी भाषियों को आपस में

लड़ावाया। अंग्रेजी के माध्यम से अंग्रेजी परस्त एलिट तबके ने सत्ता(नौकरशाही, न्याय, ज्ञान, पूंजी) को अपने तक ही सीमित रखा। इसी का परिणाम है कि विश्व ज्ञान क्रम में भारत पिछड़ता रहा है। आज हमारे देश के सभी स्कूल तोते तैयार करने की फैक्ट्रियों में तब्दील हो चुके हैं। कोई भी अभिभावक खुशी से अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम स्कूल में दाखिल नहीं करवाता है। यह तो सिस्टम के साथ 'एडजस्ट' होकर चलने की मजबूरी है, जो उसे ऐसा करने को बाध्य करती है। इंग्लिश मीडियम सिस्टम का प्रभाव ही है कि इंग्लिश बोल पाने की योग्यता को ही लोगों ने भ्रम वस ज्ञान समझ लेते हैं। बच्चे ही नहीं व्यस्कों की मौलिक समझ भी अपनी मातृभाषा (परिवेश की बोली) में ही परिष्कृत होती है। पर यह सिस्टम का ही दबाव है कि लोग अंग्रेजी में रटी-रटाई बात को उगलने को ही ज्ञान समझ बैठते हैं। इंग्लिश मीडियम सिस्टम को बनाए रखने में संविधान की धारा 348, 343(1) &(2) 147 की अहम भूमिका है।

बच्चे की मातृभाषा बच्चे के परिवेश पर निर्भर करती है न कि उसके मजहब, माता-पिता-वंश आदि पर। बच्चा ही नहीं, बड़ा व्यक्ति भी अपने परिवेश की बोली को बड़ी सहजता के साथ अपना लेता है (देखे-अध्याय 15-भाषा एवं संस्कृति को समझने हेतु किये कुछ विशेष अध्ययन, एवं 16- हिन्दुस्तानी – औरंगाबाद शहर में हिन्दुस्तान की मिली जुली संस्कृति का अध्ययन)। संविधान के अनुच्छेद 350Aके तहत बच्चे की मातृबोली (मातृभाषा कहना गलत है) पता लगाने के लिए बच्चे के परिवेश का अवलोकन करने की जरूरत है। पुस्तक के अध्याय-17 'मातृभाषा का अर्थ माँ-बाप की भाषा नहीं होती है' में स्पष्ट किया है कि मातृ-परिवेश की बोली ही मातृ-बोली होती है। मातृ-बोली पूर्ण संगठित परन्तु मिश्रित प्रकृति की मिली जुली भाषा होती है। अतः

इसे किसी भाषा विशेष में विभाजित करके नहीं देखा जा सकता है। माननीय सुप्रीमकोर्ट ने English Medium Students Parents ... vs State Of Karnataka on 8 December, 1993, 1994 AIR1702, 1994 SCC (1) 550 वाद पर जो निर्णय लिया है वह अपने आप में अस्पष्ट एवं दुल-मुल प्रकृति का है। एक तरफ तो सुप्रीमकोर्ट बच्चे के मातृभाषा में शिक्षण की वकालत करती है तो दूसरी तरफ अभिभावकों को शिक्षा का माध्यम चुनने की छूट प्रदान करता है। बच्चे की मातृबोली को न तो अभिभावक तय कर सकता है और न ही राज्य या कोर्ट। अभिभावक जानता है कि उसका बच्चा उसी बोली में सहज है जो उसके परिवेश में बोली जाती है, पर उसके बावजूद वह सिस्टम के दबाव में इंग्लिश मीडियम स्कूल में भेड बकरियों की तरह अपने बच्चे को ठूसता जाता है। यह इंग्लिश मीडियम सिस्टम का दबाव है, जिसकी वजह से अभिभावक इंग्लिश मीडियम स्कूलों को चुन रहा है। अभिभावकों द्वारा मजबूरी में लिए गये निर्णय को उनका मौलिक अधिकार नहीं कहा जा सकता है। अतः इस वाद का निर्णय बेमाना (अर्थ-हीन) है।

मैं आपसे आग्रह करूंगा कि आप अपने कोर्ट/ दफ्तर/ संस्थान/संगठन/ में मुझे अपने अनुसंधान कार्य एवं अध्ययन को प्रस्तुत करने का मौका दें। औपचारिक शिक्षा के संस्थान के रूप में स्कूल और विश्वविद्यालय राजसत्ता की उप व्यवस्था ही है और ये राजसत्ता की जरूरत के अनुरूप सामाजिक स्तरीकरण का काम करते हैं। स्कूल इसलिए इंग्लिश मीडियम हैं क्योंकि राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, तब तक सांस्कृतिक भाषाओं में समान स्कूली व्यवस्था की बात सोचना तक

बेवकूफी है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, बच्चों की सांस्कृतिक परिवेश में बाल केन्द्रित रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र की बात हम भारत के लोगों के साथ बेईमानी और धोखा है। जब तक राजसत्ता इंग्लिश मीडियम है, मातृभाषा(संविधान का अनुच्छेद 350A) में शिक्षा का सार्वभौमिकरण (संविधान का अनुच्छेद 21A) महज़ एक युटोपिया है। अतः जब तक 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' रहेगा तब तक हमारे बच्चों को गधे और तोते बनाने वाले 'इंग्लिश मीडियम स्कूल' भी रहेगे।

अतः विकास में जब तक जन जन की भागीदारी नहीं होगी तब तक भारत में न तो जनतंत्र का कोई अर्थ है और न ही भारत सरकार के विकास के आकड़ों का ही। अतः सहभागी विकास के लिए हिन्दी नहीं मिली-जुली हिन्दुस्तानी भाषा के सिस्टम की जरूरत है। जब तक तमिल, तेलगू, बंगला पंजाबी को एक प्लेटफार्म पर नहीं लाया जाता तब तक भारत का समग्र विकास संभव ही नहीं है। आम भारतीयों के अच्छे दिन तो तब ही आएंगे जब शासन तंत्र इंग्लिश मीडियम को छोड़ जन भाषाओं को अपनाएगा। जब देश का विश्वविद्यालय और शासन का काम-काज जनभाषाओं में होगा तब ही इस देश के बच्चों को लोग मातृबोली व्यवस्था के स्कूलों में पढ़ाना चाहेंगे। स्कूल बच्चे को भाषा सीखाने के बजाए उसकी बोली को अपनाने लगेगा तब ही रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप सीखना-सिखाना संभव हो पाएगा। जब शिक्षण रचनात्मक एवं विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अनुरूप होगा तब ही मौलिक ज्ञान का सृजन होगा और मानसिक गुलामी से मुक्ति संभव हो पाएगी।

आओ! हम भारत के आम जन के अधिकार की लड़ाई लड़े। आओ! हम जन भाषाओं की लड़ाई लड़े। अतः अभिभावकों और आपका

अश्विनी कुमार

Ph. : 9210473599, 9990210469

Email: ashwini.economics@gmail.com , english.medium.angregi.raj@gmail.com

C/o श्री. हुकुम सिंह, मकान न. 472 , पार्ट - I , ए- ब्लॉक , गली न. - 10, पहला पुस्ता,
(आर. डी. (इंग्लिश मीडियम) स्कूल के समीप), नई दिल्ली दिल्ली 110094

इनको भी एक प्रति (प्रिंट) भेजी गयी :-

1) A copy to Supreme Court of India as P.I.L.

पी आई एल(PIL) : Against “English Medium Students Parents.. vs State Of Karnataka on 8 Dec.,
1993 Equivalent citations: 1994 AIR 1702, 1994 SCC (1) 550” Judgment Bench: Mohan, S. (J)

2) A copy to President of India

588

‘इंग्लिश मीडियम सिस्टम’, दैट इज ‘अंग्रेजी राज’ : ‘अष्टाचार’, ‘शोषण’, ‘गैरबराबरी’ की व्यवस्था पर ‘सांस्कृतिक ठप्पा’ (ड्राफ्ट संस्करण - ISBN – 978-93-5156-895-7)
लेखक – अश्विनी कुमार (english.medium.angregi.raj@gmail.com Ph. 9210473599, 09990210469)

- 3) A copy to Prime minister & his cabinet of India
- 4) A copy to Parliament secretary on behalf of all elected MPs
- 5) A copy to all Chief Ministers
- 6) A copy to UGC and all Universities, NCERT, NUEPA, CBSE, States Boards etc.
- 7) A Copy to all leading & struggling Political Parties
- 8) A Copy to all Social organization working in the area
- 9) A Copy to print and electronic press
- 10) A copy to General Public & other

स्कूल व्यवस्था राजसत्ता की उपव्यवस्था है। स्कूली व्यवस्था की प्रकृति वैसी ही होगी, जैसी राज सत्ता की होगी। चूंकि राज सत्ता गैर बराबरी को बनाए रखने वाली 'इंग्लिश मीडियम वर्ग' को पोषित है। अतः स्कूली व्यवस्था भी 'बहुस्तरीय इंग्लिश मीडियम' केन्द्रित है। जब तक राजव्यवस्था गैरबराबरी की 'इंग्लिश मीडियम' प्रकृति की रहेगी, तब तक स्कूली व्यवस्था भी गैरबराबरी की 'इंग्लिश मीडियम' प्रकृति की रहेगी। और जब तक राजसत्ता की तानाशाही 'इंग्लिश मीडियम वर्ग' के हाथ में रहेगी, तब तक 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' का शोषण,

दमन और भ्रष्टाचार भी कायम रहेगा। इंग्लिश मीडियम शिक्षाव्यवस्था स्तरीकरण के हथियार के रूप में 'इंग्लिश मीडियम राजव्यवस्था' के प्रति वफादार लोगों को ही 'इंग्लिश मीडियम सिस्टम' में स्थान देती है। 'इंग्लिश मीडियम राजव्यवस्था' 'इंग्लिश मीडियम शिक्षा' के माध्यम से ही अपने आप को सुरक्षित रखने का घेरा तैयार करती है। 'इंग्लिश मीडियम एजुकेशन' व्यवस्था के दास के रूप में देश की ग्रामीण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय आबादी को मुख्यधारा से दूर रख सत्ता के शीर्ष को उच्चवर्गीय एलीट क्लास के लिए आरक्षित रखता है। यूपीएससी, आईआईटी, एम्स, आईआईएम और तमाम अति विशिष्ट माने जाने

वाले विश्वविद्यालय जैसे – जेएनयू, डीयू., ये सभी के सभी संस्थान अंग्रेजीयत के सामाजिक वर्चस्व का सांस्कृतिक बोध पैदा करने का ही काम करते हैं। अंग्रेजीदां बनने की चाह ने इस देश को अपने मोहपाश में इस कदर जकड़ा रखा है कि समाज का हर तबका अपना सब कुछ दांव पर लगा कर अपनी भाषा का शुद्धिकरण की चाह रखता है। भोजपुरी, मैथली, बांगड़ी बोलने वाले बैकवर्ड कहलाएंगे और दो लाईन अंग्रेजी में गिट-पिटाए नहीं कि मॉडर्न हो जाएंगे। अंग्रेजीदां बन हर कोई गिट-पिटाना चाहता है, पर यह अंग्रेजी ही इस देश की 95 प्रतिशत ग्रामीण, कस्बाई, निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय मेहनतकश तबके को

व्यवस्था से दूर रखने का काम करती है .. और साथ यह ज्ञान, पूंजी, नौकरशाही, राजनीति के शीर्ष को 3 प्रतिशत ऊपरी तबके तक के लिए सुरक्षित भी रखती है। बस यहीं से 'भ्रष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' गड़बड़ झाला शुरू होता है। अंग्रेजीयत ही 'भ्रष्टाचार', 'शोषण', 'गैरबराबरी' के सांस्कृतिकरण करने का काम करती है। अंग्रेजी को सिर्फ भाषा समझना उसकी ताकत को कम कर आंकना है। अंग्रेजी सिर्फ भाषा नहीं भारतीय समाज में वर्चस्व का बोध भी है।

यह महज़ पुस्तक नहीं आन्दोलन का अह्वान है।

भारतीय समाज में अंग्रेजी सिर्फ भाषा नहीं वर्गीय विभाजन को बनाए रखने का व्यवस्था जनित सांस्कृतिक हथियार भी है।

अंग्रेजों के समय से ही भारतीय समाज में अंग्रेजीयत का वर्चस्व अंग्रेजों द्वारा राजसत्ता में सहयोग के लिए पैदा किये के सहभागी दलाल वर्ग का सांस्कृतिक वर्चस्व रहा है। यह वर्ग ही भारतीय समाज में उच्च एलिट वर्ग के रूप में स्थापित हुआ। 200 साल के अंग्रेजों के राज में, यह वर्ग ही सत्ता के हर शीर्ष पर काबीज भी हुआ और सत्ता 1947 में हुए हस्तांतरण के बाद भी शीर्ष पर बना रहा है। अंग्रेजी इस वर्ग का ही भाषा है। अंग्रेजीयत इस वर्ग का ही सांस्कृतिक वर्चस्व भी है।

अंग्रेजी, वर्चस्व के हथियार के रूप में राजनैतिक, आर्थिक एवं ज्ञान की सत्ता को इस देश की 3% आबादी तक समेटे रखती है। अतः यह अंग्रेजीयत का सिस्टम ही भ्रष्टाचार, गैर-बराबरी और शोषण की व्यवस्था का मूल कारण है।

आओं ! मानसिक रूप से कुंद करने वाली इस सांस्कृतिक गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष करे !!

आओं ! आर्थिक एवं राजनैतिक सम्राज्यवाद को चीर स्थाई बनाये रखने वाली अंग्रेजीयत की सांस्कृतिक सम्राज्यवादी व्यवस्था को तोड़े !!!

Filename: इंग्लिश मीडिय EBOOK EDITED
Directory: C:\Users\ASHWINI KR\Documents
Template: C:\Users\ASHWINI KR\AppData\Roaming\Microsoft\Templates\Normal.dotm
Title:
Subject:
Author: abc
Keywords:
Comments:
Creation Date: 13/07/2014 11:19:00
Change Number: 29
Last Saved On: 30/07/2014 16:32:00
Last Saved By: ASHWINI KR
Total Editing Time: 1,330 Minutes
Last Printed On: 30/07/2014 16:32:00
As of Last Complete Printing
Number of Pages: 594
Number of Words: 92,402 (approx.)
Number of Characters: 526,692 (approx.)